कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख

भाग 1

डॉ. महेश कुमार शरण

प्राचीन काल की 'सुवर्णभूमि' और 'सुवर्णद्वीप' (आधुनिक काल में मयन्मार, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, थाईलैण्ड, मलेशिया, इण्डोनेशिया आदि देश) की संस्कृति हमारी भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित रही है, जिसे 'बृहत्तर भारत' कहा जाता था। हमारे पूर्वज अपने साथ भारतीय दर्शन, साहित्य, स्थापत्य आदि शास्त्र वहाँ ले गये। संस्कृत-भाषा, नाटक, काव्य आदि सर्वविध साहित्य उन्होंने वहाँ प्रस्तुत किया। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् की छाप वहाँ हमें देखने को मिलती है। इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, वियतनाम (चम्पा), बोर्नियो आदि स्थानों पर मिले सैकड़ो संस्कृत-अभिलेख इसके प्रमाण हैं। जावा में अभी भी प्रचलित शक कालगणना भारत से अपना प्रत्यक्ष संबंध मानती है। इन सभी देशों में प्रचलित वर्तमान साहित्य, रामायण, महाभारत से अपना साक्ष्य प्रस्तुत करता है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में शिव, विष्णु और बुद्ध के मन्दिर वहाँ के समाज का हिंदू-धर्म से निकटता का संबंध प्रकट करते हैं।

कम्बोडिया (प्राचीन नाम 'कम्बुज') में भारत, भारतीयता और हिंदू-धर्म का प्रचार ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध भाग से ही भारतीय ब्राह्मण कौण्डिन्य के आगमन से हमें देखने को मिलता है जिसने सर्वप्रथम फूनान राज्य की स्थापना कर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रारम्भ किया और उसके वंश के अन्य शासकों ने इसे उत्तरोत्तर फैलाया जिस कारण यह क्षेत्र एक प्रकार से भारतीय सांस्कृतिक उपनिवेश बन गया। यहाँ का 'अंगकोरवाट मन्दिर' हिंदू-स्थापत्य की दृष्टि से विश्व में सबसे बड़ा है और विश्वभर के लोग इसे देखने आते हैं। कम्बोडिया में देवभाषा संस्कृत एवं साहित्य का इतना अधिक विकास हुआ कि यहाँ के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में लगभग पन्द्रह सौ संस्कृत अभिलेख पाए गए हैं। संस्कृत-भाषा और पौराणिक हिंदू-धर्म के साथ-साथ पौराणिक अनुश्रुति तथा प्राचीन भारतीय मान्यताओं का भी प्रभुत्व वहाँ प्रस्थापित हुआ था। कम्बोडिया से प्राप्त यह प्राचीन अभिलेख कम्बुज-नरेश महाराज रुद्रवर्मन (514-539) के लोकल्याणकारी कार्यों को निर्दिष्ट करता है-

'एकस्थम् अखिलान् नराधिपगुणान उद्यच्चतेवेक्षितं
धात्रा निर्मित एक एव स भुवि श्रीरुद्रवर्म्मा नृपः ।
सर्व सच्चरितं कृतं नृपत्तिना नेताति धर्मार्थिना
लोकानुग्रह साधनं प्रति न च क्षत्रव्रतं खण्डितम् ।।'

20वीं शताब्दी में फ्रांसीसी पुरातत्त्ववेत्ता जॉर्ज सेदेस (George Cœdès, 1886-1969) ने ख्मेर-लिपि और संस्कृत -भाषा में लिखित इन अभिलेखों को पढ़कर उन्हें 7 खण्डों में ***'Inscriptions du Cambodge'*** (1937-1966) शीर्षक से प्रकाशित करवाया। सन् 1953 में विख्यात भारतीय इतिहासकार डॉ० रमेश चन्द्र मजूमदार (1888-1980) ने इसी अनुवाद के प्रथम तीन खण्डों में प्रकाशित अभिलेखों को देवनागरी मूलपाठ और अंग्रेज़ी टिप्पणी सहित ***'Inscriptions of Kambuja'*** शीर्षक से प्रकाशित करवाया। पुनश्च, डॉ० मजूमदार के कार्यों के आधार पर डॉ० महेश कुमार शरण ने कम्बोडिया के 149 संस्कृत-अभिलेखों को देवनागरी मूलपाठ और उनके हिंदी-अनुवाद सहित ***'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'*** शीर्षक से दो खण्डों में प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थरत्न से हमें भारत-कम्बोडिया के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संबंधों एवं हमारी भारतीय संस्कृति की ओर देखने का एक नया दृष्टिकोण प्राप्त होता है तथा अपने पुरुषार्थी पूर्वजों के लिए अंतःकरण में गौरव का भाव जाग्रत् होता है। पराक्रम की प्रबल प्रेरणा इससे सहज प्राप्त होती है जो वर्तमान की मांग है।
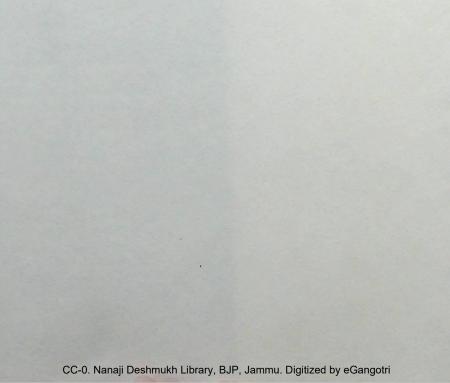
इस महनीय कृति के लिए डॉ० शरण का मैं अभिनन्दन करता हूँ और परमात्मा से उनके दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ।

डॉ० बालमुकुन्द पाण्डेय

संगठन-सचिव, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख

प्रथम भाग

डॉ० महेश कुमार शरण

एम०ए० (प्रा०भा०ए०अ०), एम०ए० (इति०), पीएच० डी०, डी० लिट्०, डी०आर०एस०;
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष,
स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग,
गया कॉलेज़, गया
(मगध विश्वविद्यालय, बोधगया);
पूर्व अतिथि प्राध्यापक,
महाचुलालौंगकौर्न बौद्ध विश्वविद्यालय, बैंकॉक (थाईलैण्ड);
महामहिम राज्यपाल बिहार से सम्मानित

॥ नामूलं लिख्यते किंचित् ॥

प्रकाशन-विभाग

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

नयी दिल्ली-110 055

'KAMBODIYĀ KE SAṀSKṚTA ABHILEKHA'
Vol. I
by Dr. Mahesh Kumar Sharan

Published by:
PUBLICATIONS DEPARTMENT
Akhila Bhāratīya Itihāsa Saṅkalana Yojanā
Baba Sahib Apte Smriti Bhawan, 'Keshav Kunj', Deshbandhu Gupt Marg,
Jhandewalan, New Delhi-110 055
Ph.: 011-23675667
e-mail : abisy84@gmail.com
Visit us at : www.itihassankalan.org

First Edition : Kaliyugābda 5117, i.e. 2015 CE

Laser Typesetting & Cover Design by:
Mahesh Narayan Traigunayat, Gunjan Aggrawala & Mukesh Upadhyay
Cover Introduction :
Angkor Vat— an image of heaven on the earth early 12th century

Printed at: Graphic World, 1659 Dakhni Sarai Street,
Daryaganj, New Delhi-110055
Price: ₹ 2,000/- (2 Vols. set)
(Funded by Madhav Sanskriti Nyas)

ISBN : 978-93-82424-16-1 (set)

प्रकाशक :
प्रकाशन–विभाग
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
बाबा साहेब आपटे–स्मृति भवन, 'केशव–कुञ्ज',
झण्डेवाला, नयी दिल्ली–110 055
दूरभाष : 011–23675667
ई–मेल : abisy84@gmail.com
वेबसाइट : www.itihassankalan.org

प्रथम संस्करण : कलियुगाब्द 5116, सन् 2014 ई०

लेज़र–टाईपसेटिंग एवं आवरण–सज्जा :
महेश नारायण त्रैगुणायत, गुंजन अग्रवाल एवं मुकेश उपाध्याय
आवरण–परिचय :
अंगकोरवाट – पृथ्वी पर स्वर्ग का एक प्रतीक (आद्य बारहवीं शताब्दी)
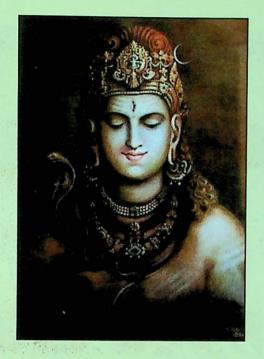
मुद्रक : ग्राफ़िक वर्ल्ड, 1659, दखनी सराय स्ट्रीट,
दरियागंज, नयी दिल्ली–110 002

वन्दना १
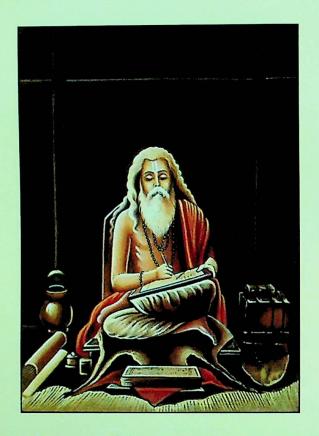
'रूपं यस्यनवेन्दुमण्डित शिखं त्र्या प्रतीतं पर
बीजं ब्रह्महरीश्वर रोदयकरं भिन्नं कलाभिस्त्रिधाः ।
साक्षादक्षर मामनन्ति मुनयो योगाधिगम्यन्नमः
संसिद्धैय प्रणवात्मने भगवते तस्मै शिवायास्तुवः ॥'

–कम्बुजनरेश राजेन्द्रवर्मन द्वितीय का मेबन अभिलेख, श्लोक 2

(जिसका रूप नये चन्द्रमा के समान शुभ्र है, वेदों द्वारा जो सर्वश्रेष्ठ रूप में वर्णित है, संसार जिससे व्यक्त होता है; तीनों गुणों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीन भिन्न रूपों में जो अवतार ग्रहण करते हैं, जिन्हें मुनिगण साक्षात् अविनाशी बतलाते हैं, उन योगगम्य ॐकारस्वरूप भगवान् शिवजी को कार्यसिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ।)

वन्दना २

'अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः ।
ज्ञानाञ्जनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षार्थैः समासव्यासकीर्तनैः ।
तथा भारतसूर्येन नृणां विनिहतं तमः ॥
इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना ।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् सम्प्रकाशितम् ॥'

—*महाभारत*, आदिपर्व, 84-85, 87

(संसारी जीव अज्ञानान्धकार से अन्धे होकर छटपटा रहे हैं । यह (महाभारत) ज्ञानाञ्जन की शलाका लगाकर उनकी आँख खोल देता है। यह शलाका क्या है ? धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थों का संक्षेप और विस्तार से वर्णन । यह न केवल अज्ञान की रतौंधी दूर करता, प्रत्युत् सूर्य के समान उदित होकर मनुष्यों की आँखों के सामने का सम्पूर्ण अन्धकार ही नष्ट कर देता है । यह भारत-इतिहास एक जाज्वल्यमान दीपक है । यह मोह का अन्धकार मिटाकर लोगों के अन्तःकरणरूप सम्पूर्ण अंतःकरणरूप सम्पूर्ण अंतरंग गृह को भली-भाँति ज्ञानालोक से प्रकाशित कर देता है ।)

'शब्दशास्त्रानुसन्धाने पाणिनिं वाग्विदावरम् ।
वागायुर्भोगवेत्तारं नमो मुनिपतञ्जलिम् ॥'

(शब्दशास्त्र (व्याकरण-संस्कृत) की खोज में, भाषाविदों में विशेष श्रेष्ठ पाणिनि को तथा महाभाष्य के प्रणेता तथा योगदर्शन के महान् वेत्ता महर्षि पतञ्जलि को हमारा प्रणाम ।)

'भद्रङ्कराणि तत्त्वानि प्राग्यैः साक्षात्कृतानि तान् ।
वैदिकर्षनि नमः सर्वानृषिचर्याथसिद्धयेः ॥'

(अनुसन्धान की सिद्धि के लिए जिन ऋषियों ने कल्याणकारी तत्त्वों का साक्षात्कार किया है, उन सभी को हम प्रणाम करते हैं ।)

'ईशा वास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्याञ्जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥'

—*यजुर्वेद*, 40.1

(हे मानव ! इस विशाल परिवर्तनशील विश्व में जो कुछ गतिविधि है, उस सब पर परमेश्वर का नियन्त्रण है (सचमुच यह जगत् उस परम पिता का अपूर्व वरदान है) । इस वरदान का तू उपभोग कर (इस वरदान पर सभी का समान अधिकार है), परन्तु किसी अन्य के भाग को भोगने का लोभ न रख ।)

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवन्त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥'

—*यजुर्वेद*, 40.2

(हर मनुष्य को चाहिए कि पूर्णायु भोगने के लिए वह जब तक जिये, कर्म करते हुए जीने की इच्छा रखे। यही उपाय है, इससे अन्य कोई नहीं, जिससे हे मानव ! तू कर्म के बन्धन में नहीं बँधेगा।)

'सीतामढ़ी (बिहार) मण्डलान्तर्गत शिवनगर ग्राम निवासिना दुर्गादेवी सियावरशरण सुनुना मगधविश्वविद्यालय बोधगया अन्तर्गत गया महाविद्यालये स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभागाचार्याध्यक्ष चरेण डॉ० महेश कुमार शरण 'कम्बुज के संस्कृत अभिलेख' प्रणीतोऽयं। यावत् स्थास्यति गिरयः सरितश्च महीतले तावद्रा कम्बोडिया के संस्कृत लेखः लोकेषु प्रणीतोऽयं।'

बिहार राज्य के सीतामढ़ी जिले के शिवनगर गाँव के निवासी दुर्गादेवी सियावरशरण के पुत्र मगध विश्वविद्यालय, बोधगया के अंतर्गत गया महाविद्यालय के स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग के पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष **डॉ० महेश कुमार शरण** द्वारा प्रणीत ***'कम्बुज के संस्कृत अभिलेख'***। जब तक भूतल पर पर्वत और नदियाँ रहेंगी, तबतक यह कम्बोडिया के संस्कृत-अभिलेख लोक में विस्तार प्राप्त करती रहेगी।)

समर्पण

'ॐ अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलिनं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥
सच्चिदानन्द सहाय रूपाय कृष्णायालिष्टकारिणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरुवे बुद्धि साक्षिणे ॥
ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः ।
अनादिरादि गोविन्दः सर्वकारण कारणम् ॥'

भारतीय एवं एशियाई इतिहास, सभ्यता और सांस्कृतिक चेतना के संगायक पारदृश्वा विद्वान् मेरे परम पूज्य गुरुदेव **पद्मश्री प्रो० (डॉ०) सच्चिदानन्द सहाय जी**, जो एक गहन अध्येता, विद्यानुरागी, अतिशय कुशल शिक्षक, जिनका मैं एम०ए० प्रथम सत्र (1963-65) का प्रथम छात्र होकर आज तक जिनका सदैव मार्गदर्शन तथा अनुकम्पा प्राप्त करता रहा, उस महान् गुरुदेव जी को यह कृति सादर समर्पित है ।

एवं

'गुरुपद रज मृदु मंजुल अञ्जन ।
नयन अमिय दृग दोष विभञ्जन ॥
गुरुः शिवो गुरुर्देवो गुरुर्बन्धुः शरीरिणाम् ।
गुरुरात्मा गुरुजीवो गुरोरन्यन्न विद्यते ॥'

प्राचीन गौरवाभिमानी, बहुश्रूत मनीषीप्रवर, सतत शास्त्रानुशीलन अध्ययनशील, विद्याविनोद व्यसनी, प्रखर मेधा, भावभरी स्नेहशीलता एवं स्वाध्यायपूर्ण उद्यमशीलता ही मेरे लिए जिनकी प्रेरणा रही एवं जिन्होंने इतिहास एवं संस्कृति के प्रति मेरे हृदय में अनुराग उत्पन्न किया और जिनके आशीर्वाद से ही मैं शिक्षक जीवन में आया, ऐसे पितृतुल्य महान् गुरुदेव **स्व० पं० सत्यदेव मिश्र जी** को यह अमर कृति सादर समर्पित है । काश ! वे इस पुस्तक को देख पाते !!

कृतज्ञता ज्ञापन

मगध विश्वविद्यालय, बोधगया से दिसम्बर, 1969 में 'पीएच० डी०' की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् मैंने इसी विश्वविद्यालय में 'डी० लिट्०' का निबन्धन करवाया । मुझे सन् 1973 ई० में **'स्टडीज़ इन संस्कृत इन्सक्रिप्शन्स ऑफ़ ऐंशियेण्ट कम्बोडिया'** शीर्षक पर 'डी० लिट्०' की उपाधि प्रदान की गयी ।

मैंने अपने स्नातकोत्तर वर्ग में दक्षिण-पूर्व एशिया के सांस्कृतिक इतिहास में कम्बोडिया के संस्कृत-अभिलेखों का गहन अध्ययन किया था । कम्बोडिया के विभिन्न भागों में लगभग एक हज़ार संस्कृत-अभिलेख पाये गये थे जिनका विस्तृत विवरण भूमिका में है । हम यह जानते हैं कि संस्कृत-वाङ्मय भारत के ऋषियों और मनीषियों द्वारा किये गये अनुसन्धान से अत्यन्त समृद्ध और महान् है–

'प्रावक्त नानामने केषामृषीणाञ्च मनीषिणाम् ।
भारतवर्षे कृतैः शोधेः समृद्धं वाङ्मय महत् ॥'

अपने इस शोध-प्रबन्ध के लिए मुझे डॉ० आर०सी० मजूमदार साहब के 'इन्सक्रिप्शन्स ऑफ कम्बुज' पर निर्भर होना पड़ा । इस पुस्तक में प्रत्येक अभिलेख का परिचय अंग्रेज़ी में तथा मूल पाठ संस्कृत में है । इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1953 में एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल, कलकत्ता से हुआ था। सन् 1953 से 1970 ई० तक किसी भी इतिहासकार का ध्यान इस ओर नहीं गया कि इस पुस्तक के प्रत्येक अभिलेख का हिन्दी-अनुवाद किया जाये । शब्दार्थ, परिचय तथा सारांश हिन्दी में नहीं रहने के कारण मैं एकदम किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया । मैंने इस अवधि में संस्कृत के विद्वानों से भी सम्पर्क किया पर कहीं से भी मुझे प्रोत्साहन नहीं मिला । अन्ततः सन् 1970 के ग्रीष्मावकाश में मैं अपने कैलासपति उच्च विद्यालय, अथरी (सीतामढ़ी) के प्रधान पण्डित **श्री सत्यदेव**

मिश्र जी 'मधुव्रत' से मिला जिन्होंने मुझे वर्ग अष्टम से एकादश वर्ग तक शिक्षा प्रदान की थी। उन्होंने मुझे सहर्ष स्वीकार कर लिया। उन्हें बड़ी ही खुशी हुई कि उनका एक पूर्ववर्ती छात्र स्नातकोत्तर-विभाग का प्राध्यापक होकर भी अपने गुरु के पास आया है। जब मनुष्य के सामने कोई विकट परिस्थिति उपस्थित होती है तब गुरु ही एक परम मित्र के समान हो जाता है क्योंकि गुरु ही सभी धर्मों के आत्मस्वरूप हैं। ऐसे श्रीगुरुदेव सत्यदेव मिश्र जी को मेरा कोटिशः नमन है–

'एक एव परो बन्धुर्विषमे समुपस्थिते ।
गुरु सकल धर्मात्मा तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥'

मैं सन् 1970, 1971 और 1972 के ग्रीष्मावकाश में नियमित रूप से अपने गुरुदेव के घर जाकर उन सभी 149 संस्कृत-अभिलेखों का शाब्दिक अर्थ लिखता रहा। इस प्रकार इन सभी अभिलेखों का हिन्दी-अनुवाद 1,100 पृष्ठों में मेरे पास आज तक है। ब्लू-ब्लैक स्याही से लिखने के कारण तथा काग़ज़ के पुराने हो जाने से मैं यह सोचता रहा कि मेरे अथक प्रयत्न एवं पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से उच्चरित कथनों को मैं पुस्तक रूप देने में सफल हो पाऊँगा या नहीं। मैंने अपने परिश्रम का फल तो 'डी० लिट्०' की उपाधि के रूप में प्राप्त कर लिया था, पर इन सभी संस्कृत-अभिलेखों के मूल पाठ का हिन्दी-रूपान्तर न होने के कारण भारत और कम्बोडिया के बीच के सांस्कृतिक सम्बन्धों की जानकारी हमें सही-सही रूप में नहीं मिल रही थी, इसी बात को लेकर मेरी चिन्ता बराबर बनी रही।

सन् 1973 ई० से ही मैं ***'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'*** शीर्षक से इस हस्तलिखित अमूल्य निधि को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने के लिए सरकारी, अर्द्ध-सरकारी एवं अन्य शोध-संस्थानों से वैयक्तिक रूप में मिलकर तथा पत्राचार के माध्यम से आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहा पर कहीं से भी कोई उत्तर नहीं मिल सका। सेवानिवृत्ति (30 जून, 2004) के बाद मैं सदा चिन्तित रहने लगा कि मेरे इस 1,100 पृष्ठों के अभिलेखों के संग्रह का क्या होगा? मुझे जिस गुरुदेव ने सन् 1970 ई० में अपने चरणों में बैठाकर इन संस्कृत मूल पाठों का हिन्दी-अनुवाद करा दिया, उस आधार पर मैंने एक परीक्षा तो उत्तीर्ण कर ली; परन्तु इस संग्रह के पुस्तक रूप में प्रकाशन न होने पर यह

चिन्ता बनी रही कि कैसे मैं अपने गुरुदेव के सम्मुख खड़ा हो पाऊँगा । उनके योगदान का प्रतिफल उनके सम्मुख प्रस्तुत करना अब मेरे जीवन का ध्येय बन गया क्योंकि मुझे यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि तीनों लोकों में देव, ऋषि, पितृ और मानवों द्वारा यह स्पष्ट है कि विद्या गुरुदेव के मुख में रहती है जो उनकी भक्ति से ही प्राप्त की जा सकती है । पुस्तक को देखकर गुरुदेव को कितनी खुशी हो सकती थी । पूज्य गुरुदेव पुस्तक के सन्दर्भ में मुझे समय-समय पर पत्र लिखकर उसकी प्रगति की जानकारी लेते रहे थे । गुरुदेव का ऐसा एक पत्र अविकल प्रस्तुत है–

अथरी
16/1/70

प्रिय महेश जी,

शुभानि सन्तु ।

आपके पत्र से आपके समाचार ज्ञात हुए। आपकी सफलता पर आपको धन्यवाद । जो अनुवाद-कार्य आप चाहेंगे, जब मुझे अवकाश रहेगा, बता दूँगा । दस बजे से पहले और चार बजे के बाद मुझे अवकाश है। छुट्टी के दिनों में तो हमेशा अवकाश ही अवकाश है। आपके पत्र के विषय में सभी शिक्षकों को सूचित किया। प्रधान भी पत्र पढ़कर प्रसन्न हुए। आपको सूचित करने बुलाने और बताने में मैं प्रसन्न ही रहूँगा । आप जो उचित समझें, करेंगे । विशेष मिलने पर ही बातें होंगी। हमलोग आपकी सफलता के लिए ईश्वर से प्रार्थी हैं । आपकी सफलता हमारी ही सफलता है । आपका कुशल ही हमारा कुशल है । आपकी प्रतिष्ठा हमारी प्रतिष्ठा है । अत: आपके ही क्या, किसी पूर्वतन छात्र या छात्रा के लिए हमलोग हमेशा तत्पर रहते हैं कि उनकी सहायता जहाँ तक हो सके, की जाय ।

आप जैसा उचित समझेंगे, करेंगे ।

भवदीय
सत्यदेव मिश्र
प्रधान पण्डित
कै०प०रा०उ०मा०वि०, अथरी, मुजफ्फरपुर

'गुरु वक्त्रे स्थिता विद्या गुरु भक्त्या च लभ्यते ।
त्रैलोक्य स्फुटवक्तारो देवर्षिपितृमानवाः ॥'

हमारे धर्मशास्त्र भी गुरु की वन्दना करते हैं– जो गुरु है वही शिव है, जो शिव है वही गुरु है–

'यो गुरुः स शिवः प्रोक्तोययः शिवः गुरुस्मृतः'

मैं गुरुदेव की वन्दना इन शब्दों में कर रहा हूँ–

'अज्ञानमूल हरणं जन्म कर्म निवारकम् ।
ज्ञान वैराग्य सिद्ध्यर्थ गुरुपादोदकं पिबेत ॥'

अर्थात्, 'अज्ञान को जड़ से उखाड़नेवाले, अनेकानेक जन्मों के कर्मों तथा कुकर्मों का निवारण करनेवाले, ज्ञान और वैराग्य को सिद्ध करनेवाले ऐसे सद्‌गुरुदेव के चरणामृत का पान करना चाहिए–

'यावत्कल्पान्तको देहस्तावद्देवि गुरुं स्मरेत ।
गुरुलोपो न कर्त्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत् ॥'

अर्थात्, 'जब तक इस शरीर में साँस रहती है तब तक श्री गुरुदेव का स्मरण करना चाहिए । सब कुछ प्राप्त होने पर एवं आत्मज्ञान होने पर भी शिष्य को सद्‌गुरु की शरण नहीं छोड़नी चाहिए ।'

डॉ० श्रीकान्त मणि त्रिपाठी (प्रवक्ता, गणित-विभाग, महाराणा प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर) का मैं हृदय से आभारी हूँ जिनके माध्यम से मुझे उसी महाविद्यालय के प्राचार्य **डॉ० प्रदीप कुमार राव जी** से परिचय हुआ जिनकी विलक्षण प्रतिभा, प्रखर मेधा, भावभरी स्नेहशीलता, प्रगतिनिष्ठ कर्मशीलता, स्वाध्यायपूर्ण उद्यमशीलता के धनी युवा प्राचार्य के साथ-साथ इतिहास एवं संस्कृति के एक गहन अध्येता एवं माँ सरस्वती के वरद पुत्र के रूप में मेरे समक्ष हैं, जिन्होंने प्रथम दिन के ही परिचय में इस ***'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'*** के प्रकाशन का गुरुतर भार लेकर मुझे अपने सेकेण्ड्री स्कूल के प्रधान पण्डित श्री सत्यदेव मिश्र जी 'मधुव्रत' द्वारा किये गये ऋण से मुक्त कर दिया । मैं डॉ० राव के प्रति श्रद्धावनत हूँ और मैं किन शब्दों से उनका आभार व्यक्त करूँ– शब्द नहीं मिलते ।

अन्त में मैं अपनी माता **स्वर्गीया दुर्गा देवी** तथा पूज्य पिता **स्वर्गीय सियावर शरण** को अपनी अमित श्रद्धा और प्रणति निवेदित करता हूँ जिन्होंने मुझे जन्म देकर माँ सरस्वती की सेवा में दत्तचित्त से लगाया– उनकी प्रेरणाएँ तथा पूर्व–प्रदत्त मार्गदर्शन ही मेरा सम्बल है। निरन्तर पुस्तक एवं शोध–पत्रादि लिखने की प्रेरणा देनेवाले स्नातकोत्तर वर्ग के गुरुजनों में **पद्मश्री प्रो० (डॉ०) सच्चिदानन्द सहाय**, **प्रो० (डॉ०) प्रफुल्लचन्द्र राय**, सुहृदवर **प्रो० (डॉ०) आर०एन० पाण्डेय जी** एवं **डॉ० जे०बी० सिन्हा** (आई०ए०एस०), **सर्वश्री लीलाकान्त झा, के०के० उपाध्याय, जगतनारायण प्रसाद जगद्‌बन्धु** एवं **विद्यानन्द प्रसाद** का अविस्मरणीय योगदान रहा है। मैं इन सभी महानुभावों के प्रति श्रद्धावनत हूँ। मैं **श्री महेश नारायण त्रिगुणायत जी** का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने संस्कृत के सभी मूल पाठों एवं शब्दार्थों की शुद्धता बनाये रखने हेतु आवश्यक संशोधन कर पाण्डुलिपि को पुस्तकाकार स्वरूप प्रदान करने में सहयोग किया। इस पुस्तक के प्रणयन में जिन महानुभावों ने शुभाशीष, भूमिका, शुभाशंसा, सम्मति एवं 'मैसेज़' से मुझे प्रोत्साहित किया है, उन सबों के प्रति कृतज्ञता–ज्ञापन करना मेरा दायित्व है।

इस क्रम में मैं सर्वप्रथम गोरक्षपीठाधीश्वर **महन्त अवेद्यनाथ जी** के प्रति अपनी हार्दिक भावना व्यक्त कर रहा हूँ। भारतीय राष्ट्रीयता के अनन्य साधक गोरक्षपीठाधीश्वर, गोरखनाथ मन्दिर के 97–वर्षीय महन्त श्री अवेद्यनाथ जी द्वारा इस ग्रन्थ के लिए शुभाशीष से मुझे जीवन सम्बल मिला है, अतः मैं श्रद्धापूर्वक उन्हें नमन करता हूँ तथा इनके प्रति प्रणत रहना मेरा कर्तव्य है। काश ! वे अपनी नज़रों से इस पुस्तक को देख पाते। वे 12 सितम्बर, 2014 को ब्रह्मलीन हो गये।

गुरुतुल्य **डॉ० ठाकुर प्रसाद वर्मा** (पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व–विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार) ने इस ग्रन्थ का सम्यक् अवलोकन कर नवीनतम साक्ष्यों एवं विचारों के परिप्रेक्ष्य में भूमिका लिखकर मुझपर जो अहैतुक अनुग्रह किया है, उसके लिए मैं आपका चिर आभारी रहूँगा।

गया क्षेत्र के वयोवृद्ध वरिष्ठ कवि एवं लेखक, जो सन् 1995 ई० से अबतक गया के प्रसिद्ध पितृपक्ष मेले के अवसर पर ज़िला–प्रशासन द्वारा प्रकाशित

पितृपक्ष-स्मारिका के प्रधान संपादक तथा *रामाख्यान* और *वायुनन्दन* (भक्ति गीत)-जैसे ग्रन्थों के रचनाकार **श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी सदय** द्वारा इस ग्रन्थ के लिए अपनी सम्मति देकर मुझे जो गौरवान्वित किया गया है, वह मुझपर उनका असीम स्नेह है, अत: मैं आपके विनय पुरस्सर नत हूँ।

गुरुवर प्रो० प्रफुल्लचन्द्र राय जी, जिनका मैं स्नातकोत्तर का छात्र रहा, मुझे निरन्तर शैक्षणिक गतिविधियों में आत्मीय सहयोग मिलता रहा एवं इन्होंने पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी सम्मति देकर पुस्तक को गौरवान्वित किया है, अत: इनके प्रति मैं नतमस्तक हूँ।

पितृतुल्य 95-वर्षीय गया के सेवानिवृत्त ए०डी०एम० **श्री विद्यासागर जी गुप्त** का मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और आशीर्वाद मुझे सदा मिलता रहा है तथा जिनकी प्रेरणा ही इस पुस्तक के प्रकाशन में है। इन्होंने इस ग्रन्थ के लिए शुभकामनास्वरूप अपनी सम्मति देकर मुझे गौरवान्वित किया है। आपके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन शब्दों में नहीं, अपितु वाणी की मूकता में ही सम्भव है। काश !!! वे इसे पुस्तक-रूप में देख पाते, पर ईश्वर ने इसी वर्ष 25 फरवरी, 2014 को उन्हें हमारे बीच से अपने लोक में बुला लिया, फिर भी मुझे विश्वास है कि वे उस लोक से भी मुझे अपना आशीर्वाद देते रहेंगे !!!

दिनांक 13 दिसम्बर, 2008 को जबलपुर रेलवे स्टेशन के प्रथम श्रेणी प्रतीक्षालय में एक ऐसे महानुभाव से मेरा परिचय हुआ, जो अपनी प्रकाशित होनेवाली पुस्तक के प्रूफ को शुद्ध कर रहे थे। वे हैं **महामहोपाध्याय डॉ० रहस बिहारी द्विवेदी जी**, जिनसे मिलकर विद्वत्तापूर्ण वैचारिक चर्चाएँ कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेखों पर भी हुईं। उनकी स्पष्टता और सादगीभरा जीवन तथा हर दृष्टि से गुरु का स्वरूप मैंने उनमें देखा। इसके अतिरिक्त जिज्ञासुओं, अनुसन्धायकों और विद्वानों के प्रति उनके मन में बहुत आदर भी है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में अपनी सम्मति देकर जो इसे गौरवान्वित किया है, वह मुझपर आपके असीम स्नेह का परिचायक है। मैं आपके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

एक अन्य महानुभाव, जो मेरे गुरुतुल्य हैं, जिन्हें मेरा पूरा परिवार कभी भी नहीं भूल सकता और जिनके विषय में ऐसा कहा जा सकता है कि जिस प्रकार दीपक स्वयं प्रकाशमान होता हुआ अपने स्पर्श से अन्य सैकड़ों दीपक जला

देता है, उसी प्रकार सद्गुरु आचार्य स्वयं ज्ञान-ज्योति से प्रकाशित होते हैं एवं दूसरों को प्रकाशमान करते हैं, वे हैं- **डॉ० नरेशचन्द्र जी अग्रवाल** (पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, वाणिज्य-विभाग एवं वाणिज्य संकायाध्यक्ष, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया), जिनके आशीर्वाद से ही मैं अपने इस शिक्षक-जीवन में पहुँच सका। मैं इनके प्रति नतमस्तक हूँ।

गया के मूर्धन्य विद्वान् एवं हिन्दी, संस्कृत, पाली एवं प्राकृत के लब्धप्रतिष्ठ स्वर्णपदक प्राप्त मगध विश्वविद्यालय, बोधगया के मेरे गुरुतुल्य पाली-प्राकृत विभाग के पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष **डॉ० ब्रजमोहन पाण्डेय 'नलिन'** ने न केवल सतत मार्गदर्शन किया है, अपितु ग्रन्थ के वर्तमान स्वरूप के निर्धारण में अपनी शुभाशंसा से मुझे अमूल्य सहयोग प्रदान किया है, अतः मैं आपके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित कर रहा हूँ। मैं यह अत्यन्त दुःख से लिख रहा हूँ कि वे 13 अगस्त, 2014 को हमारे बीच में से सदा के लिए उस लोक में चले गये, जहाँ से वे हमारे बीच नहीं आ सकेंगे।

इसी कड़ी में मैं **डॉ० उमेश चन्द्र जी मिश्र 'शिव'** (पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया) का भी आभारी हूँ जिनका स्नेह मुझे निरन्तर मिलता रहा है। पुस्तक के प्रकाशन-संबंधी जानकारी वे बराबर मुझसे लेते रहे हैं। आज इस पुस्तक को देखकर उन्हें कितनी खुशी होगी !!

हिंदी-साहित्य के भारत-प्रसिद्ध साहित्यकार गुरुतुल्य **डॉ० रामनिरंजन परिमलेन्दु** (पूर्व आचार्य, हिंदी-विभाग, भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुज़फ्फरपुर), जो सेवानिवृत्ति के बाद आज भी साहित्य-सृजन में लगे हुए हैं, इस ग्रन्थ के लिए मुझे अपनी सम्मति दी है, जो मेरे लिए प्रेरणा के स्रोत हैं, मैं आपके प्रति भी नतमस्तक हूँ।

मित्रवर **डॉ० सदानन्द जी गुर्दा** (पूर्व अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, मिर्ज़ा गालिब कॉलेज़, गया) ने इस ग्रन्थ के समस्त अभिलेखों को पढ़ा एवं अपने सुझावों को देकर इसे परिमार्जित रूप देते हुए अपनी सम्मति दी है जो मेरे लिए इनका अविस्मरणीय योगदान है, अतः आप कोटिशः धन्यवाद के पात्र हैं।

डॉ० प्रणवानन्द जी जश (पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय

इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व-विभाग, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन), जो भारत के मूर्धन्य इतिहासकारों की श्रेणी में हैं, इनसे शिक्षक-जीवन में जो शुभकामना एवं प्रेरणा मिलती रही है तथा इस ग्रन्थ के लिए आंग्ल भाषा में जो 'मैसेज़' मिला है, उससे मेरा उत्साहवर्धन हुआ है, उसे मैं वाणी में व्यक्त नहीं कर सकता, अतः मैं आपके प्रति हृदय से आभार मानता हूँ।

भारतीय इतिहास, सभ्यता, संस्कृति एवं पुरातत्त्व के मूर्धन्य विद्वान् **डॉ० महेश चन्द्र प्रसाद जी श्रीवास्तव** (आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व-विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना) के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मेरे विद्यार्थी-जीवन से ही मुझे पग-पग पर प्रोत्साहित किया।

मेरे अग्रज **डॉ० अवधेश कुमार शरण** ने मेरे छात्र-जीवन से शिक्षक-जीवन तक के क्रम में जो मार्गदर्शन मुझे दिया है, वह मेरे लिए इनका अविस्मरणीय योगदान है। इस ग्रन्थ के लिए इनका आंग्ल-भाषा में 'मैसेज़' मेरे लिए प्रेरणा का स्रोत है। अतः इनके प्रति भी मैं नतमस्तक हूँ।

डॉ० सयमतारा जी जश (पोस्ट-डॉक्टोरल सीनियर रिचर्स फेलो, प्राचीन भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं पुरातत्त्व-विभाग, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन एवं रिसर्च फेलो, इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, रामकृष्ण मिशन, कलकत्ता) ने इस पुस्तक की अभिलेख-संख्या 40 को राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता से उपलब्ध कराकर मुझे अनुगृहीत बना दिया। मैं किन शब्दों में अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करूँ, मूक हूँ। इस सम्बन्ध में मैं यह व्यक्त करना चाहता हूँ कि गया से गोरखपुर आते समय रेलगाड़ी में आरक्षण-डिब्बे में किसी असामाजिक तत्त्व ने नींद में मुझे कुछ सुंघा दिया जिससे गहरी नींद पड़ गई और मेरे सर्वस्व यहाँ तक कि जूते और चश्मे को भी लेकर किसी स्टेशन पर उतर गये। उन्हीं सामानों में यह 'लोले-अभिलेख' (अभिलेख-संख्या 40) भी था। मेरी जान तो बच गई, यह ईश्वर का वरदान मुझपर था। इस अभिलेख-संख्या 40 को छोड़कर आगे बढ़ जाना मेरे मस्तिष्क को झकझोरता रहा, पर डॉ० प्रणवानन्द जश साहब की सुपुत्री ने इसे हल कर दिया है, जिसके लिए मैं इन्हें कोटिशः धन्यवाद देता हूँ।

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के संगठन-सचिव **डॉ०**

बालमुकुन्द जी पाण्डेय जो को मैं कैसे भूल जाऊँ, जो एक निष्काम कर्मयोगी हैं तथा उनका जीवन परोपकार का है । उनका प्रत्येक क्षण दूसरों के लिए है । अपने अमृतमयी ज्ञान, कुशल मार्गदर्शन एवं शुभकामनाओं से उन्होंने जो मेरी सहायता कर इस पुस्तक का प्रकाशन करवाया है, मुझे तो ऐसा लगता है कि उनकी जिह्वा पर माँ सरस्वती विराजमान हैं, अन्यथा 1968 से 1972 तक का यह हस्तलिखित ग्रन्थ शनैः-शनैः समाप्त ही हो जाता । मेरी मूक वाणी ही इनके प्रति मेरी कृतज्ञता है ।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जो सहयोग अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के प्रकाशन-विभाग के एकमात्र युवा अधिकारी **श्री गुंजन अग्रवाल** से मिला है, वह अवर्णनीय है । श्री अग्रवाल एक सुविज्ञ अनुसन्धानकर्ता एवं विशिष्ट साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अभिरुचि के धनी हैं । मैंने उनमें यह देखा है कि उनमें शोध की गहन निष्ठा है तथा इतिहास का ही नहीं, इतिहास एवं साहित्य के विभिन्न आयामों की गहन छानबीन की सजग प्रवृत्ति भी इनमें है । इन्होंने अपना बहुमूल्य समय इस पुस्तक में दिया है तथा इनके अथक परिश्रम से इस ग्रन्थ का जो स्वरूप तैयार हुआ है, उसके लिए मैं श्री अग्रवाल को हृदय से धन्यवाद देता हूँ यह मानते हुए कि मेरे अनुज समान हैं तथा शोध के प्रति इनकी निष्ठा की अखण्ड ज्योति निरन्तर प्रज्वलित रहे तथा माँ सरस्वती इनके साहित्यिक तथा ऐतिहासिक अभ्युदय का पथ सतत प्रशस्त करती रहें– यह मेरी मंगलकामना भी इनके लिए है ।

अन्त में **श्री रामफेरन जी पाण्डेय** (ज़िलाध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी, श्रावस्ती, उत्तरप्रदेश) का मैं चिर ऋणी हूँ, जिन्होंने पुस्तक-प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की थी । उन्हें धन्यवाद देना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ ।

परिवार के सदस्यों में धर्मपत्नी **डॉ० निर्मला शरण** को, जिनका सम्पूर्ण जीवन सेवा और समर्पण का जीवन्त प्रमाण रहा है, जिनके सहयोग और समर्थन से ही मेरा लेखन-कार्य चल पाया है और जिनकी प्रेरणा तथा प्रोत्साहन पर ही मैं यह प्रकाशन निकाल पाने में समर्थ हो सका हूँ । पुत्र श्री मनीष कुमार शरण ने इस पुस्तक के प्रकाशन में 'संकेत-सूची' बनाकर मुझे जो अपना सहयोग प्रदान

किया, तथा पुत्री डॉ० मनीषा शरण, जो स्वयं इस विषय की स्नातकोत्तर एवं पीएच० डी० हैं, ने मुझे विषयगत समस्याओं के समाधान में जो आत्मीय सहयोग दिया, उसके लिए मैं इन तीनों का विशेष रूप से आभारी हूँ। इनके अतिरिक्त मेरे जामाता **श्री राजेश प्रसाद**, दौहित्री **सुरम्या शाल्वी** तथा दौहित्र **श्री हेमन्त कुमार**, बहन **मंजुला कुमारी शरण** एवं बहनोई **श्री हरिनारायण प्रसाद** को हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मुझे इस पुस्तक के प्रणयन में हरसम्भव सहयोग दिया है। अन्त में मुझे यह स्वीकार करने में तनिक भी झिझक नहीं है कि मेरी सम्पूर्ण प्रगति की मूलाधार मेरी बड़ी भाभी **श्रीमती निरंजना शरण** ही रहीं जो इस ग्रन्थ को काश ! अपनी आँखों से देख पातीं। मैं उनके प्रति मूक नतमस्तक हूँ। इन सबों के अविस्मरणीय सहयोग से ही यह पुस्तक प्रकाशित होकर विद्वज्जनों के हाथों में है।

बिहार के महामहिम राज्यपाल-सह-कुलाधिपति **श्री देबानन्द कुँवर** ने राजभवन, पटना में मेरी एक पुस्तक 'एक संघर्षरत विश्वविद्यालय शिक्षक की आत्मकथा' का विमोचन किया था। महामहिम द्वारा प्रदान किया गया MESSAGE मेरे लिए प्रेरणा बनी रहेगी। मेरी वाणी मूक है और मैं महामहिम के प्रति नतमस्तक हूँ। मैं जीवनपर्यंत इनके प्रति आभारी व श्रद्धावान् रहूँगा।

अपने लेखन-कार्य में मैंने अंग्रेज़ी की पुस्तकों से काफ़ी लाभ उठाया है जिसके लिए मैं उन विद्वान् लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। उनके मानक ग्रन्थों से उनके विचार और उद्धरण इस ग्रन्थ में मैंने लिये हैं जिससे प्रस्तुत पुस्तक की उपादेयता बढ़ी है।

इस पुस्तक के प्रणयन में अपने पूर्ववर्ती छात्रों में **डॉ० हेमप्रकाश**, **प्रो० डॉ० राजन जी गुप्त** (विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर प्रा०भा०ए०अ० विभाग, गया कॉलेज़, गया) और **डॉ० राकेश कुमार जी सिन्हा 'रवि'** को भी स्मरण कर रहा हूँ विशेषकर डॉ० रवि को, जिनका मगध के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक लेखन में एक विशिष्ट स्थान है। इन दोनों के सुझावों से मुझे काफी सहायता मिली है।

यदि अनवधान अथवा अल्पज्ञतावश अथवा मुद्रण-दोष के कारण इसमें कहीं त्रुटियाँ दिखें तो उदार सुधी अध्येताओं से विनम्र निवेदन है कि उसे वे अपने स्तर से सुधार लें तथा इसके लिए मुझे क्षमा करने की महती कृपा करेंगे।

प्रणतिपूर्वक प्रतिभाशाली विद्वानों से नम्र निवेदन है कि जहाँ भी त्रुटि रह गयी हो या कहीं कुछ अंश छूट गये हों उसका हमें निर्देश अवश्य प्रदान करेंगे—

'प्रज्ञावन्तो निवेद्यन्ते प्रणतेन मया बुधः ।
यत्त्रुटितं परित्यक्तं कृपया निर्देशन्तु ॥'

अन्त में मैं यह लिखना चाहता हूँ कि दुष्टों से तो प्रार्थना करना व्यर्थ ही है। केलिवन में कोमल पत्तों एवं फूलों को न देखकर काँटों को देखनेवाले ऊँट के समान, वे अपनी आदत न छोड़कर रचना का रसास्वादन न कर दोष ही ढूँढ़ते रहते हैं—

'कर्णामृतं सुक्तिरसं विमुच्य दोषे प्रयत्नः सुमहान् खलस्य ।
निरीक्षते केलिवनं प्रविष्टः क्रमलेकः कण्टक जालमेव ॥'

श्रीरामनवमी, 2072 विक्रमी
(28 मार्च, 2015 ईसवी)
नयी दिल्ली

महेश कुमार शरण

। ॐ नमो भगवते गोरक्षनाथाय ॥

श्री गोरखनाथ मन्दिर
गोरखपुर

दूरभाष : 0551-2255453
2255454

गोरक्षपीठाधीश्वर
महन्त अवेद्यनाथ

शुभाशीष

हम जानते हैं कि भारत की भौगोलिक सीमा को लाँघ कर कौण्डिन्य नामक एक भारतीय ब्राह्मण ने ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक दक्षिण-पूर्व एशिया के कम्बोडिया में (प्राचीन नाम कम्बुज देश) जिस हिन्दू राज्य की नींव डाली, वह फूनान-राजवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनके उत्तराधिकारी राजाओं ने देश के सांस्कृतिक स्तर को बहुत ऊँचा किया। वहाँ भारतीय भाषा, लिपि, साहित्य, धर्म और कला ने देश और वहाँ के निवासियों को पूर्ण रूप से भारतीयता के रंग में परिवर्तित कर दिया।

प्राचीन कम्बोडिया के उपलब्ध अभिलेख संस्कृत एवं ख्मेर-भाषाओं में हैं जिनकी संख्या लगभग पन्द्रह सौ है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कम्बोडिया की शासकीय भाषा तो संस्कृत थी जिसका प्रयोग मन्दिरों, विहारों तथा

मठों एवं शिष्ट लोगों द्वारा किया जाता था । भारतीयों के आगमन तथा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रवर्तन के फलस्वरूप शासन, पठन-पाठन तथा धार्मिक कृत्यों के सम्पादन आदि में संस्कृत-भाषा का स्थान उपलब्ध हुआ । यदि राजकीय प्रोत्साहन का अभाव होता तो भारतीय सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा आदि का प्रचार इतनी तेजी से वहाँ नहीं हो पाता । संस्कृत के सभी अभिलेख ललित एवं काव्य शैली में हैं । इनमें पाणिनि एवं पतञ्जलि के *महाभाष्य* में प्रतिपादित व्याकरण के नियमों का पूर्णतः पालन किया गया है । इन लेखों के रचनाकारों को अलंकार तथा छन्दशास्त्र की पर्याप्त जानकारी थी । ये संस्कृत-अभिलेख भारत और कम्बोडिया के बीच के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध के द्योतक हैं ।

'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख' के टीकाकार प्रो० महेश कुमार शरण न केवल प्राचीन भारतीय इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् हैं बल्कि इन्होंने संस्कृत का भी गहन अध्ययन किया है । इन्होंने मगध विश्वविद्यालय बोधगया एवं गया कॉलेज, गया में अध्यापन करते हुए भगवान् विष्णु एवं भगवान् बुद्ध का कृपा प्रसाद पाया है जिनके आशीर्वाद से ही ये डॉ० आर०सी० मजूमदार के अधूरे कार्य को पूर्ण कर लोकहितकारी कार्य में सक्षम हुए हैं। इन दिनों डॉ० शरण जीवन की सांध्य बेला में सिद्धभूमि गोरक्षनाथ धाम में निरन्तर माँ सरस्वती की आराधना में लगे हुए हैं । माँ सरस्वती की कृपा इन पर सदा बनी रहे, यही मंगल भावना है, मंगलकामना है ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के अध्येताओं के लिए प्रेरणाप्रद एवं विद्यार्थियों तथा सामान्य पाठकों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी। भारतीय इतिहास के क्षेत्र में प्रस्तुत ग्रन्थ की महती उपयोगिता प्रतीत होती है। मैं लेखक द्वारा भारतीय एवं एशियाई इतिहास के अन्य पक्षों पर भी इसी प्रकार के ग्रन्थों की अपेक्षा करता हूँ।

महन्त अवेद्यनाथ

गोवर्द्धन प्रसाद सदय
वरिष्ठ साहित्यकार

आवास :
सरोज मार्केट
राजेन्द्र आश्रम के सामने,
गया-823001 (बिहार)
मो०: 09430058975

सम्मति

प्राचीन काल में भारत के सांस्कृतिक साम्राज्य का क्षेत्र अत्यन्त विशाल था। एशिया के प्राय: सभी देश उस समय भारत के धर्म तथा संस्कृति से प्रभावित थे जहाँ भारतीय धर्मों का प्रचार था। भारत के इसी सांस्कृतिक विस्तार के क्षेत्र को 'बृहत्तर भारत' की भी संज्ञा प्रदान की गयी थी। भारतीय संस्कृति का द्वीपान्तरों में प्रसार केवल प्राचीन गौरवगाथा नहीं, वरन् भारत के तत्कालीन महान् सपूतों के साहस, अध्यवसाय एवं अज्ञात क्षेत्रों को खोजने की जीवन्त गाथा है। आज भी बर्मा, कम्बोडिया, लाओस, वियतनाम, थाईलैण्ड, मलेशिया और इण्डोनेशिया- सभी देशों में भारतीय संस्कृति के अवशेष पाये जाते हैं। भारतीय भाषा, लिपि, साहित्य, धर्म, समाज, अर्थ और कला का प्रभाव इस क्षेत्र पर ईसा की प्रथम शताब्दी से ही प्रारम्भ हो गया। इस क्षेत्र के बहुत से भागों पर भारतीय संस्कृति के प्रसार के साथ-साथ राजनीतिक प्रभुत्व भी स्थापित किया गया था।

कम्बुज देश आधुनिक कम्बोडिया का प्राचीन नाम है। यहाँ सर्वप्रथम

भारतीयों द्वारा औपनिवेशीकरण के सिलसिले में कौण्डिन्य नामक भारतीय ब्राह्मण ने ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी में वहाँ के नागवंशीय राजकुमारी सोमा से विवाह कर 'फूनान' नामक राजवंश की स्थापना की थी । अतः इस भू-भाग में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास हुआ था । यहाँ के राजाओं की उदारता एवं संरक्षण में भारतीय देवभाषा संस्कृत चरम सीमा पर पहुँच गयी । अतः संस्कृत-ग्रन्थों का यहाँ पठन-पाठन होने लगा । यहाँ से प्राप्त लगभग पन्द्रह सौ संस्कृत-अभिलेखों में जिस संस्कृत-भाषा का प्रयोग किया गया है, वह प्रायः शुद्ध है और उनमें पाणिनि की *अष्टाध्यायी* तथा पतञ्जलि के *महाभाष्य* में प्रतिपादित व्याकरण-सम्बन्धी सभी नियमों का पालन किया गया है । इन अभिलेखों के अध्ययन से एक ऐसे देश का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है जहाँ भारतीय धर्मों का प्रचार था । भगवान् शिव, विष्णु और बुद्ध के मन्दिर निर्मित थे और पौराणिक तथा बौद्ध देवी-देवताओं की मूतियाँ प्रतिष्ठापित की जाती थीं । प्राचीन काल के कम्बोडिया में भारतीय संस्कृति की सत्ता के इन मूर्त्त अवशेषों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह देश उसी प्रकार से भारत का एक भाग था जैसा कि अंग, बंग, गान्धार, मथुरा और कर्नाटक आदि ।

डॉ० रमेश चन्द्र मजूमदार द्वारा रचित *'इंस्क्रिप्शन्स ऑफ़ कम्बुज'* के अपूर्ण कार्य को आचार्य महेश कुमार शरण ने एक विद्वान् जिज्ञासु अध्येता के रूप में पूर्ण करने में सफलता प्राप्त की है । फलस्वरूप यह पुस्तक इस रूप में हमारे सम्मुख है ।

मैं डॉ० शरण को इस शोधपरक एवं ज्ञानवर्धक पुस्तक के प्रणयन के लिए अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ । संस्कृत मूल पाठ के अर्थ से तत्कालीन भारत व कम्बोडिया के सम्बन्धों की पूर्णरूपेण व्याख्या करने में शोधार्थियों तथा सामान्य पाठकों को लाभ मिलेगा- ऐसा मेरा विश्वास है । साथ ही यह पुस्तक हिन्दी-भाषा के माध्यम से कम्बोडिया-भारत इतिहास लेखन की दिशा में एक स्तुत्य प्रयास है । इस पुस्तक से लेखक की यश-वृद्धि होगी इसमें कोई सन्देह नहीं ।

गोवर्द्धन प्रसाद सदय

डॉ० प्रफुल्ल चन्द्र राय

सेवानिवृत्त प्रोफेसर,
प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन-विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

निवास :
अशोकीय बोधिमण्डल विहार,
पचहट्टी, बोधगया
(बिहार)

सम्मति

मेरे पूर्ववर्ती छात्रों में डॉ० महेश कुमार शरण का एक विशिष्ट स्थान है जिन्होंने अपने शिक्षक जीवन में दो दर्जन से अधिक भारतीय एवं एशियाई इतिहास के पुस्तकों की रचना की है जो इतिहास में रुचि रखनेवाले तथा शोधार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं । ये हमारे सहकर्मी भी रहे हैं तथा मैंने यह देखा है कि विषम परिस्थितियों में भी अपनी कलम को चलायमान रखते हुए जिस साहित्य का निर्माण इन्होंने किया है, वह इनकी लगन, अध्यवसाय एवं परिश्रम का परिणाम है। प्रस्तुत पुस्तक ***'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'*** प्राचीन काल में भारत और कम्बोडिया के बीच की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का एक जीवन्त प्रकाशन है जो तत्कालीन भारतीय सम्बन्धों की पूर्णरूपेण व्याख्या करने में जिज्ञासुओं के लिए अनुसन्धान का विषय हो सकता है ।

आधुनिक दक्षिण-पूर्व एशिया का क्षेत्र प्राचीन काल में 'सुवर्णभूमि'

और 'सुवर्णद्वीप' के नाम से जाना जाता था तथा बाद में यह क्षेत्र 'बृहत्तर भारत' के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ जहाँ भारतीय संस्कृति के प्रसार के साथ-साथ राजनीतिक प्रभुत्व भी स्थापित किया गया था। भारत के बाहर इन देशों में जानेवाले प्रवासियों के इस प्रवाह से एक द्वीपान्तर भारत का निर्माण हुआ जो चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक जारी रहा। पर पन्द्रहवीं शताब्दी में अरबों ने मलेशिया में प्रवेश कर अधिकांश राज्यों में इस्लाम की नींव डाल दी। कालान्तर में पुर्तगालियों ने भारतीय वाणिज्य और नौपरिवहन का विनाश कर दिया जिसके कारण दक्षिण-पूर्व एशिया के हिंदूकरण की दीर्घकालीन प्रक्रिया रुक गयी। स्वाधीन कम्बोडिया का अस्तित्व 1432 ई० से 1864 ई० तक यहाँ रहा। उसके बाद फ्राँसीसियों का आधिपत्य हो जाने से उनका शासन 1864 ई० से 1954 तक रहा। वर्तमान समय में कम्बोडिया एक स्वाधीन राष्ट्र है यद्यपि इस देश का नाम कई बार परिवर्तित हो चुका है।

यह हम जानते हैं कि दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में कम्बोडिया एक प्रमुख देश है जहाँ सर्वप्रथम कौण्डिन्य नाम का एक महत्त्वाकांक्षी भारतीय नवयुवक ब्राह्मण ने वहाँ जाकर वहाँ की राजकुमारी सोमा से विवाह कर 'फूनान' नाम से एक नये राजवंश की स्थापना की थी जिनके वंशजों ने तेरहवीं शताब्दी तक कम्बोडिया के शासक के रूप में पदासीन रहे। इन राजाओं ने अपने को भारतीय नाम, यथा– ईशानवर्मन, सूर्ववर्मन, जयवर्मन आदि रखकर अपने को गौरवान्वित भी किया था। इनके पूर्वज भारत से ही जाकर वहाँ बस गये थे तथा वहाँ के निवासियों को भारतीय संस्कृति के रंग में रँगा। भारत से वहाँ समय-समय पर विद्वान् एवं साहसी वीर पुरुष जाते रहते थे जिनका स्वागत ही नहीं हुआ वरन् उन्हें समाज और राज्य में विशिष्ट स्थान भी दिया गया था। इनके आगमन से वहाँ वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि का उसी प्रकार अध्ययन होता था जैसा कि भारत में।

अत: कम्बोडिया का सम्बन्ध शैक्षिक क्षेत्र में भी भारत के साथ था। वहाँ विशेष विषयों की शिक्षा के लिए भारतीय विद्वान् बुलाये जाते थे। इन विद्वानों के द्वारा ही यहाँ देवभाषा संस्कृत ने कम्बोडिया में अपना यथेष्ठ स्थान बना लिया। लगभग पन्द्रह सौ संस्कृत और ख्मेर-मिश्रित अभिलेखों की जानकारी हमें फ्रेंच

विद्वानों से मिलती है जिन्हें जॉर्ज सोदेस ने 7 खण्डों में प्रकाशित किया था । प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार डॉ० आर०सी० मजूमदार ने इन सात खण्डों में से केवल प्रथम तीन खण्डों का ही सम्पादन कर *'इंस्क्रिप्शन्स ऑफ़ कम्बुज'* नामक पुस्तक को एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल (कलकत्ता) से 1953 ई० में प्रकाशित करवाया था । इन्होंने प्रत्येक अभिलेख का परिचय अंग्रेज़ी में तथा मूल पाठ संस्कृत में करके इनके अर्थ को छोड़ दिया जिससे हिंदी-अनुवाद न होने पर अभिलेख की विषयवस्तु से हम वंचित रह गये थे ।

डॉ० शरण ने 149 संस्कृत-अभिलेखों की टीका कर ***'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'*** शीर्षक से डॉ० मजूमदार के अधूरे कार्य को पूरा किया है, जिसके लिए मैं इन्हें धन्यवाद देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि यह पुस्तक भारत और कम्बोडिया के बीच के तत्कालीन राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों को जनमानस में लाने में सफल होगी ।

प्रफुल्ल चन्द्र राय

विद्यासागर गुप्त
सेवानिवृत्त ए.डी.एम.

आवास :
एस.पी. कोठी के निकट,
गया-823001 (बिहार)
मो० : 09431368102

सम्मति

डॉ० महेश कुमार शरण द्वारा रचित ***'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'*** प्राचीन काल में भारत और कम्बोडिया के बीच की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का एक जीवन्त प्रकाशन है जो तत्कालीन भारतीय सम्बन्ध की पूर्णरूपेण व्याख्या करने में जिज्ञासुओं के लिए एक अनुसन्धान का विषय हो सकता है ।

आधुनिक दक्षिण-पूर्व एशिया का क्षेत्र प्राचीन काल में 'सुवर्णभूमि' और 'सुवर्णद्वीप' के नाम से जाना जाता था तथा बाद में यह क्षेत्र 'बृहत्तर भारत' के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ जहाँ भारतीय संस्कृति के प्रसार के साथ-साथ राजनीतिक प्रभुत्व भी स्थापित किया गया था । भारत के बाहर इन देशों में जानेवाले प्रवासियों के इस प्रवाह से एक द्वीपान्तर भारत का निर्माण हुआ जो चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक जारी रहा।

भारत से समय-समय पर वहाँ विद्वान् एवं साहसी वीर पुरुष जाते रहते थे जिनका स्वागत ही नहीं हुआ वरन् उन्हें समाज और राज्य में विशिष्ट स्थान भी दिया गया था । इनके आगमन से वहाँ वेद, पुराण, *रामायण*, *महाभारत* आदि का उसी

प्रकार अध्ययन होता था जैसा कि भारत में। अतः कम्बोडिया का सम्बन्ध शैक्षिक क्षेत्र में भी भारत के साथ था।

डॉ० शरण ने 149 संस्कृत-अभिलेखों की टीका कर ***'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'*** शीर्षक से डॉ० आर०सी० मजूमदार के *'Inscriptions of Kambuja'* के अधूरे कार्य को पूरा किया है जिसके लिए मैं इन्हें धन्यवाद देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि यह पुस्तक भारत और कम्बोडिया के बीच के तत्कालीन राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध को जनमानस के बीच लाने में सफल होगी।

विद्यासागर गुप्त

राष्ट्रपति सम्मानित

महामहोपाध्याय डॉ० रहस बिहारी द्विवेदी

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष,
संस्कृत पाली प्राकृत विभाग तथा कला संकायाध्यक्ष,
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर-482001 (म०प्र०)
एवं
पूर्व निदेशक, शोध-संस्थान,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी-2 (उ०प्र०)

निवास :
615, ग्रीनसिटी, माढो ताल,
जबलपुर-482002 (म०प्र)
मो०: 09425383962,
08808998743

सम्मति

आधुनिक दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों से भारत का अति प्राचीन काल से ही अत्यधिक निकट का सांस्कृतिक संबंध रहा है। भारत के इसी सांस्कृतिक विस्तार को 'बृहत्तर भारत' के नाम से हम जानते हैं। भारतीय संस्कृति को देश से बाहर ले जाने का सारा श्रेय हमारे महान् सपूतों का है, जिन्होंने सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप में भारतीय सांस्कृतिक संबंधों को स्थापित किया था जिनके अवशेष हम आज भी वहाँ पाते हैं। जब हम वहाँ की साहित्यिक प्रगति का अवलोकन करते हैं, तो उन देशों से प्राप्त अभिलेखों ने न केवल राजनीतिक ऐतिहासिक ज्ञान की अभिज्ञा प्राप्त होती है, अपितु सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विचारों के उत्कर्ष-प्रकर्ष का भी अभिज्ञान अधिगत होता है। भारतीय उपनिवेशों

की संस्थापना के पश्चात् वहाँ सनातन हिंदू-धर्म संप्रसारित हुआ, परिणामतः भारतीय साहित्य और संस्कृति की ओर उन लोगों का ध्यानावर्जन हुआ।

अपने अभ्युदय-काल में 'कम्बुज' नाम से प्रसिद्ध यह कम्बोडिया आधुनिक काल में विश्व प्रसिद्ध 'अंगकोरवाट' के कारण दक्षिण-पूर्व एशिया का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देश माना जाता है। कम्बोडिया के विभिन्न भागों में लगभग 1,500 संस्कृत-अभिलेख वहाँ के राजाओं की उदारता तथा प्रोत्साहन से उत्कीर्ण कराये गये जो भारतीय संस्कृति के प्रचार का ज्ञान तथा उसके वाहक संस्कृत के लेखों के महत्त्व की जानकारी कराते हैं। ये अभिलेख सदियों तक भारतीय संस्कृति के प्रचार तथा उसकी वृद्धि का संबंध बतलाते हैं। अतः हम देखते हैं कि अभिलेख इतिहास की मूल्यवान् सामग्रियों में सर्वोपरि हैं।

कम्बोडिया से प्राप्त अभिलेखों का अध्ययन सर्वप्रथम फ्रांसीसी विद्वान् जॉर्ज सेदेस ने किया और उन्होंने इन संस्कृत-अभिलेखों को सात खण्डों में *Inscriptions du Cambodge* शीर्षक से पुस्तक-रूप दिया जिनमें से प्रथम, द्वितीय और तृतीय खण्ड को प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार प्रो० (डॉ०) आर०सी० मजूमदार ने '*Inscriptions of Kambuja*' शीर्षक से सन् 1953 में पुस्तक-रूप में प्रकाशित किया। इस पुस्तक में केवल 149 संस्कृत-अभिलेख देवनागरी लिपि में तथा उन अभिलेखों का परिचय आंग्ल-भाषा में है। मूल पाठ का अर्थ हिंदी में नहीं होने से भारत और कम्बोडिया के बीच के राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के ऐतिहासिक इतिवृत्त की जानकारी लोगों को अबतक नहीं हो पाई है।

डॉ० महेश कुमार शरण ने '*Inscriptions of Kambuja*' के 149 संस्कृत के मूल पाठों का हिंदी अनुवाद कर शताब्दियों से भारत तथा कम्बोडिया के बीच सौमनस्यपूर्ण घनिष्ठ सांस्कृतिक संबंधों की जानकारी देने का प्रयास ***'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'*** द्वारा किया है। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि कम्बोडिया को भारतीय संस्कृति ने हर क्षेत्र में प्रभावित किया है। यह प्रभाव इतना अधिक था कि आज लगभग 2,000 वर्षों के बाद भी इसे समाप्त नहीं किया जा सका है। कम्बोडिया हमारी संस्कृति की गहरी जड़ों की पुष्टि तो करता ही है, साथ-ही-साथ भारतीय धर्म के सनातन स्वरूप के

प्रभाव को भी गहराई से स्पष्ट करता है । अतः हम चाहते हैं कि अद्यतन काल में हमारा संबंध सौहार्दपूर्ण बना रहे ताकि सांस्कृतिक चेतना दोनों देशों के बीच समुल्लसित रहे ।

डॉ० शरण एक सुयोग्य अध्यापक रहे हैं तथा इसके अतिरिक्त एक अनुभवी लेखक भी हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना कर इन्होंने एक ऐसे अभाव की पूर्ति की है जो एक निष्ठावान् अध्यापक के कार्यभार का अनन्य अंग है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक न केवल विषय के छात्रों, अध्यापकों अपितु कम्बोडिया के इतिहास में रुचि रखनेवाले सुधी पाठकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकेगी ।
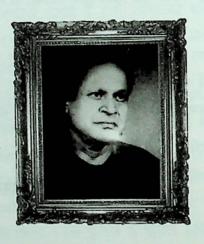
मैं डॉ० शरण को उनकी इस पुस्तक के लिए धन्यवाद देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि वे भविष्य में हिंदी-भाषा के माध्यम से अपनी लेखनी को गतिशील रखते हुए कम्बोडिया के इतिहास को भारतीय सांस्कृतिक योगदान से समृद्ध करते रहें ।

रहस बिहारी द्विवेदी

डॉ० ब्रजमोहन पाण्डेय नलिन

एम०ए०त्रय (संस्कृत, हिंदी, पाली); लब्धस्वर्ण
पदक, पीएच० डी०, डी० लिट्०,
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष,
पाली-प्राकृत विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया एवं
विजिटिंग प्रोफेसर,
नवनालन्दा महाविहार, नालन्दा

आवास :
अशोक नगर,
गया-823001
(बिहार)
मो०: 07739931600

शुभाशंसा

डॉ० महेश कुमार शरण भारतीय इतिहास, सभ्यता एवं संस्कृति तथा दक्षिण-पूर्व एशियाई इतिहास के मूर्द्धन्य मनीषी एवं वरिष्ठ विद्वान् हैं। इन्होंने भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के अनेक विषयों तथा राजनीति, कला, पुरातत्त्व, लिपिशास्त्र, अभिलेख, मुद्राशास्त्र, धर्म, दर्शन, एवं दक्षिण-पूर्व एशिया के इतिहास से सम्बद्ध कई ग्रन्थों का अत्यद्‌भुत प्रणयन किया है और अनेक अनुसंधायकों ने इनके कुशल निर्देशन में शोध-प्रबन्ध का प्रणयन किया है जिसमें इनकी विद्वत्ता परिलक्षित होती है।

प्राचीन काल में भारत के सांस्कृतिक साम्राज्य का क्षेत्र अत्यन्त विशाल

था । एशिया के प्रायः सभी देश उस समय भारत की धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना से प्रभावित थे । इन देशों में भारतीय धर्मों का प्रचार और प्रसार था । संस्कृत-ग्रन्थों का पठन-पाठन होता था, लिखने के लिए ब्राह्मी तथा खरोष्ठी-लिपियों का प्रयोग किया जाता था और राजकीय कार्यों तथा परस्पर व्यवहार के लिए संस्कृत-भाषा का प्रयोग किया जाता था । भारत के विद्वानों, धर्म-प्रचारकों और व्यापारियों ने इन देशों में भारत का जो विशाल सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित किया था, वह वस्तुतः अनुपम था और वह वर्तमान समय में भी विद्यमान है ।

कम्बोडिया भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था । यह तथ्य सच है कि ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय ब्राह्मण कौण्डिन्य ने कम्बोडिया (जो प्राचीन काल में कम्बुज देश- कम्बोज के नाम से प्रख्यात था) जाकर वहाँ के मूल निवासियों की राजकुमारी सोमा के साथ विवाह कर एक नये राजवंश की स्थापना की जो कम्बोडिया के इतिहास में 'फूनान राजवंश' के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसके वंशजों ने तेरहवीं शताब्दी तक कम्बोडिया के शासन-सूत्र का बड़ी कुशलता से संचालन किया । यहाँ से प्राप्त अभिलेख एवं अन्य प्राचीन साहित्यिक कृतियाँ इस बात के प्रमाण हैं कि इनके साथ प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध तत्युगीन प्रगाढ़ थे ।

दक्षिण-पूर्व एशिया से जितने भी संस्कृत-अभिलेख प्राप्त हुए हैं उनमें सबसे अधिक संख्या में कम्बोड़िया से ही उपलब्ध हैं । अभिलेख किसी भी देश के इतिहास एवं संस्कृति के अनुशीलन-स्रोतों में एक महत्त्वपूर्ण साधन हैं । इनकी महत्ता एवं उपयोगिता और भी उपचित हो जाती है जब इतिहास-निर्माण में हमें मात्र पुरातात्त्विक साधनों पर निर्भर होना पड़ता है । प्राचीन कम्बोडिया के लेख ललित एवं परिमार्जित काव्य निबन्धित हैं । इन लेखों के रचनाकारों को अलंकार एवं छन्दशास्त्र की पर्याप्त अभिज्ञा थी । यहाँ से प्राप्त अभिलेखों के बहुविस्तीर्ण अनुशीलन से हमें यहाँ के प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति के विषय में पूर्णरूपेण जानकारी मिलती है । इनसे हम तत्युगीन साहित्यिक अभिरुचि, ज्ञान एवं उन्नति का सहज अनुमान लगा सकते हैं । यहाँ देवभाषा संस्कृत का आगमन भारतवर्ष से ही हुआ जिसके लिए भारतीय संस्कृत-विद्वानों का कम्बोडिया के राजाओं ने

उचित आदर-सम्मान देकर अपने देश में इस देवभाषा के प्रचारार्थ निमन्त्रित किया करते थे । भारतीय संस्कृत-विद्वानों के यहाँ आगमन से यहाँ के लेखों में हम पाणिनि की *अष्टाध्यायी*, पतञ्जलि के *महाभाष्य*, *मनुस्मृति*, वात्स्यायन के *कामसूत्र*, सुश्रुत की *सुश्रुतसंहिता*, वेद-वेदांग, वेदान्त, *रामायण*, *महाभारत*, बौद्ध-ग्रन्थों, पौराणिक पुराकथाओं एवं कहानियों, न्यायसूत्र, योगाचार, सिद्धान्त, धर्मशास्त्र आदि को पाते हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक में कम्बोडिया में संस्कृत-साहित्य का विकास किस प्रकार हुआ और फ्रांसीसी विद्वानों से लेकर डॉ० आर०सी० मजूमदार के *इन्सक्रिप्शन्स ऑफ कम्बुज* (एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता, 1953) का विस्तृत वर्णन है । पर मजूमदार साहब की पुस्तक में मूल अभिलेख की हिन्दी-टीका नहीं होने के कारण हम कम्बोडिया और भारत के बीच के तत्युगीन इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, समाज, अर्थव्यवस्था, कला-कौशल, शिक्षा एवं साहित्य की जानकारी से वञ्चित हो जाते हैं । डॉ० आर०सी० मजूमदार की उपर्युक्त पुस्तक का प्रकाशन सन् 1953 ई० में हुआ था और उस समय से अबतक किसी भी भारतीय विद्वान् की दृष्टि उस पुस्तक की हिन्दी-टीका के लिए नहीं गयी ।

डॉ० शरण अपने डी० लिट्० शोध-प्रबन्ध (सन् 1970) से ही मूल पाठ की हिन्दी-टीका के प्रकाशन हेतु प्रयत्नशील रहे हैं और यह जानकर मुझे अपूर्व प्रसन्नता है कि डॉ० शरण के अश्रान्त प्रयत्न एवं अध्यवसाय से यह पुस्तक पाठकों के बीच उपन्यस्त है ।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि डॉ० शरण की इस पुस्तक द्वारा भारतीय संस्कृति के गौरवमय प्राचीन इतिहास का एक अध्याय पाठकों के सम्मुख प्रत्यक्षीकृत हो जायेगा और इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा भी उनमें उत्पन्न हो जायेगी ।

मेरी यह प्रतिबद्ध धारणा है कि प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्वान् एवं सांस्कृतिक चेतना के उद्गाता डॉ० शरण की यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक भारत और कम्बोडिया की चिरकालिक सांस्कृतिक परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाये रखने में पूर्णतः सफल होगी ।

मार्कण्डेयपुराण से हम जानते हैं– बन्धुवर्ग, मित्र आदि सब छोड़कर चले जाते हैं पर सरस्वती साथ नहीं छोड़ती–

'बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टपरं गृहे ।
त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्व न जहाति सरस्वती ॥'

ब्रजमोहन पाण्डेय नलिन

डॉ० रामनिरंजन परिमलेन्दु
पूर्व युनिवर्सिटी प्रोफेसर (हिंदी),
भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर

आवास :
दक्षिण दरवाजा,
गया-823001 (बिहार)
मो०: 09470853118

सम्मति

प्रोफेसर डॉ० महेश कुमार शरण ने अपनी बहुज्ञता एवं प्रतिभा क्षमता के द्वारा **'कम्बोडिया के संस्कृत-अभिलेख'** नामक ग्रन्थ का जो प्रणयन किया है, वह गवेषणात्मक पद्धति का सर्वोत्तम निदर्शन है। विश्व की जितनी प्राचीन संस्कृतियाँ हैं उनमें भारतीय संस्कृति सार्वभौम एवं लोकोत्तर संस्कृति के रूप में संप्रतिष्ठित रही है और भारत की सांस्कृतिक चेतना प्रतिवेशी देशों की सांस्कृतिक चेतना को प्रभावित करती रही है। एशिया के दक्षिणी-पूर्वी भाग में जितने देश हैं और उन देशों में जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं, उनसे न केवल राजनीतिक एवं ऐतिहासिक ज्ञान की ही अभिज्ञा प्राप्त होती है अपितु सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विचारों के उत्कर्ष-प्रकर्ष का भी अभिज्ञान अधिगत होता है।

भारतीय उपनिवेशों की संस्थापना के पश्चात् वहाँ सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ और वहाँ सनातन हिन्दू-धर्म संप्रसारित हुआ, परिणामतः भारतीय साहित्य और संस्कृति की ओर उन लोगों का

ध्यानावर्जन हुआ। यह सार्वभौम सत्य है कि अभ्युदय और निःश्रेयस् का मूल धर्म ही सामाजिक जीवन के उच्चादर्शों तथा कार्यकलापों को प्रभावित करता है और जीवन के शाश्वतोदात्त मूल्यों का संधारण करता है। कम्बोडिया के संस्कृत-अभिलेखों के अनुशीलन से वहाँ के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा कला का ऐतिहासिक इतिवृत्त इस तथ्य का साक्षी है कि भारतीय संस्कृति का चतुरस्र विकास वहाँ अपने विशिष्ट गुण-धर्मों से अन्वित विविध रूपों में पूर्णता के साथ हुआ। अतः यहाँ के संस्कृत-अभिलेख न केवल इस देश के प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति के अध्ययन में उपादेय हैं बल्कि प्राचीन कम्बोडिया के साहित्यिक अवशेष के रूप में भी इनका अविस्मरणीय महत्त्व है।

डॉ० शरण की यह पुस्तक शताब्दियों से कम्बोडिया एवं भारत के बीच सौमनस्यपूर्ण घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्धों के आदान-प्रदान के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन करती है। आधुनिक काल में भी भारत और कम्बोडिया का सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण बना रहे ताकि सांस्कृतिक चेतना दोनों देशों के बीच समुल्लसित रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए डॉ० महेश कुमार शरण ने कम्बोडिया की सभ्यता और संस्कृति से सम्बद्ध एक सर्वथा महत्त्वपूर्ण एवं महनीय ग्रन्थ ***'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'*** की रचना की है जो अध्येताओं एवं अनुसन्धायकों के लिए सर्वथा उपादेय है।

मैं डॉ० महेश कुमार शरण को उनके इस विद्वत्तापूर्ण प्रकाशन के लिए धन्यवाद देता हूँ तथा वे भविष्य में भी इसी प्रकार हिन्दी-भाषा के माध्यम से कम्बोडिया के इतिहास के भण्डार की आपूर्ति करने में सर्वदा प्रयत्नशील रहेंगे।

रामनिरंजन परिमलेन्दु

डॉ० सदानन्द गुर्दा
सेवानिवृत्त प्रोफेसर

आवास :
'कृष्ण-द्वारका'
चाँद चौरा
गया-823001 (बिहार)
मो०: 09934264655

सम्मति

दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ हमारा सांस्कृतिक सम्बन्ध सदियों से रहा है। इन देशों की लिपि, भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन, कला, समाज और राजनीति- सभी महत्त्वपूर्ण स्तरों पर भारत के महत्त्वपूर्ण योगदान के कारण इस क्षेत्र को 'बृहत्तर भारत' का नाम दिया गया था । आधुनिक काल का कम्बोडिया प्राचीन काल के कम्बुज का यूरोपीय रूप है जो ऋषि कम्बु की भूमि कही जाती है ।

प्रस्तुत पुस्तक ***'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'*** का मूल उद्देश्य है कम्बोडिया से प्राप्त संस्कृत-अभिलेखों को जन-जन तक पहुँचाना । यहाँ के संस्कृत-अभिलेख कम्बोडिया के निवासियों की धार्मिक भावनाओं का विवेचन करते हैं । अभिलेखों में ब्राह्मण धर्म की भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के प्रचलन का भी वर्णन है । शैवमत राजकीय धर्म था । भगवान् शंकर की पूजा वहाँ लिंग रूप में की जाती थी । विष्णु के कई नामों का वर्णन हमें मिलता है तथा वहाँ भगवान्

विष्णु की पूजा भी होती थी । देवराज मत के नाम से प्रसिद्ध यह तीन धाराओं का एक सम्मिश्रण था जिसके मुख्य उद्देश्य थे ऊँचे स्थान पर शिवलिंग की स्थापना करना, राजा को किसी देवता का स्वरूप समझना और पितरों की उपासना तथा उनकी मूर्ति स्थापना करना । बौद्ध धर्म को ब्राह्मण-त्रिमूर्ति में स्थान मिला था ।

सदियों तक भारतीय संस्कृति के प्रचार तथा प्रसार का सम्बन्ध बतलानेवाले कम्बोडिया की ये संस्कृत-प्रशस्तियाँ संस्कृत के लेखों के महत्त्व की जानकारी कराता है । इस पुस्तक के प्रकाशन से कम्बोडिया के इतिहास में रुचि रखनेवाले और शोधकर्ताओं को मूल स्रोत की सामग्री मातृभाषा हिन्दी में उपलब्ध होने से निश्चय ही बहुत लाभ होगा । यह सर्वविदित है कि किसी भी देश के इतिहास एवं संस्कृति के अनुशीलन के साधनों में अभिलेखों का अपना विशिष्ट महत्त्व है ।

मैं डॉ० महेश कुमार शरण को उनकी इस विद्वत्तापूर्ण कृति के लिए धन्यवाद देता हूँ । पुस्तक की भाषा सरल एवं बोधगम्य है ।

सदानन्द गुर्दा

Dr. Pranabanand Jash
Former Prof. & Head
Dept. of Ancient Indian History,
Culture & Archæology
Visva Bharati, Santiniketan

Purbapalli (North),
Santiniketan-731235,
West Bengal (India)
Mob.: 09830165581
Ph.: 03463-262881

Message

Cambodia (ancient Kambuja) has made unique contribution to Sanskrit Literature especially in poetry. We have positive evidence of the flourishing state of Sanskrit language during a large span of more than 800 years. Verses composed during the reigns of Jayavarman VII and Yasovarman conform to Panini's rules because the compositers had thoroughly knowledge of grammar. Many of Sanskrit verses are so beautiful that we do not find their parallel even in mainland India from where they got transplanted. A new *Kāvya* style Manohara has been referred to in the Pre Rup Inscription of Rajendravarman II (944-968 A.D.) Rulers like Yaśovarman took keen interest in this language. Commentary on the *Mahābhāṣya* of Patañjali is said to have been written by him. His minister was an expert in Horāśāstra. In Yasovarman's inscription there is a reference to the *Manusmṛti* and famous authors like Vātsyāyana, Viśālāksha, Pravarasena, Mayura,

Guṇāḍhya and Suśruta and their works. Royal orders were designated by the Sanskrit name *Śāsana*. Sanskrit was the official language and general dialect of the people.

The language of the inscriptions is generally correct Sanskrit. From the study of these inscriptions it appears that kings, nobles and priests had Sanskrit names. Cities and provinces most often bore Sanskrit names as Iśānapura and Yaśodharapura.

It thus transpired that though various elements of Hindu culture were implanted by the Indian settlers, Sanskrit language and literature were the first and foremost which opened a new world of culture.

I am confident that the book **CAMBODIA KE SANSKRIT ABHILEKHA** in Hindi language by Dr. M.K. Sharan will prove to be an excellent collection of historical materials of great academic and research value. It will also strengthen the ancient cultural bond between India and Cambodia.

I have great pleasure in congratulating Dr. Sharan on this very useful book he has produced which had laid the scholars interested in this subject under a deep debt of obligation to him.

24.9.2013 **Pranabanand Jash**

Dr. Awadhesh Kumar Sharan
M.A., Ph. D.

Residence :
Shivanagar
P.O. Bhandari
Distt. Sitamarhi (Bihar)
Mob.: 09931058309

Message

The study of the spread of Indian culture and its transformation into strange and new but adorable form is specially worthy of study by scholars from India. Such scholars should consider this field to focus their attention. Dr. M.K. Sharan's book '***KAMBODIYĀ KE SAṀSKṚTA ABHILEKHA***' is a welcome publication discussing not only the historical connections between India and Cambodia but also a survey of the inscriptions that are valuable from the historical and literary points of view. Aslo religious outlook as well as the glory of artistic heritage of Cambodia is vividly gleaned from the study of socio-economic life of the people.

With a glorious life of over 3000 years, Sanskrit continues to be a living language even today, bobbing up during Hindu ceremonies when *mantras* are chanted. Sanskrit is the source of all the languages of the world and not a derivation of any language. And as such, Sanskrit is the Divine mother language of the world.

Sanskrit literature is a never-failing source of inscription for the proper understanding of Indian culture of which tangible representations are found abundantly in sculptures and paintings. The culture of a nation is judged by its literature and art and they serve as mirror of the glory of the nation to which they belong. The understanding of a forgotten past is made possible and what is left unexplained or vague by one is explained and made clear by the other, as art and literature act as real mirrors since they reflect images that no longer exist. This reminds us of the famous verse of Daṇḍin in his *Kavyādarśa* (1.5).

'आदि राजयशोम्बिम्बमादर्शं प्राप्य वाङ्मयम् ।
तेषामसन्निधानेऽपि पश्य नाद्यापि नश्यति ॥'

Look ! the image of fame of early kings reflected in the mirror of literature does not disappear even now even in their absence.

Dr. Mahesh has worked with commendable patience and devotion and has published this book which would help understanding Cambodia from the point of view of her own literary and artistic materials which is the best mode of studying a country from her source books.

I have no doubt that scholars and also lay men will read this work with great interest and pleasure.

I congratulate Dr. Sharan for his painstaking efforts and approach and expect honourable appreciation from learned historians and indologists of India and abroad.

Awadhesh Kumar Sharan

डॉ० ठाकुर प्रसाद वर्मा
सेवानिवृत्त उपाचार्य,
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी;
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आवास : 397-ए, गंगा प्रदूषण नियन्त्रण मार्ग, भगवानपुर, वाराणसी-221 005 (उ०प्र०)
दूरभाष : 0542-2367381
मो०: 09450965819

भूमिका

डॉ० महेश कुमार शरण द्वारा सम्पादित एवं अनूदित पुस्तक *'कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख'* कम्बुजदेश के 149 अभिलेखों का संग्रहमात्र नहीं है वरन् उनका हिन्दी-अनुवाद भी है जो संसार की किसी भी भाषा में पहली बार प्रकाशित हो रहा है। कम्बोडिया के लोग प्राचीनकाल में अपने देश को 'कम्बुज' कहते थे; 'कम्बोडिया' उसका विकृत अंग्रेज़ी रूप है। इसे 'कम्पूचिया' भी कहा जाता है। चीनी अभिलेखों में प्रायः इसे 'फुनान' कहा गया है। पुराने ख्मेर भाषा में 'ख्मेर' का अर्थ 'पर्वत' होता है। इस क्षेत्र का एक सबसे प्रसिद्ध राजवंश अपने को 'शैलेन्द्र' कहता है लेकिन इतिहासकार इस विषय पर मौन हैं।

कम्बुज ही नहीं वरन् समस्त दक्षिण-पूर्व एशिया ईसापूर्व की पहली शताब्दी के भी पहले से हिन्दू-संस्कृति (जिसमें बौद्धधर्म की संस्कृति भी शामिल है) से सम्पृक्त रहा है जिसके चिह्न आज भी देखे जा सकते हैं। वैसे यहाँ की मूल भाषा ख्मेर है लेकिन ईसा की चौदहवीं शताब्दी तक यहाँ की राजभाषा संस्कृत रही है । दक्षिण-पूर्व एशिया के इस समूचे क्षेत्र से एक हज़ार से भी अधिक संस्कृत-अभिलेख फ्रांसीसी विद्वान् जॉर्ज सेदेस द्वारा सात खण्डों में संग्रहीत किये गये थे जिसमें फ्रांसीसी भाषा में इन लेखों का संक्षिप्त परिचय तथा रोमन लिपि में मूलपाठ ही दिया गया है। कोई अनुवाद न होने के कारण विश्व को यह ज्ञात नहीं हो सका कि इनमें दक्षिण-पूर्व एशिया में हिंदू-संस्कृति के प्रसार से सम्बन्धित कितनी विपुल जानकारी छिपी हुई है । शायद इनका सम्बन्ध हिंदू-संस्कृति से होने के कारण ही इन पर ध्यान नहीं दिया गया । डॉ० रमेश चन्द्र मजूमदार महोदय ने सन् 1953 में कम्बोडिया के 149 अभिलेखों को '*इन्सक्रिप्शन ऑफ़ कम्बुज*' नाम से प्रकाशित करवाया था । इसमें उन्होंने मूल अभिलेखों को रोमन लिपि से देवनागरी लिप्यान्तरण तो दिया लेकिन शायद इसकी विपुलता के कारण वे इनका अंग्रेज़ी अनुवाद नहीं दे सके; केवल अभिलेखों का परिचय मात्र दिया है । डॉ० शरण ने इनका हिंदी-अनुवाद प्रस्तुत करके एक ऐसा काम किया है जिसके द्वारा कम्बुज देश का इतिहास सामान्यजन की परिचयसीमा में आ गया है। ऐसा विश्व में पहली बार हुआ है अतः इसका स्वागत न केवल इतिहासकार तथा समस्त हिंदीभाषी जगत् वरन् समस्त भारत के लोगों को करना चाहिए ।

इन संस्कृत-अभिलेखों पर एक दृष्टि डालने मात्र से ऐसा लगता है मानो कम्बुज ही नहीं वरन् समस्त दक्षिण-पूर्व एशिया को उसकी पहचान भारतीय लोगों से सम्पर्कों के बाद ही मिली । इसके पूर्व तो यह क्षेत्र प्राग-इतिहास की धुन्ध में समाया हुआ सा लगता है। भौगोलिक दृष्टि से कम्बुज दक्षिण-पूर्व एशिया प्रायद्वीप का दक्षिणी भाग है जिसके दक्षिण समुद्र में मीकांग नदी मुहाना बनाती है। यह वास्तव में प्रायद्वीप में घुसने का प्रवेशद्वार ही है। मीकांग शब्द माँ-गंगा नदी का स्थानीय संस्करण है जिसे यह नाम भारतीय प्रवासियों ने दिया था। यह नदी हिमालय से, निकलकर उत्तर-पूर्व की ओर बहती हुई दक्षिण मुड़कर समस्त प्रायद्वीप को सिंचित करती है तथा यहाँ मुहाना बनाती है । यहाँ पर जो जनजाति

बसती थी वह आज 'ख्मेर' कहलाती है तथा अपने को नागवंशी मानती है ।

इन लोगों के भारतीयों से सम्पर्क के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं । लेकिन सबसे पहले एक अभिलेखीय सन्दर्भ, जिसे डॉ० शरद हेबाळकरजी ने अपनी पुस्तक *'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'* (2010:49) में दिया है । चम्पा (वियतनाम) के राजा प्रकाशधर्म के एक संस्कृत-अभिलेख (शक सं० 579/ ई० 757) के अनुसार कौण्डिन्य नामक एक ब्राह्मण ने सोमा नाम की भुजगेन्द्र कन्या (नागवंशी कुमारी) से विवाह किया और साम्राज्य की स्थापना की। इस घटना का बड़ा रोचक वर्णन डॉ० शरद हेबाळकर ने दिया है । इस सम्पर्क के पहले तक इस क्षेत्र के लोग वस्त्रों के प्रयोग से परिचित नहीं थे। वे धनुष-बाण आदि का प्रयोग अवश्य करते थे। जब नागकन्या सोमा अपनी सेना के साथ प्रतिरोध के लिए तट पर आई तो उसने अनुभव किया कि ये लोग आक्रमणकारी नहीं वरन् मित्रवत् व्यवहार करनेवाले हैं। पोताध्यक्ष कौण्डिन्य ने सबसे पहले इस राजकुमारी को वस्त्र प्रदान किये जिसे उसने शरीर पर लपेट लिया तथा इस प्रकार मित्रता का प्रारम्भ हुआ । यह घटना उन यूरोपीय उपनिवेशवादी समुद्री लुटेरों से बिल्कुल विपरीत चित्र प्रस्तुत करती है जिन्होंने अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका आदि अपने विजित क्षेत्रों में रहनेवाली जनजातियों और संस्कृतियों को नष्ट कर दिया और आज उनके कंकाल ही किसी प्रकार अपना अस्तित्व बचाये हुए हैं । भारत में भी उन्होंने अपने इस कुकृत्य को जारी रखा लेकिन इसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि नष्ट नहीं कर सके तो दूसरी ओर भारतीय मनीषियों, सन्तों तथा परिव्राजक भिक्षुओं के साथ-साथ राजपुरुषों ने भी वहाँ जाकर उनके समाज में घुल-मिलकर उन्हें सुसंस्कारित बनाने का कार्य ही किया ।

डॉ० शरद जी ने दो और लोकगाथाओं का उल्लेख किया है जिससे इस देश के 'कम्बुज' नाम पड़ने की जानकारी मिलती है। एक गाथा के अनुसार इन्द्रप्रस्थ का राजा कम्बु नामक अपने एक पुत्र से रुष्ट हो गया और उसे निष्कासित कर दिया । वह राजपुत्र 'कोकलोक' नामक स्थान पर पहुँचा तथा वहाँ का राजा बन गया । एक बार किसी कारणवश उसे एक रात समुद्रतट पर बितानी पड़ी जहाँ पर उसकी भेंट एक नागकन्या से हुई । दोनों ने विवाह कर लिया और इस प्रकार

वह नागों के राज्य का भी स्वामी बन गया। इस प्रकार कम्बु के नाम पर उस राज्य का नाम 'कम्बुज' पड़ा।

दूसरी लोककथा के अनुसार कम्बु स्वायम्भुव नामक एक राजा आर्य देश पर राज्य करता था। भगवान् महादेव ने उससे प्रसन्न होकर मीरा नाम की अप्सरा प्रदान की जिससे उन्होंने विवाह कर लिया। कुछ समय बाद मीरा की अकाल मृत्यु हो गयी। कम्बु वैरागी बन गये तथा एक उजाड़ प्रदेश में जा पहुँचे। वहाँ पर एक भयंकर गुफा में नागों ने उन पर आक्रमण कर दिया। लेकिन जैसे ही कम्बु ने अपनी तलवार निकाली, नागों के राजा ने मनुष्य की बोली में उनका नाम पूछा। परिचय होने पर नागराज भी शिवभक्त निकल आये और दोनों साथ रहने लगे। इस प्रकार वह देश कम्बुज कहलाया। जॉर्ज कोदेस (1886-1969) ने कम्बु तथा मीरा के नाम को संयुक्त करके 'ख्मेर' की उत्पत्ति सिद्ध करने का सुझाव दिया है लेकिन भाषाशास्त्रीय दृष्टि से यह सम्भव नहीं लगता।

कम्बुज में प्रचलित इन किंवदन्तियों में कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी हैं। वास्तव में कम्बोज एक ऐतिहासिक जन थे जो मूल रूप से बदख्शान-पामीर क्षेत्र में बसते थे और कालान्तर में यूरोप तथा एशिया में फैल गये। प्रस्तुत लेखक ने इनका विस्तृत इतिहास *'कम्बोजाज : द वैदिक पीपल हू मूव्ड ऑल ओवर वर्ल्ड'* (वर्मा 2008: 27-52) लिखा है। यहाँ पर बहुत संक्षेप में चर्चा की जा रही है क्योंकि ये काम्बोज ही कम्बुजदेश में जाकर बस गये तथा उसे अपना नाम दिया।

कम्बोज नाम ययाति के तीसरे पुत्र द्रुह्य के वंशजों को मिला था। ययाति ने अपने सभी पुत्रों से कुछ समय के लिए उनका यौवन माँगा था लेकिन चार बड़े पुत्रों ने इनकार कर दिया था जिसके कारण उन्होंने सभी को उत्तराधिकार से वञ्चित करके शाप दे दिया। अपने तीसरे पुत्र द्रुह्य से उन्होंने कहा कि "हे प्रिय द्रुह्य ! तुम्हारी काम (इच्छा) सम्पन्न नहीं होगी और तुम्हें परिवार सहित 'अराज' (राज शब्द से वञ्चित रहकर) 'भोजत्व' ही प्राप्त होगा।" अर्थात् वे भोज नामक अधिकारी या जागीरदार ही रह सकेंगे (**'तस्मात् द्रुह्यो प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित्। अराजा भोज शब्दं त्वं च प्राप्स्यति सान्वयः ॥'**)। भारतीय तथा कम्बोडियाई शिलालेखों में 'भोज' नामक अधिकारी के कई उल्लेख मिलते हैं। प्रसत प्रम लोवेन से प्राप्त अभिलेख (इस संग्रह की संख्या 2)

राजा गुणवर्मा को कौण्डिन्यवंश का चन्द्रमा (शशि) बताता है तथा जन्म से ही भोजक पद प्राप्त राजा कहता है। गुणवर्मा ने श्रीचक्रतीर्थस्वामी की स्थापना की। ये राजा स्वयं को चन्द्रवंश का बताते हैं जो इतिहास-सम्मत है क्योंकि ययाति भी चन्द्रवंशी था । सभी कुरु तथा पुरु वंश के लोग चन्द्रवंशी ही थे । चीनी स्रोतों से पता चलता है कि यू:ची या कुषाण भी अपने को चन्द्रवंशी ही मानते थे ।

ययाति का साम्राज्य समस्त मध्य एशिया तथा आज के पाकिस्तान आदि क्षेत्रों में फैला था । द्रुह्य के वंशजों या कम्बोजों का अस्तित्व बदख्शां-पामीर क्षेत्र में मिलता है । अशोक ने अपने शिलालेखों में यवन-कम्बोज प्रान्तों का उल्लेख किया है । पाणिनि भी इनसे परिचित थे । कश्यप सागर के पश्चिम स्थित आरमीनिया में दो नदियाँ कुरु और कम्बोज नाम से जानी जाती हैं । कुरु-कम्बोज जन समस्त मध्य तथा उत्तर एशिया तथा पूर्वी यूरोप तक फैले थे । ईरान के निवासी भी अपने को कुरु-कम्बोज ही कहते थे। ईरान के शाखामनीषी साम्राज्य के कई सम्राटों के नाम कुरुष् (कुरु:) तथा कम्बीसस (कम्बोज:) मिलते हैं । इस प्रकार नृजातीय रूप से ये ईरानी कुरु-कम्बोजों के वंशज ही थे, भले ही उन्होंने एक पृथक् संस्कृति का विकास कर लिया था (वर्मा 2012 : 10-23) ।

दक्षिण एशिया (भारतीय उपमहाद्वीप) में भी कम्बोजों के उल्लेख मिलते हैं । काश्मीर, गुजरात तथा बंगाल में इनके अस्तित्व के अभिलेखीय तथा अन्य प्रमाण मिलते हैं । श्रीलंका में भी कम्बोजों के अभिलेखीय प्रमाण मिलते हैं लेकिन यहाँ ये जन व्यापार में लिप्त पाये जाते हैं । *पञ्चविंशब्राह्मण* में काम्बुज औपमन्यव आदि वैदिक ऋषि-आचार्यों की लम्बी सूची पायी जाती है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि पुरुवंशी काम्बोज राजा सुदक्षिण ने अपनी सेना सहित महाभारत-युद्ध में कौरवों की ओर से भाग लिया था । वह भीमसेन के प्रपितामह थे और उन्हीं के हाथों मारे गये ।

इस प्रकार कम्बोजों ने विभिन्न स्थानों तथा कालों में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य आदि विभिन्न व्यवसाय अपनाये थे। इनका विस्तृत इतिहास लिखा नहीं गया है । अत: इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि भारत से सागरपार जाकर कौण्डिन्य नामक एक ब्राह्मण ने नागकन्या से विवाह करके एक साम्राज्य की स्थापना की ।

पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी मानसिकता के अनुसार इस क्षेत्र के इतिहास

पर विचार किया है । उनके सामने यूरोपीय उपनिवेश का मॉडल था जिसमें बलपूर्वक किसी अनजान देश में जाकर बस जाना तथा वहाँ के लोगों को वशवर्ती बनाकर शोषण करना शामिल है । डच विद्वानों ने इन क्षेत्रों को भारतीय 'उपनिवेश' माना है तथा यह रोचक कल्पना प्रस्तुत की है कि वे लोग व्यापार के माध्यम से आये अथवा सैनिक-विजय के माध्यम से वहाँ पहुँचे । डी०जी०ई० हाल (1891-1979) (1968 : 19) के अनुसार वे इसे 'वैश्य उपसिद्धान्त' तथा 'क्षत्रिय उपसिद्धान्त' (hypothesis) नाम देते हैं । लेकिन उपनिवेश की परिकल्पना यूरोपीय देन है जिसमें शस्त्र के बल पर किसी क्षेत्र अथवा राष्ट्र पर आर्थिक या राजनीतिक रूप से वर्चस्व प्राप्त करके उनका आर्थिक शोषण किया जाता है तथा इस प्रकार उपार्जित धन को अपने मूल देश में भेजकर उसका उपयोग उसे वैभवशाली एवं सम्पन्न बनाने के लिए किया जाता है। इतिहास बताता है जिन-जिन क्षेत्रों में यूरोपीयनों ने उपनिवेश बनाये, उनमें अधिकांश की स्थानीय सभ्यता तथा संस्कृति का नाश कर दिया अथवा आर्थिक रूप से विपन्न कर दिया। अत: इस प्रकार भारतीयों के उपनिवेश की बात करना भ्रामक और अज्ञानपूर्वक चर्चा है ।

वास्तव में अनेक भारतीयों ने बाहर जाकर 'उपनिवेश' नहीं वरन् 'निवेश' या घर बनाये । वे जहाँ भी गये वहाँ के जन में घुल-मिल गये । उनकी संस्कृति को अपनाकर उत्कृष्ट भारतीय संस्कृति के अनुसार परिमार्जित किया । उन पर अपनी संस्कृति को थोपा नहीं और न उनके साथ किसी प्रकार का बलप्रयोग किया । लेकिन इसके साथ अपने भारतीय सांस्कृतिक थाती को भी संजोये रखा । इस क्षेत्र से प्राप्त संस्कृत-अभिलेखों का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि मानो पाठक भारत में ही है तथा वहीं के राजाओं द्वारा निर्गत शासनादेशों एवं दान-घोषणाओं को पढ़ रहा है । उसी प्रकार के लोक-कल्याणकारी कार्यों की श्रृंखला यहाँ भी देखने को मिलती है। मन्दिरों का निर्माण, वापी, तड़ाग, नहरों आदि सिंचाई तथा लोकमंगलकारी कार्यों में धन का निवेश करके जहाँ एक ओर प्रशिक्षित शिल्पियों, अदक्ष मजदूरों को काम देकर उनका भरण-पोषण किया जाता था वहीं धर्म कार्य करके उच्चतर सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना भी होती थी । विद्वान् ब्राह्मणों को दान देकर उन्हें लोकशिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया

जाता था। इसके साथ ही राजा के लिए जिस प्रकार के उदात्त मानवीय गुणों की आवश्यकता उनके मूल देश भारत में बतायी जाती थी, उसी प्रकार के गुणों को यहाँ के राजाओं के लिए भी वर्णित किये गये हैं।

प्रवासियों का दूसरा समूह परिव्राजकों का होता था जिनमें विद्वान् ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षु होते थे। ये चीनी परिव्राजकों की भाँति विदेशों में पुस्तकें नकल करने या संग्रह करने नहीं जाते थे वरन् इनके स्वयं के मस्तिष्क में सैकड़ों पुस्तकों का भण्डार होता था जिसे वहाँ जाकर स्थानीय भाषा तथा लिपि में भाष्यान्तरित करके लिखा करते थे जिससे वहाँ के लोग उस ज्ञान से परिचित हो सकें। वास्तव में उनका मिशन ऋग्वेद का ध्येयवाक्य **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** या 'विश्व को श्रेष्ठ बनाओ' ही होता था और वे इसमें सफल भी हुए। जिस प्रकार चीनी यात्रियों का दल भारत आकर शिक्षा ग्रहण करता तथा वापस जाते समय ग्रन्थों के भण्डार ले जाता, उससे यही लगता है कि भारतीय परिव्राजक ब्राह्मण एवं बौद्ध भिक्षु अपने मिशन में परम सफल रहे हैं।

इसका एक दूसरा प्रतिफल भी दृष्टिगोचर होता है। शक, यवन, कुषाण, हूण आदि सभी में भारतभूमि पर आकर यहाँ की संस्कृति को अपनाने की होड़-सी लगी हुई थी। मध्य एशिया की ये क्रूर जातियाँ, जिन्होंने यूरोप में जाकर प्रलय-जैसे दृश्य उपस्थित कर दिये थे, भारत में आकर यहाँ की संस्कृति में आत्मसात होने के लिए व्याकुल-सी दिखती हैं। हमारी इस बात के साक्षी उनके भारत में प्राप्त सिक्के और अभिलेख हैं जिनमें उन्होंने अपने को हिन्दू कहलाने के लिए वे सभी काम किये जिन्हें किसी भी हिन्दू राजा के करने के लिए अपेक्षित था। यूरोपीय इतिहासकारों ने इन्हें अपने चश्मे से देखकर आक्रमणकारी बताया लेकिन तर्कबुद्धि से देखने पर ये भारत को पुण्यभूमि माननेवाले आतुर लोग थे जो यहाँ आकर इस प्रकार मिल गये कि आज उनकी पहचान तक सम्भव नहीं है।

अत: आज आवश्यकता इस बात की है कि हम विदेशी चश्मा उतारकर इतिहास को अपनी आँखों से देखें।

भारतीय प्रवासियों का सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ग समुद्री व्यापारियों का था। इनकी वाणिज्य नौकाएँ कब से सागर की छाती पर तैरती हुई दक्षिण-पूर्व एशिया

के देशों से सम्पर्क बना रही थीं इसका आकलन आज सम्भव नहीं है । हमारे भारतीय साहित्यिक स्रोतों में इनके बारे में जो सामग्री दी हुई है उसका अध्ययन बहुत कम हुआ है । श्री छगनलाल बोहरा (2011 : 211-14) ने जैन आगम *नायाधम्मकहाओ* से समुद्री वाणिज्य यात्रा के अनेक उदाहरण दिये हैं जिनमें नौका-दुर्घटना की घटनाएँ भी शामिल हैं । इनमें समुद्र-यात्रा की कठिनाइयों का भी वर्णन है । सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन यात्राओं का प्रारम्भ चम्पा नगरी से होता दिखाया गया है जो बन्दरगाह तक जाकर परिजनों से विदाई का मार्मिक विवरण भी देता है । इन पंक्तियों के लेखक (वर्मा 1993 : 171-76) ने भारतीय मूल के वणिज व्यापारियों का उल्लेख करते हुए अमेरिका के मैक्सिको से प्राप्त एक अभिलेख को प्रकाशित किया है जिसमें यह आया है कि 'महानाविक वषुलन शकवर्ष 845 या 923 ई०) में यहाँ एक वणिज नौका में आया और इस देश का नाम 'लकबुमि' (लक्षभूमि) रखा तथा इस लेख को कविलिपि में लिखवाया ।' उस समय यह लिपि जावा में प्रचलन में थी । इसके पहले पाँचवीं शताब्दी का एक अभिलेख मलयेशिया के वेलेजली प्रान्त में मिला था जिसमें महानाविक बुधगुप्त का नाम आता है जो 'रक्तमृत्तिका' का रहनेवाला था । इसकी पहचान मुर्शिदाबाद के रांगामाटी से की गयी है । इस प्रकार भारतीय व्यापारी वर्ग के वणिज नौकाओं में अमेरिका के मैक्सिको तक जाने के साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक उल्लेख मिलते हैं । हम श्रीलंका के कम्बोजों का उल्लेख कर चुके हैं जो समुद्री व्यापार में संलग्न थे । ये सागरपारीय व्यापार उस समय से प्रचलन में थे जब यूरोप में सभ्यता का प्रसार भी नहीं हुआ था । किंवदन्तियों को एक किनारे रखकर देखा जाय तो यह असम्भव नहीं है कि दक्षिण-पूर्व एशिया में अनेक राज्यों की स्थापना में इन समुद्री व्यापारियों का भी योगदान रहा हो ।

डॉ० महेश कुमार शरण की इस पुस्तक ने एक विशाल परिदृश्य के द्वार खोल दिये जिसमें दक्षिण-पूर्व एशिया के इतिहासकारों के लिए अपार सम्भावनाएँ दिखाई पड़ रही हैं । अभी तक इस क्षेत्र के जो भी इतिहास-ग्रन्थ लिखे गये हैं, उनमें यूरोपीय विद्वानों ने अपने औपनिवेशिक विस्तार के विवरण अधिक दिये हैं । उनमें हिन्दू-काल के इतिहास की परछाई मात्र दिखती है । इस कार्य में उनकी कोई रुचि नहीं थी यह इसी से स्पष्ट है कि दक्षिण-पूर्व एशिया के एक हज़ार से

अधिक अभिलेख विगत एक शताब्दी से उपेक्षित पड़े हैं। उनका अध्ययन तो दूर, उनके अस्तित्व के विषय में भी भारतीयों को ज्ञान नहीं है। कम्बुजदेश के इतिहास पर अभिलेखों के क्षेत्र में हिन्दी-भाषा में अग्रगामी ग्रन्थ होने के कारण अभिलेखों के सम्पादन तथा अनुवाद में कुछ छूटें एवं भूलें अवश्य रह गयी हैं, लेकिन इससे इस संग्रह के महत्त्व पर कोई ख़ास प्रभाव नहीं पड़ता। आनेवाले अनेक वर्षों तक अनुसन्धानकर्ताओं के लिए यह मार्गदर्शक का कार्य करता रहेगा।

ठाकुर प्रसाद वर्मा

सन्दर्भित ग्रन्थ :

बोहरा, छगनलाल 2011: 'प्राचीन भारत में समुद्र व्यापार : जैन आगम नायाधम्मकहाओ से', *इतिहास दर्पण,* अंक 16 (2), नयी दिल्ली, पृ० 211-13

Hall, D.G.E. 1968. *A History of South-East Asia,* 3rd edition, New York.

हेबालकर, शरद 2010, *कृण्वन्तो विश्वमार्यम्,* नयी दिल्ली।

Verma, T.P. 1993. 'An Indo-Javanese Epigraph from Mexico', *Sandhan,* Vol.6, Varanasi, pp. 171-76.

Verma, T.P. 2008. 'Kambojas: The Vedic people who moved all over world', *Puraṇa*, Vol. L., Ramnagar, Varanasi, Nos. 1-2, pp. 27-52.

वर्मा, ठाकुर प्रसाद 2012, 'विश्व इतिहास में कुरुवंश', *इतिहास दर्पण,* अंक 17 (1), नयी दिल्ली, पृ० 10-23

लेखकीय भूमिका

दक्षिण-पूर्व एशिया भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। इतिहास साक्षी है कि भारतीय भाषा, लिपि, साहित्य और कला का प्रभाव इस क्षेत्र पर ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी से प्रारम्भ हो गया था। भारत से बाहर जानेवाले ब्राह्मणों, व्यापारियों एवं महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों ने अपने पुरुषार्थ के बल पर इन क्षेत्रों में अनेक उपनिवेश स्थापित किये जो 'बृहत्तर भारत' के नाम से जाना जाता था। कम्बोडिया, जो प्राचीन काल में 'कम्बुज देश' के नाम से जाना जाता था, इसी बृहत्तर भारत का एक प्रमुख क्षेत्र था।

दक्षिण-पूर्व एशिया में कम्बोडिया का विशिष्ट स्थान है जहाँ सर्वप्रथम भारतीयों द्वारा औपनिवेशीकरण के सिलसिले में कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण भारत से ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध भाग में गया था। कौण्डिन्य के आगमन के बाद से यहाँ भारतीय संस्कृति का इतना अधिक प्रचार हुआ कि यहाँ के जनजीवन पर भारतीय भाषा, लिपि, साहित्य, धर्म, दर्शन, कला, शासन, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाओं का उत्तरोत्तर विकास होता गया और ये सब क्षेत्र एक प्रकार से भारतीय सांस्कृतिक उपनिवेश बन गये। इनकी स्थापना शस्त्र-बल पर नहीं बल्कि सद्भाव, सौहार्द्र, सहिष्णुता आदि के आधार पर हुई थी जिससे ये स्थापना काल से ही हज़ारों वर्षों से भी अधिक समय तक अविच्छिन्न रूप से जीवित रहे और आज भी किसी-न-किसी रूप में इनके अवशेष विद्यमान हैं।

कम्बोडिया में संस्कृत-भाषा एवं साहित्य के विकास को इसी कड़ी के एक उदाहरण के रूप में हम देखते हैं जहाँ देश के विभिन्न स्थानों से काव्यमयी ललित संस्कृत-भाषा में उत्कीर्ण लगभग एक हज़ार अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये संस्कृत-अभिलेख भारत और कम्बोडिया के बीच के राजनीति एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध के द्योतक हैं।

पराधीन भारत में इन क्षेत्रों के इतिहास एवं संस्कृति की ओर भारतवासियों का ध्यान कम आकर्षित हुआ था पर फ्रांसीसी विद्वानों ने अपनी भाषा में इनके इतिहास एवं संस्कृति पर भारतीय प्रभाव का अधिक प्रकाश डाला था। अतः भारत के प्राचीन गौरव की गाथा सामान्य जन तक नहीं पहुँच सकी। इन संस्कृत-अभिलेखों का सम्पादन जुलेस हार्मण्ड (1845-1921), जोहान हैण्ड्रिक कर्न (1833-1917), ई० आयमोनियर (1844-1929), एम०ए० बार्थ, एम०ए० बर्गेग्ने (1838-1898), लुई फिनौट (1864-1935) एवं प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार डॉ० रमेश चन्द्र मजूमदार (1888-1980) ने किया था।

जुलेस हार्मण्ड ने सर्वप्रथम इन अभिलेखों की फोटो प्रति तैयार करवायी जिसके आधार पर जोहान कर्न ने इनकी वाचना प्रस्तुत की। ई० आयमोनियर ने इन्हें व्यवस्थित कर इनका अनुवाद फ्रेंच भाषा में प्रस्तुत किया जो क्रमशः 1900, 1901 तथा 1904 ई० में तीन खण्डों में प्रकाशित हुए। एम०ए० बार्थ तथा एम०ए० बर्गेग्ने ने संस्कृत-अभिलेखों का दो भागों में सम्पादन किया। अभिलेखों के प्रकाशन के क्षेत्र में अगला सहयोग एम० फिनौट तथा जॉर्ज सेदेस (1886-1969) का था। जॉर्ज सेदेस ने कम्बोडिया के एक हज़ार संस्कृत-अभिलेखों का सात खण्डों में '*Inscriptions Du Cambodge*' के नाम से पेरिस से प्रकाशित करवाया। इन सात खण्डों में प्रत्येक अभिलेख का परिचय फ्रेंच भाषा में तथा मूल पाठ रोमन लिपि में करके छोड़ दिया। मूल संस्कृत-पाठ का अनुवाद किसी भी भाषा में नहीं होने के कारण इन अभिलेखों में क्या है, यह जानना किसी भी व्यक्ति के लिए बड़ा ही कठिन है।

डॉ० आर०सी० मजूमदार ने जॉर्ज सेदेस द्वारा प्रकाशित सात खण्डों में से केवल प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय खण्डों को '*Inscriptions of Kambuja*' के नाम से सन् 1953 ई० में कलकत्ता से प्रकाशित कराया जिनमें संस्कृत-अभिलेखों की कुल संख्या 149 है। इस पुस्तक में उन्होंने प्रत्येक अभिलेख का परिचय फ्रेंच से अंग्रेज़ी में अनुवाद कर दिया और मूल पाठ, जो सोदेस ने रोमन में किया था, उसका रूपान्तर देवनागरी में किया। अब हमारे समक्ष डॉ० आर०सी० मजूमदार की उक्त पुस्तक ही है। प्रत्येक संस्कृत-अभिलेख का हिन्दी-अनुवाद नहीं होने से इन अभिलेखों में किन-किन बातों की चर्चा है पता नहीं चलता। मैंने डॉ०

आर०सी० मजूमदार तथा डॉ० डी०सी० सरकार (1907-1984) से सम्पर्क स्थापित किया था। उनके पत्रों की छाया-प्रति भी इस लेखकीय भूमिका के अन्त में संलग्न है।

इस पड़ोसी देश कम्बोडिया के सांस्कृतिक धरोहर में भारत की भागीदारी संस्कृत-अभिलेखों के द्वारा ही है तथा भारत और कम्बोडिया की चिरकालिक सांस्कृतिक परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाये रखने में हिन्दी-अनुवाद सहित यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी होगी क्योंकि यह कम्बोडिया के समाज, धर्म, साहित्य, कला और परम्पराओं, पर्वोत्सवों पर भारतीय प्रभाव की व्याख्या करेगी। इन संस्कृत-अभिलेखों के हिन्दी-अनुवाद द्वारा कम्बोडिया के इतिहास में रुचि रखनेवाले हिन्दीभाषी सुधी पाठकों को बोधगम्य कराने का श्लाघनीय प्रयास किया गया है। कम्बोडिया के संस्कृत-अभिलेखों का मूल पाठ (149) का हिन्दी-अनुवाद के रूप में प्रकाशन मेरे अनेक दशकों की एकनिष्ठ साधना का परिणाम है। हिन्दी-भाषा के लिए यह अपने ढंग का सबसे पहला कार्य है।

संस्कृत-पाठ के हिन्दी-अनुवाद से जो विश्लेषण एवं समीक्षा हो सकेगी, उससे भारत और कम्बोडिया के विषय में हमें महत्त्वपूर्ण जानकारी मिल पायेगी। प्रकाशित तथ्यों के आधार पर हम यह जान सकेंगे कि सचमुच भारत और कम्बोडिया के बीच सदियों पुराने सांस्कृतिक सम्बन्ध अत्यन्त मधुर थे। कम्बोडिया की भूमि के आकर्षण से भारतीय स्वयं को वंचित न रख सके। कम्बोडिया के खण्डहर तथा अवशेष ऐसे अकाट्य प्रमाण हैं जिनके आधार पर भारतीय संस्कृति के स्वरूप तथा उसके विस्तार का परिज्ञान हमें हो जाता है।

कम्बोडिया के अभिलेखों में जिस संस्कृत-भाषा का प्रयोग किया गया है, वह प्रायः शुद्ध है और उनमें पाणिनि की *'अष्टाध्यायी'* तथा पतञ्जलि के *'महाभाष्य'* में प्रतिपादित व्याकरण-सम्बन्धी नियमों का पालन किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत के समान ही कम्बोडिया में भी पाणिनि और पतञ्जलि का पठन-पाठन होता था। ये अभिलेख कम्बोडिया में भारतीय संस्कृति की उपस्थिति के ठोस प्रमाण हैं। इनके अनुशीलन से एक ऐसे देश का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है जहाँ भारतीय धर्मों का प्रचार था; जहाँ शिव, विष्णु और बुद्ध के मन्दिर निर्मित थे; जहाँ पौराणिक और बौद्ध देवी-देवताओं की

मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित की जाती थीं; जहाँ वेद, शास्त्र, पुराणों का पठन-पाठन होता था और जहाँ के राजा अपने आदेश संस्कृत-भाषा में जारी किया करते थे। प्राचीन काल के कम्बोडिया में भारतीय संस्कृति की सत्ता के इन मूर्त अवशेषों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह देश उसी प्रकार से भारत का एक भाग था जैसे कि अंग, बंग, गान्धार, मथुरा और कर्नाटक आदि।

इन संस्कृत-अभिलेखों में हम शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलक, स्रगधरा, मालिनी, वंशस्थ, वैतालीय आदि छन्दों को देखते हैं। उपमा एवं अनुप्रास आदि अलंकारों से ये अभिलेख ओतप्रोत हैं। इन अभिलेखों में संस्कृत-साहित्य की विविध झलकियाँ भारतीय विद्वानों को आत्मविभोर कर देती हैं। वर्णालंकार का यह उदाहरण पठनीय है–

'भूतेशो भूतेशीगता विभवगवो भासमानो विभानो राजा।
राजेन्द्रकान्तो जितविजित रिपुर्माधवो माधवा ॥'

–प्रह आइनकीसी अभिलेख, श्लोक 22

प्राचीन कम्बोडिया के साहित्यिक अवशेष के रूप में इन संस्कृत-अभिलेखों का अविस्मरणीय महत्त्व है। इनके माध्यम से तत्कालीन साहित्यिक अभिरुचि, ज्ञान एवं उन्नति का सहज में अनुमान लगाया जा सकता है। यहाँ से प्राप्त संस्कृत-अभिलेखों में कुछ तो बहुत बड़े हैं; उदाहरणार्थ– राजेन्द्रवर्मन द्वितीय (944-968) के प्रेरुप अभिलेख में संस्कृत के 298 श्लोक हैं तथा मेबन लेख में 218 श्लोक हैं। प्रत्येक श्लोक 4-4 पंक्तियों का है। सेनापति संग्राम के प्रह तोक अभिलेख में 161 श्लोक हैं तो उदयादित्यवर्मन के प्रसत खन अभिलेख में 122 श्लोक हैं। सूर्यवर्मन प्रथम के वन थन लेख की रचना तीन सर्गों में है और उसमें कुल 139 श्लोक हैं।

जब हम कम्बोडिया के अभिलेखों का गहन अध्ययन करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि ये अभिलेख संस्कृत-भाषा के ललित एवं परिमार्जित काव्य शैली में लिखे गये हैं। इनमें कुछ अपवादों के अतिरिक्त व्याकरणिक एवं भाषिक अशुद्धियाँ नहीं हैं। अभिलेखों में शैव व्याकरण (*अष्टाध्यायी*), *महाभाष्य* तथा व्याकरण का प्राय: उल्लेख हुआ है। सम्राट् यशोवर्मन के विषय में ऐसा कहा जाता है कि उसने *महाभाष्य* पर एक टीका भी लिखी थी। यहाँ के अभिलेखों के

निबन्धकार छन्द एवं अलंकारों के विशेषज्ञ तो थे ही, इनकी भारतीय वाङ्मय के विविध स्रोतों में भी अच्छी पैठ थी । ये भारतीय दर्शन एवं जीवन-विषयक विविध साहित्यिक कृतियों, महाकाव्यों, आचार-ग्रन्थों, धर्मशास्त्रों, पौराणिक पुराकथाओं एवं इतिवृत्तों से भी भली-भाँति परिचित थे । अभिलेखों में पाणिनि एवं पतञ्जलि के अतिरिक्त *मनुस्मृति*, वात्स्यायन, *सुश्रुतसंहिता*, त्रयी (वेद), वेदांग, *रामायण*, *महाभारत*, बौद्ध-ग्रन्थों, पौराणिक पुराकथाओं एवं कहानियों, *न्यायसूत्र*, योगाचार सिद्धान्त, धर्मशास्त्र आदि का उल्लेख हुआ है । इन्द्रवर्मन के गुरु शिवसोम ने शास्त्र, वेद, तर्क, काव्य, पुराण तथा *महाभारत* का पूर्ण अध्ययन किया था । कवीन्द्र पण्डित पञ्च व्याकरण, शब्द, अर्थ, आगम, शास्त्र, काव्य, *महाभारत*, *रामायण* आदि का निष्णात पण्डित था । कम्बोडिया के ही धर्मपुर-निवासी ब्राह्मण धर्मस्वामी की वेद-वेदांगों में अत्यधिक अभिरुचि थी । इसी प्रकार सूर्यवर्मन द्वितीय के विषय में भी कहा जाता है कि वह भाषा, काव्य, षड्दर्शन, धर्मशास्त्र आदि में पारंगत था । सातवीं शताब्दी के एक अभिलेख में शिव का परम तत्त्व से तादात्म्य किया गया है ।

इन अभिलेखों से पता चलता है कि इस समय कम्बुज देश के जनसामान्य को महाकवि कालिदास, भारवि, मयूर, प्रवरसेन, गुणाढ्य-जैसे कवियों की भी पूर्ण जानकारी थी । राजेन्द्रवर्मन द्वितीय के प्रेरुप अभिलेख में रघुवंश के चार श्लोकों की सुव्यक्त श्रुत्यानुवृत्ति है । इनमें कभी-कभी उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया है जिन्हें कविवर कालिदास ने प्रयुक्त किया है । एक अभिलेख में दक्षिणा एवं राजा दिलीप का उल्लेख है तथा राजा रुद्रवर्मन की तुलना दिलीप से की गयी है–

'यस्य सोराज्य द्यापि दिलीप स्येव विश्रूतम्'

इन संस्कृत-अभिलेखों के शुद्ध अनुवाद से हमें कम्बोडिया की निम्नलिखित अवस्थाओं की पूर्णरूपेण जानकारी मिल सकती है जिसे हम निम्न खण्डों में विभक्त कर सकते हैं–

राजनीति– कम्बोडिया के राजा को देवस्वरूप माना जाता था । यहाँ से प्राप्त तन क्रन अभिलेख में राजा जयवर्मन प्रथम को सहस्रों लिंगों (शिवलिंग) के अंश को लेकर अवतीर्ण कहा गया है–

'यस्य लिंग सहस्राणां तदरीनावतीर्ण जितम्'

न्याय-व्यवस्था– कम्बोडिया में प्रधान न्यायाधीश को 'धर्माधिपति' कहा जाता था। उसके अधीन 'व्यवहाराधिकारी' और 'धर्माधिकरणपाल' नामक अधिकारी होते थे। ये अधिकारी हमारे देश के अधिकारियों के समान कार्य करनेवाले पदाधिकारी थे।

सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था– भारत के समान ही कम्बोडिया में भी चार वर्णों का अस्तित्व था जिनमें ब्राह्मण वर्ण का स्थान सर्वोपरि था। विवाह-प्रणाली भी भारतीय परम्पराओं पर आधारित थी। राजा सूर्यवर्मन प्रथम ने भारतीय वर्ण-परम्पराओं पर आधारित वर्ण-व्यवस्था को प्रोत्साहित किया था। कम्बोडिया के विभिन्न अभिलेखों में व्यवसायों तथा श्रेणियों के संगठन का उल्लेख मिलता है जो तत्कालीन भारतीयों से साम्य रखते थे।
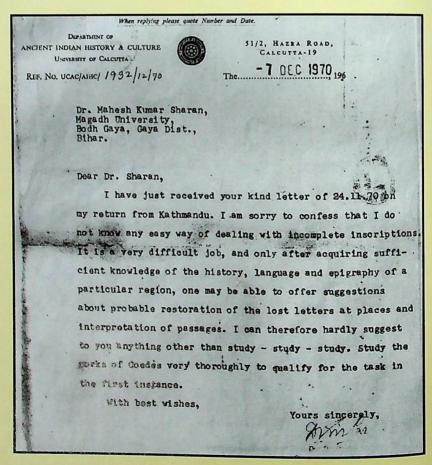
धार्मिक– कम्बोडिया में पौराणिक हिन्दू-धर्म का प्रचार था। शिव की पूजा के लिए लिंग का निर्माण किया जाता था। इनके अतिरिक्त अन्य हिन्दू-देवताओं के साथ भगवान् बुद्ध की भी पूजा बड़े ही समारोहपूर्वक की जाती थी। शैव धर्म के अन्तर्गत देवराज सम्प्रदाय का प्रचलन था। भगवान् शिव की सहज में प्रसन्न होनेवाले देवता के रूप में प्रतिष्ठा थी। ऐसे अनेक अभिलेख हैं जिनमें ब्रह्मा की भी वन्दना हमें पढ़ने को मिलती है। राजेन्द्रवर्मन द्वितीय के प्रेरुप-अभिलेख में भगवान् शिव की वन्दना को हम इस प्रकार से पढ़ते हैं–

'ऋग्भिर्व्वह्नि शिखा कलाप बिसख्य क्ताभिरैन्द्रीन्दिशं।
प्रोध द्वायुसमीरितेन यजुषा यो दीपयन्द क्षिणाम्॥
साम्ना चन्द्र मरीचिरश्मिनिकर प्रघोतितेनापरा-
ङौक्वेरीञच विभाति तैस समुदितैस्तस्मै नमशः शम्भवे॥'

अर्थात्, 'पूर्व दिशा में ऋग्वेद की स्तुतियों के द्वारा अर्चियाँ फैलाते हुए अग्नि के रूप में, यजुर्वेद की स्तुतियों के द्वारा दक्षिण दिशा में प्रवहमान वायु के रूप में, सामवेद की स्तुतियों के द्वारा पश्चिम दिशा में रश्मि के अधिष्ठान चन्द्रमा के रूप में तथा सभी रूपों में एकसाथ उत्तर दिशा में प्रकाशित होनेवाले शिवजी को नमस्कार है।'

भाषा, शिक्षा और साहित्य में भी हम भारतीयता की गहरी छाप कम्बोडिया के संस्कृत-अभिलेखों में पाते हैं। अतः इन अभिलेखों को पढ़कर इस बात में कोई भी सन्देह नहीं रह जाता है कि कम्बोडिया में संस्कृत-साहित्य और काव्य का पठन-पाठन होता था और वहाँ के विद्वान् काव्य-रचना में भी तत्पर रहा करते थे। वेद, वेदांग, दर्शन, स्मृति-ग्रन्थ, *रामायण*, *महाभारत*, पुराण, *महाभाष्य* आदि प्राचीन भारतीय संस्कृत-ग्रन्थों का उन्हें भली-भाँति ज्ञान था। यही कारण है कि इन अभिलेखों पर भारतीय साहित्य की छाप भी विद्यमान है।

महेश कुमार शरण

When replying please quote Number and Date.

DEPARTMENT OF
ANCIENT INDIAN HISTORY & CULTURE
UNIVERSITY OF CALCUTTA

51/2, HAZRA ROAD,
CALCUTTA-19

REF. NO. UCAC/AIHC/ 1932/12/70

The -7 DEC 1970

Dr. Mahesh Kumar Sharan,
Magadh University,
Bodh Gaya, Gaya Dist.,
Bihar.

Dear Dr. Sharan,

I have just received your kind letter of 24.11.70 on my return from Kathmandu. I am sorry to confess that I do not know any easy way of dealing with incomplete inscriptions. It is a very difficult job, and only after acquiring sufficient knowledge of the history, language and epigraphy of a particular region, one may be able to offer suggestions about probable restoration of the lost letters at places and interpretation of passages. I can therefore hardly suggest to you anything other than study - study - study. Study the works of Coedès very thoroughly to qualify for the task in the first instance.

With best wishes,

Yours sincerely,

पुस्तक के संबंध में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रा०भा०इ० एवं सं०वि० के तत्कालीन आचार्य एवं अध्यक्ष डॉ० दिनेश चन्द्र सरकार द्वारा दिनांक 07 दिसम्बर, 1970 को लेखक को लिखा गया पत्र

When replying please quote Number and Date.

DEPARTMENT OF
ANCIENT INDIAN HISTORY & CULTURE
UNIVERSITY OF CALCUTTA

51/2, HAZRA ROAD
CALCUTTA-19

Ref. No. UCAC/AIHC/1932/12/70

The -7 DEC 1970 ,196.

Dr. Mahesh Kumar Sharan,
Magadh University,
Bodh Gaya, Gaya Dist.,
Bihar.

Dear Dr. Sharan,

I have just received your kind letter of 24.11.70 on my return from Kathmandu. I am sorry to confess that I do not know any easy way of dealing with incomplete inscriptions. It is a very difficult job, and only after acquiring sufficient knowledge of the history, language and epigraphy of a particular region, one may be able to offer suggestions about probable restoration of the lost letters at places and interpretation of passages. I can therefore hardly suggest to you anything other than study – study – study. Study the work of Cœdès very thoroughly to qualify for the task in the first instance.

With best wishes,

Yours sincerely,

(Dr. D.C. Sircar)

DR. R. C. MAJUMDAR
4, Bepin Pal Rd.
11. 1. 71
CALCUTTA-26.

My dear Saran,

Your letter dated 17. 12. 70

There is no way of getting complete sense of incomplete lines except what you can derive from the inscriptions of the same ruler.

Yours sincerely
R C Majumdar
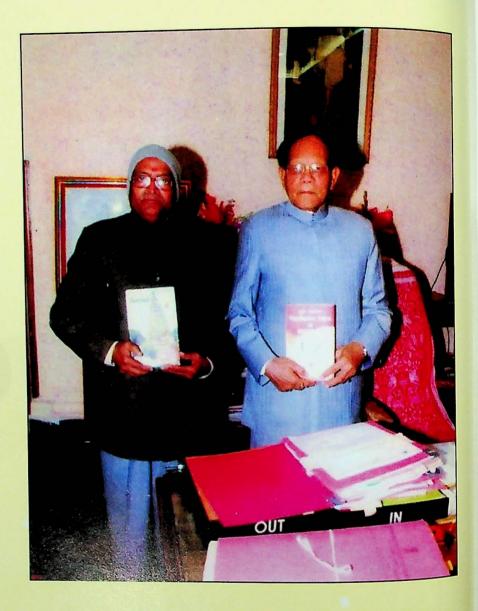
पुस्तक के संबंध में विश्वप्रसिद्ध इतिहासकार एवं ढाका विश्वविद्यालय (बांग्लादेश) के पूर्व कुलपति डॉ० रमेश चन्द्र मजूमदार द्वारा दिनांक 11 जनवरी, 1971 को लेखक को लिखा गया पत्र

Dr. R.C. Majumdar
4, Bipin Pal Rd.
Calcutta-26
11.1.71

My Dear Saran,

Your letter dated 19.12.70

There is no way of getting complete sense of incomplete lines except what you can derive from other inscriptions of the same ruler.

Yours sin.
R.C. Majumdar

बिहार के महामहिम राज्यपाल श्री देबानन्द कुँवर के करकमलों द्वारा
लेखक की पुस्तक
'एक संघर्षरत विश्वविद्यालय शिक्षक की आत्मकथा'
का विमोचन
(दिनांक 11 फरवरी, 2012, राजभवन, पटना)

देबानन्द कुँवर
राज्यपाल

RAJ BHAVAN, PATNA-800 022
Tel.: 0612-2217626, Fax: 2786184

Devanand Konwar
GOVERNOR

29 April, 2012

MESSAGE

I am glad to meet Dr. Mahesh Kumar Sharan, a retired University Professor and Head of the Post Graduate Deptt of Ancient Indian and Asian Studies, Gaya College, Gaya (Magadh University, Bodhgaya).

I am impressed to see some of his research works regarding ancient history and culture of not only of ancient India but many South East Asian countries such as Cambodia, Thailand and Laos etc. which bear deep impression and were influenced by Indian culture in ancient time. He has presented me some of his research works as. 1. Studies in Sanskrit Inscriptions of Ancient Cambodia. 2. Court Procedure in Ancient India. 3. Political History of Ancient Cambodia 4. Thailand Ki Sanskritik Paramparayen 5. Dhammapada 6. Eka Sangharsharata Vishwa Vidyalaya Shikshak ki Atma Katha.

His books Tribal coins - A study, studies in Sanskrit Inscriptions of Ancient Cambodia and Dhammapada have been greatly appreciated by the scholars.

He also made available to me the following copies of the Buddha Vandana for the years 1999, 2001, 2003 and 2004 which he has also edited. He also detailed me about these publications and his research works.

I find him as an erudite Professor, serious research scholar, genuinely interested in research work in unexplored aspects. He seems still engaged in such pursuits with perfect devotion which entitle him to be further beneficially utilised in academic world.

Devanand Konwar

बिहार के महामहिम राज्यपाल श्री देबानन्द कुँवर जी द्वारा
लेखक को शुभाशीर्वाद

विषयानुक्रमणिका

वन्दना-1		(iii)
वन्दना-2		(iv)
समर्पण		(vii)
कृतज्ञता ज्ञापन		(ix)
शुभाशीष	गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ	(xx)
सम्मति	गोवर्द्धन प्रसाद सदय	(xxii)
सम्मति	डॉ० प्रफुल्ल चन्द्र राय	(xxiv)
सम्मति	विद्यासागर गुप्त	(xxvii)
सम्मति	महामहोपाध्याय डॉ० रहस बिहारी द्विवेदी	(xxix)
शुभाशंसा	डॉ० ब्रजमोहन पाण्डेय नलिन	(xxxii)
सम्मति	डॉ० रामनिरंजन परिमलेन्दु	(xxxvi)
सम्मति	डॉ० सदानन्द गुर्दा	(xxxviii)
Message	*Dr. Pranabanand Jash*	(xl)
Message	*Dr. Awadhesh Kumar Sharan*	(xlii)
भूमिका	डॉ० ठाकुर प्रसाद वर्मा	(xlv)
लेखकीय भूमिका	डॉ० महेश कुमार शरण	(lix)
Abbreviation		(lxxi)

क्रमांक	अभिलेख-शीर्षक	पृष्ठांक
1.	निक ता दमबंग डेक अभिलेख	1
2.	प्रसत प्रम लोवेन अभिलेख	4
3.	ता प्रौम अभिलेख	7
4.	बयांग मन्दिर अभिलेख	11
5.	नोम बन्ते नान अभिलेख	14

क्रमांक	अभिलेख-शीर्षक	पृष्ठांक
6.	नोम प्रह विहार अभिलेख	16
7.	हान ची मन्दिर अभिलेख	19
8.	वील कन्तेल अभिलेख	28
9.	थ्मा क्रे अभिलेख	30
10.	फू लोखोन अभिलेख	31
11.	संबोर प्री कुक अभिलेख	33
12.	अंग पु (वट पु) अभिलेख	37
13.	स्वे च्नो अभिलेख	39
14.	नुई-बा-थे अभिलेख	41
15.	वट चक्रेत अभिलेख	44
16.	केदेई अंग मन्दिर अभिलेख	47
17.	बयांग मन्दिर अभिलेख	51
18.	भववर्मन का अभिलेख	53
19.	तुओल कोक प्रह अभिलेख	55
20.	वट प्री वार अभिलेख	58
21.	केदेई अंग मन्दिर अभिलेख	61
22.	वट प्री वार पत्थर अभिलेख	67
23.	तुओल प्रह थाट अभिलेख	69
24.	तन क्रन अभिलेख	72
25.	बरई अभिलेख	77
26.	वट फू अभिलेख	79
27.	तन क्रन अभिलेख	82
28.	प्रसत प्रह थट अभिलेख	83
29.	बन डिउम अभिलेख	85
30.	विहार थोम अभिलेख	86
31.	प्रह थट क्वान पीर अभिलेख	87
32.	लोबोक स्रौत अभिलेख	89
33.	प्रसत कण्डोल डोम (उत्तर) अभिलेख	91

क्रमांक	अभिलेख-शीर्षक	पृष्ठांक
34.	प्रह को अभिलेख	98
35.	बकोंग के खड़े पत्थर का अभिलेख	106
36.	बयांग मन्दिर अभिलेख	110
37.	प्रसत कोक पो अभिलेख	113
38.	बान बंग के अभिलेख	117
39.	प्रह बट के खड़े पत्थर अभिलेख	120
40.	लोले अभिलेख	132
41.	पूर्वी बारे अभिलेख	151
42.	पूर्वी बारे अभिलेख	171
43.	पूर्वी बारे अभिलेख	188
44.	पूर्वी बारे अभिलेख	204
45.	प्रसत कोमनप के खड़े पत्थर का अभिलेख	220
46.	तेप प्रनम के खड़े पत्थर का अभिलेख	237
47.	प्री प्रसत अभिलेख	249
48.	लोले द्वार-स्तम्भ अभिलेख	257
49.	प्रसत तकेयो अभिलेख	263
50.	नोम प्रह विहार के खड़े पत्थर का अभिलेख	269
51.	नोम देई मन्दिर अभिलेख	277
52.	नोम संडक के खड़े पत्थर का अभिलेख	279
53.	फिमनक अभिलेख	288
54.	बयांग अभिलेख	291
55.	अंगकोर थोम अभिलेख	295
56.	अंगकोर थोम अभिलेख	299
57.	वट थिपेदी अभिलेख	301
58.	वट चक्रेत मन्दिर अभिलेख	306
59.	प्रसत थोम अभिलेख	308
60.	प्रसत डैमरे अभिलेख	310
61.	प्रसत अन्डोन अभिलेख	319

क्रमांक	अभिलेख-शीर्षक	पृष्ठांक
62.	नोम बयांग अभिलेख	322
63.	प्रह पुट लो के चट्टान-अभिलेख	328
64.	प्रसत प्रम अभिलेख	330
65.	बकसी चमक्रौंग अभिलेख	341
66.	मेबन अभिलेख	356
67.	बट चम अभिलेख	405
68.	प्रे रूप अभिलेख	428
69.	बसक खड़े पत्थर अभिलेख	501
	लेखक-परिचय	536

ABBREVIATION

AA	*Arts Asiatique, Paris*
ABIA	*Annual Bibliography of Indian Archaeology, Leyden*
AM	*Asia Lajor, London*
AQR	*Asiatic Quarterly Review*
AR	*Asiatic Review, London*
BCAIC	*Bulletin de la Comission Archaeology de l' Indsochine, Paris*
BEFEO	*Bulletin de l' Ecole Francaise d' Extreme Orient, Paris*
BSOAS	*Bulletin School of Oriental and African Studies, London*
CHI	*Cultural Heritage of India (Ramakrishna Centenary Volume), Calcutta*
CJ	*Contemporary Japan, Tokyo*
CR	*Calcutta Review, Calcutta*
CR	*China Review, Hong Kong*
EA	*Eastern Art, Philadelphia*
EH	*Eastern Horizon*
FA	*France ASIE, Saigon*
FEQ	*Far Eastern Quarterly, New York*
GM	*Geographical Magazine*
HJAS	*Harward Journal of Asiatic Studies, Cambridge*
HT	*Hindustan Times, New Delhi*
IA	*Indian Antiquary, Bombay*
IA	*Indian Antiqua, Leyden*
IAC	*Indo Asian Culture, New Delhi*
IAL	*Indian Art and Letters, London*
IC	*Inscriptions du Cambodge, Paris*
IHQ	*Indian Historical Quarterly, Calcutta*

IK	*Inscriptions of Kambuja, Calcutta*
ISC	*Inscriptions de Campa et du Cambodge, Paris*
JA	*Journal Asiatique, Paris*
JAGS	*Journal of American Geographical Society*
JAOS	*Journal of the American Oriental Society, New Heaven*
JAS	*Journal of Asian Studies*
JBRS	*Journal of the Bihar Research Society, Patna*
JGIS	*Journal of Greater India*
JGS	*Journal of the Geographical Society*
JIH	*Journal of Indian History, Trivendrum*
JISOA	*Journal of the Indian Society of Oriental Art, Calcutta*
JOI	*Journal of the Oriental Institute,. Baroda*
JOR	*Journal of Oriental Research, Madras*
JRASNCB	*Journal of the Royal Asiatic Society, Shanghai*
JRCAS	*Journal of the Royal Central Asian Society, London*
JRGS	*Journal of the Royal Geographical Society, London*
JSEAH	*Journal of South East Asian History*
JSS	*Journal of Siam Society, Bangkok*
MA	*Memoirs Archæologique, Paris*
MR	*Modern Review, Calcutta*
NGM	*Natural Geographic Magazine, Washington*
NH	*Natural History, New York*
PA	*Pacific Affairs, New York*
RA	*Revue Archæologique, Paris*
RAA	*Revue des Arts Asiatique, Paris*
REJ	*Royal Engineer Journal, London*
TE	*Travel and Exploration, London*
UA	*United Asia, Delhi*

I

निक ता दमबंग डेक अभिलेख
Neak Ta Dambang Dek Inscription

निक ता दमबंग डेक कम्बोडिया के त्रेंग प्रान्त में है । पतली तहों की चट्टानों पर धातु के सजे हुए टुकड़े पर चित्रकारी की हुई है । यह अभिलेख भगवान् विष्णु की आराधना से प्रारम्भ है । इस अभिलेख में जयवर्मन प्रथम (657-681) की रानी कुलप्रभावती द्वारा दान में दिये गये तालाब और कुरुम्बनगर के ब्राह्मणों के निवास हेतु गृह दान दिये जाने का उल्लेख है । इस स्थान पर रानी द्वारा भगवान् की एक मूर्ति स्थापित की गयी है ।

जॉर्ज सोदेस ने इस अभिलेख को सर्वप्रथम सम्पादित किया है।[1] आर०सी० मजूमदार ने *'इन्सक्रिप्शन्स ऑफ कम्बुज'* को इसी अभिलेख से प्रारम्भ किया है । इस अभिलेख का काल पाँचवीं शताब्दी का है और इसमें 5 पद्य हैं । पद्य संख्या 3, 4 और 5 अस्पष्ट हैं क्योंकि ये खण्डित हो चुके हैं । पद्य-संख्या 2 श्लोक में है तथा अन्य शार्दूलविक्रीडित में हैं ।

---

1. 'A New Inscription from Funan', *JGIS*, Vol. IV, No.2, July, 1937, p. 117 ff.

युञ्जन् योगमतर्कितङ्कमपि य(:) क्षीरोदशइय्या गृहे
शेले शेष भुजङ्गभोवरचनापर्य्यंक पृष्ठाश्रितः ।
कुक्षि प्रान्त समाश्रित त्रिभुवनो नाभ्युत्थिताम्भोरुहो।
(राज्ञी) श्री जयवर्म्मणोग्रमहिषीं स स्वामिनीं रक्षतु ॥ 1
कुल प्रभावती नाम्ना प्रभावान् कुलवर्द्धिनी
दृष्टिरेकेव या दृष्टा जयेन जयवर्म्मणा ॥ 2
विप्राणां भवनं कुरुम्वनगरे प्रा.............
कृत्वा यां प्रतिमां सुवर्णरचितां.............. ।
कार्य्याणां व्यसने निमग्नमनस्...............
भोगे सत्यपि नैव भागरहिते............. ॥ 3
शक्तस्येव शची नृपस्य दयिता स्वाहे(व) सप्ता(र्च्चिषः)
रुद्राणीव हरस्य लोकविदिता सा श्रीरिव श्रीपतेः ।
भूयस् सङ्ग तामिच्छति नृषतिना श्री.............
लौल्यं वीक्ष्य भुवि श्रियाश्च बहुधा चा............ ॥ 4
राज्ञश् श्रीजयवर्म्मणः प्रियतरा ए..............
कृत्वा बन्धुजनञ्च सौख्य सहितं वि..........
ज्ञात्वा भोगमनित्य वुद्बुदसमं स................
आरामं सतटाक मालययुतं.................

अर्थ–

जो किसी अतर्कित योग को युक्त करते हुए क्षीरसमुद्र की शय्या पर घर में सोते हैं, शेषनाग की फण की रचनारूप पलंग की पीठ पर आश्रित होकर अपने पेट में तीनों भुवनों को आश्रय देकर रखनेवाले नाभि से उत्पन्न कमलवाले वे विष्णु श्री जयवर्मन की पटरानी जो स्वामिनी हैं, उनकी रक्षा करें ।। 1

अपने प्रभाव से कुल को बढ़ानेवाली रानी कुलप्रभावती (नामवाली) जयशील जयवर्मन के द्वारा एक ही दृष्टि से देखी गयी है ।। 2

कुरुम्ब नामक नगर में ब्राह्मणों का घर है....जिस सुवर्ण से रचित प्रतिमा को.....कार्यों के व्यसन में निमग्न मनवाले....भोगे रहने पर भी नहीं भाग से रहित...।। 3

वह रानी इन्द्र की पत्नी शची के समान राजा की प्रिया पत्नी अग्निदेव की स्वाहा पत्नी के समान श्री शिव की रुद्राणी के समान श्रीपति विष्णु भगवान् की लक्ष्मी जी के समान है, राजा से बार-बार संगम की इच्छा करती हुई राजा के द्वारा श्री.... और पृथिवी पर बहुधा श्री लक्ष्मी की चंचलता देख करके.... ।। 4

राजा श्री जयवर्मन की अतिशयप्रिय.....और बन्धुजन को सौख्य सहित करके....पानी के बुलबुले के समान भोग को अनित्य जानकर उसने फुलवारी, तडाग सहित देवालय युत....

2

प्रसत प्रम लोवेन अभिलेख

Prasat Pram Loven Inscription

प्रसत प्रम लोवेन मन्दिर के खण्डहरों के पत्थरों पर उत्कीर्ण यह अभिलेख पाया गया है। इस अभिलेख में प्रयुक्त लिखावट अति प्राचीन काल की है । बोर्नियो के राजा मूलवर्मन नलदेव (400 ई०) एवं जावा के राजा पूर्णवर्मन (395-434) के अभिलेखों से इसकी समानता करने पर यह अभिलेख भी पाँचवीं शताब्दी का प्रतीत होता है ।

इस अभिलेख में राजा जयवर्मन और कुलप्रभावती के पुत्र गुणवर्मन द्वारा विष्णु के पदचिह्न– चक्रतीर्थ स्वामिन के धार्मिक संस्कार करने का उल्लेख किया गया है । पद्य-संख्या 2 से 7 में अभिलेख के उत्कीर्णक की वंशावली है जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह राजकुमार कौण्डिन्य के परिवार का था ।

जॉर्ज सोदेस ने इस अभिलेख को सर्वप्रथम सम्पादित किया है ।[1]

तस्य प्रसादना...................................

...................नृपतिर्य्य.................... ॥ 1

यस्या ग्रहस्तपरिमृष्टजलस् समुद्र

1. *BEFEO*, Vol. XXXI, p.1 (Only two or three letters of V.I. are legible.)

क्षीरोदकोय्यमृतबद् द्रहमभ्य.............. ॥ 2
जाराङ्ग.................युधिवीर...........
नाम्ना नराधिपतिना सह यु...............।
श्री....................................
रयोनौ..............परि चतुर्भुज............॥ 3
क्..........................तब्.................।
स्वहृदि...............हत्ति निर्द्वग्धाराम....मा ॥ 4
पद्म.................यो भुवि...........सर्व्व
इ...............रिपुगणाः रच......जा येन ।
स............... - वतश्च जगत्येन का
...........धनै x षरितोषिताश्च ॥ 5
तस्यावनी........ -- तेर्गुणवर्म्मनामा,
ऋद्.........ण बुद्धिरभून्महात्मा ।
स....... - ....संक्रमचारुकाञ्ची
येने.............दयिता जनिता मनोज्ञा ॥ 6
यः श्रीमता विजय विक्रमविक्रमेण
कौण्डिन्यवंशशशिना वसुधाधिपेन ।
जन्यात् भोजकपदे नृपसूनु रासीत्
बालोपि(स)न्नधिकृतो गुणशौर्य्ययोगात् ॥ 7
तेनेदमात्मजननीकरसंप्त.............
............स्थापितं भगवतो भुवि पादमूलम् ।
यस्यैव रूपमतुलंद्युति येन ऋ............
.......स नेच्छति परि प्रतिमा पृथिव्याम् ॥ 8
अस्याष्टमेह्नि विचितैरुपवेदवेद-
वेदांग विद्दमिर मर प्रतिमै द्विजेन्द्रैः ।
संस्कारितस्य कथितं भुवि चक्रतीर्थ-
स्वामीति नाम विदधुः श्रुतिषु प्रवीणाः ॥ 9
स्थानं यो गुणवर्म्मणा गुणवता श्रद्धावता त्यागिना
पुन्यञ्चित्र.......कृतमिदं श्रीचक्रतीर्थस्यह

तद्भक्तीद्विवसेद् विशेदपि च वा तुष्टान्तरात्मा जनो
मुक्तो दुष्कृतकर्म्मणः स परमं गच्छेत् पदं वैष्णव ॥ 10
दत्तं यद्गुणवर्म्मणा भगवते धर्म्मार्थिना शक्तितो
विप्रैर्भागवतैरनाथ कृपणैस्ततां कर्म्मकारैस्तथा ।
तत् सर्व्वैरुपयुज्यतां समयतो यैरन्यथा भुज्यते
युज्यन्तां नरके यमस्य पतितास्ते पञ्चभिः X पातकैः ॥ 11
अभिवर्द्धयतीह यो महात्मा
भगवद्द्रव्यमिदं गुणाढ्य.....................
सतु यत् कुशलं लभेत विष्णोः ।
परमं प्राप्य पदं महधशश्च ॥ 12

अर्थ–

इसके आठवें दिन उपवेदों सहित वेद-वेदांगों के ज्ञाता देवमूर्ति ब्राह्मणश्रेष्ठों द्वारा संस्कार किये हुए का (जिसका संस्कार किया गया है उसका) विश्वविख्यात चक्रतीर्थस्वामी नाम वेदज्ञों ने रखा ।। 9

वह सभी कृत पापकर्मों से मुक्त होकर श्रेष्ठ विष्णुपद को प्राप्त हो । धर्माकांक्षी (धर्म करने की इच्छा रखनेवाले) श्री गुणवर्मन द्वारा यथाशक्ति जो दान किया गया है, उसका ब्राह्मणों, वैष्णवों, निराश्रित गरीबों तथा उन शिल्पियों द्वारा समयानुसार उपयोग किया जाय । इसका अन्यथा उपयोग करनेवाले पाँचों पापों से युक्त लोग यम के नरक में गिरें ।। 11

जो महान् आत्मा इस दिये हुए धन की अभिवृद्धि करें उन्हें कुशलता प्राप्त हो तथा श्रेष्ठ विष्णुपद को प्राप्त कर महान् यश को पावें ।। 12

3

ता प्रौम अभिलेख

Ta Prohm Inscription

यह शिला अभिलेख बटी प्रदेश के ता प्रौम मन्दिर से लिया गया है । इस अभिलेख में भगवान् बुद्ध की वन्दना की गयी है । एक ब्राह्मण कोषाध्यक्ष की नियुक्ति के साथ-साथ उस ब्राह्मण परिवार की भी वन्दना की गयी है ।

जॉर्ज सोदेस ने इस अभिलेख को सर्वप्रथम सम्पादित किया है ।[1]

जितं विजित वासना सहित सर्व्वदोषारिणा
निरावरण बुद्धि नाधिगत सर्व्वथा (सम्पदा)
जिनेन करुणात्मना परहित प्रवृत्तात्मना
दिगन्तर विसर्धि निर्म्मलं बृहद्यश.... -_ ॥ 1
उद्धृत्य त्रिभवाम्बु- -- तितं लोकं निरालम्बनं
निर्व्वाणस्थल मुत्तमन्निरुपमं संप्राप्य.... - -।

---

1. *BEFEO*, Vol. XXX, p.8

यस्याद्यापि च कुर्व्व ते परहितं श्रीधातवश्शेषिताः
शास्तुस्तस्य हितोदयाय जगतां स इ - ...... - ....॥ 2
यस्योत्कृष्टतया कृशोपि न गुणः कश्चित् ससंप्रेक्षितो ।
यश्चूड़ामणिवच्छिरः सुजगतां स्थातुं नय - - -।
एकस्थानखिलान् नराधिपगुणान् उदयच्छते वेक्षितुं
धात्रा निर्म्मित एक एव स भुवि श्री रुद्रवर्म्म - - -॥ 3
सर्व्व सच्चरितं कृतं नृपतिना तेनातिधर्म्मार्थिना
...... श् चरि ....निसर्ग्ग - वले यि - - ... - -।
लोकानुग्रह साधनं प्रति न च क्षत्रव्रतं खण्डितं
मेधाद्याय हि मा --- ....॥ 4
तत् पित्र जयवर्म्मणा नृपतिनाध्यक्षो धनानां कृतः
श्री रुद्राद्ध - .... - पि - .... - ......।
विप्रस्य द्विजनायकस्य तनयः श्रीदेहमात्रोदितेः
सद्वर्त्मानिनि -- .... - ....॥ 5
बुद्ध धर्म्ममथार्य्यसंघमखिलैः स्वैः स्वैर्गुणैः सङ्गतं
यः श्रेष्ठंश - ...... - ....।
यश्चोपासक कर्म्म सर्व्वमकरोत् पापान्निवृत - ......
....................नो वि - .... - ....॥ 6
आधार ग पयसामिवाखिलजलै ग पुण्यैर .... - ....
सर्व्व काम - .... - .... -
यश्चाभूत कुशल क्रियासु सकला स्वादनाय ...... - ....
.... - .... - .... - ......॥ 7
तस्याशेषविशेष नैक निलयस्याजन्मनो नु - ते
भार्य्यार्य्या सदृशी - .... --- ....।
अक्लेशात् सुषु .... - सा दुहितरं सिद्धिं क्रियेवोत्तमा
.... - .... - ......॥ 8
आचारानतिवर्त्तिनी स्वतनयां तन्तुप्त .... - ....
....
.......................मन्निरुपमं वर्ण्णोत्तमं प्र - ..

....॥ 9

कोविद्वान द्विजस .... - मे - ....लब आम्यष

इत्येवं द्विजमण्डले सुव.....................;

...॥ 10

षट्कर्म्मण्य - ...... - ....

ते .... - .... दिविजस्य इ - स्यधर्म्मात्य

..॥ 11

अर्थ–

जो सभी दोषों सहित सभी वासनाओं को जीत चुका है बिना ढक्कन की बुद्धिवाला सभी प्रकारों से सभी सम्पत्तियों का ज्ञाता 'जिन' नामवाले के द्वारा जो करुणातना है दूसरों के हित कार्य में प्रवृत्त आत्मावाला है, सभी–सभी दिशान्तरों में निर्मल और बड़ा यश प्रचरित एवं प्रसरित है जिस 'जिन' महात्मा का ऐसा 'जिन' नामक महात्मा ।। 1

उत्तम निर्वाण स्थल पर जो अनुपम है जा करके......जिसके आज भी परहित करते हैं श्री धातु सभी बचे हुए, संसार के हित के उदय के लिए उस शासक के, जिसकी उत्तमता से दुबला–पतला भी गुण किसी से न देखा गया ।। 2

.....और जो सिर के अलंकार के समान समूचे जगत् के ठहरने के लिए .... राजा के सभी गुणों को एक स्थान पर ही स्थित करके विधाता के द्वारा वही एक श्री रुद्रवर्मन नामक राजा सृष्ट हुआ निर्मित हुआ ।। 3

उस अत्यन्त धर्म चाहनेवाले राजा के द्वारा सभी अच्छे चरित किये गये... स्वभाव .. बल में भी... लोगों पर दया के साधन के प्रति क्षत्रिय के धर्म एवं व्रत खण्डित न हुआ... ।। 4

उसके पिता जयवर्मन के द्वारा धन का अध्यक्ष बनाया गया ....श्री रुद्र नाम का.......पि.... ब्राह्मण नामक के बेटे श्री देहभ्रात्रोदिति के ....अच्छे धर्मात्मा में.......... ।। 5

बुद्ध, धर्म और आर्य संघ सभी अपने–अपने गुणों से युक्त जो श्रेष्ठ........ ..और जो उपासक के कर्म के पापों से छूटने के लिए कर चुका ।। 6

आधार सभी जलों से दूध के समान पुण्यों से..........सभी काम...........
और जो सभी क्रियाओं में निपुण हुआ, आदान देनेवाला जो.......उस अशेष विशेषणों का एक घर जिसको जन्म के निश्चित रूप सेते रहे जो समान गुणों वाली पत्नी है........बिना क्लेश के....वह बेटी को जो क्रया के समान उत्तम है ।। 7-8

4

बयांग मन्दिर अभिलेख

Bayang Temple Inscription

वाउडक से दक्षिण-पूर्व स्थित त्रांग जिले में 660 फीट की ऊँचाई पर स्थित बयांग मन्दिर से यह अभिलेख पाया गया था । इसमें खड़े पत्थर की एक ओर से खुदाई की गयी है ।

इस अभिलेख में ध्रुव नामक ब्राह्मण के पौत्र विद्याविन्दु के धार्मिक कार्यों का संकलन है । उसने पर्वत पर भगवान् शिव के पद के प्रतिरूप की स्थापना की तथा धार्मिक कार्य सम्पन्न करने से पूर्व शरीर-शुद्धि के लिए एक तालाब भी खुदवाया । ये सभी ईंटों की दीवार से 526 ईसवी में घिरवाया गया था तथा 546 ईसवी में पुनः ध्रुव द्वारा पवित्र जल तालाब में लाया गया था ।

सर्वप्रथम एम० बार्थ ने इस अभिलेख को सम्पादित किया है ।[1]

विशुद्धतर्कागम युक्तिनिश्चया-
न्निरूप्य ....-..........(प्र)तिष्ठितम् ।
यमान्तरज्ज्योतिरुपासते बुधा

1. *ISC*, p.31

निरुत्तरं ब्रह्म परञ्जिगीषवः ॥ 1
तपश्श्रुतेज्याविद्ययो यदप्रणा
भवन्त्य न (र्द्दे)(श)ऽफलानुबन्धिनः ।
न केवलन्तत् फलयोगसङ्गिना-
मसङ्गिनां कर्म्मफलत्यजामपि ॥ 2
निसर्ग्गसिद्धैरणिमादिभिर्गुणै-
रुपेतमङ्गी कृतशक्ति विस्तरैः ।
धियामतीतम्बचस्........
(अना)स्पदं यस्य पदं विदुर्वुधाः ॥ 3
विभुत्वयोगम्दिहलब्ध सन्निधे-
(श् श्रि)या पदन्तस्य विमोरिदं पदम् ।
विकीर्ण्ण(द) थ्याङ्गु(लि)......
...... ण्डाब्जमिवोपलार्धितम् ॥ 4
अयञ्च मूद्र्ध्ना स्फुटरत्न मालिना
पदन्दधानो गिरिशस्य भूधरः ।
उपैति लोके बहु ....
...... मान्यतमे हि सन्ततिः ॥ 5
दिवौकसां मौलिविलुप्तरेंणुना
पदारविन्दे (न) यथा जगत्पतेः ।
बिभर्त्ति मानोन्नति ....
.... शिशखरै (रय)न्नगः ॥ 6
द्विजाति सूनुर्द्विजसत्तमस्य
ध्रुवस्य नप्ता ध्रुवपुण्यकीर्तिः
य X प्रागभिज्ञातकु ....
..........यस्स्वकुलं व्यनक्ति ॥ 7
विद्यादि विन्द्धन्त गृहीत नाम्ना
तेनैकतानेन शुभक्रियासु ।
शम्भो X पदस्येदमक.........
.... इवान्य(द)द्रेः ॥ 8

तेनापितीर्थोदक पाविताया-
माधित्यकायामिह भूधरस्य ।
स्नानार्थमीशक्ष्य कृतम्महीं-
......-........इवात्मकीर्त्तेः ॥ 9
पशुपति पदमागुनत्तरं
पदमधिगच्छतु सान्वयो जनः ।
चिर भवतु हितीय देहिना-
मयमपि भूमिधरो भुवस्स्थितिम् ॥ 10
रसदस्रशरैस् शकेन्द्रवर्षे
पदमैशं विनिबद्धमिष्टकामिः ।
ऋतुवारिनिधीन्द्रियैश्च तीर्थे
(स)लिल स्थापनमकारि तेन भूयः ॥ 11
आरामदासीदासाश्चपशव + क्षेत्रमुत्तमम् ।
यथास्ति स्वधनन्दत्तं शिवपादाय यज्वना ॥ 12

अर्थ–

तप और वैदिक यज्ञ विधियों में जो दान होते हैं (किये जाते हैं) वे सभी फल देनेवाले होते हैं। उसका फल न केवल कर्मफल में आसक्ति रखनेवाले लोगों को ही प्राप्त होता है अपितु कर्मफल त्याग करनेवाले अनासक्त लोगों के लिए भी फलदायक होता है ॥ 2

....

पाशुपत लोग ऊर्ध्व लोक को प्राप्त करें । दीर्घ साल तक वंश-परम्परा से लोग इसकी रक्षा करें । यह भू-स्वामी भी भूमि की स्थितिपर्यन्त इसकी रक्षा करें ॥ 10

528 शकाब्द में ईंटों से इस शिवस्थान को विधिपूर्वक बनाया । पुनः उसी के द्वारा 546 शकाब्द में इस तीर्थ में जल स्थापना की गयी ॥ 11

बगीचा, दास, दासी, पशु, उत्तम खेत तथा जितना था उतना अपना धन शिवस्थान के लिए यज्ञकर्ता ने दान दिया ॥ 12

5

नोम बन्ते नान अभिलेख

Phnom Bantay Nan Inscription

यह अभिलेख अंगकोर बोरे नामक राजनगर के दक्षिण– ढाई मील की दूरी पर स्थित है । यह अभिलेख लगभग 165 फीट ऊँचे चट्टान पर उत्कीर्ण कराया गया है और ऐसा समझा जाता है कि इस अभिलेख का कुछ भाग लिंग के आधार से ढँका हुआ है । आज यह लिंग नहीं देखा जा सकता है । इस अभिलेख में राजा भववर्मन द्वारा लिंग की स्थापना का उल्लेख है।

सर्वप्रथम एम० बार्थ ने इस अभिलेख पर हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है।[1]

शरासनोद्योगजितार्थदानैः
करस्थलोकं द्वितयेन तेन ।
त्रैयम्बकं लिङ्गमिद नृपेण
निवेशितं श्रीभववर्म्मनाम्ना ॥

---

1. *ISC*, p.26

अर्थ–

अपने धनुष के बल से जीते हुए धन के दान से जिसने (भू एवं स्वर्ग) दोनों लोकों को हस्तगत कर लिया है उस भववर्म्मन नामक राजा के द्वारा भगवान् शिव के इस लिङ्ग की स्थापना की गयी ।

6

नोम प्रह विहार अभिलेख
Phnom Prah Vihar Inscription

इस अभिलेख का नाम कौमपौंग चांग प्रान्त के पर्वत खण्ड के समान है। इसमें भगवान् शम्भु की आराधना एवं राजा भववर्मन की वंशावली दी हुई है। इस अभिलेख में एक वैयाकरण, दार्शनिक एवं राज कर्मचारी-विद्यापुष्प जो पाशुपत आचार्य था, के धार्मिक दानों का भी वर्णन हमें मिलता है।

जॉर्ज सोदेस ने इस अभिलेख के विषय में हमें विस्तृत जानकारी दी है।[1]

जयतीन्दुर विव्योम वाय्वात्मक्ष्मा जलानलैः ।
तनोति तनुमिश् शम्भुर्य्योष्टाभिरखिलञ्जगत् ॥ 1
विजित्य यः क्षितिपतीन् नीतिशैर्य्यबलान्वितान् ।
दिवस् पृशं समारभ्य यशः स्तम्भमकीलयत् ॥ 2
राजा श्रीभववर्म्मेति भवव्यधिकशासनः ।
सोमवंश्योप्यरिध्वान्त प्रध्वंसन दिवाकरः ॥ 3

---

1. *IC*, Vol. III

तस्य पाशुपताचार्य्यः विद्यापुष्पाह्वयः कविः ।
शब्द वैशेषिकन्याय तत्वार्थकृत निश्चयः ॥ 4
श्रेयसीं गतिमुद्दिश्य श्रीसिद्धेश प्रणालिकां ।
राजतीं राजतो लध्वा कारयित्वाप्यतिष्ठिपत् ॥ 5
ततस् स निष्क्रमन्नानातीर्थायतन पर्व्वतान् ।
कथञ्चिदानीत इह स्वप्नान्ते श्री त्रिशूलिना ॥ 6
यथा प्रदर्शितं स्वप्ने दृष्टवानिह शंकरं ।
लिङ्ग पदं गोष्पदञ्च भस्म तुङ्गीशयर्व्वते ॥ 7
प्रदानानि प्रदायास्मै दासादीनि शिवाय सः ।
पुनश् शैवेन विधिना तप्त्वा शैवं पदवान् ॥ 8
यावत् प्रदानमस्मै
शिवाय गोभूहिरव्यदासादि
भोग्यं पाशुपतानाम्
अहार्य्यम् मेतत सममदानम् ॥ 9

अर्थ–

जो अपने सूर्य, चन्द्र, गगन, वायु, आत्मा, पृथिवी, जल तथा अनल– इन आठों मूर्तियों से जगत् का विस्तार करते हैं, उन भगवान् श्री शिवजी की जय हो ॥ 1

नीति, शौर्य तथा बल से युक्त राजाओं को जीतकर जिसने स्वर्ग को छूनेवाले यशस्तम्भ को गाड़ा ॥ 2

वे श्री भववर्मन नामक राजा अपनी राज्यसीमा से भी अधिक भूमि पर शासन करते हैं । वे महाराजा श्री भववर्मन चन्द्रवंशी होते हुए भी शत्रुरूपी अन्धकार का विनाश करनेवाले सूर्य हैं ॥ 3

उनके पाशुपत मार्गावलम्बी विद्यापुष्प नामक गुरु, कवि हैं तथा व्याकरण, वैशेषिक एवं न्याय के तत्त्वार्थ को जाननेवाले हैं ॥ 4

स्वर्ग की गति पाने के उद्देश्य से श्री सिद्धेश की सुन्दर प्रणालिका राजा की प्रणालिका से लघु होने पर भी बनवाकर उन्होंने स्थापित किया ॥ 5

घर से निकलकर अनेक तीर्थों, देवायतनों तथा पर्वतों पर घूमता हुआ

किसी प्रकार वह यहाँ त्रिशूलधारी भगवान् शिव के द्वारा स्वप्नान्त में किये गये निर्देश के द्वारा लाया गया ।। 6

जैसा कि स्वप्नान्त में दिखाया गया था ठीक उसी प्रकार का शिवलिंग, पद, गोपद, भस्मादि को यहाँ इस तुंगीय पर्वत पर उसने देखा ।। 7

फिर इन भगवान् शिवजी के लिए दिये जाने योग्य दास आदि सभी वस्तु दान करके शैव-विधि से तप करके उसने शिव पद को प्राप्त किया ।। 8

शिवजी के लिए गो, भूमि, स्वर्ण, दासादि जो कुछ दान किया गया वह सब पशुपति भगवान् शिवजी का भोग्य है । अतः इन सभी वस्तुओं के साथ दान की गयी वस्तुएँ हरण करने योग्य नहीं हैं ।। 9

7

हान ची मन्दिर अभिलेख
Han Chei Temple Inscription

मेकाँग नदी की दाहिनी ओर जहाँ पर कौमपौंग सियम एवं स्टंग ट्रेंग ज़िले मिलते हैं, वहाँ एक बड़ा मैदान है । यहाँ 'प्रसत हान ची' और 'नोम हान ची' नामक खण्डहर अवस्थित है । हान ची मन्दिर के दोनों द्वार-स्तम्भ पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है । ये दोनों अभिलेख एक दूसरे से भिन्न हैं । इसकी लिखावट अति प्राचीन है ।

अभिलेख के प्रथम भाग में राजा भववर्मन की वंशावली और उसके उत्तराधिकारी का वर्णन है । दूसरे भाग में भी राजा भववर्मन की वंशावली दी हुई है । प्रथम भाग में भद्रेश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना तथा पूजा-उपासना का उल्लेख है जिसकी स्थापना उग्रपुर के गवर्नर द्वारा की गयी थी ।

इस अभिलेख पर हमारा ध्यान सर्वप्रथम एच० कर्न[1] एवं एम० बार्थ[2] ने दिलाया था ।

1. *Ann. Extr. Orient*, Vol. I, p. 329
2. *JA* (1882), pt. II, pp. 148 & 195; (1883), pt.I, p. 160; ISC, p.8 ff.

जितं इन्दुवतंसेन मूद्रध्ना गंगा बभार यः ।
उमाभ्रूमङ्ग जिह्नोर्म्मिं – मालामालुमिवामलाम् ॥ 1
राजा श्री भववर्म्मेति पतिरासीन् महीभृताम् ।
अप्रधृष्य महासत्वः तुंगे मेरुरिवापरः ॥ 2
सोमान्वये प्रसूतस्य सोमस्येव पयोनिधौ ।
केनापि यस्य तेजस्तु जाज्वलीति सदाहवे ॥ 3
अन्तस् समुत्था दुर्ग्राह्या मूर्त्यभावादतीन्द्रियाः ।
यदा षडरयो येन जिता बाह्येषु का कथा ॥ 4
नित्यदान पयस्सिक्त – करानेव मतंगजान् ।
आत्मानुकारादिव यः समराय समग्रहीत् ॥ 5
शरत्कालाभियातस्य परानावृत तेजसः ।
द्विषामसह्यो यस्येव प्रतापो न खेरपि ॥ 6
यस्य सैन्यरजो धूतमुज्झितालङ्कृतष्वपि ।
रिपुस्त्रीगण्देशेषु चूर्ण्णभावामुपागतम् ॥ 7
रिपोरिव मनश् शुष्कं नगरी परिखाजलम् ।
यस्य योधे X करापीत मासन्नैरविणा सह ॥ 8
परीतायामापि पुरिज्वलता यस्य तेजसा ।
पुनरुक्त इवारोपः प्राकारे जात वेदसः ॥ 9
जित्वा पर्व्व भूपालान् तनोति सकला भुवः ।
वन्दिभिस् सगुणावी कैर्य्यशोभिरिव यो दिशः ॥ 10
येने यदैद वंश्यानां मर्य्यादालंघनं कृतम् ।
यदेषामवधिर्भूमे रतिक्रान्त X पराक्रमैः ॥ 11
शक्त्यापि पूर्व्वं विजिता भूमिरम्बुधिमेखला ।
प्रभुत्वे क्षमया येन सैव पश्चादजीयत ॥ 12
यस्याकृष्टा X प्रभावेन परे युध्यजिता अपि ।
राजश्रियमुपादाय नमन्ते चरणाम्बुजे ॥ 13
परेणाआक्रान्त पूर्व्वयमखिलेति विचिन्तया ।
अजित्वाम्भोधिपर्य्यन्तामवनिं यो न शाम्यति ॥ 14
अवाप्य षोडशकलाश् शशांको याति पूर्णताम् ।

असंख्या अपियो लब्ध्पा न पर्य्याप्तं कदाचन ॥ 15
नास्ति सर्व्वगुण कश्चिददिति वाक्यं महाधियाम् ।
येनासिद्धीकृतमिदं स्वेनापि वचसा विना ॥ 16
तस्य राजाधिराजस्य नवेन्दुरिव यस् सुतः ।
गुण कान्त्यादिभिर्य्योगादुन्नेत्र यति य प्रजाः ॥ 17
(Raghu Cante IV. V. ý)
राजन्दधति भूपानाञ्चूड़ारत्नमरीचयः ।
यस्य पादनखेष्वेव मनागसि न चेतसि ॥ 18
शिवं पदंगते राज्ञि दृष्ट्वा यमुदितं प्रजाः ।
मुञ्चन्ति युगपदवाष्पे शोकानन्दसमुद्भवे ॥ 19
तमो विधात विक्षोभमवापदुदय(ं) रविः ।
यस्तु शान्तमनावाद्यमलब्ध क्षितिमण्डलम् ॥ 20
नवे वयसि वृतस्य यस्य राज्यभरोधतः ।
चित्रीयते कुमारस्य सैनान्यं मरुतामिव ॥ 21
उपधाशुद्धिमान् भृत्यस्तयोखनिपालयोः ।
विश्रम्भदानसम्मानैः योग्यो य X पर्य्यतृप्यत ॥ 22
अन्तश्चित्रामलच्छत्र मूद्ध्र्व काञ्चनबुद्बुदम् ।
यानं सुवर्ण्णरचितं हस्त्यश्व परिवर्द्दणम् ॥ 23
हेमौ करंककलशावित्यादि श्रियमुत्तमाम् ।
यो लब्धवान् प्रसादेन स्वामिनोरुमयोरपि ॥ 24
न किञ्चित् स्वाम्यसंमुक्तमाप्तं येन कदाचन ।
भोजनं वसनं वापि यानान्याभरणानि वा ॥ 25
प्राणैरसारलघुमिर्भृर्तुपिण्ड विवर्द्धितैः ।
स्वामिनोर्थे गुरुस्थेय + क्रेतुमैहत यो यशः ॥ 26
लक्ष्म्या गाढ़ोपगूढ़ोपि पूर्व्वाभ्यासवलेन यः ।
मुनीनां चरितं धत्ते क्षमाशम परायणः ॥ 27
सुप्रकाशि शौर्य्यस्य संग्राम त्यागयोरपि ।
भीरुत्वं यस्य विख्यातमकीर्त्तेवृजिनादपि ॥ 28
प्रीणयन्प्युदासीनानुपकुर्व्वन् द्विषामपि ।

पक्षद्वयं योऽमित्रत्वमनयद् गुणसम्पदा ॥ 29
कलिना बलिना धर्म्मोभग्नैकचरणोऽपियम् ।
महास्तम्भमिवालम्ब्य चतुष्पादिव सुस्थितः ॥ 30
आशाश्वतीत्यनादव्य तनुश्रियमिवात्मनः ।
यश X पुण्यमयीमेव यस् स्थिरां बह्वमन्यत ॥ 31
इदमुग्र पुराधीशस् सुभक्तया लिंगमैश्वरम् ।
प्रतिष्ठापितवानत्र श्रीभद्रेश्वर संज्ञकम् ॥ 32
बान्धवा यजमानस्य पुत्रास् सम्बन्धिनोऽपि च ।
देवस्वन्नोप मुज्जीरन्न प्रभाणी भवन्ति च ॥ 33
यद्दत्तमस्मै देवाय यजमानेन भक्तितः ।
ये नरा हर्त्तुमिच्छन्ति ये यान्तु निरयं चिरम् ॥ 34

(ब)

स्वभावनिष्कलेनापि जितमिन्दुकलामृता ।
एकेनापि जगत्कृस्नं विभुत्वेनाधितिष्ठता ॥ 1
स्थानातिशयलोभेन मुखे लसति भासी।
असत्कृत्योषिता यस्य महती मुरसि श्रियम् ॥ 2
सोमान्वयनमस्सोमो य X कलाकान्ति सम्पदा ।
रिपुनारी मुखाब्जेषु कृत वाष्पपरिप्लवः ॥ 3
अभिषेणयतो यस्य प्रतापश् शरदागमे ।
रवेरप्यधिकस् सह्यो नहि सावरणैरपि ॥ 4
जेतुः पर्व्वतभूपालानामहीधरमस्तकात् ।
सेतु X प्रावृषि यस्यासी हास्तिकेषु वारिषु ॥ 5
भटैरावेष्ठित(̇) यस्य रिपूणां परिखाजलम् ।
अशुष्यत् सह चेतोमिर्ब्बन्धु स्नेहाप्लुवैरपि ॥ 6
यं समीक्ष्याति सौन्दर्य्य X चेतोनयनहारिणम् ।
समशेरत कामिन्य X पुष्पकेतोरनंगताम् ॥ 7
रणे क्वचिदरातीनां पश्यतां यञ्चतुर्भुजम् ।
अकाण्डेप्यगमद्भंग(̇) सहचक्रो मनोरथः ॥ 8
भ्रान्ता विदूरतोयस्य कीर्त्तिराशामुखेष्वपि ।

इतस्ततस्त्यैः सुजनैखदातेति वर्ण्यते ॥ 9
न केवलं इमां भूमिमशेषाञ्चेतुमिच्छति ।
सर्व्वसाधनस(ं) पत्त्या यो द्यामपि दवीयसीम् ॥ 10
न गुणनामशेषाणां कश्चिदेकस्समाश्रयः ।
इतिरूढ़ प्रवादोयं गुणिना येन लुप्यते ॥ 11
महाराजाधिराजस्य तस्य श्रीभववर्म्मणः ।
भृत्यसूसर्व्वोपद्याशुद्धेरन्तरंगत्वमस्थितः ॥ 12

अर्थ–

जो शिवजी अपने सिर पर गंगा धारण किये हुए हैं, वे अपने अर्द्ध चन्द्ररूपी मुकुट की वंकिमा से दोषरहित माला के समान देवी उमा के भौहों की दोषरहित टेढ़ी लहर को जीत लिये हैं ॥ 1

राजाओं के भी राजा महाराज श्री भववर्मन अपराजेय, महाशक्तिशाली, मेरु पर्वत के समान ऊँचे तथा स्वर्ण वर्ण के थे ॥ 2

समुद्र में उत्पन्न चन्द्रमा के समान सोमवंश में उत्पन्न राजा भववर्मन के तेज को किसी ने भी निरन्तर युद्ध में बार-बार प्रज्ज्वलित किया ॥ 3

अन्तर्मन में उत्पन्न कठिनाई से नियन्त्रित होनेवाले तथा अमूर्त होने के कारण जो अतिन्द्रिय हैं, ऐसे षड्रिपुओं को जब उन महाराज श्री भववर्मन के द्वारा जीत लिये गये हैं तब उनके बाहरी शत्रुओं को जीतने की क्या बात है ! ॥ 4

निरन्तर दान करने से संकल्प जल से सदा भीगते हुए अपने लम्बे एवं मोटे हाथ के समान निरन्तर बहनेवाले मदजल से सदा भीगते हुए सूँढ़वाले अपनी अनुकृति के समान मतवाले हाथियों को जिन्होंने युद्ध के लिए संग्रह किये हैं ॥ 5

शत्रुओं के लिए जो तेज असह्य हो रहा था, वह शरत् काल में उदित होनेवाले तथा केतु आदि ग्रहों से आवृत्त न किये जा सकनेवाले सूर्य का तेज नहीं अपितु शरत् काल में चढ़ाई करनेवाले तथा शत्रुओं से जिनकी शक्ति आवृत्त नहीं की जा सकती थी तथा उन महाराज भववर्मन का ही प्रताप था ॥ 6

जिसकी सेना से उड़ी हुई धूल आभूषण त्यागे हुए शत्रुओं की स्त्रियों के गालों पर चूर्ण (पाउडर) बनकर बिखर गये हैं ॥ 7

निकट से घेरा डाले हुए जिसकी सेना ने ग्रीष्मकाल में निकट आये हुए सूर्य की किरणों के समान शत्रु नगरी की रक्षा खाई के जल को पीकर शत्रुओं के सूखे मन की तरह सुखा दिये हैं ।। 8

सेना द्वारा घेरी हुई शत्रु नगरी, जिसके तेज से चारों ओर से व्याकुल हो रही है, उसे यह कहना पुनरुक्ति दोष मात्र है कि वह नगरी आग के घेरे में है ।। 9

बन्दी गणों द्वारा गाये गये उसके द्वारा युद्ध में प्रकटित शौर्य के यशोगान से जिस प्रकार दिशाओं का विस्तार किया जा रहा था उसी प्रकार जो पर्वतीय राजाओं को जीतकर अपनी शासित भूमि की दिशाओं का विस्तार कर रहे हैं ।।10

शक्ति के द्वारा पहले से जीती गयी सागर मेखला पृथिवी जिसके द्वारा बाद में अपनी क्षमा के प्रभाव से जीती गयी ।। 12

जिन शत्रुओं की भूमि युद्ध में नहीं जीती गयी, वे भी राजकृपा पाकर प्रभाव से आकृष्ट हो जिसके चरण-कमलों में नमस्कार करते हैं ।। 13

शत्रुओं द्वारा पहले ये सब भूमि जीत ली गयी है, यह चिन्ता करते हुए, समुद्रपर्यन्त भूमि जीते बिना जो शान्त नहीं होता है ।। 14

केवल सोलह कलाओं को ही पाकर चन्द्रमा पूर्णता को प्राप्त कर लेता है परन्तु जो अनन्त कलाओं को भी पाकर बस नहीं मान लेता है ।। 15

महाबुद्धिमान लोगों का यह कहना है कि कोई भी मनुष्य सर्वगुण पूर्ण नहीं है । इस कथन को जिन्होंने अपनी वाणी से नहीं अपितु तत्त्वतः असिद्ध कर दिये हैं ।। 16

उस राजाधिराज का पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान जो पुत्र है तथा जो अपने गुण तथा सौन्दर्यादि से प्रजा की उन्नति कर रहा है ।। 17

राजाओं के मुकुटमणियों की किरणों को जो पैरों के नखों में ही धारण करते हैं, मन में थोड़ा भी नहीं ।। 18

राजा के शिवपद में लीन हो जाने के बाद जिसको उदय हुआ देखकर प्रजाजन हर्ष एवं विषाद– दोनों से उत्पन्न आँसू एकसाथ ही बहाते हैं ।। 19

उदय होता हुआ सूर्य भी अन्धकार को विनाश करने का क्षोभ प्राप्त

करता है परन्तु जो अत्यन्त शान्तिपूर्वक सम्पूर्ण क्षितिमण्डल का राज्य पाया है ।। 20

नयी उम्र में राज कार्यों के (राज्य सेना के) समूह से घिरे जिस कुमार का चित्र मरुद्गणों की सेना से घिरे सेनापति कुमार के चित्र के समान ही है ।। 21

उन दोनों राजाओं का (भववर्मन तथा तत्पश्चात् उसके पुत्र का) छल रूप दूषण से शुद्ध, विश्वासी, सम्मान योग्य सेवक है जो उन राजाओं के प्रेम तथा सम्मान से तृप्त हुआ ।। 22

अन्दर में चित्रकारी किये हुए ऊपर में सोने के टुकड़ों से सज्जित निर्मल छत्र, सोने का रथ, हाथी, घोड़े आदि सवारी, सोने का ताम्बूल पात्र, सोने का कलश इत्यादि उत्तम सम्पत्ति दोनों स्वामियों की प्रसन्नता से जिसने प्राप्त किया है ।। 23

जिसके द्वारा स्वामियों से अभुक्त कोई भी चीज कभी भी नहीं प्राप्त किया गया, चाहे वह भोजन, वसन, सवारी या आभूषण कुछ भी हो ।। 24

स्वामी से बिना माँग किये वस्तु कभी नहीं किसी ने (दास ने) भोजन, वस्त्र या आभूषण पाया ।। 25

स्वामी के द्वारा पाले गये, सारहीन, अल्प मूल्यवान अपने शरीर को तथा प्राणों को भी संकट में डालकर स्वामियों के लिए महान् कार्यों को सिद्ध करने का यश जिसने पाया है ।। 26

धन-सम्पदा से खूब ढँके हुए होने पर भी पूर्वाभ्यास के बल पर जो मुनियों-सा क्षमा और शमशील चरित को धारण करते हैं ।। 27

जिसकी शूरता, संग्राम और त्याग में खूब चमकी है तथा अकीर्ति कर पापकर्मों में जिसका डरपोकपन प्रसिद्ध है ।। 28

उदासीनों को भी तृप्त कर तथा शत्रुओं का भी उपकार कर जिसने दोनों पक्षों की मित्रता अपनी गुण-सम्पदा के कारण प्राप्त की है ।। 29

बलवान् कलि के द्वारा तीन पैरों से विहीन हुआ धर्म जो एकमात्र चौथे चरण पर अवलम्बित था, वह जिसको महास्तम्भ रूप में पाकर चारों पैरों पर खड़ा

हुआ-सा सुस्थिर हो गया है ।। 30

धन-सम्पदा अशाश्वत है ऐसा मानकर जिसने हीन (लघु) लक्ष्मी का अनादर कर अपने लिये पुण्यजन्य शाश्वत यश का ही आदर किया है ।। 31

उस उग्रपुराधीश ने दृढ़ भक्तिपूर्वक भगवान् शिव के इस लिंग को यहाँ श्री भद्रेश्वर नाम से सुप्रतिष्ठित किया है ।। 32

स्थापित करनेवाले यजमान के भाई, पुत्र और सम्बन्धी भी यदि देवस्वान्न का भोग करते हैं तो वे भी दण्डित होते हैं ।। 33

इन भद्रेश्वर भगवान् के लिए यजमान ने भक्तिपूर्वक जो दान किये हैं, उसे हरण करने की जो लोग इच्छा करते हैं, वे लोग चिरकाल तक के लिए नरक जायं ।। 34

(ब)

जो स्वभाव से निष्कल होते हुए भी कलाओं को धारण करने में चन्द्रमा को भी जीत लिये हैं वे शिवजी एक होते हुए भी सम्पूर्ण संसार को विभुत्व से व्याप्त किये हैं ।। 1

शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला जो अपने विशाल वक्षस्थल में लक्ष्मी धारण करता है, उसी के मुख में श्रेष्ठ स्थान पाने के लोभ से सरस्वती शोभा सहित विराजती हैं ।। 2

सोमवंश में उत्पन्न, अपने वंशाकाश में अपनी कलाओं और सुन्दरता के कारण जो सुशोभित हो रहा है, वह शत्रु नारियों के मुखकमलों पर आँसुओं की बाढ़ ला रहा है ।। 3

सूर्य का तेज अधिक सह्य था पर वस्त्राभूषणों से ढँके रहने पर भी शत्रुओं के विरुद्ध चढ़ाई मे जाते हुए शरदागम काल में भी जिसका तेज सह्य नहीं था ।। 4

जीतनेवाले पहाड़ी राजाओं के मस्तक से हाथी के डूबने योग्य जल में वर्षा ऋतु में जिसका पुल है ।। 5

जिसके सैनिकों द्वारा घेरे हुए शत्रु नगर की रक्षा खाई के जल के साथ

बन्धु-स्नेह से भीगे हुए चित्त भी सोख लिया गया है ।। 6

जिस चित्त और नयन को मोहित करनेवाले अतिशय सौन्दर्यशाली को देखकर स्त्रियाँ कामदेव के अनंग होने के दुःख को भूलकर सन्तोष प्राप्त किये हैं ।। 7

रण-क्षेत्र में जिस चतुर्भुज विक्रमशील रूप को देखनेवाले शत्रुओं का मनोरथ तथा सैन्य समूह असमय में ही नष्ट हो गया ।। 8

दूर-दूर तक दिशाओं में घूमती हुई जिसकी कीर्ति सज्जनों के द्वारा इधर-उधर उज्ज्वल प्रकाश-पुंज के ही रूप में वर्णित होती है ।। 9

जो न केवल इस अशेष भूमि को जीतने की इच्छा करता है अपितु अपने अशेष साधनों तथा सम्पत्ति से स्वर्ग को भी नीचा दिखाना चाहता है ।। 10

अशेष गुणों का कोई एक ही व्यक्ति आश्रय नहीं हो सकता, इस परम्परागत सनातन प्रवाद को जिस गुण-सम्पन्न के द्वारा मिटाया जाता है ।। 11

उस महाराजाधिराज भववर्मन का सेवक सब प्रकार से छलों से शुद्ध तथा अन्तरंगत्व प्राप्त था ।। 12

8

वील कन्तेल अभिलेख

Veal Kantel Inscription

वील कन्तेल अभिलेख स्टंग ट्रेंग के निकट मेकाँग नदी के पश्चिम में अवस्थित है । यह अभिलेख जो एक शिलाखण्ड पर है, वील कन्तेल से आधे मील पश्चिम में स्थित प्रसत बा अन में पाया गया था ।

इस अभिलेख में सोम शर्मा द्वारा त्रिभुवनेश्वर की मूर्ति स्थापना का वर्णन है । सोम शर्मा की पत्नी वीरवर्मन की पुत्री और राजा भववर्मन की बहन थी। इसमें *रामायण*, *महाभारत* और पुराण के दान के साथ इनके दैनिक पाठ का उल्लेख है ।

सर्वप्रथम एम० बार्थ ने इस अभिलेख का सम्पादन किया था ।[1]

श्रीवीरवर्म्मदुहिता स्वसा श्रीभववर्म्मणः ।
पतिव्रता धर्मरता द्वितीयारुन्धतीव या ॥ 1

---

1. *ISC*, p.28

हिरण्यवर्म्मजननीं यस्तां पत्नीमुपावहत् ।
द्विजेन्दुराकृतिस्वामी सामवेद विदग्रणीः ॥ 2
श्रीसोमशर्म्मार्कयुतं स श्रीत्रिभुवनेश्वरम् ।
अतिष्ठिपन् महापूजामति पुष्कलदक्षिणाम् ॥ 3
रामायण पुराणाभ्यामशेषं भारतन ददंत ।
अकृतान्वहमच्छेद्यां स च तद्वाचनास्थितिम् ॥ 4
यावत् त्रिभुवनेशस्य विभूतिरवतिष्ठते ।
यो य ए..................................॥ 5
धर्म्मां शस्तस्य तस्य स्यान् महासुकृतकारिणः ।
....॥ 6

इतस्तु हर्त्त दुर्बुद्धिर्य एकमपि पुस्त(कम्) ॥ 7

अर्थ–

श्री वीरवर्मन की पुत्री तथा श्री भववर्मन की बहन जो अपने पातिव्रत्य तथा धर्माचरण के कारण दूसरी अरुन्धती के समान है ॥ 1

ऐसी उस हिरण्यवर्मन की जननी को जिन्होंने पत्नी रूप में विवाह किया है वे चन्द्रमा के समान रूपवाले, सामवेद के ज्ञाताओं में अग्रणी श्रीमान् सोमशर्मा ने सूर्य भगवान् के साथ श्री त्रिभुवनेश्वर भगवान् की स्थापना करके बहुत दान–दक्षिणा के साथ महापूजा की ॥ 2–3

रामायण तथा पुराण के साथ विशाल महाभारत का दान किया । इस पुण्यकर्म से उनके पारायण की अटूटता को बनाये रखा ॥ 4

जब तक भगवान् त्रिभुवनेश की यह विभूति रहे..........जो ये..........॥ 5

इस महापुण्य का कार्य करनेवाले के धर्म को...........................॥ 6

जो कोई दुर्बुद्धि एक भी पुस्तक का हर्ता हो, वह मृत्यु को प्राप्त करे ॥ 7

9

थ्मा क्रे अभिलेख

Thma Kre Inscription

मेकाँग नदी के तट पर संबोर एवं क्रासेह के बीच एक ग्राम है थ्मा क्रे जहाँ यह अभिलेख पाया गया है। इसके दो प्रतिरूप हैं– प्रथम– क्रोय एम्फील जो वील कन्तेल के दक्षिण में है, एवं द्वितीय– थाम पेट थौंग जो थाईलैण्ड के राजक्सिमा जिला में है।

इस अभिलेख में चित्रसेन द्वारा एक शिवलिंग की स्थापना का वर्णन है। सर्वप्रथम एम० फिनौट ने हमारा ध्यान इस अभिलेख की ओर आकृष्ट किया है।[1]

भक्तया भगवतश् शम्भोर्म्मातापित्रोरनुज्ञया ।
स्थापिताश्चित्रसेनेन लिंगज्जयति शाम्भवम् ॥[1]

अर्थ–

भगवान् शम्भु की भक्ति से तथा माता–पिता की अनुज्ञा से चित्रसेन द्वारा स्थापित भगवान् शम्भु का लिंग जयशील होता है।

---

1. *BEFEO*, Vol. III, p.440

10

फू लोखोन अभिलेख
Phu Lokhon Inscription

यह अभिलेख मुन एवं मेकाँग नदी के संगम के निकट पाया गया है । इसके अतिरिक्त खान थेवेदा, थाम प्रसत और केंग तान के निकटवर्ती क्षेत्रों में बहुतायत संख्या में पाये गये थे ।

इन अभिलेखों के प्राप्ति स्थान से राजा महेन्द्रवर्मन (600-616) के राज्य-विस्तार का पता चलता है और उसमें उसके द्वारा शिवलिंग की स्थापना का वर्णन मिलता है ।

सर्वप्रथम एम० बार्थ ने इस अभिलेख का सम्पादन किया है ।[1]

नप्ता श्री सार्व्वभौमस्य सूनुश् श्री वीरवर्म्मणः ।
शक्त्यानून कनिष्ठोपि भ्राता श्री भववर्म्मणः ॥ 1
श्री चित्रसेननामा य पूर्व्वमाहतलक्षणः ।
स श्री महेन्द्रवर्म्मेतिनाम भेजेऽभिषेकजम् ॥ 2

1. *BEFEO*, Vol. III, p.442

जित्वेमन्देशमखिलंगिरीशस्येह भूभृति ।
लिंगन्निवेशयामास जयचिह्नमिवात्मनः ॥ 3
विजित्य निखिलान्देशानस्मिन्देशे शिलामयम् ।
वृषभं स्थापयामास जय.......................... ॥ 4

अर्थ–

श्री सार्वभौम के नाती, श्री वीरवर्मन के पुत्र तथा कनिष्ठ होते हुए भी शक्ति में समान श्री भववर्मन के भाई ॥ 1

पहले श्री चित्रसेन के नाम से जाना जाता था परन्तु राज्याभिषेक के बाद वह महेन्द्रवर्मन के नाम से विख्यात हुआ ॥ 2

उस राजा ने गिरीश नामक इस राजा के इस सारे देश को जीतकर अपने जयचिह्न के रूप में भगवान् शिव के इस लिंग की स्थापना की ॥ 3

सारे देशों का विजय करके इस देश में उसने जयचिह्न के रूप में शिलामयी नन्दी की प्रतिमा की स्थापना की ॥ 4

II

संबोर प्री कुक अभिलेख
Sambor Prei Kuk Inscription

यह एक जंगल का नाम है जो अब संबोर के प्राचीन नगर के स्थान के रूप में जाना जाता है। यह कौमपौन स्वे प्रान्त में है ।

इस अभिलेख में कदम्बेश्वर की आराधना, राजा ईशानवर्मन की वंशावली और राजा ईशानवर्मन के राजकीय अधिकारी विद्याविशेष द्वारा शक सम्वत् 549 में शिवलिंग की स्थापना का वर्णन है । सर्वप्रथम एम० फिनौट ने इसका सम्पादन किया था ।[1]

श्रीकदम्बेश्वरः पायादयमक्षीण सम्पदः ।
युष्मानशक्यनिर्द्देश प्रभावातिशयोदयः ॥ 1
विक्रमावजिताम्भोधि परिखावनिमण्डलः ।
श्रीशानवर्म्मेत्यभवद् राजा विष्णुरिवापरः ॥ 2
प्रयुक्तनयमात्रेण कदाचिदवनीभुजाम् ।

1. *BEFEO*, Vol. XXVIII, p.44

पक्षच्छिदापकत्तृणा( ) बज्री येन विशेषितः ॥ 3
यो निराकृतनिः शेषकलिदुर्ल्ललितोदयः ।
वर्ण्णमुष्टिरभूदेको युगादि पृथिवी भुजाम् ॥ 4
संख्यातीत तया यस्य क्रतूनाममराधिपः ।
शतक्रतुकृतन्नाम मन्ये न बहुमन्यते ॥ 5
निराधारमिदं मामूद् दग्धे कुसुमधन्वनि ।
इति विश्वसृजा नूनं वपुर्यत्र निवेशितम् ॥ 6
तेन भूमिभुजा व्याप्त दिशामण्डल कीर्त्तिना ।
भृत्यो योऽधिकृतः सर्व्वेष्विति कर्त्तव्यवस्तुषु ॥ 7
शब्दवैशेषिकन्याय समीक्ष सुगताध्वनाम् ।
धुरियो लिखितोऽनेक शास्त्र प्रहत बुद्धिभिः ॥ 8
कविर्वादि सुहृद्वर्ग्गमात्म प्राणनमन्यत ।
विद्याविशेषनामा य आचार्य्यो लोकवेदिता ॥ 9
इच्छता भक्तिमीशाने स्थिराज्जन्मनि जन्मनि ।
तेनेह स्थापितमिदं लिंग शुद्धाभिसन्धिना ॥ 10
शाकतीर्थमिति ग्रामो दत्तरीशाय यज्वनः ।
भृत्यगोमहिषाराम क्षेत्र प्रभृतिपूरितः ॥ 11
द्विजः पाशुपतो राज्ञाधिकृतो देवतार्च्चने ।
इदं देवकुलं भोक्तुं अर्हत्याभूत संप्लवम् ॥ 12
तेन मे वश्य कर्त्तव्ययमस्य यत्नेन पालनम् ।
स्वपुण्यस्येव सद्वर्ग्गकृतामाशिषमिच्छता ॥ 13
द्वाराण्र्णवेषु शाकाब्दे द्वाविंशे पुण्ययोगि ।
इषस्य दिवसे सिंहलग्ने चायं स्थितोहरः ॥ 14
कृते पुण्यविकारेऽस्मिन्नथ यज्वा सभूभुजा ।
ततन्दरपुरस्वामी भोजक प्रवरः कृतः ॥ 15

अर्थ–

अशक्य सामर्थ्य तथा अतिशय प्रभाववाले, विशाल सम्पदा सम्पन्न ये भगवान् श्री कदम्बेश्वर तुम्हारी रक्षा करें ॥ 1

पृथिवीमण्डल की रक्षा खाई रूप चारों समुद्रों को जीतनेवाले राजा श्री ईशानवर्मन दूसरे भगवान् विष्णु के समान ही हुए ।। 2

कदाचित् भी अपकार करनेवाले शत्रु राजाओं के पक्ष (दल) को केवल कूटनीति के प्रयोगमात्र से विनष्ट करने वाले ये, पर्वतों के पक्ष को वज्र से नष्ट करनेवाले इन्द्र से भी विशिष्ट प्रकार के इन्द्र ये हुए ।। 3

जिन्होंने कलिकाल के अशेष दोषों के उदय को निराकृत कर दिये हैं, ऐसे राजा श्री इन्द्रवर्मन सत्ययुग के राजसमूह में से एक हुए ।। 4

जिनके यज्ञों की अशेष संख्या को देखकर देवराज इन्द्र अपने शतक्रतु नाम मानो आदर योग्य नहीं माने ।। 5

काम के बिना यह संसार निराधार न हो जाये इसलिए कामदेव के जल जाने पर विश्वविधाता ने निश्चित रूप से काम-सा ही जिसके शरीर को रचा है ।। 6

दसों दिशाओं में फैली कीर्तिवाले उस राजा के द्वारा जो सेवक सभी आवश्यक कार्यों के लिए अधिकृत किया गया ।। 7

तथा जो व्याकरण, वैशेषिक, न्याय, समीक्षा एवं बौद्ध-दर्शन के ज्ञाताओं में अग्रगण्य हैं तथा अपनी प्रहत् बुद्धि से जिन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की है ।। 8

जिसे कविगण, शास्त्रार्थी तथा मित्रगण अपना प्राण ही मानते थे तथा जो आचार्य विद्याविशेष के नाम से लोकविख्यात थे ।। 9

जन्म-जन्म तक शिवजी में स्थिर भक्ति की इच्छावाले, उन्होंने ही शुभ मुहूर्त में इस शिवलिंग की स्थापना की ।। 10

उस यज्ञकर्ता के द्वारा सेवक, गो, भैंस, बागीचा, खेत आदि से भरा-पूरा शाकतीर्थ नामक गाँव भगवान् शिव की सेवा के लिए दान किया ।। 11

राजा द्वारा अधिकृत पाशुपत ब्राह्मण लोग देवार्चन के लिए महाप्रलय काल तक इस देव-सम्पदा का भोग करने योग्य हैं ।। 12

इस प्रकार सज्जनों के द्वारा अपने पुण्य का आशीर्वाद चाहनेवाले मेरे

वंश के लोगों को यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिए ।। 13

410 शकाब्द के कार्तिक मास के 22वें दिन के पुण्य योग एवं सिंह लग्न में इन भगवान् शिव की स्थापना हुई ।। 14

इस पुण्य कार्य के करने पर उस यज्ञकर्ता राजा ने तदन्तर पुर के स्वामी को भोजक श्रेष्ठ (प्रधान भोजक) नियुक्त किया ।। 15

12

अंग पु (वट पु) अभिलेख

Ang Pu (Vat Pu) Inscription

यह त्रांग जिले के चाउडक से पन्द्रह मील उत्तर-पश्चिम में अवस्थित है। बलुआही पत्थर पर यह अभिलेख ख्मेर और संस्कृत दोनों भाषाओं में उत्कीर्ण है ।

इस अभिलेख में राजा ईशानवर्मन का उल्लेख है । इसके साथ ही एक संन्यासी ईशानदत्त द्वारा शिव-विष्णु के लिंग स्थापना और उसके द्वारा आश्रम के साथ-साथ भूमि, दास और गायों को भगवान् को दान में देने का उल्लेख हमें मिलता है ।

इस अभिलेख के संस्कृत भाग को बार्थ ने सम्पादित किया है।[1]

जयतो जगतां भूत्यै कृतसन्धी हराच्युतौ ।
पार्व्वतीश्रीपति त्वेन भिन्नमूर्त्तिधरावपि ॥ 1
ख्यात वीर्यविशेषेण शेषेणेव महीभृता ।

1. *ISC*, p.47

रत्नोज्ज्वलित भोगेन जितं श्रीशानवर्म्मणा ॥ 2
यः प्रतीत तपःशील वृत्तश्रुतपरो मुनिः ।
ईशानदत्त इत्याख्याख्यातः ख्यातकुलोद्गतः ॥ 3
शंकराच्युतयोरर्द्धशरीर प्रतिमामिमाम् ।
एक संस्था सुकृतये यो गुरुणामअतिष्ठिपत् ॥ 4
विष्णुचण्डेश्वरेशानलिंगं तेन प्रतिष्ठितम् ।
एकभोग निबद्धास्तु तत् पूजेत्यस्य निश्चयः ॥ 5
दासक्षेत्रभगवादिकं भगवते दत्तं धनं यच्चन ।
तृष्णाकम्पित मानसः खलजनो यः संहरत्युद्धतः ॥ 6
नानादुःख समन्वितेषु नरकेष्वक्षीणपापात्मको ।
तिष्ठेत्वेव सकोपजिह्वित मुखैरभ्याहतः किंकरैः ॥ 7

अर्थ–

पार्वतीपति तथा श्रीपति के रूप में अलग-अलग रूप रखने पर भी संसार की समृद्धि के लिए हरिहर रूप में जो एक हो गये हैं, उनकी जय हो ॥ 1

जिस प्रकार शेषनाग मणियों से प्रकाशित अपने फण के द्वारा संसार को जीते थे उसी प्रकार अपनी विशिष्ट शक्ति के कारण विख्यात राजा श्री ईशानवर्मन के द्वारा योद्धा रत्नों से प्रकाशित अपने सैन्य-व्यूह के द्वारा पृथिवी जीती गयी ॥ 2

विख्यात तप, शील वृत्तवाले मुनि ईशान दत्त जो विख्यात कुलोत्पन्न थे॥ 3

हरिहर के आधे-आधे शरीर की इस एकीकृत प्रतिमा को जिन्होंने गुरुओं के पुण्य के लिए प्रतिष्ठित किया था ॥ 4

उन्होंने ही एक ही उपचार से पूजा हो इस निश्चय से विष्णु तथा चण्डेश्वरेशान की एकीकृत प्रतिमा की स्थापना की ॥ 5

उन्हीं यज्ञकर्ता ईशानदत्त के द्वारा भगवान् की सेवा में प्रदत्त सेवक, खेत, गाँव आदि का जो तृष्णा कम्पित मनवाला उद्धत दुष्ट हरण करता है, वह बड़ा पापी अनेक दुखोंवाले नरक में पड़े तथा क्रोध विकराल टेढ़े मुँह किये यम के सेवकों से मार खाते रहें ॥ 6-7

13

स्वे च्नो अभिलेख

Svay Chno Inscription

यह ग्राम वर्तमान कम्बोडिया की राजधानी नोमपेन्ह से दस मील दक्षिण-पश्चिम में अवस्थित है । खड़े पत्थर पर एक ओर उत्कीर्ण यह अभिलेख संस्कृत और ख्मेर दोनों भाषाओं में है ।

इस अभिलेख में आर्यविद्यादेव जिसे आर०सी० मजूमदार ने राजा ईशानवर्मन के समय का विद्याविशेष से समानता दिखाई है, द्वारा एक आश्रम की स्थापना का उल्लेख है ।

यह अंशतः बार्थ[1] द्वारा सम्पादित किया गया और ई० आयमोनियर द्वारा सर्वप्रथम हमारा ध्यान आकृष्ट कराया गया था ।[2] यह अभिलेख ईशानवर्मन के शासनकाल का है । ईशानवर्मन को तीन राजाओं का सम्प्रभु तथा तीन शहरों का स्वामी बतलाता है ।

जयत्यखण्डार्द्धशशांकमौलि-

---

1. *ISC*, p. 44
2. *Le Cambodge*, Vol. I, Paris, 1900-1903, p. 219

राखण्डलानम्रकिरीटकोष(:) ।
सधातृनारायण रुद्रकोटि-
व्याहतश् शम्भुरनूनशक्ति(:) ॥ 1
भूपत्रयस्योरुयशोविधाता
भोक्ता बलीयान् नगर त्रयस्य
शक्ति त्रयस्येव हरिस्थिरस्य
श्रीशानवर्म्मा जयति क्षितीशः ॥ 2
........गणिताः सहचेटकेन
गावोष्ट च क्रमुक वृन्दमशीतिसंख्य(म्)
......संख्यागणितैः सहनालिकेरै-
+ क्षेत्रस्य कृत्स्नपरिमाणतया...... ॥ 3
.........मार्य्येण विद्यादेवेन सत्रिणा ।
उत्क्रमावसथायेदमत्याश्रमिनिवे(शितम्) ॥ 4

अर्थ–

करोड़ों ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से जो अव्याहत रहे हैं तथा जिनके आगे देवताओं के मुकुट कोष झुके रहते हैं, उन अनन्त शक्तिसम्पन्न अखण्ड भगवान् अर्द्धचन्द्रमौलेश्वर शम्भु की जय हो ।। 1

तीनों राजाओं के महान् यश को बढ़ानेवाले तीनों शक्तियों के भोक्ता भगवान् विष्णु के समान तीनों नगरों का भोग करनेवाले अतिशय शक्तिशाली महाराज श्री ईशानवर्मन की जय हो ।। 2

गिने गये नौकरों के साथ आठ गायें, सुपारी के अस्सी वृक्ष आठ की संख्या से गुणा किये गये नारियल के वृक्ष सभी खेत जो माप में............. ।। 3

यज्ञकर्ता आर्य विद्यादेव के द्वारा परिव्राजकों के निवास के लिए संन्यासियों की सेवा में दान किये गये ।। 4

14

नुई-बा-थे अभिलेख

Nui-Ba-The Inscription

इस स्थान (छोटी पर्वत-श्रेणी) का दूसरा नाम नौम बा-थे है । यह कोचीन-चीन के लौंग जुरान प्रान्त में अवस्थित है ।

इस अभिलेख में विष्णु के रूप में वर्द्धमानदेव की आराधना है । अभिलेख के वैष्णव चरित्र से वहाँ पायी गयी मूर्तियों के विष्णु की मूर्ति होने के प्रमाण देते हैं । यद्यपि अभिलेख की प्रथम पंक्ति में पत्थर के लिंग के चिह्न अभिलेख की चौथी पंक्ति द्वारा शिव होना निश्चित करते हैं । साहित्यों में भी वर्द्धमान लिंग का उल्लेख शिव की उपस्थिति के द्योतक हैं ।[1]

राजा श्री नृपादित्यदेव (नृपतिन्द्रवर्मन : 7वीं शती) के धार्मिक गुणों की श्रेष्ठता को बतलाने के लिए कुमारम्भ द्वारा उपर्युक्त भगवान् के लिए एक ईंटों से बने मन्दिर बनवाने का इस अभिलेख में उल्लेख है । धार्मिक कार्यों के लिए कुमारम्भ की माता द्वारा बीस दासों को दान में दिये जाने का भी उल्लेख है ।

---

1. Rao, T.A.G., *Elements of Hindu Iconography*, Vol. II, 2nd Edn., Varanasi, 1971, p.88

अपने मोक्ष प्राप्ति के निमित्त इसने फूलों के माला बनानेवालों के लिए दो भवनों का निर्माण करवाया। इनके आदर्श जीवन का वर्णन पद्य 10 में है।

जॉर्ज सोदेस ने इसका सम्पादन किया है।[2]

श्रीवर्द्धमानदेवो वर्द्धितभावो नृणां कुशलभाजाम्।
जयति स सकल भुवनपतिरुदित पृथुललित शिलालिंग ॥ 1
भैरवनर्त्तन विभ्रमचलितभुजसहस्र वर्द्धमानो यः।
श्रीवर्द्धमानदेवो माहितचरणः सुरैर्नोऽव्यात् ॥ 2
हिमवन्मलयसुमेरु प्रभृतिगिरीन्द्रेषु सस्तुतः सतत्।
सिद्ध सुरासुर मुनिभिः श्रीमान् श्रीवर्द्धमानो यः ॥ 3
ओंकारो यः पुरुषो ह्यात्मेश्वर शून्यकातिनिर्गुणकः।
श्रीवर्द्धमानक शिवः शिवमस्माकं स तद्दिशतु ॥ 4
भुवनत्रय परमार्थ विश्वं लोकेषु कारणमचिन्त्यम्।
विविधात्मकमेकमतः श्री.........मे वर्द्धमान(ा)र्य्यम् ॥ 5
तस्येष्टका सुमहती धवलितगिरि शिखरकूद्यसौभाग्या।
षन्मासकृतापि सती नान्यैर्भवता कुमारम्भात् ॥ 6
श्रीनृपादित्यदेवस्य पुण्यार्था सेष्टका कृता।
कुमारम्भेण भवता स्थिरचित्तेन साधुना ॥ 7
राज्ञै श्रीवर्द्धमानाय भृत्यानां विंशतिं मुदा।
माता तपस्विनी प्रादात् सद्धर्म्मपथचारिणी ॥ 8
मालाधरार्थमत्रैव वासद्वयमिदं शुभम्।
प्रायच्छत परलोकाय दानाभ्युदयकांक्षिणी ॥ 9
तपः स्वाध्यायनिरता ब्राह्मणानां हिताय च।
प्रसन्ना श्रीसमायुक्ता कुरुते कर्म संयता ॥ 10
नाशयन्तस्तुये पापाः भृत्यान्तत्रसुकल्पितान्।
आहर्त्तुकामनिभृतास्ते यान्ति निरयन्नराः ॥ 11

अर्थ–

सभी लोकों के स्वामी, लोगों का कल्याण करनेवाले, महान् प्रभावशाली उन

2. *BEFEO*, Vol.XXXVI, p.7

भगवान् वर्द्धमानेश्वर की जय हो जो विशाल तथा सुन्दर शिलामय लिंग के रूप में प्रकट हुए हैं ।। 1

ताण्डव नर्तन (भैरव नर्तन) के हाव-भाव में जिन्होंने हज़ार भुजाओं को फैलाया है तथा भगवती उमा एवं देवताओं के द्वारा जिनके चरण सुपूजित हैं, वे वर्द्धमान देव हमलोगों का कल्याण करें ।। 2

हिमालय, मलय, सुमेरु आदि पर्वत श्रेष्ठों पर सिद्धों, देवों, दानवों तथा ऋषियों से जो श्रीमान् वर्द्धमानेश्वर सतत सुवन्दित हैं तथा जो प्रणवरूप आत्माओं के स्वामी अतिनिर्गुण, शून्यस्वरूप हैं, वे श्री वर्द्धमानेश्वर महादेव हमलोगों का कल्याण करें ।। 3-4

तीनों लोकों के श्रेष्ठ अर्थस्वरूप, विश्वरूप, लोकों में कारण रूप से प्रसिद्ध, अनिर्वचनीय, विविधात्म रूप होते हुए भी एक रहनेवाले श्री वर्द्धमानेश्वर हमलोगों को श्री लक्ष्मी प्रदान करें ।। 5

उन श्रीमान् वर्द्धमानेश्वर का, पर्वत-शिखरों के समान ऊँचा, विशाल तथा सुन्दर, ईंटों का मन्दिर छः महीने में दूसरा और कोई नहीं स्वयं महाराज कुमार ने बनवाया ।। 6

राजा श्री आदित्यदेव के पुण्य के लिए ईंटों के इस मन्दिर का निर्माण स्थिरचित्त साधु आप महाराज कुमार के द्वारा कराया गया ।। 7

महारानी के पुण्य के लिए सद्धर्मपथचारिणी तपस्विनी राजमाता ने प्रसन्नतापूर्वक बीस सेवकों को प्रदान किया ।। 8

दान के द्वारा अभ्युदय चाहनेवाली माता ने मालाधर के लिए यहीं पर दो सुन्दर घर स्वर्ग प्राप्त्यर्थ प्रदान किये ।। 9

प्रसन्नवदना, श्री, शील तथा संयमसम्पन्ना राजमाता के द्वारा तप तथा स्वाध्याय में लगे ब्राह्मणों के हित में काम किये जाते हैं ।। 10

जो पापी इसको नाश करते हैं तथा अच्छी तरह से दान किये गये भृत्यादि के हरण करने की इच्छा रखते हैं, वे लोग निरथ नामक नरक को जाते हैं ।। 11

15

वट चक्रेत अभिलेख
Vat Chakret Inscription

यह एक प्राचीन मन्दिर है जो बा नोम पर्वत के नीचे अवस्थित है। इस मन्दिर के नाम की समानता प्रान्त के नाम से है । यह अभिलेख खड़े पत्थर के दोनों ओर उत्कीर्ण है ।

यह अभिलेख ईशानवर्मन द्वारा उत्कीर्ण कराया गया है तथा इसमें ताम्रपुर के प्रजा प्रमुख द्वारा शिव-विष्णु की एक मूर्ति स्थापना का उल्लेख है जो इस बात की ओर संकेत करता है कि शिव-विष्णु का एकीकृत रूप इस समय काफी प्रचलित था ।

यह बार्थ[1] तथा आयमोनियर[2] ने इस अभिलेख का सम्पादन कर सर्वप्रथम हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट कराया है ।

(अ)

जयतिन्दुकलामौलि(र) नेक गुण विस्तरः ।

---

1. *ISC*, p.38
2. *Le Cambodge*, Vol. I, Paris, 1900-1903, p.237

स आदिरपि भूतानाम नादिनिधनश् शिवः ॥ 1
देवश् श्रीशानवर्म्मेति वभूव पृथिवीश्वरः ।
शक्रतुल्यस्स्ववीर्येण श्रियाच हरि सन्तमः ॥ 2
राजेन्द्रस्य प्रसादेन दिङ्मण्डलविसारिणः।
परेषां कीर्त्तिमाक्रम्य तस्य कीर्त्तिर्ज्जव स्थिता ॥ 3
(यो)द्ध्यासितोऽभवद्दीर्घ सोयं ताम्रपुरेश्वरः ।
चक्रांकामोधभीमाख्यपुरत्रयं पदं श्रियः ॥ 4
(य)शोभिकांक्षता तेन स्था(पि) तावाभुवस्थितेः ।
श्रद्धापूर्व्वेण विधिना सूरीष्टौ हरिशंकरौ ॥ 5
भृत्यगोमहिषक्षे(त्र) वस्र.................॥ 6

(ब)

पिण्डीभूते शकापुदेव सुजलनिधि शरैवसिरेमाधवादौ ।
कीटे प्राग्लग्नभूते कुमुदवनपतौ ताबुरे कृत्तिकायाम् ॥ 1
राज्ञो लप्ध प्रसादो रिपुमदपिधनात् ताम्रपुर्य्या+कुराज्ञः ।
(सो)त्रैव स्वर्गभूत्यैः हरितनुसहितं स्थापयमास शम्भुम् ॥ 2

अर्थ–

सब जीवों के आदि होते हुए भी जो आदि–अन्तहीन हैं तथा जिनमें अनेक गुणों का विस्तार है वे भगवान् चन्द्रमौलि शिव जयशील होते हैं– उन भगवान् चन्द्रमौलि शिव की जय हो ।। 1

पृथिवीपति महाराज श्री ईशानवर्मन अपनी शक्ति के कारण इन्द्र के समान तथा श्रीसम्पन्नता के कारण सर्वोत्तम भगवान् विष्णु के तुल्य हुए ।। 2

जिनकी कीर्ति राजा श्री राजेन्द्रवर्मन की कृपा (प्रसन्नता) से दिग्दिगन्त में फैले दूसरे राजाओं की कीर्ति को दबाकर संसार में स्थित हुई ।। 3

चक्रांक अमोघ तथा भीम इन तीन नगरों के राजपद पर अधिष्ठित होकर जो बड़ा हुआ वह यही महाराज ताम्रपुरेश्वर हैं ।। 4

यश की आकांक्षा करते हुए उसके द्वारा श्रद्धापूर्वक तथा विधिपूर्वक दोनों इष्टदेवों विष्णु तथा शंकर की सूरी (मूर्तियाँ) धरती के स्थितिपर्यन्त काल के

लिए स्थापित किये गये ।। 5

सेवक, गाय, भैंस, खेत, धन (आदि इन दोनों देवों की सेवा में प्रदान किये) ।। 6

(ब)

678 शकाब्द में वैशाख मास की प्रतिपदा तिथि में वृश्चिक लग्न में तथा चन्द्रमा के कृत्तिका नक्षत्र में स्थित होने पर महाराज राजेन्द्रवर्मन की कृपा प्राप्त किये हुए ताम्रपुरी के पृथिवीपति ने राजाओं के मद को ढँककर स्वर्गिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए यहाँ पर भगवान् विष्णु की मूर्ति के साथ भगवान् शम्भु की स्थापना की ।। 1-2

16

केदेई अंग मन्दिर अभिलेख

Kedei Ang Temple Inscription

यह बा नोम प्रान्त में अवस्थित है । यह वट केदेई, केदेई अंग एवं कभी-कभी अंग चुमनिक के नाम से भी जाना जाता है । यह अभिलेख पत्थर के दो टुकड़ों पर अलग-अलग लिखे गये हैं जो दोनों मिलकर दरवाजे के एक भाग का निर्माण करते हैं । अभिलेख में संस्कृत और ख्मेर– दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है ।

अभिलेख में आचार्य विद्या विनय द्वारा शिवलिंग की स्थापना और भगवान् के लिए उसके और उसकी पत्नी द्वारा समर्पण का वर्णन है । उन्होंने उन सभी चीजों को देने का प्रस्ताव किया जिसे उन्होंने शक संवत् 551 (629 ई०) में पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त किया था । अभिलेख में दान दी गयी वस्तुओं में भूमि, फुलवारी और दास का वर्णन है जिसे सनैश्वर, सोमकीर्ति, चन्द्रोदय एवं भवकुमार आदि व्यक्तियों द्वारा दिया गया था । एक पवित्र घेरे का वर्णन है जो रुद्राश्रम के नाम से जाना जाता है तथा हम अभिलेख के प्रथम पंक्ति में देखते हैं ।

बार्थ[1] ने इस अभिलेख का सम्पादन किया है और आयमोनियर[2] ने सर्वप्रथम हमारा ध्यान इस अभिलेख की ओर आकृष्ट कराया है ।

(अ)

आचार्य्य विद्याविनयाह्वयेन मयापुनस्(सं)स्कृतमत्रभक्तया ।
समस्तदायस्थिरमस्तु सर्व्वलोकैकनाथस्य शिवस्य लिंगम् ॥ 1
खपञ्चेन्द्रियगे शाके रोहिण्यां शशिनि स्थिते ।
शिवलिंगं तदा तेन देवस्(सं)स्क्रियते पुनः ॥ 2
सर्व्वस्वं भार्य्यया सार्द्ध यज्ञदत्तस्य भोजकः ।
शिवदत्तादवाप्यैतत् शिवलिंगाय दत्तवान् ॥ 3
नानातरुगणाकीर्ण देवायतनमीदृशम् ।
कृतं नामाभवत् तेन रुद्राश्रम इति स्मृतम् ॥ 4

(ब)

पुनः संस्कृत्य तेनैव श्री..........म्रातकेश्वरे ।
योजिताशेषविभवं शिवलिंग द्वयंक...........॥ 1
सोमशर्म्मा जटालिंग हरिश्चैव भटारकः ।
तेषान्तेन चदत्त यो देवस्वं हर्त्तुमिच्छ(ति) ॥ 2
समूढ़ो नरकं यातु कालसूत्रमवाक्शिरा(:) ।
सपुत्र पौत्र सन्तान आसप्तमकुलादपि ॥ 3
स्वदत्तां परदत्तां वायो हरेत वसुन्धराम् ।
श्वविष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सहपच्यते ॥ 4
लाक्षारागोपमेयन्निखिलपुर जनैर्ल्लक्षितं पंकजानां
रक्तत्वं यद्दलाग्रष्वनुदिन मुदितं श्रीहरे x पुष्कारिण्याम् ।
तन्निःशेषं विनष्टं भवति खलु पुनस् संस्कृतायां त्वयास्यां
धर्म्मेतेऽयन्तशुक्ला निहितमिह मनस् सूचयन्तीव पद्माः ॥ 5
चिरमपि सहजान्तांरक्ततामाशु हित्वा
स्ववपुरतिमनोज्ञं शंख कुन्देन्दु शुभ्रम् ।
वहति पुनरिदानीं यद्वनं पंकजानां

1. *ISC*, p.51
2. *Op.cit.*, p.241

कुशल करण दक्षं त्वन्मनस्तत्र हेतुः ॥ 6
राजा श्रीजयवर्म्मेति योत्यशेतान्यभूभुजः ।
सोमवंशामल व्योमसोमस् सर्व्वकलान्वितः ॥ 7
तेनास्मिन् गिरिशेदापि कोशो हुतवहद्युतिः ।
दत्तकोशसहस्रेण सर्व्वदिक्ख्यात कीर्त्तिना ॥ 8
तेनैव राज्ञा धर्म्मज्ञस् सद्भृत्यः कुलसन्ततेः ।
सतकृत्याप्यपुरस्याद्यो..............नियोजितः ॥ 9
तेनोत् सपश् शिवस्यास्य सम्मतः पुरवासिना ।
वरदग्रामपतिना..................भ-बुद्धिना ॥ 10
माधवस्य तृतीयाह्नि दानकाल प्रशंसिते ।
कर्त्तव्यश् श्रद्धया पुंभि रि.........मक्षयम् ॥ 11
पुण्य बीजन्न कुर्य्याद यः पुण्यक्षेत्रे महेश्वरे ।
उरु सम्पत्वलावाप्ति निराश हच...........॥ 12

अर्थ–

(अ)

सभी लोकों के एकमात्र स्वामी भगवान् शिव के लिंग को मुझ आचार्य विद्या विनय नामवाले के द्वारा पुनः संस्कार किया गया । इस संस्कार में किये गये समस्त दान स्थिर रहें ॥ 1

550 शकाब्द में रोहिणी नक्षत्र में चन्द्रमा के स्थित रहने पर उनके द्वारा शिवजी के लिंग को पुनः देव संस्कार किया गया ॥ 2

अपना सब कुछ तथा अपनी पत्नी के धन का आधा और यज्ञदत्त के भोजक ने शिवदत्त से प्राप्त कर यह सब शिवजी के इस लिंग के लिए दान किया ॥ 3

अनेक वृक्षों से ढँके इस तरह के सुन्दर देव मन्दिर का निर्माण किया जो रुद्राश्रम के नाम से विख्यात हुआ ॥ 4

(ब)

उन्हीं के द्वारा पुनः संस्कार करके श्री आम्रातकेश्वर शिवजी की सेवा में अशेष वैभव दान किया गया । पुनः दो शिवलिंगों की सोमशर्मा द्वारा जटालिंग की

तथा भट्टारक महाराज ने हरिहर लिंग की स्थापना करके अशेष वैभव का दान किया, उनकी सेवा में दान किये गये देवधन का जो हरण करने की इच्छा करते हैं वे मूर्ख पुत्र-पौत्रादि सन्तानों सहित सातवें पितर तक काल-सूत्र एवं अवाकशिरा नामक नरक जाते हैं ।। 1-3

अपने से दिये हुए अथवा दूसरों की दी हुई भूमि का जो हरण करते हैं वे कुत्ते की विष्ठा में कीड़ा बनकर अपने पितरों सहित जीते हैं ।। 4

भगवान् श्रीहरि की इस पुष्करिणी में, लाख की लालिमा से उपमेय सभी नागरिकों से लक्षित पंकजों के दलाग्रों की दिनानुदिन प्रस्फुटित होनेवाली अरुणिमा नि:शेष और विनष्ट होकर पुनः आपसे संस्कारित इस तालाब में उज्ज्वल पद्म के रूप में उत्पन्न हो गये । वे अत्यन्त उज्ज्वल पद्मगण धर्म लगे आपके मन की शुभ्रता को ही सूचित करते हैं ।। 5

दीर्घ काल से चले आ रहे अपने स्वाभाविक लालिमा को छोड़कर फिर अब पंकजों के वन जिस अत्यन्त मनोज्ञ, शंख, कुन्द तथा चन्द्रमा के समान शुभ्र रूप को धारण किये हुए हैं, उसमें उपकार करने में दक्ष आपका मन ही कारण है ।। 6

श्री जयवर्मन के नाम से विख्यात राजा जो अन्य राजाओं से अतिशय शक्तिशाली है– पराक्रमी है– सोमवंशरूपी निर्मल आकाश में सभी कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रोद्भासित है ।। 7

उन्होंने इस पर्वत श्रेष्ठ पर अग्नि के समान चमकदार वर्णवाले कोष का दान किया । हज़ार कोष दान की कीर्ति से वे सभी दिशाओं में विख्यात हुए ।। 8

उसी राजा ने अपने ही कुलोत्पन्न सद्भृत्य का सत्कार करके उसे आत्मपुर का वरिष्ठ अधिकारी नियुक्त किया ।। 9

उसके द्वारा पुरवासियों की सम्मति से तथा शुभ बुद्धि वरद ग्राम पति के सहयोग से भगवान् शिव का उत्सव किया गया ।। 10

चैत्र मास की तृतीया को जो दान काल के रूप में प्रशंसित है उस तिथि को पुरुषों द्वारा श्रद्धापूर्वक दान किया जाना चाहिए । इस तिथि को किया गया दान अक्षय होता है ।। 11

पुण्य के बीजरूप दान को जो इस पवित्र महेश्वर क्षेत्र में न करे उसे विपुल धन और बल की प्राप्ति न हो ।। 12

17

बयांग मन्दिर अभिलेख

Bayang Temple Inscription

यह अभिलेख, जो बुरी तरह क्षतिग्रस्त अवस्था में है, राजा भववर्मन के दान, भगवान् उत्पन्नेश्वर और सत्रगाम गाँव में एक धर्मशाला की स्थापना का वर्णन करता है । आर०सी० मजूमदार के अनुसार यह राजा सम्भवतः इस नाम का दूसरा राजा है । यह राजा कौण्डिन्य और सोमा परिवार का होगा– यह तथ्य इस अभिलेख से प्रकाशित होता है । सभी पद्य अस्पष्ट हैं क्योंकि टूट जाने के कारण पढ़ा नहीं जा सकता है ।

जॉर्ज सोदेस ने इस अभिलेख का सम्पादन किया है ।[1]

श्रीकौण्डिण्यस्य महिषी या दत्ता........॥ 1

सोमवंश्य प्रसू(ता)नां...........लोपमकुर्व्वता ।

श्रीकोङ्गवर्म्म...........द्ध..............॥ 2

स्थितये चास्य सत्रस्य सत्रग्रामो निवेशितः ।

---

1. *IC*, p.251

ससीमो....................................॥ 3

श्रीउत्पन्नेश्वरायेदं राज्ञा श्रीभववर्म्मणा ।

दत्तञ्च..॥ 29

अर्थ–

श्री कौण्डिन्य की रानी जो निपुण है...........................॥ 1

चन्द्रवंश में उत्पन्न............लोप न करनेवाले से श्री कोङ्गवर्म.........

द्ध.....॥2

इस यज्ञ की स्थिति के लिए सत्रग्राम निवेशित किया सीमा सहित.........

....॥ 3

श्री भववर्मन राजा द्वारा श्री उत्पन्नेश्वर के लिए............और दिया.........

...॥ 29

18

भववर्मन का अभिलेख

Inscription of Bhavavarman

यह अभिलेख वर्तमान समय में नोमपेन्ह (जो कम्बोडिया की राजधानी है) के संग्रहालय में सुरक्षित है जिसे सन् 1901 ई० में इसे लाया गया। इस अभिलेख के प्राप्ति स्थान के विषय में हमें कोई जानकारी नहीं है।

अभिलेख से हमें राजा द्वारा चतुर्भुजा की एक स्वर्ण मूर्ति की स्थापना का वर्णन मिलता है । उसने शिव के प्रति समर्पण दिखलाने तथा अपने माता-पिता को मोक्ष प्राप्ति के लिए ऐसा किया था । इस अभिलेख का ऐतिहासिक महत्त्व इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि एक दूसरा राजा भववर्मन जिसने शक संवत् 561 में राज्य किया था ।

जॉर्ज सोदेस ने इस अभिलेख का सम्पादन किया था ।[1]

अस्ति मन्वादिभूपाल वर्ण्णमुष्टिर्यशोनिधिः ।
राजा श्री भववर्मेति तपसा धारणाद्वितिः ।। 1
मुखर्त्तुवाणैर्गणिते शकाब्दे

---

1. *BEFEO*, Vol. IV, p.691

झषोदये कण्यागतार्द्ध चन्द्रे ।
पुण्यस्य कृष्णो दिवसे दशार्द्धे
प्रतिष्ठितं देवी चतुर्भुजाख्यं ।। 2
भक्तया भगवतश् शम्भुर्पिताभात्रोर्विमुक्तये ।
देवी यथार्थ चरितैस् स्थापितं यमिना भुवि ।। 3

अर्थ–

मनु आदि सम्राटों के तेजस्वरूप (शोभाओं के संग्रह स्वरूप) यशोनिधि राजा श्रीमान् भववर्मन अद्वितीय तपस्वी हैं ।। 1

वे महाराज श्री भववर्मन ने 561 शकाब्द में, मीन राशि के उदय काल में तथा कन्यगत चन्द्रमा होने पर पौष मास के कृष्ण पञ्चमी को चतुर्भुजी देवी की स्थापना की ।। 2

उस संयमी तथा सच्चरित्र राजा भववर्मन के द्वारा भगवान् शिव की भक्ति से माता-पिता के उद्धार के लिए देवी की स्थापना की गयी ।। 3

19

तुओल कोक प्रह अभिलेख
Tuol Kok Prah Inscription

शिला फलक पर अंकित यह अभिलेख प्री वेंग प्रान्त के कौमपौंग रूसी ज़िले के तुओल कोक प्रह से पूरब एक धान के खेत में प्राप्त हुआ था । अभिलेख में राजा जयवर्मन के मन्त्री ज्ञानचन्द्र द्वारा भगवान् अम्रातकेश्वर की मूर्ति-स्थापना और भगवान् को दान में दी गयी भूमि और दासों का वर्णन है ।

यह अभिलेख अंशत: संस्कृत और ख्मेर– दोनों भाषाओं में लिखा गया है । संस्कृत-भाग में 7 श्लोक हैं जिनमें गद्य की 5 पंक्तियाँ हैं जो शुद्ध नहीं हैं । शेष सभी पद्य शुद्ध एवं श्लोक में हैं । ख्मेर-पाठ बुरी तरह नष्ट हो गये हैं और उनमें केवल दान की सूची का वर्णन है ।

फिनौट ने इसका सम्पादन किया है ।[1]

स्वस्ति जयत्युमार्द्धकायोपि योगिनां प्रभवो ++ ।

---

1. *BEFEO*, Vol. XVIII, p. 15

परावभूव यं प्राप्य मन्मथो लोकमन्मथः ॥ 1

यः पाकशासन इव क्षितीन्द्रैधृत शासनः ।

राजा श्री जयवर्म्मेति विजिताराति मण्डलः ॥ 2

तस्यामात्योऽनवधात्मा कुलीनो विदुषां मतः ।

विख्यातो ज्ञानचन्द्राख्यो गुणज्ञो गुणिनां गुणी ॥ 3

तेनेह स्थापितो भक्त्या श्रीमानाभ्रातकेश्वरः ।

यथा मम शिवे भक्तिः प्रतिजन्म भवेदिति ॥ 4

इहापि भगवान् पूर्व्वः श्रीमान् रुद्रमहालयः ।

उभयोर्देव कुलयोरेकत्वमुपभोगतः ॥ 5

सिंहोदय वृषार्द्धेन्दौ कृष्णद्वादशके शुचेः ।

श्रीमानाभ्रातकेशोऽयं स्थितो नवमुनीषुभिः ॥ 6

+ +स्मिन् श्रद्धया दत्तं क्षेत्रदासादिकन्धनम् ।

(योह)रेत् सनरो यायाद् नरकानेकविंशतिम् ॥ 7

..........न्रिध्यस्य श्रीव्योमेश्वरस्य क्षेत्रद्वयस्य निष्क्रयः अर्च्चन

.........स्मिन् श्री व्योमेश्वरे दतञ्चतदापि श्रीमता श्रीजयवर्म्मन

........द्वम यदपि ज्ञानचन्द्रेणोपार्ज्जितं तत्सर्व्वं श्रीमदाभ्रात्के

.......श्वर............यम ।

अर्थ–

आधे शरीर में देवी उमा के विराजमान होने के कारण अर्द्धकाय होने पर भी जो योगियों के उत्स रूप हैं पराजित होकर कामदेव हैं, जिनको प्राप्त करके जगत् के मन को मथन करने वाला बना हुआ है, उन भगवान् अर्धनारीश्वर शिवजी की जय हो ॥ 1

जो इन्द्र के समान ही संसार के राजाओं पर शासन करते हैं तथा जिन्होंने अपने शत्रुओं के समुदाय को जीत लिया है, वह राजा श्री जयवर्मन के नाम से विख्यात है ॥ 2

उनके मन्त्री धर्मात्मा, कुलीन, विद्वानों में पूजित, गुणज्ञ, गुणियों के गुण को जाननेवाले तथा ज्ञानचन्द्र के नाम से विख्यात थे ॥ 3

हर जन्म में मेरी भक्ति शिवजी में हो इस उद्देश्य से उन्होंने ही

भक्तिपूर्वक अम्रात्केश्वर शिवजी की स्थापना की है ।। 4

भगवान् शब्द जिनके पूर्व में है, ऐसे महाप्रलयकारी रुद्रदेव यहाँ भी दोनों देवकुलों के एकत्व को प्राप्त किये हैं ।। 5

सिंह राशि के उदय काल में वृष राशि में चन्द्र के स्थित होने पर आषाढ़ कृष्ण द्वादशी तिथि को 579 शकाब्द में भगवान् अम्रात्केश्वर की स्थापना की ।। 6

भगवान् श्री अम्रात्केश्वर की सेवा में श्रद्धापूर्वक दिये गये खेतों, दासों तथा धन आदि का जो हरण करेगा, वह इक्कीस नरकों को जायेगा ।। 7

.........न्निध्य का तथा भगवान् श्री व्योमेश्वर का दोनों खेत इन श्रीमान् अम्रात्केश्वर की सेवा में दी गयी । दिये गये दोनों खेतों का मूल्य पूजा करके श्रीमान् व्योमेश्वर की सेवा में दी गयी फिर भी महाराज श्रीमान् जयवर्मन– तब भी ज्ञानचन्द्र ने जो कुछ उपार्जित किया है वह सब श्रीमान् अम्रात्केश्वर की सेवा में प्रदान की ।

20

वट प्री वार अभिलेख

Vat Prei Var Inscription

यह स्थान 'वट प्री वार' के नाम से भी जाना जाता है जो बा नोम प्रान्त में अवस्थित है । यह अभिलेख सुरक्षित रूप में रखा हुआ है । यद्यपि इसके दो छोर क्षतिग्रस्त हो गये हैं । प्रारम्भ तथा अन्त के कुछ अक्षर समाप्त हो गये हैं । शिलाखण्ड के एक ही ओर यह अभिलेख उत्कीर्ण है । अभिलेख के संस्कृत-भाग में राजा जयवर्मन द्वारा पैतृक धार्मिकता का वर्णन है जो भिक्षु रत्नभानु एवं रत्नसिंह के दूरस्थ सम्बन्धी शुभाकृति के विषय में है । अभिलेख में 'भिक्षु' शब्द के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि यह बौद्ध अभिलेख है ।

ख्मेर-भाग में भूमि, दास, भैंस, गाय, फुलवारी आदि के उपर्युक्त दोनों भिक्षुओं द्वारा उनके पौत्र व्रह को दान दिये जाने का वर्णन है । व्रह एक अस्पष्ट शब्द है जिसे आर०सी० मजूमदार ने बुद्ध या ब्राह्मण देवता या राजा स्वीकार किया है ।[1]

---

1. *IK*, p.37

अभिलेख में 17 पंक्तियाँ हैं । प्रथम 10 संस्कृत-भाषा में हैं और शेष 7 ख्मेर में हैं । संस्कृत-भाग में 8 पद्य हैं । पद्य-संख्या 1 से 6 तक अनुष्टुप छन्द हैं । पद्य-संख्या 7 उपजाति तथा पद्य-संख्या 8 मालिनी छन्द में है ।

यह अभिलेख बार्थ[1] द्वारा सर्वप्रथम सम्पादित हुआ था तथा आयमोनियर[2] ने भी इसे प्रकाश में लाया था ।

(जितं) ऊर्ज्जितशौर्य्येण राज्ञा श्री जयवर्म्मणा।
चाचलापि सती यत्र स्थिरा लक्ष्मी रजायत +++।। 1
++ भूयिष्ठ दृष्टिर्य्यो जगद्रक्षण दक्षिणः ।
साक्षात् सहस्राक्ष इतिप्राज्यधीमि ++++।। 2
(र)क्षतस् तस्य पृथिवीं पृथुविक्रमनिर्ज्जिताम् ।
राज्ये भिक्षुवरिष्ठौ स्तस् सोदरौस्थिर ++++।। 3
शीलश्रुतशमक्षान्तिदयासंयमधीनिधी।
रत्नादिभानुसिंहान्तं विभक्तन्नाम वि(भ्रतौ) ।। 4
(त)योश् शुभ्रयशोदीप्तयोः भगिनेयीसुतश् शुभः ।
शुभकीर्त्तिरिति ज्ञातो नियुक्तश्शुभ ++++।। 5
(स्व)कुलक्रमसन्तत्या भूपतेश् शासनेन च ।
तस्मिन्त् संन्यस्यते सर्व्वं गुरुभिः पुण्य +++।। 6
(द्वि)पाच्च तुष्याद्वनभूमिदावक्षेत्रादि पुण्य(ं) प्रतिपाद++।
(त)न्नैव हर्त्तव्यमिति क्षितीन्द्र आज्ञापयत्यूर्ज्जितशास++।। 7
रसवसुविषयाणां सन्निपातेन लब्धे
शकपतिसमयाब्दे माघशुक्लद्वितीये ।
नरवरनगरस्थैस् साधुभिस् साधितोयम्
विधिरिति नृपधिष्ण्ये वीक्ष्य तत्त्वं शिवस्य ।। 8

अर्थ–

अपनी शक्ति से उत्साहित राजा श्री जयवर्मन के द्वारा पृथिवी जीत ली गयी है तथा चंचला लक्ष्मी उसके पास सती नारी के समान स्थिर हो गयी है ।। 1

---

1. *ISC*, p.60;
2. *Op.cit.*, p.248 ff.

जगत् के रक्षण में दस, सुतीक्ष्ण बुद्धिमन्त, दूरद्रष्टा राजा जयवर्मन साक्षात् इन्द्र के समान ही थे ।। 2

उस प्रचुर बुद्धिवाले राजा जयवर्मन के द्वारा, अपने विपुल विक्रम से जीती गयी पृथिवी का जब पालन किया जा रहा था, उसी काल में उसके राज्य में स्थिर चित्तवाले दो सहोदर भिक्षु श्रेष्ठ थे ।। 3

शीलसम्पन्न, विख्यात, अन्तरात्मा में शान्ति प्राप्त, दया, शान्ति, संयम तथा बुद्धि के निधि रूप वे दोनों भिक्षु रत्न सिंह तथा भानु सिंह ऐसे अलग-अलग नाम को धारण करते थे ।। 4

शुभ्र यश से प्रकाशित उन दोनों भिक्षुओं का सुन्दर तथा शुभ कर्मों में लगा हुआ शुभकीर्ति नाम का एक भगिनी पुत्र था ।। 5

गुरु के द्वारा स्थापित किये हुए उन दोनों की सेवा में अपने कुल सन्ततियों के द्वारा तथा राज शासन के द्वारा सब कुछ पुण्य किया गया है ।। 6

दास, पशु, वन भूमि, कृषि भूमि आदि सब कुछ दान किया गया । ये सब हरण न किये जाएँ– ऐसा ऊर्जस्वित शासनवाले महाराजाधिराज ने आज्ञा की ।। 7

586 शकाब्द माघ शुक्ल द्वितीया को राजधानी में रहनेवाले साधु के द्वारा शिव तत्त्व के ज्ञान को पाकर राजनिवास में यह स्थापना की गयी ।। 8

21

केदेई अंग मन्दिर अभिलेख

Kedei Ang Temple Inscription

यह स्थान आधुनिक नगर आध्यपुर से काफी निकट है । यह अभिलेख एक मन्दिर पर बहुत ही सुन्दर ढंग से पॉलिश किये हुए खड़े पत्थर पर लिखा हुआ है । अभिलेख में आध्यपुर के गवर्नर और राजा जयवर्मन प्रथम (657-681) के चिकित्सक सिंहदत्त द्वारा शिवलिंग की तथा एक शिवमन्दिर की स्थापना का उल्लेख मिलता है । इसमें दान देनेवालों के चार वंशजों का इतिहास तथा निम्नलिखित राजाओं के नाम हैं–

1. रुद्रवर्मन (514-539), 2. भववर्मन प्रथम (550 ई०), 3. महेन्द्रवर्मन (600-616), 4. ईशानवर्मन प्रथम (616-635), 5. जयवर्मन प्रथम (657-681)।

अभिलेख में कुल 26 श्लोक हैं । इसकी भाषा संस्कृत है तथा इसे पद्यों में लिखा गया है ।

बार्थ[1] तथा आयमोनियर[2] ने इस अभिलेख पर सर्वप्रथम हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है ।

जयत्यनन्यसामान्यमहिमा परमेश्वरः ।
ब्रह्मोपेन्द्राञ्जलिन्यासद्विगुणाङ्घ्रियुगाम्बुजः ॥ 1
राजा श्रीरुद्रवर्म्मासीत् त्रिविक्रम पराक्रमः ।
यस्य सौराज्यमद्यापि दिलीपस्येव विश्रुतम् ॥ 2
तस्याभूतां भिषङ्मुख्यौ भ्रातरावश्विनाविव ।
ब्रह्मदत्तस् स यो ज्येष्ठो ब्रह्मसिंहः स योऽनुजः ॥ 3
तयोरपि महाभाग्यौ भागिनेयौ बभूवतुः ।
धर्म्मदेवः प्रथमजः सिंहदेवस्त्वनन्तरः ॥ 4
स्वशक्तयाक्रान्तराज्यस्य राज्ञश् श्रीभववर्म्मणः ।
श्रीगम्भीरेश्वरो यस्य राज्यकल्पतरोः फलम् ॥ 5
तस्य तौ मन्त्रिणावास्तां सम्मतौ कृतवेदिनौ ।
धर्म्मशास्त्रार्थशास्त्रज्ञौ धर्म्मार्थाविवरुपिणौ ॥ 6
महेन्द्रवर्म्मणो भूयश् श्रीमतः पृथिवीपतेः ।
तौ चाप्यमात्यतां प्राप्तौ प्रत्ययौ कृत्यवस्तुषु ॥ 7
सिंहदेवोऽनुजो राज्ञा दूतत्वे सत्कृतः कृती ।
प्रीतये प्रेषितः प्रेभूणा चम्पाथिपनराधिपम् ॥ 8
धर्म्मदेवस्य तु पुनः तनयोऽभूदनल्पधीः ।
कुलकानन सिंहो यस्ः सिंहवीर इतीरितः ॥ 9
विद्वान योऽद्यापि विद्विद्भिरापीत कवितारसः ।
श्रीशानवर्म्मनृपतेरभवन् मन्त्रिसत्तमः ॥ 10
निकामवरन्ददेवं श्रीनिकामेश्वरः हरं ।
हरिञ्च सिद्धिसंकल्पस्वामिनं सिद्धिदापिनम् ॥ 11
योऽतिष्ठिपदिमौ देवौ श्रद्धया भूरिदक्षिणौ ।
कीर्त्तिस्तम्भाविवोदग्रौ यौ स्थितावामुवस्थितेः ॥ 12

---

1. *JA* (1882), pt.I, p. 195 ff; ISC, p.64
2. *Op.cit.*, p.243

तस्य सूनुरस्यादिदोषैरस्पृष्ट मानसः ।
योऽभवद् भवस( )न्यस्तचित्तवृत्तिरुदारधीः ॥ 13
बाल्येपि विनयोपेतो योवनेऽपि जितेन्द्रियः ।
त्रिवर्गारम्भकालेऽपि धर्म्मे यस्त्वधिकादरः ॥ 14
यस्मिन्नैदंयुगीनेपि सदाचारावलम्बिति ।
कालिप्रचालितो धर्म्मो न स्खलत्येकपादपि ॥ 15
श्रीमतौ राजसिंहस्य जयिनो जयवर्म्मणः ।
यो वैधो वेदितव्यानां वेत्तापि निरहंकृति ॥ 16
पुनः सत्कृत्य यं राजा प्रादात् स्वे राजमातुले ।
अलब्धराजशब्देऽपि लब्ध राजसिंहपदि ॥ 17
पश्चादाप्य पुरस्यास्य योऽद्धचक्षत्वे कुल क्रमात् ।
योग्योऽयमिति सत्कृत्य स्वयं राज्ञा नियोजितः ॥ 18
यस्मिन्भवति धर्मेव पराभ्युदयकारिणि ।
अन्वर्थसंज्ञा संप्राप्तमिद्माद्यपुरं पुरम् ॥ 19
उचितं यः करादानमारामेभ्यः कुटुम्बिनाम् ।
अनाददत् प्रभुरपि पूर्ण्ण वृत्तिं अदादितः ॥ 20
रोगिनां अर्थिनां वापि विश्रम्भाद् रुषितं वचः ।
श्रृण्वतो यस्य करुणा द्विगुणा समजायत ॥ 21
यन्मदीयं शुभं नाम जन्मप्रभृति संमृतम् ।
तदस्तु पितुरेवेति संकल्पो यस्य कीर्त्तितः ॥ 22
शिव यज्ञेन यो देवान् मुनीनद्धय यनेन च ।
पितृंश्चातर्पयत् तोयैस्सत् पुत्रकरनिस्सृतैः ॥ 23
तेनेह सिंहदत्तेन दत्तदातव्यवस्तुना ।
स्थापितो विजयस्यायं दाता श्री विजयेश्वरः ॥ 24
अस्मिन् तेन च यद्दत्तः दासारामादि किञ्चन ।
तदेव देवस्वामिनि न हरेन्नापि नाशयेत् ॥ 25
वैशाख प्रथमद्विपञ्चकदिने द्वाराष्टवाणैर्य्युते
जीवश्चापयुतो वृषे कविसुतः सिंहार्द्धगश्चन्द्रमाः ।
कौलीरेववजो घटे रविसुतश् शेषास्तु मेषस्थितास्

सौयं श्रीविजयेश्वरो विजयते यः कीटलग्नेस्थितः ।। 26

अर्थ–

ब्रह्मा और विष्णु के बद्धाञ्जलि के सहयोग से जिनके चरण–कमल द्विगुणित हो गये हैं, ऐसे अनन्य सामान्य महिमोपेत भगवान् परमेश्वर की जय हो ।। 1

भगवान् त्रिविक्रम के समान पराक्रमवाला राजा श्री रुद्रवर्मन था जिसके सुन्दर शासन के समान आज तक केवल रघु के पूर्वज दिलीप के ही सुन्दर शासन की ख्याति सुनी गयी है ।। 2

उसके वैद्यों में प्रमुख दोनों भाई दोनों अश्विनीकुमारों के समान ही दक्ष हुए जिनमें बड़े भाई ब्रह्मदत्त तथा छोटे भाई ब्रह्मसिंह थे ।। 3

इनके भी दो महाभाग्यशाली भगिनी पुत्र हुए। धर्मदेव उनमें पहला तथा सिंहदेव दूसरे थे ।। 4

श्री भववर्मन अपनी शक्ति से प्राप्त राज्य के स्वामी थे जिनके राज्यरूपी कल्पतरु के फल थे श्री गम्भीरेश्वर शिव ।। 5

वे दोनों उसके दो मन्त्री थे, अच्छी बुद्धिवाले, कर्तव्य को जाननेवाले, धर्मशास्त्र एवं धर्मशास्त्रार्थ के ज्ञाता वे दोनों मानो धर्म और अर्थ के अवतार ही हों ।। 6

समग्र पृथिवी के स्वामी श्रीमन्त महाराज महेन्द्रवर्मन के भी मन्त्रित्व को पाकर वे दोनों राजकाज तथा सम्पत्ति के विषय में महाराज महेन्द्रवर्मन के विश्वास को प्राप्त किये थे ।। 7

राजा ने छोटे भाई सिंहदेव को दूतत्व प्रदान रूप सम्मान से सम्मानित कर प्रीति सम्पादन के लिए प्रेम सहित चम्पा नरेश के पास भेजा ।। 8

पुत्र धर्मदेव का अति बुद्धिमन्त पुत्र अपने कुलकानन में सिंह के समान हुआ ज़ो सिंहवीर (वीरसिंह) के नाम से पुकारा गया ।। 9

वह विद्वान् सिंहवीर, जिसने आज भी विद्वानों से कविता रस का पान किया है, राजा श्री ईशानवर्मन का उत्तम मन्त्री हुआ ।। 10

श्रीमान् निकामेश्वर ने निष्काम एवं वरदाता शिवजी को तथा सिद्धियों

एवं संकल्पों के स्वामी सिद्धिदाता भगवान् विष्णु की मूर्ति की स्थापना की ।। 11

कीर्ति स्तम्भ के समान विश्व की स्थिति पर्यन्त खड़े जिन इन दोनों देवों को श्रद्धा तथा विपुल दक्षिणा के साथ जिसने स्थापित किया ।। 12

उसका पुत्र असूयादि दोषों से अछूता मनवाला, भौतिक वस्तुओं से संन्यस्त चित्तवृत्तिवाला तथा उदार बुद्धिवाला हुआ ।। 13

वह बाल्यकाल में भी विनयवान, यौवनकाल में भी जितेन्द्रिय तथा धर्मार्थ काम में से धर्म के प्रति अधिक आदर रखनेवाला था ।। 14

इस युग में असाध्य सा सदाचारावलम्बिनि कलियुग प्रचलित धर्म का उसमें एक बार भी स्खलन नहीं हुआ ।। 15

श्रीमान् राजसिंह को जीतने वाले श्रीमान् जयवर्मन जो जानने योग्य सभी विषयों के ज्ञाता होने पर भी अहंकारहीन थे ।। 16

वे राजा श्री जयवर्मन अपने जिन राज मातुल को सम्मान करके फिर से राज्य प्रदान कर दिये वे राजा पदवी को नहीं प्राप्त करके भी राजवैभव को प्राप्त किये ।। 17

बाद में स्वयं राजा के द्वारा इस आध्यपुर के कुल क्रम से ये योग्य हैं, इस सम्मानपूर्वक जो अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए ।। 18

जिनके शासनकाल में पराभ्युदयकारिणी धर्ममार्ग से प्रजाओं का पालन होता है, उनके शासनकाल में आध्यपुर को नगर की संज्ञा सार्थकता प्राप्त की ।। 19

वह उचित कर ग्रहण करता था तथा कुटुम्बियों के बागीचों से कर नहीं लेता था । भगवान् उसे पूर्ण जीविका प्रदान करते थे ।। 20

रोगियों तथा अर्थार्थियों के विश्वासपूर्वक व्यक्त किये गये दीन वचन को सुनकर जिनकी करुणा दुगुनी हो जाती है ।। 21

जिन्होंने हमलोगों के शुभ नाम 'कीर्ति' को आजन्म धारण किये हैं तथा जिनका संकल्प कीर्तिशाली हुआ वे पिता के समान ही हों ।। 22

जिसने कल्याणकारी यज्ञों के द्वारा देवताओं को अध्ययन के द्वारा

ऋषियों को तथा सज्जनपुत्र के हाथ से गिराये गये जल के द्वारा (जल तर्पण से) पितरों को संतर्पित किया है ।। 23

उस सिंहदत्त के द्वारा दान किये जाने योग्य सभी वस्तुओं को दान करके विजय देनेवाले ये भगवान् विजयेश्वर स्थापित हुए ।। 24

इन भगवान् विजयेश्वर की सेवा में उसके द्वारा दास, बागीचा आदि जो कुछ भी दिया गया, वे सब देवता के धन हैं, उन्हें न तो चुराया जाय और न उनका नाश किया जाय ।। 25

581 शकाब्द में वैशाख मास के प्रथम पक्ष की दशमी तिथि को बृहस्पति के धनुराशि में, वृष राशि में बुध के, सिंह में चन्द्रमा के, कर्क में मंगल के, कुम्भ में शनि के तथा शेष ग्रहों के मेष में स्थित होने पर वृश्चिक लग्न में जो स्थापित हुए, वे भगवान् विजयेश्वर जयशील होते हैं ।। 26

22

वट प्री वार पत्थर अभिलेख
Vat Prei Var Stone Inscription

यह स्थान बा नोम प्रान्त में अवस्थित है । अभिलेख पत्थर के एक टुकड़े पर अंकित है जिसे आर०सी० मजूमदार ने किसी मूर्ति का आधार माना है ।[1] इस अभिलेख में किसी राजा का वर्णन नहीं है पर विदित होता है कि यह जयवर्मन प्रथम (657-681) के शासनकाल का है । इसमें शिव-विष्णु (हरिहर) की एक मूर्ति स्थापना का वर्णन है जो कवलितयमिन द्वारा शक संवत् 590 में करवाया गया था ।

बार्थ[2] एवं फिनौट[3] ने भी इसे सम्पादित किया है ।

याते काले शकानां नवतनुविषयैमधिवे षोडशाहे
जीवश्चापेजसूर्य्यो भृगुशशितनयो तावुराख्ये विलग्ने ।
सौरो मीनेन्द्रयायी क्षितितनययुते कर्कटेमैत्रमिन्दु-

1. *IK*, p.41
2. *ISC*, p.73
3. *Op.cit.*, p.249

विंष्वीशावेकमूर्त्ती कवलितयमिना स्थापितावत्रयुक्तया ॥

अर्थ–

शक संवत् के 519 वर्ष व्यतीत हो जाने पर वैशाख मास के 16वें दिन में बृहस्पति के धनु राशि में, मेष में सूर्य के, शुक्र एवं बुध के तावुर नामक विशिष्ट लग्न में, शनि के मीन राशि में तथा मंगल सहित चन्द्रमा के कर्क राशि में स्थित होने पर यहाँ हरि तथा हर की एक मूर्ति मोह गलित संन्यासी द्वारा विधिपूर्वक स्थापित की गयी।

23

तुओल प्रह थाट अभिलेख
Tuol Prah That Inscription

यह अभिलेख प्री वेंग प्रान्त के तुओल प्रह नामक स्थान में अवस्थित है । राजा जयवर्मन प्रथम (657-681) के एक राजकीय अधिकारी द्वारा श्री केदारेश्वर के नाम से एक शिवलिंग की स्थापना का वर्णन इस अभिलेख में है । इस अधिकारी का नाम तो इस अभिलेख में नहीं है पर वह राज्य विधानसभा का अध्यक्ष था तथा राजा से कई बार सम्मानित हो चुका था । दान में एक स्वर्णजटित मुकुट, एक घड़ा और कुछ अन्य वस्तुओं को दिये जाने का उल्लेख है ।

जॉर्ज सोदेस के द्वारा इस अभिलेख का सम्पादन किया गया है ।[1]

शरनवशराङि्कताब्दे वृषन्द्रलग्ने पुनर्व्वसुयुतेन्दौ ।
चैत्रासिनपक्षनवमे स्थापितमन्नेश्वरं लिङ्गम् ॥ 1
जयति जगदेकहेतुर्न्नतजननिश् श्रेयसाम्युदयकारी ।

---

1. *IC*, p.12

कामज्जगत्सुचरितच्छेदनमिति यस् सुनिर्द्दहति ॥ 2
यस्य जितचक्रभृतो जितशत्रुगणस्य विक्रमेणजिता ।
अपि सागरपर्य्यन्ता करावबद्धा हरेरिव भूः ॥ 3
राजा श्रीजयवर्म्मा श्रीपतिरिव सर्व्वदा श्रियाजुष्टः।
रणशतजयिनां राज्ञां स माननीयः पुरोयातः ॥ 4
सबलैरपि नृपसिंहैर्दुल्लङ्घित शासनस्य तस्यैव।
भृत्यस् स्वाम्यनुरक्तस् त्यागी शूरो विजितशत्रुः ॥ 5
स्वस्वामिनः प्रसादात् स च राजसमाधिपत्यकृतनामा ।
सौवर्ण्णकलशकरङ्कसितातपत्रादि सन्मानः ॥ 6
तेनैकान्तिकभक्त्या शम्भोस् स्वायंभुवं मघलिङ्गम् ।
श्रीकेदारेश्वर इति नाम्ना स(ं) स्थापितं विधिना ॥ 7
हैमं कोशं मकुटं कल शकरङ्क तथा च रूप्यमयम्।
क्षेत्रारामा बह्वो गोमहिषा दास वर्ग्गाश्च ॥ 8
विविधो द्रव्यविशेषः श्रद्धादत्तो धियाकुराजेन ।
श्रीकेदारेश्वरस्य पूजार्थन्तेन भक्तिमता ॥ 9
दत्तमिदमुत्ररोदयनामाभ्यां तत्स्वभागिनेयाभ्याम् ।
स पुरं पूजास्थितये तेन च तस्यैव देवस्य ॥ 10
श्रीकेदारेशधनं यत् किञ्चित् कश्चिदाहृत्य सर(ति) ।
एक विंशतिनरकान्त + खानलतापितौ ब्रजतु ॥ 11

अर्थ–

595 शकाब्द के चैत्र शुक्ल नवमी को वृष लग्न में तथा चन्द्रमा के पुनर्वसु नक्षत्र में स्थित होने पर यहाँ पर शिवजी के लिंग की स्थापना की गयी ॥ 1

जो विश्व के एकमात्र कारण हैं तथा काम संसार के लोगों के सत्कर्मों का नाश करता है, ऐसा सोचकर जिन्होंने उसे अच्छी तरह जला दिये हैं, संसार के अनन्त भक्तों को मुक्ति तथा अभ्युदय प्रदान करनेवाले उस भगवान् शिव की जय हो ॥ 2

जिसके विक्रम से शत्रुओं की सागरपर्यन्त भूमि जीत ली गयी है तथा सागरपर्यन्त भूमि जिसके आगे हाथ जोड़े खड़ी है, वह विजयी चक्रवर्ती साक्षात्

चक्रधारी भगवान् विष्णु की तरह ही हुआ ।। 3

राजा श्री जयवर्मन निरन्तर सम्पदा से युक्त रहने के कारण श्रीपति भगवान् विष्णु के समान हो रहे हैं । वे राजा श्री जयवर्मन सैकड़ों युद्धों को जीतनेवाले राजाओं के भी माननीय एवं आगे जानेवाले हैं ।। 4

जिसकी आज्ञा का उल्लंघन बड़े-बड़े शक्तिशाली राजा भी नहीं कर पाते हैं, उसी का त्यागी, शूर, शत्रुओं को जीतनेवाले स्वामीभक्त सेवक ।। 5

राजसभा का वह अकृत नामक अध्यक्ष राजकृपा से स्वर्णकलश, करंक, रजतछत्र आदि सम्मान पाये हुए हैं ।। 6

उसी ने अत्यन्त भक्ति से भगवान् शिव के इस स्वयं व्यक्त विशाल लिंग को श्री केदारेश्वर के नाम से विधिवत् स्थापित किया ।। 7

स्वर्णकोष, मुकुट, कलश, ताम्बूल पात्र, रुपये, खेत, बागीचा, बहुत-सी गाय, भैंस तथा दासादि ।। 8

एवं विविध प्रकार के द्रव्यविशेष श्री केदारेश्वर की पूजा के लिए श्रद्धा-भक्तियुक्त बुद्धि से उस भूपति के द्वारा दिये गये ।। 9

उत्तर तथा उदय नामवाले उसके दोनों भगिनी पुत्रों के द्वारा यह गाँव दिया गया जिससे कि उसके स्थापित देवता श्री केदारेश्वर की पूजा बराबर चलती रहे ।। 10

श्री केदारेश्वर का धन थोड़ा भी जो चुराकर भागता है, वह इक्कीस नरकों में पड़ने के बाद खानलापित नरक को जाता है ।। 11

24

तन क्रन अभिलेख

Tan Kran Inscription

तन क्रन कोन प्री जिले में अवस्थित है । अभिलेख का प्रारम्भ भगवान् पिंगलेश की आराधना से है तथा इसके बाद जयवर्मन की वंशावली दी गयी है । जयवर्मन को भगवान् शिव के एक अंश के रूप में जन्म लेनेवाला कहा गया है । इस अभिलेख में राज पदाधिकारियों के परिवारों का वर्णन है । धर्मस्वामी नामक विद्वान् ब्राह्मण, जिनका वेद और वेदांग के पद्यों में उल्लेख है, धर्मपुर के प्रधान थे । इस धर्मपुर में अम्रात्केश्वर के मन्दिर, ब्राह्मणों के एक घर (विप्रशाला), पुस्तकालय (सरस्वती), धर्मशाला के लिए अस्पताल (सत्र), नहर और तालाब थे ।

धर्मस्वामी के दो पुत्र थे जो राजदरबार के बहुत ही उत्तरदायी पदों पर थे । बड़ा पुत्र अश्वारोही सेना के प्रधान के पद पर नियुक्त था और वह श्रेष्ठपुर और ध्रुवपुर का राजा था । छोटा भाई प्रचण्ड सिंह राजमहल के प्रहरी का प्रधान, नौसेना का प्रधान तथा धन्त्रीपुर के सौ सैनिकों का प्रधान था । इन दोनों भाइयों द्वारा प्राप्त पदों से तत्कालीन कार्यालयों के राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था का

पता चलता है ।

जॉर्ज सेदेस ने इस अभिलेख का सम्पादन किया है ।[1]

...............नु............क.......................।

....।

श्री पि(ङ्गले)शस् स पुनातु लोकं

पिङ्ग..... प...................................॥ 1

स्थाणुर्ज्जय(ि)त लोकान्वान्दुरितापहरः ग पतिः ।

यस्यलिङ्गसहस्राणां.........................॥ 2

तदंशेनावतीर्ण्णेन जितं श्री जयवर्म्मणा ।

विहर्त्तु कामेन महीं लोक ....॥ 3

अधार्म्मिकजनध्वान्तं नवोदितविवस्वता।

आकाञ्चीपुरनृ(?)पा....दूरे.............॥ 4

अत्रासीद् ब्राह्मणो विद्वान् वेदवेदा(ङ्ग)पारगः ।

धर्म्मस्वामीति विख्यातस् साक्षाद्धर्म्म.....॥ 5

अग्रासनो नरेन्द्राणां श्री याप्या..गतोबहिः ।

अन्तः करणसौधे तु विन्यस्ता येन भारती ॥ 6

कृत ....रसंव्यन्नं..न्नानेन चासकृत् ।

व्रतन्न दाम्भिकोपेतं यस्मिन् कलि..उधमः ॥ 7

श्रीमदाभ्रातकेशाख्यो विप्रशाला सरस्वती ।

आसन् धर्म्मपुरे यस्य सत्रखाता जलाशयाः ॥ 8

होत्रीयाद व्यवच्छिन्ना सन्ततिर्यस्य नान्यतः ।

यस्याज्जातास् सुबहवः पुरुषा राजसत्कृताः ॥ 9

अग्नि(सा)त् कृतमात्मानं ह्लादिन्यां यश्चकार ह ।

निरपेक्षस् रचकायेऽपि यियासुर्ब्रह्मणः x पदम् ॥ 10

(ध)र्म्मस्वामिसुतो ज्येष्ठो भृत्यः क्षितिभुजामभूत ।

प्राप्तस् सुसन्मतं शैव(ं)यो महाश्वपतिः कृतः ॥ 11

भूयस् श्रेष्ठपुरस्वामिभोजकृत्वे प्रकल्पितः ।

1. *IC*, p.71

सितातपरिवारादिभोगैरपि चसत्कृतः ॥ 12

विधिना स्थापितं येन लिङ्ग श्री नैमिषेश्वरम् ।

नश्यन्ति सर्व्वपापानि यस्य नामश्रवादपि ॥ 13

पुनर्ध्रुवपुरं प्राप्य भीषणारण्यसङ्कटम् ।

उददप्तपुरुषवासं यः x पाति निरुपद्रवम् ॥ 14

ईश्वरोऽवरजस्तस्य नरेन्द्रपरिचारकः ।

भूय x प्रचण्डसिंहाख्यो मृदुसत्त्वो दमान्वितः ॥ 15

-न्त-मशिरस्त्राणधारिणां शस्त्रपाणिनाम् ।

नृपान्तरङ्गयौधानां पारिग्रहो तिसन्म(तः) ॥ 16

(य)स् समन्तसरालाख्य(ा)न्ना- छत्ते पुनः x पतिः ।

सर्व्वोपभोगकर्तृणां राज्ञश् श्री जयवर्म्मणः ॥ 17

पुनस् समन्तनौवाहनामधेयमवाप्य च ।

यस्तरित्रमृतां पंक्तिविभागः पतिः कृतः ॥ 18

– युधानानां या धन्विपुरवासिनाम् ।

सहस्रवर्ग्गाधिपतिः पुनर्नृपतिशासनात् ॥ 19

- त्र दीपन्मानैरसकृतेन सत्कृतः ।

दधार यस् स्ववंशस्य धुरमन्यैस् सुदुर्द्धराम् ॥ 20

(श्रीमद्) आम्रातकेशस्य स्थानं नृपतिचोदितः ।

विभूतिमिरनेकामि x प्रज्वलद्भिरिवाधिकम् ॥ 21

....

वरस्त्रीभिश्च यश्चक्रे कुबेरभवनोपमम् ॥ 22

....

..................म लिङ्(ग)न् आत्(म्)क्षयामिकाम् ॥ 23

अर्थ–

नु- क .... वे भगवान् श्री पिंगलेश भुवनों को पवित्र करें । ....॥ 1

संसार के पापों का हरण करनेवाले स्वामी शिवजी की जय हो, जिनके हज़ार लिंग के.........॥ 2

उन्हीं भगवान् शिव के अंश से उत्पन्न महाराज श्री जयवर्मन ने विहार

करने की इच्छा से पृथिवी को जीता.........।। 3

पापी लोगों द्वारा फैलाया गया अन्धकार इस नवोदित सूर्य महाराजा श्री जयवर्मन के द्वारा.....नष्ट किये गये । काञ्चीपुर तक के राजा लोग.............. ।। 4

यहाँ वेद-वेदाङ्गपारंगत, विद्वान् ब्राह्मण धर्मस्वामी नामवाले साक्षात् स्वयं धर्म ही हैं ऐसा प्रसिद्ध थे ।। 5

राजाओं द्वारा अग्रासन पानेवाले धर्मस्वामी बाहर से राजसम्पदा से लदे होने पर अन्तःकरण रूपी महल में सरस्वती को सजाये हुए थे ।। 6

जिनमें कलिकाल का उधम सक्रिय था ऐसे व्रतन्नपुर के घमण्डियों से घिरे....जलहीन की गयी नगरी को पूर्ण रूप से जलपूर्ण इन्हीं के द्वारा की गयी ।। 7

जिसके धर्मपुरी में यज्ञ के लिए खोदे अनेक जलाशय थे, वहाँ श्रीमदाभ्रातकेश नामक विप्रशाला (विद्या केन्द्र) की सरस्वती विराजती थीं ।। 8

अनवरत यज्ञ करनेवाली सन्तति उन्हीं की है, दूसरों की नहीं जिनके बहुत सी सन्तान राजसम्मान प्राप्त हैं ।। 9

ह्लादिनी नामक सिद्धि में जिन्होंने अपने आपको अग्निसात् किया था, वे अपने स्वजनों से भी निरपेक्ष रहते हुए ब्रह्मपद को गये ।। 10

उन धर्मस्वामी के ज्येष्ठ पुत्र राजाओं के सेवक हुए जो महाश्वपति कृत उत्तम शैवमत को प्राप्त किये ।। 11

वे पुनः श्रेष्ठपुर के स्वामी प्रबन्धक पद पर नियुक्त हुए तथा चाँदी के छत्र आदि भोगों से सम्मानित हुए ।। 12

जिनके नाम श्रवण-मात्र से ही सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उन श्री नैमिषेश्वर महादेव के लिंग की विधिपूर्वक स्थापना उन्हीं के द्वारा की गयी ।। 13

पुनः ध्रुवपुर पहुँचकर जिसने वहाँ व्याप्त अरण्य संकट से लोगों की रक्षा की तथा उपद्रव से उजाड़ हुए नगर को निरुपद्रव कर लोगों के बसने योग्य किया ।। 14

उसका छोटा भाई ईश्वर, राजा का परिचारक था जो बाद में प्रचण्ड सिंह

के नाम से विख्यात हुआ, वह कोमल तथा संयमशील था ।। 15

राजा के अत्यन्त विश्वासी, शिरस्त्राण एवं शस्त्रधारी सैनिकों का वह अत्यन्त बुद्धिमान पृष्ठ भाग स्थित सेनापति था ।। 16

सभी सम्पदाओं को भोग करनेवाले राजा श्री जयवर्मन का नौसेनापति सामन्त सराल को जिसने पुनः सेनापतित्व नहीं धारण कराया तथा पुनः नौका रक्षण करनेवालों के पंक्ति विभाग को जाननेवाले नौवाह नामक सामन्त को पाकर जिसने उसे सेनापति बनाया ।। 17-18

....युद्ध में लगे धन्विपुरवासियों का जो सहस्रवर्गाधिपति पुनः राजा के आदेश से हुआ ।। 19

...को दिये जाने योग्य सम्मान बार-बार सत्कृत होनेवाले उसने अपने वंश की धरती जो दूसरों के लिए दुर्लभ थी, धारण किया ।। 20

राजा से प्रेरित उसने श्रीमदाम्रातकेश्वर के स्थान को अधिक चमकते हुए अनेक सम्पदा से ।। 21

और श्रेष्ठ स्त्रियों के दान से जिसने कुबेर भवन के समान बनाया ।। 22

अपने श्रेय की आकांक्षा रखनेवाले ने भगवान् आम्रातकेश के इस लिंग की स्थापना की ।। 23

25

बरई अभिलेख
Barai Inscription

यह स्थान बरई प्रान्त में है । अभिलेख खड़े पत्थर पर उत्कीर्ण है । सुरक्षा की दृष्टि से यह अभिलेख वहाँ के एक मन्दिर में रखा हुआ है । अभिलेख से शिव की मूर्ति-स्थापना का वर्णन हमें मिलता है। ख्मेर के मूल लेख में दूसरे देवता श्री शंकर नारायण का उल्लेख है जिन्हें बहुत से दास दिये गये थे ।

इस अभिलेख में कुल 18 पंक्तियाँ हैं जिसमें केवल 2 संस्कृत में हैं तथा 16 ख्मेर में हैं । संस्कृत-भाग में केवल 1 पद्य है जो शार्दूलविक्रीडित छन्द में है ।

बार्थ[1] एवं आयमोनियर[2] ने सर्वप्रथम इसे प्रकाशित करवाया था ।

मूर्त्तिद्वारशरैश् शके सितदिने प्राप्ते दशैकोत्तरे
ज्येष्ठस्यार्ककुजेन्दुजा मिथुनगा................।
शुक्रस्यार्कसुतो वृषे सुरगुरु+कन्यां मृगार्द्धोदये

1. *ISC*, p.75
2. *Op.cit.*, p.346.

श्रीशम्भोः प्रतिमामिहैव निहितां.................॥ 1

अर्थ–

518 शाके में, ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी तिथि के प्राप्त हो जाने पर, सूर्य, मंगल, बुध के मिथुन राशि में स्थित होने पर, सूर्य पुत्र शनि एवं शुक्र के वृष राशि में तथा सुर गुरु बृहस्पति के कन्या राशि में स्थित होने पर मृगशिरा नक्षत्र के अर्द्धोदय काल में भगवान् शिव की यह प्रतिमा यहाँ स्थापित हुई ॥ 1

26

वट फू अभिलेख
Vat Phu Inscription

यह अभिलेख वट फू के प्रसिद्ध मन्दिर में अंकित है । यह मन्दिर मेकाँग नदी के निकट बसाक के पास स्थित है । अभिलेख में भगवान् शिव के मन्त्र, जयवर्मन की वंशावली और लिंगपर्वत के सम्मान में जारी राजा का आदेश है । यह लिंगपर्वत वह पहाड़ है जिस पर मन्दिर अवस्थित है । इस अभिलेख से यह स्पष्ट होता है कि वे सभी लोग जो यहाँ निवास करते थे, चाहे वे किसी भी अपराध के दोषी क्यों न हों, गिरफ्तार होने से मुक्त थे । मन्दिर परिसर में प्रसन्नतावश घूमने, रथ पर चढ़ने, कुत्ते तथा भेड़िये को रखने की मनाही राजकीय आदेश से था ।

इस अभिलेख की राजनीतिक सार्थकता यह है कि बसाक ज़िले से सुदूर उत्तर तक जयवर्मन के अधिकार क्षेत्र में था ।

बार्थ ने इसका सम्पादन किया है ।[1]

1. *BEFEO*, Vol. III, p.235

शक्वादिर्व्विजितो मया मम शरा मोघगता न क्वाचित्
सोऽबद्धयश्च मधुस् सखामम सदा वश्यञ्ज नृणांमनः।
इत्येवं विगणय्य मानसभुवो व्यद्धुं गतस्तत्क्षणं
यद्रोषेक्षणजातभस्मनिचयो रुद्रेण जेजीयतां ॥ 1
येनाकृष्टं द्विभरं सशरवरधनुर्योग्ययापास्तमस्त्रं
मातङ्गाश्वीय मर्त्य प्रजववलमनोयुद्धशिक्षादिग्रपः ।
सदीतातेघनृन्ताधनुपमधिषणा (शा)स्त्र सूक्ष्मार्थ चिन्ता
रत्न प्रज्ञातितिक्षा विनयनयमति त्याग रत्नाम्बुधिर्य्यः ॥ 2
नानाशस्त्रकृताभियोगजनित व्यायामकाठिन्यवत्
कम्बुग्रीव महोरुसंहतबृहत्पीनांसवक्षस्तनुः ।
आजानु प्रविलम्बहेम परिघ प्रस्पर्द्धिबाहुद्वयो
यस् सम्पूर्ण्णनिरेन्द्र सिंह बलबद्रूपामिरुपोभुवि ॥ 3
तस्य श्री जयवर्म्मभूपति(पते) राज्ञानुभावोदया-
दत्त श्रीमति लिङ्ग पर्व्वतवरे ये स्थायिन ग प्राणिनः ।
बद्ध यन्तान्न जनेन केनयिदपि प्राप्तापराधा स्तदा
देवाय प्रतिपादितं यदिह तद्धेमादिकं सिद्धयतु ॥ 4
देवस्यास्य यथामिलाषगमना गच्छन्तु नैवाश्रये
याना रोहधृतात पत्ररचनाभ्युत क्षिप्तसच्चामरैः ।
पोष्या कुक्कुरकुक्कुटा न च जनैर्देवस्य भूमण्डले-
ष्विव्याज्ञावनिपस्य तस्य भवतु क्ष्मायामलङ्घयानृणाम् ॥ 5

अर्थ–

इन्द्रादि देवगण मुझसे जीत गये हैं, मेरे बाण कभी व्यर्थ नहीं गये, मेरा वह सखा वसन्त अबध्य एवं अपराजेय है तथा मैं मनुष्यों के मन को सदा वश में किये रहता हूँ, ऐसा विचार करके कामदेव ज्योंही जीतने चला, त्योंही उसी क्षण जिनके क्रोधपूर्ण दृष्टि से भस्म की ढेरी हो गया, उन भगवान् रुद्र से पुनः-पुनः जीता जाये ।। 1

जिससे दोनों ओर बँधने योग्य धनुष पर उत्तम बाण को चढ़ाकर खींचे जाने से सारे अस्त्र दूर कर दिये गये हैं, जिसको अपने हाथी, घोड़े तथा तेज

गतिवाले धनुर्धर सेना का अभिमान है, जो युद्धविद्या के ज्ञाताओं में अग्रगण्य है, जो नृत्यगीतादि कलाओं की अद्‌भुत जानकारी रखता है, शास्त्रों के सूक्ष्म अर्थों का चिन्तन करता है– ऐसी बुद्धिवाला, सहनशील, विनयी, त्यागी तथा त्यागरूप रत्न से भरे समुद्र के समान जो है ।। 2

अनेक शस्त्रास्त्र संचालनाभ्यास के व्यायाम से सुगठित शरीरवाला, शंख के समान ग्रीवा जिसकी है, जिसके विशाल संहत जंघाएँ हैं, जिसके कन्धे, पीठ और छाती मोटे तथा विशाल हैं, घुटने तक लम्बे जिनके दोनों हाथ सोने के परिधा से स्पर्श करते हैं, जो संसार में सभी नरेन्द्रसिंहों के बीच अत्यन्त बलवान तथा रूपवान ऐसे प्रसिद्ध हैं ।। 3

उस श्री जयवर्मन नामक राजा की रानी के द्वारा भक्ति के उदय के वशीभूत हो पर्वतश्रेष्ठ श्री लिंगपर्वत पर दान किये गये प्राणी प्रजाजनों के द्वारा न बाँधे जायं । उनके द्वारा कोई अपराध होने पर भी उन्हें न बाँधा जाय तथा देव के लिए प्रदत्त सब सुवर्णादि उनकी सेवा में ही लगे ।। 4

भगवान् के इस आश्रम में मनमानी ढंग से कोई न जाय । सवारी पर चढ़कर तथा छत्र, चामर लगाकर भी वहाँ कोई न जाय । भगवान् के इस ज़मीन पर इस देवभूमि में कुत्ते, मुर्गे आदि भी न पाले जायं– वह आज्ञा राजा की है, धरती पर के मनुष्यों द्वारा कदापि अनुलंघ्य है ।। 5

27

तन क्रन अभिलेख
Tan Kran Inscription

यह अभिलेख कोन प्री जिला में है । इस अभिलेख का प्रारम्भ नवग्रहों की गिनती से है जिसके बाद केवल दो पंक्तियों का पद्य है। आर०सी० मजूमदार ने इस अभिलेख को सातवीं शताब्दी का माना है।[1] पद्य शुद्ध एवं स्पष्ट है पर छन्द का पता नहीं लगता है।

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेद् वैसुन्धरां ।
अवीचिनरके याति पितृभिस् सह बन्धुभिः ॥

अर्थ–

जो व्यक्ति अपनी दी हुई या दूसरों के द्वारा दी हुई भूमि का हरण करता है, वह अपने बन्धु-बान्धवों तथा पितरों के साथ अवीचि नामक नरक में जाता है ।

---

1. *IK*, p.50

28

प्रसत प्रह थट अभिलेख

Prasat Prah That Inscription

यह अभिलेख थबोन खमुन प्रान्त के खण्डहर में है । इस अभिलेख में सम्भव अध्याय के मूल लेख के संग्रह, *महाभारत* के आदिपर्व के एक भाग तथा उन लोगों के प्रति चेतावनी का उल्लेख है जो इसे तोड़ना या बर्बाद करना चाहते हैं । इस अभिलेख में तिथि का भी उल्लेख है पर अभिलेख के अधिकांश भाग के नष्ट हो जाने से सही-सही पढ़ा नहीं जा सकता है । केवल 500 अंक पढ़ा जाता है, लेकिन इसके बाद के अंक और दशमलव के अंक अपठनीय हैं ।

जॉर्ज सेदेस ने इसका सम्पादन किया था ।[1]

......द्र(?) शरैश् शके दिने......चतुर्दशे ।
.....स्थितये दत्तं संभवपुस्तकम् ॥ 1
भवज्ञानेन निहितं व्याससत्रनिबन्धनम् ।

---

1. *BEFEO*, Vol. XI, p.393

यो नाशयति दुर्बुद्धिः निरये सचिरं वसेत ॥ 2

सन्तानमेव वञ्चन् यः व्याससत्रविनाशकृत् ।

यावत् सूर्य्यश्च चन्द्रश्च स वसेत् नरकेषु वै ॥ 3

अर्थ–

6 शक में चतुर्दश दिन में स्थिति के लिए सम्भव पुस्तक दिया गया ।। 1

संसार के ज्ञान से निहित व्यास सत्र के निबन्धन को जो दुर्बुद्धि व्यक्ति नष्ट करता है, वह बहुत दिनों तक निरय नामक नरक में बसे ।। 2

अपनी सन्तान को वंचित करता हुआ जो व्यास सत्र का विनाश करनेवाला, जब तक सूर्य और चन्द्रमा की सत्ता है, तब तक निश्चित रूप से नरकों में बसे ।। 3

बन डिउम अभिलेख
Ban Deume Inscription

यह स्थान वर्तमान स्टंग ट्रेंग ज़िले में अवस्थित है । यह क्षेत्र आधुनिक काल में लाओस में है । इस अभिलेख से एक शिव-मन्दिर तथा एक भक्तशाला के निर्माण का उल्लेख हमें मिलता है । यह अभिलेख सातवीं शताब्दी का है ।

चण्डेश्वरस्य भवनं कृशाणोरिष्टकामयं ।
भक्तशालं कृतं तेन शिलाबन्धनमायतं ॥

अर्थ–

जिसने चण्डेश्वर भगवान् का मन्दिर तथा भक्तों का निवास स्थान आग के ईंटों (आग के पके ईंटों) से बनवाया है, उसी ने इस चौड़े शिलाबन्धन (पत्थर से बने चबूतरे) का निर्माण किया ।

1. बन डिउम अभिलेख

३०

विहार थोम अभिलेख

Vihar Thom Inscription

यह अभिलेख विहार थोम में अवस्थित है जो कौमपौंग सियम प्रान्त में है। यह एक त्रिशूल पर उत्कीर्ण है। त्रिशूल नीचे की ओर दो गड्ढे पर स्थित है जो एक गुलदान के चित्र के नीचे है। इस अभिलेख में त्रिशूल के आधार पर अस्सी वर्षीय भोज के दाँत गाड़ने का उल्लेख है। भोज एक शिवलिंग के संस्थापक थे। दोनों गड्ढे, जिसमें दाँत रखे जाने का उल्लेख है, खाली है, पर अभिलेख में अस्सी वर्षीय मनुष्य के दाँत को सुरक्षित रखने की परम्परा का उल्लेख है।

इह लिङ्ग प्रतिष्ठातुभोजिस्याशीति वर्षिणः ।
त्रिशूलमूले निहिता दंष्ट्रास्ता या मुखच्युताः ॥

अर्थ–

यहाँ लिंग की प्रतिष्ठा करनेवाले अस्सी वर्षवाले राजा भोज के मुख से गिरे हुए दाँत त्रिशूल की जड़ में रखे हुए हैं।

31

प्रह थट क्वान पीर अभिलेख

Prah That Kvan Pir Inscription

क्वान पीर एक मन्दिर है जो करासे प्रान्त में है । इस अभिलेख में पुष्कर द्वारा पुष्करेश की मूर्ति स्थापना का वर्णन है । आर०सी० मजूमदार ने इस पुष्कर को पुष्कराक्ष माना है ।[1] इस नाम का उल्लेख यशोवर्मन (889-900) तथा राजेन्द्रवर्मन (8वीं शती) के संस्कृत-अभिलेखों और शम्भुवर्मन (8वीं शती) के ख्मेर-अभिलेख में हमें मिलता है ।

इस अभिलेख में तिथियों का विस्तृत विवरण मिलता है जिसे ईसवी सन् 716 के समकालीन समझा जाता है ।

फिनौट ने इसका सम्पादन किया है ।[1]

आविर्भूते शकेन्द्रे वसुदहनरसैर्कामिनि मध्यचन्द्रे
सिंहे लग्ने तुलायां दिनकरतनये घाटिके जीवशुक्रे ।

---

1. *BEFEO*, Vol. IV, p. 675

मीनेन्द्रेन्द्वाज्मजाते क्षितिसुतसहिते भूरितीक्ष्णांशुजाले
देवश् श्री पुष्करे शो द्विजवरमुनिभिस् स्थापितः पुष्करेण ॥

अर्थ–

शकजेता राजा के आविर्भाव के 638 वर्ष बीत जाने पर, कन्या राशि में चन्द्रमा, तुला में शनि, कुम्भ में गुरु और शुक्र के तथा मीन राशि में सूर्य सहित मंगल तथा बुध के स्थित होने पर सिंह लग्न में पुष्कर योग में श्रेष्ठ ब्राह्मणों और मुनियों द्वारा भगवान् पुष्करेश की स्थापना की गयी। (सिंह लग्न में ब्राह्मणश्रेष्ठ मुनियों द्वारा भगवान् पुष्करेश की स्थापना की गयी)।

32

लोबोक स्रौत अभिलेख

Lobok Srot Inscription

यह स्थान करासे प्रान्त में स्थित है । अभिलेख की भाषा ख्मेर एवं संस्कृत– दोनों है । संस्कृत-भाग में जयवर्मन द्वारा एक मूर्ति की स्थापना का वर्णन है जो ब्रह्म-क्षत्र परिवार का है। ख्मेर-भाग में आदित्यशर्मन और कृष्णदेव-जैसे कुछ लोगों के नाम का उल्लेख है । इसी स्मारक में दूसरे ख्मेर-लेख में वृषभध्वजेश्वर के दासों की सूची है ।

यह अभिलेख अंशतः संस्कृत तथा ख्मेर में उत्कीर्ण कराये गये हैं । दोनों भाग अधिकांश रूप में नष्ट हो चुके हैं । संस्कृत-भाग में 4 पद्य हैं । पद्य-संख्या 1 ही स्पष्ट एवं शुद्ध है । शेष सभी अस्पष्ट हैं तथा आर्या छन्द में हैं ।

इस अभिलेख का सम्पादन जॉर्ज सेदेस ने किया है ।[1]

ओं नमो भगवते वासुदेवाय
श्री जयवर्म्मणि नृपतौ शासति पृथ्वीं समुद्रपर्य्यन्तां ।

---

1. *BEFEO*, Vol. V, p.419

ब्रह्मक्षत्रांशभवे नतनृपवृत शासि(तारि) नित्यां ॥ 1
............श्ववं परमेश्वर वल्लभ..................।
भूरिविभूतिश् श्रुताद्यतरः ॥ 2
..........तेनैव स्थापित.............तिग्मा...........।
..........चेश्वर देव....................॥ 3
दहनाम्बरमुनिलक्ष्ये श(के)........................।
उडुनाथे...॥ 4

अर्थ–

ओंकार सहित भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है । राजा श्री जयवर्मन द्वारा समुद्रपर्यन्त नित्यामही के शासन काल में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय के अंश से उत्पन्न शासन करनेवाले राजा श्री जयवर्मन के आगे राजाओं की मण्डली झुकी रहती थी ॥ 1

परमेश्वर प्रिय हैं जिनके ऐसे, जो विशाल सम्पत्तिशाली तथा विख्यात धनी हैं ॥ 2

उन्होंने ही भगवान् सूर्य एवं भगवान् महादेव की स्थापना की ॥ 3

शक संवत् 703 में चन्द्रमा के................॥ 4

33

प्रसत कण्डोल डोम (उत्तर) अभिलेख

Prasat Kandol Dom (North) Inscription

यह स्थान सुतनीकोम प्रान्त में प्रह को के बाहरी दीवार से 330 गज पश्चिम में स्थित है । अभिलेख की भाषा संस्कृत और ख्मेर– दोनों है । अभिलेख का प्रारम्भ एक प्रार्थना से है । इसके बाद राजा इन्द्रवर्मन की वंशावली है जिनके आदेश को चीन, चम्पा और यवद्वीप के राजा पालन करते थे । अभिलेख के लेखक राजा इन्द्रवर्मन का गुरु शिवसोम था जिसकी भी वंशावली अभिलेख में दी हुई है । इसमें भगवान् भद्रेश्वर की स्थापना का उल्लेख है तथा ख्मेर-भाग में अभिलेख की तिथि के अतिरिक्त दासों की एक लम्बी सूची है ।

इस अभिलेख में 48 पद्य संस्कृत के हैं जो श्लोक छन्द में हैं तथा 49 पंक्तियाँ ख्मेर में हैं । पद्य-संख्या 1 से 7 नष्ट हो चुके हैं । पद्य-संख्या 8 से 12 अंशत: दिखलाई पड़ते हैं, शेष सभी शुद्ध एवं स्पष्ट हैं । सभी श्लोक छन्द में हैं ।

जॉर्ज सेदेस ने इसका सम्पादन किया है।[1]

(vv. 1-7 lost, vv. 8-12
only a few letters are legible)

कामं हरहत कामो यस्मि-......-।
मूढ़ामू-........ किमयङ्क्मसाविति।। 13
अतृप्तिपीतमवलानेत्रैस् सुभगतामृतम् ।
येन शोष भयेनेव जगतां हृदयेर्प्पितम् ।। 14
यत्तेजो जिततेजस्विते जो जातभयो ध्रुवम् ।
वीक्ष्य कालाग्नि रुद्रोपि भवत्यद्याप्यद्योमुखः ।। 15
सारापहृतये भूयो बाहुमन्दरमन्थनात् ।
नूनं भीतोम्बुधिर्य्यस्मै गाम्भीर्थमदिशत् करम् ।। 16
यस्य याने बलोद्धूत रजसा दिग्विसर्पिणा।
अल्पाहमिति मेदिन्या स्वाङ्गीकृत इवाण्र्णवः ।। 17
रणेभकुम्भनिर्भेद लग्न मुक्ताल सत्करम् ।
शुल्काभिशङ्केय वारिलक्ष्मी वेश्या समन्वगात् ।। 18
अतुल्य विक्रमाक्वान्तनिश्शेष पृथिवीधरः ।
प्रयान्तं पार्श्वतो मेरोर्य्यो जहासेव भास्करम् ।। 19
चीन चम्पायवद्वीपभूमृदुत्तुङ्ग मस्तके ।
यस्याज्ञा मालती माला निर्म्मला चुम्बलायते ।। 20
यस्य यज्ञाग्निहोत्राणां खे बभुर्धूमपङ्क्तयः ।
कीर्त्तेस्त्रिदिवयात्रार्थन् ध्वजा इव पुरोगताः ।। 21
यस्य हेमादि दानाम्भोभूरिधाराप्लुता मही ।
शङ्के कल्पनाग्निदग्धापि नाम्रधारादरं व्यधात् ।। 22
नित्यं विदधती यस्य कीर्त्तिर्भुवनमासनम् ।
पर्य्यापतो विदधतौ हसतीवेन्दुभास्करौ ।। 23
प्रकामलब्धकामस्य वभूवैव दरिद्रता ।
यस्यापि बाहुदण्डस्य सदृशे प्रतियोद्धरि ।। 24

---

1. *IC*, p. 37

ध्वान्तवद्वनलीनेपि यद्यशोदीपदीपितः ।
पुनर्ग्रहणभीत्येव चरणौ रिपुरागमत् ॥ 25
पारगामी गुणाम्भोधेर्धरणी धारणोद्धुरः ।
लक्ष्मीमुवाह यो नित्यञ्जयतुर्व्वाहुरिवापरः ॥ 26
श्रुत्वा यस्य गुणोत्कर्षाज्जगद्गीतान् समन्ततः ।
नूनं स्वं सृष्टिवैदग्ध्यं स्वयम्भूर्ब्बहुमन्यते॥ 27
दत्तशेषोपभोगे यस् सत्यसन्धोपि सद्रसम् ।
सर्वोर्वीविजयावाप्तेर्भुक्तवान् न तु दत्तवान् ॥ 28
तस्याचार्य्योखिलाचार्य्यवन्दनीयाङ्घ्रिपङ्कजः ।
आसीद्विधासु निष्णातश् शिवसोम इतीरितः ॥ 29
महेन्द्राद्रिस्थभूपालमातुलस्य महीभुजः ।
यश् श्रीजयेन्द्राधिपतिवर्म्मणस्तनयात्मजः ॥ 30
यस्याङ्घ्रिरानतानेकजरज्जटिजटारुणः ।
अभ्यस्त ध्यानदहन ज्वालात्मीढ़ इवाबभौ ॥ 31
शास्त्रार्ण्णव पिबन् कृत्स्नं स्तम्भयन् रागभूभृतम् ।
यस् सदा दक्षिणाचारः कुम्भयोनिरिवापरः ॥ 32
फलनिस्स्पृहचित्तोपि फलसञ्चितवृत्तिमान् ।
विद्यया यस् सुपीनोपि तपसा कृशताङ्गतः ॥ 33
योगं विदधतो यस्य मूर्द्धतो ज्योतिरूर्द्धगम् ।
दग्धान्त ध्वन्तिनिर्धौत ज्ञानाग्न्यर्च्चिरवाबभौ ॥ 34
पवित्रतीर्थ सन्दोह निर्ग्गमद्वारि यन्मुखे ।
सरस्वती सदोवास वाञ्छन्तीवाति पुण्यताम् ॥ 35
यस्याङ्घ्रियुगलाम्भोजरजस्स्पृष्ट्वैव मानुषाः ।
सर्व्वतीर्थाभिषेकाणामवाप्तं मेनिरे फलम् ॥ 36
विषमेऽपि समायस्य लोके लोकोपकारिणः ।
शुद्धधीगगनारूढ़ा रुचिश् शुभ्ररुचेरिव ॥ 37
दयात्यागधृतिक्षान्तिशौचसत्यादयो गुणाः ।
यस्तेषामके आधारो विधात्रेव विनिर्म्मतः ॥ 38
येनाधीतानि शास्त्राणि भगवच्छङ्कराह्वयात् ।

निश्शेषसूरिमूर्द्धालिमालालीढ़ाङ्घ्रिपङ्कजात् ॥ 39

सर्व्वविद्यैक निलयो वेदविद्विप्रसम्भवः ।

शासको यस्य भगवान् रुद्रोरुद्र इवापरः॥ 40

विद्यया वयसा वृद्धानुपास्यान्यान् विपश्चितः ।

तर्क्ककाव्यादिसंभूतामिद्ध बुद्धिमवाप यः ॥ 41

पुराण भारताशेषशैव व्याकरणादिषु ।

शास्त्रेषु कुशलो योभूत तत्कारक इव रचयम् ॥ 42

-इ-- यस्य राजेन श्रीद्रवर्म्मणा ।

-छत्र प्रदानादिसम्माननमकारयत् ॥ 43

vv. 44-48 only a few letters legible.

अर्थ–

सम्पूर्ण रूप से शिवजी द्वारा मारा हुआ कामदेव जिसमें............। मूढ़ बुद्धि हुए.......क्या यह है या वह है (सम्पूर्ण रूप से शिवजी द्वारा मारा गया कामदेव पुनः इस राजा के रूप में उत्पन्न हुआ जिसे देखकर सौन्दर्य निरीक्षण में मूढ़ हुए लोग यह निश्चय नहीं कर पाते थे कि काम यह है या वह था ।)॥ 13

अतृप्त अबला नेत्रों से जिसके सौन्दर्यामृत का पान किया गया है तथा सब सोख न लिया जाय कहीं इस भय से ही जिसने अपने सौन्दर्यामृत को संसार के लोगों के हृदय में छिपा दिया है (अर्थात् सुन्दरियों द्वारा जिसके सौन्दर्यामृत का पान किया जा रहा था तथा जिसका सौन्दर्य लोगों के हृदयों में बसा था ।) ॥ 14

विश्व के समस्त तेजस्वियों के तेज को जिसके तेज ने जीत लिया था उससे स्वयं तेज को भी निश्चित रूप से भयभीत हुआ देखकर प्रलयकालीन उग्र तेजधारी रुद्र भी मुँह लटकाए हुए हैं ।। 15

श्रेष्ठ भाग को प्राप्त करने के लिए जिसने बार-बार समुद्र मन्थन किया है जिसके बाहुरूपी मन्दराचल से बार-बार मथे जाने के भय से जिसकी भुजाओं को सागर अपनी गहराई बता दिया है (अर्थात् दिग्विजय के क्रम में जो अपने भुजविक्रम से अनेक बार सागर पार कर चुका है– उस परमविक्रमशाली के लिए सागर अथाह नहीं रह गया है, ऐसे) ।। 16-17

युद्ध में हाथियों के मस्तक फाड़ने से गजमुक्ता से सने जिसके सुशोभित

हाथों को अपनी शुल्क मानकर शत्रुओं की राजलक्ष्मियाँ वेश्या की तरह जिसके पीछे-पीछे चली आयीं ।। 18

अपने अतुल विक्रम से आक्रान्त कर सारे राजाओं एवं पर्वतों को जिसने समाप्त कर दिया है, उसकी सुमेरु चूड़ाधिष्ठित विक्रम कीर्ति सुमेरु के पार्श्व से जाते हुए सूर्य के लिए उपहास ही है (अर्थात् इस राजा के अतुल्य विक्रम से तो सारे पर्वत आचूल आक्रान्त थे । इसलिए उनके शिखरों पर भी इसका विक्रम विराजता था । परन्तु सूर्य पथ सुमेरु को अतिक्रान्त नहीं करता है अपितु सुमेरु पार्श्व से ही जाता है । अतः सूर्य से भी ऊँचे पर इसके विक्रम के स्थित होने के कारण सूर्य के लिए अपमानकारक था ।) ।। 19

चीन, चम्पा एवं यवद्वीप आदि के राजाओं के ऊँचे मस्तकों पर जिसकी आज्ञा निर्मला मालती माला की तरह शोभा पाती है ।। 20

आकाश में जिसके यज्ञों के धूमों की लगी हुई पंक्तियाँ इस प्रकार प्रतीत होती हैं, मानो उसकी कीर्ति की स्वर्गयात्रा के लिए आगे-आगे जाती हुई ध्वजा हो ।। 21

जिसके सुवर्ण आदि दान की वर्षा से सम्पूर्ण पृथिवी डूब रही है, वह वर्षा इतनी तृप्तिकारक है कि शायद उसके सम्मुख प्रलयकाल की कालाग्नि से दग्ध पृथिवी पर बरसनेवाली मेघधारा भी उतना आदर न प्राप्त करे, उतनी तृप्तिदायक न हो ।। 22

नित्य रूप से भुवनों को प्रकाशित करनेवाले प्रकाश को जिसकी कीर्ति धारण करती है तथा जिस ऐसी कीर्ति क्रम से प्रकाश धारण करनेवाले सूर्य तथा चन्द्र का उनके अनैरन्तर्य प्रकाश के कारण उपहास ही करती है ।। 23

जिसकी सभी इच्छाएँ पूर्णरूपेण तृप्त हो चुकी हैं अर्थात् जिसे सब कुछ प्राप्त है ऐसे राजा का अभाव अब भी शेष है, वह यह कि उसके शक्तिशाली भुजदण्डों के समान भुजदण्डोंवाला कोई प्रतिस्पर्धी नहीं है ।। 24

अन्धकार के समान वन में भागे हुए शत्रु उसके यशरूपी दीप से प्रकाशित होने पर पुनः पकड़े जाने के भय से ही जिसके चरणों में पुनः आ गये हैं ।। 25

गुण समुद्र को पार करनेवाला, पृथिवी को धारण करने में समर्थ तथा नित्य रूप से लक्ष्मी को धारण करनेवाला जो राजा दूसरे चतुर्भुज भगवान् विष्णु के समान ही है ।। 26

जिसके गुणोत्कर्षता की गीत संसार में सभी ओर गाये जाते सुनकर उसकी रचना करनेवाले विधाता भी अपनी सृष्टि कला को निश्चित रूप से श्रेष्ठ मानते हैं ।। 27

दान करने के बाद बचे हुए भाग का भोग करने के व्रत का जो दृढ़व्रती है, उसने समग्र पृथिवी की जीत से प्राप्त सुयश का भोग ही किया दान नहीं ।। 28

उस राजा के गुरु जगत् गुरुओं से भी वन्दनीय चरणकमलवाले, सभी विद्याओं में निष्णात शिवसोम नाम से विख्यात थे ।। 29

महेन्द्र पर्वत पर रहनेवाले राजा के मामा, राजा श्री जयेन्द्राधिपतिवर्मण का जो पोता है ।। 30

जिसके चरणों में अनेक पुरानी जटाओं से मण्डित सिद्ध योगीगण झुके हुए थे, उनकी जटाओं की अरुणिमा से लाल हुआ वह ध्यानस्थ योगी अग्नि की लपटों से आलिंगित हुआ सा ही प्रतीत होता था ।। 31

सारे शास्त्र सागरों का पान करते हुए तथा राग-द्वेषादि सारे दुष्ट राजाओं को जड़ीभूत करते हुए जो सदा दक्षिणाचार (वामाचार के विरुद्ध) में ही निरत है वह योगी दूसरे अगस्त्य ऋषि सा ही हो रहा था ।। 32

कर्मफलों से निस्पृह चित्त होने पर भी वनफलों के संचय से जो जीविका चला रहा था तथा जो विद्याओं से परिपुष्ट होने पर भी तप के निराहार के कारण कृषांग हो रहा था ।। 33

योगमार्ग का अवलम्बन करते हुए जिसके ब्रह्मरन्ध्र से ज्योति ऊपर उठ रही थी तथा जिसने अपने अन्दर के सारे अज्ञानतम को धो दिया था, वह ज्ञान अग्नि की शिखा की तरह ही हो रहा था ।। 34

पवित्र शास्त्र तीर्थों से प्रकट होनेवाली सरस्वती अधिक पवित्र स्थल की इच्छा से जिसके मुख में सदा वास करती है ।। 35

जिसके चरण कमलों की धूल को स्पर्श करके ही लोग सभी पवित्र तीर्थों में स्नान का पुण्य प्राप्त हुआ मान लेते थे ।। 36

जिस लोकोपकारी की, संसार की विषम परिस्थितियों में भी समभाव से स्थिर रहनेवाली, ब्रह्ममार्गारूढ़ा शुद्ध बुद्धि की प्रभा, सूर्यकिरण की तरह थी ।। 37

दया, त्याग, धृति, शान्ति, शौच, सत्य आदि गुणों के एकमात्र आधार के रूप में जो ब्रह्मदेव द्वारा ही निर्मित हुआ था ।। 38

जिसने भगवान् शंकर के नाम से विख्यात गुरु से समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया था तथा जिसके चरण-कमलों पर सभी विद्वानों के मस्तक भ्रमर की तरह आलिंगित थे ।। 39

जो वेदज्ञ ब्राह्मण से उत्पन्न सभी विद्याओं का एकमात्र अधिष्ठान था तथा जिसके रुद्र नामक शासक दूसरे भगवान् रुद्र के समान ही था ।। 40

विद्या एवं अवस्था से वृद्ध अन्य पण्डितों की उपासना करके जिसने तर्क, काव्य आदि से प्रदीप्त बुद्धि पायी है ।। 41

पुराण, भारत, अशेष शैव एवं व्याकरण आदि शास्त्रों में, उनके शास्त्रकारों के समान स्वयं ही कुशल हुआ था ।। 42

जिसका छत्र प्रदान आदि सम्मान राजा इन्द्रवर्मन द्वारा कराया गया था ।। 43

34

प्रह को अभिलेख
Prah Ko Inscription

यह अभिलेख प्रह को के मन्दिर में एक खड़े पत्थर पर उत्कीर्ण है जो सियम रियप जिले में रुलो श्रेणी की पहाड़ी में बसा है।

भगवान् शिव की वन्दना से इस अभिलेख का प्रारम्भ है एवं राजा इन्द्रवर्मन का वर्णन करता है। उनकी वंश-परम्परा के अतिरिक्त यह शिलालेख भगवान् शिव की तीन तथा देवी की तीन मूर्तियों की स्थापना का भी वर्णन करता है। इस अभिलेख में दानस्वरूप पाये हुए धन एवं वस्तुओं की भी चर्चा है। इस शिलालेख की पंक्तियाँ पड़ोस के मन्दिरों में भी पायी जाती हैं।

जॉर्ज सेदेस ने सर्वप्रथम इस अभिलेख की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है।[1]

श्रीसिद्धि स्वस्ति जय नमः परमेश्वराय।
निष्कलाय स्वभावेन स्वेच्छया धृतमूर्त्तये।

1. *IC*, p.18

शिवाय परमेशाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥ 1
येनैकनाप्यनेकेषु तिष्ठता युगपत् पृथक् ।
आत्मापि क्रियते नित्य तस्मै शूलभृते नमः ॥ 2
नवरन्ध्राद्रिराज्यस्थस् सोमवत् कम्बुजेश्वरः ।
श्रीन्द्रवर्म्मा त्रिवर्गेण बर्द्धयन् हर्षयेन् प्रजाः ॥ 3
राज्ञी राजपरम्परोदितवती श्रीरुद्रवर्मात्मजा ।
राजश्री नृपनीन्द्रवर्म्मतनया जाता सती याभवत् ।
पत्नी श्री पृथिवीन्द्रवर्म्मनृपतेः क्षत्रान्वयाप्तोद्वतेस् ।
तस्याभूमिपतिस् सुतो नृपनतो यश् श्रीन्द्रवर्म्माह्वयः ॥ 4
प्रेङ्खत् खड्गभिपीड़न प्रतिभयोदीर्घस् सुवृत्तोरणे
सर्व्वाशावनिनाथ बाधन करोऽजय्यश्च वामेतरः ।
बाहुर्य्यस्य तथापि सुप्रशमनन् नेतुं सदाशक्यत्
द्वाभ्यामेव पराङ्मुखेन शरणं प्राप्ते न जीवार्थिना ॥ 5
येनाभिषिक्तो विधिना महेन्द्रस्
स्वयम्भुवारोपित देवराज्यः ।
तेनाभिषेक(ं) गुणवाननेकं
यश् श्रीन्द्रवर्म्मापद वार्य्यवीर्य्यः ॥ 6
प्रथमं लब्धराज्यो यः प्रतिज्ञां कृतवानिति ।
इतः पञ्चदिनादूर्ध्वं प्रारप्स्ये खननादिकम् ॥ 7
श्रीमत् सिंहासनं श्रीन्द्रयानं श्रीन्द्रविमानकम् ।
श्रीन्द्र प्रासादकं हैमं भेजे यस् स्वधिया कृतम् ॥ 8
तथा प्रथयद्दुच्छ्रायशोभां यस्यापि विक्रमः ।
यथा त्रिविक्रमस्यापि विक्रमेण न लङ्घितः ॥ 9
यशो यस्याति विस्तीर्ण्णमात्तरन्ध्रं भवेद्यदि ।
त्रिलोक भवनऽवेन नूनं भवितुमर्हति ॥ 10
द्वयं कथन नु संलक्ष्यमिति धात्रा यदाननम् ।
विधाय भेदबुद्ध्यर्थं मृगाङ्को नूनमङ्कितः ॥ 11
अध्यास्ते यस्य हृदय नैव कामोनिरन्तरम् ।
तत्सन्निहितचन्द्रार्द्ध चूड़ामणिभयादिव ॥ 12

क्षीरोदसारमथनादाहरन्तं श्रियं हरिम् ।
जहासेव प्रभूतश्रीर्य्यो भूमृन्मथनेन तु ॥ 13
विशालत्वान् निवासस्य क्षमे वक्षसि सत्यपि ।
लौल्यादिव ध्रुवं यस्य लक्ष्मीस् सर्व्वाङ्गचारिणी ॥ 14
गम्भीरत्वेन यस्यापि सदृशस्य महोदधेः ।
ऊर्द्ध्वगं गुणरत्नन्तु दोषफेणो नदृश्यते ॥ 15
ब्रह्माण्डादिव निर्ग्गन्तुं शङ्के वर्त्माभिकाङ्क्षिणी ।
तदनाप्तवतो यस्य कीर्त्तिर्भ्रमति सर्व्वतः ॥ 16
यत्कृतेर्व्विद्रुतो विद्विड् वनेपि महिषीवृतः ।
श्रीफलेन सदाजीवत् परार्था हि सतो कृतिः ॥ 17
विनोदनवशाद्व्यक्तं लक्ष्म्या बृहदुरःस्थ्या ।
विक्रमे यस्य गोविन्दोऽरविन्दन् नयने वसत् ॥ 18
धाता व्यद्याद्धरान्न्वबधौ सविधुं विबुधालयम् ।
यद्धामधूमधामालिधूली कृतिमयादिव ॥ 19
येन सौन्दर्य्य विजितो जातलज्ज इवध्रुवम् ।
लीनो मनसि लोकानामद्यापि मकरध्वजः ॥ 20
यस्य याने गजेन्द्रादिभरमेदमयादिव ।
धात्रा भोगीन्द्रपाशेन वबन्धे वसुधा ध्रुवम् ॥ 21
दुस्तरे येन युद्धाब्धौ छिन्नदृप्रारिमस्तकैः ।
स्वपक्षतारणायेव विदधे सेतुबन्धनम् ॥ 22
न्यसतं ज्ञानधनं यस्य मनः कोशे सरस्वती ।
नित्यं रक्षितुकामेव मुखद्वारे स्थिताभवत् ॥ 23
यशोऽवतंसेन सदा रञ्जिता येन दिग्वधूः ।
वशीकृता मन्त्रबलैस् स्वयन्दत्तकराभवत् ॥ 24
संरक्षति क्षितिं यत्रं शौरेश शौक्ल्यं भवेद्यदि ।
इदं युगं कृतयुगं यथैवाभाति सर्व्वथा ॥ 25
दानं यस्यापि सर्व्वत्र विशेषेण गुणाधिके ।
प्रायशस्तुङ्गशिखरे गिरौ वर्षति वासवः ॥ 26
व्यधाद्धातेव निर्व्विण्णस् सृष्टौ बहुमहीभुजाम् ।

श्रीन्द्रवर्म्मेति यं भूपमेकन्त्रैलोक्य तृप्तये ॥ 27

चन्द्रव्योमवसूपलक्षितशके माघस्य याम्येदिने ।

शुक्ले कुम्भवुषान्ततौलम कराल्यब्जाज गेहागते ॥ 28

तेन राजेन्द्रसिंहेन सम्राजाश्रीन्द्रवर्म्मणा ।

तानि सर्व्वाणि दक्त्तानि देवतास्वासु भक्तितः ॥ 29

शिविका आतपत्राणि सौवर्ण्णा राजता घटाः ।

विचित्र रूपा बहवो छद्या विरचितास्तथा ॥ 30

राजताः पृथुकुम्भाश्च राजतव्यजनानि च ।

करङ्का हारका रौप्यास् स्वर्ण्णरूप्य समुद्गका: ॥ 31

भाजनानि च रौप्याणि यज्ञकोशाश्च राजताः ।

सौवर्ण्णकोश खड्गाश्च रत्नान्यमरणानि च ॥ 32

हेमरूप्यपदादर्शा वालव्यजनकानि च ।

गन्धद्रव्याणि सर्व्वाणि कर्पूर प्रभृतीनि च ॥ 33

फरस् सुवर्ण्णरचिता रूप्यालङ्कृत तोमराः ।

वस्त्राणि च विचित्राणि सर्व्वोपकरणानि च ॥ 34

नर्त्तक्यश् शोभना बह्वयो गायन्यो वादिकास्तथा ।

वीणादिवाद्यावादिन्यी वेणुताल विशारदाः ॥ 35

पुरुषा रुपिणश् श्लाघ्या नर्त्तनादि विशारदाः ।

बहवश्चारुवेषाश्च सभूषणपरिच्छदाः ॥ 36

नरनारी सहस्राणि बहूनि बहुवृत्तयः ।

बहुग्रामाश्च विस्तीर्ण्णे केदाराराभमण्डलाः ॥ 37

गवां बहुसहस्राणि महिषाश्छागला अपि ।

द्विरदेन्द्रास् सगणिका बहवस्तुरगास्तथा ॥ 38

ये लोभदाहरिष्यन्ति दत्तानि श्रीन्द्रवर्म्मणा ।

ते यान्तु नरकं घोरं यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥ 39

ये तु संवर्द्धयिष्यन्ति श्रद्धया परया युताः ।

वसन्तु ते शिवपदे यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥ 40

अर्थ–

श्री सिद्धि स्वस्ति जय । परमेश्वर को नमस्कार । स्वभाव से जो अमूर्त है फिर भी स्वेच्छा से जो रूप ग्रहण करते हैं, उन सबों के स्वामी, परमात्मा, भगवान् शिवजी को नमस्कार है ।। 1

एक होते हुए भी जो अनेक जगत् पदार्थों में अनेक होकर स्थित होते हैं, इस प्रकार नित्य होते हुए भी अनेक भिन्न-भिन्न अनित्य रूपों में स्वयं को उपस्थित करते हैं, उन त्रिशूलधारी भगवान् शिव को नमस्कार है ।। 2

धर्मार्थ काम से प्रजाओं को अभिवृद्ध एवं हर्षित कर रहे महाराज श्रीन्द्रवर्मन 509 शकाब्द में कम्बुज के भगवान् हुए ।। 3

राजकुलोत्पन्ना रानी से जो श्रीमान् रुद्रवर्मन की पुत्री थी, राजा नृपतीन्द्रवर्मन को कन्या उत्पन्न हुई जो दक्ष कन्या सती के समान सती नामवाली हुई ।। 4

वह क्षत्रिय कुलोत्पन्न महाराज श्री पृथिवीन्द्रवर्मन की पत्नी हुई । उसी का पुत्र श्रीन्द्रवर्मन राजा बना जो राजाओं से वन्दित था ।। 5

जिसके दायें हाथ से चलते हुए तलवार के वार की भयंकर तथा विशद् यशोगाथा रणांगण की दिशाओं में व्याप्त थी तथा उसका जो दक्षिण बाहु सभी दिशाओं के राजाओं का वध कर जय प्राप्त किया था, उस बाहु से भी उन दोनों ही के लिए सदा अभय पा लेना सम्भव हो जाता था, जो या तो रण से भाग गये थे या प्राण रक्षा के लिए शरण आ जाते थे ।। 6

अपनी शक्ति से देवराज्य पर आरूढ़ होनेवाले इन्द्र जिस प्रकार से (जिस ब्रह्मदेव से) महेन्द्र पद पर अभिषिक्त हुए थे, उसी प्रकार से (उसी ब्रह्मदेव द्वारा) अनेक गुणवान महाराज श्रीन्द्रवर्मन जो आर्य विजेता के पद पर अभिषिक्त हुए ।। 7

राज्य प्राप्त कर जिसने प्रथमतः यहाँ पाँच दिनों के बाद खनन आदि कार्य आरम्भ कर देने का संकल्प लिया । अपनी बुद्धि से ही जिसने भगवान् विष्णु के सिंहासन, यान, विमान तथा मन्दिर को सोने का बनाया ।। 8

जिस प्रकार भगवान् त्रिविक्रम का विक्रम भी जिसके विक्रम को न लाँघ पाया, उसी प्रकार जिसका प्रभावशाली सौन्दर्य भी अनुलंघनीय रहा ।। 9

जिसके यश का इतना अधिक विस्तार है कि यदि तीन लोक में छिद्र (अवकाश) हो जाय तो निश्चय ही उसके लिए (यश के लिए) निवास योग्य हो सकता है (अर्थात् जिसका यश त्रैलोक्यव्यापी था) ।। 10

जिसके मुख की रचना करके, दोनों स्पष्टतया दो कहे जायें इस उद्देश्य से दोनों में भिन्नता ज्ञापनार्थ ब्रह्मा ने निश्चय ही कुछ न्यून बनाते हुए चन्द्रमा को मृगलांछित किया ।। 11

जिसके हृदय में निरन्तर सन्निहित अर्धचन्द्र चूड़ामणि भगवान् शिव के भय से काम अधिष्ठित न हो सका ।। 12

अनेक राजाओं का मथन करके अनेक राजलक्ष्मी की प्राप्ति से इसने क्षीरसागर का मथन एक ही लक्ष्मी के हरण करनेवाले भगवान् हरि का उपहास ही किया है ।। 13

यद्यपि अपनी विशालता के कारण जिसका वक्ष लक्ष्मी के निवास के लिए सक्षम था फिर भी लक्ष्मी अपनी चंचलता के कारण जिसके सभी अंगों में बसी थी ।। 14

गम्भीरता के कारण जो समुद्र के समान था, उसमें गुणरूप रत्न तो दिखलाई पड़ते थे, परन्तु दोष रूप फेन नहीं दिखते थे ।। 15

उसकी कीर्ति मानो ब्रह्माण्ड से बाहर जाने के लिए पथ खोजती हुई, पथ न पाने के कारण सभी दिशाओं में घूम रही थी (अर्थात् उसकी कीर्ति दस दिशाओं में व्याप्त थी) ।। 16

जिसके द्वारा भगाये गये शत्रु राजा अपनी पटरानियों सहित वन में श्रीफल (बेर) खाकर जीवन बिता लेते थे । वस्तुतः वन लगानेवाले का ही यह पुण्य कार्य है जिससे शत्रु राजा वन में भी जीवन बिता लेते थे । ठीक ही कहा गया है– सज्जनों का कार्य सदा दूसरों के हित के लिए होता है ।। 17

स्पष्ट है कि विनोद के वश से विशाल हृदय पर स्थित लक्ष्मी के द्वारा प्रसन्नता व्यक्त है– जिसके पराक्रम पर विष्णु की आँख में कमल बसा था ।। 18

विधाता ने स्वर्ग को चन्द्रमा से युक्त किया परन्तु पृथिवी को बिना चन्द्र

के ही बनाया क्योंकि उन्हें भय था कि पृथिवी इस राजा द्वारा किये जानेवाले निरन्तर यज्ञ के धुएँ से चन्द्रमा कहीं धूमिल न पड़ जाय ।। 19

जिसके सौन्दर्य से पराजित हुआ काम निश्चय ही लज्जा से अब भी लोगों के मन में छिपा हुआ है ।। 20

जिसके रणप्रयाण में हाथियों आदि के भार से टूटने या डगमगाने के भय से ही मानो विधाता पृथिवी को शेषनाग से बाँध रखे हैं ।। 21

तैरकर पार करने में कठिन रणसागर से पार अपने सैनिकों को ले जाने के उद्देश्य से दुश्मनों के कटे सिर से जिसने पुल बनाया है ।। 22

जिसके मस्तिष्क में ज्ञानधन रखकर उसके रक्षार्थ मुखद्वार पर पहरे में बैठी हुई थीं ।। 23

अपने यश के आभूषणों से दिक्‌वधुओं को जिसने सदा सजाया है, उसकी कूटशक्ति से वशीभूत की गयी दिक्‌वधुएँ अपने हाथ स्वयं ही उसके हाथों में पकड़ा दिये थे ।। 24

जहाँ इस शूर द्वारा पृथिवी का संरक्षण किया जा रहा हो, वहाँ यदि शुचिता भी आ जाय तो निश्चय ही वह युग सत्ययुग-सा ही शोभित होगा ।। 25

सर्वत्र जिसका दान विशेष रूप से अधिक गुणवालों के हाथों में दिया जानेवाला है जैसे प्राय: इन्द्र ऊँची चोटीवाले पर्वत पर मेघ बरसाता है ।। 26

विधाता ने व्यर्थ ही बहुत-से राजाओं की रचना की क्योंकि त्रैलोक्य की तृप्ति के लिए तो उस एक श्रीन्द्रवर्मन राजा को ही बनाया था ।। 27

801 शकाब्द में माघ शुक्ल दशमी को चन्द्रमा के मेष स्थित तथा शेष ग्रहों के कुम्भ, वृष, मीन, तुला, मकर एवं वृश्चिक में स्थित होने पर ।। 28

राजाओं में सिंह के समान सम्राट् श्रीन्द्रवर्मन द्वारा देवताओं की सेवा में आसु भक्तिपूर्वक वे सब कुछ दिये ।। 29

विचित्र रूपों के बने बहुत-से सोने की पालकी, छत्र एवं घड़े दिये ।। 30

सुशोभित चाँदी के बड़े-बड़े कलश, सुन्दर पंखे, सोने तथा चाँदी के एवं

दोनों के मिश्रण से बने ताम्बूल पात्र दिये ।। 31

चाँदी के बर्तन तथा चाँदी के यज्ञकोष, सोने का म्यान तथा तलवार एवं रत्नों से बने आभूषण दिये ।। 32

सोने-चाँदी से मढ़े आइने, चँवर तथा चन्दन, कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्य दिये ।। 33

सोने का फरसा तथा चाँदी से बना गदा एवं विचित्रित वस्त्र आदि तथा सभी उपकरण दिये ।। 34

सुन्दरी नर्तकियाँ, बहुत से गायिकाएँ तथा वीणा, वेणु और ताल आदि वाद्यों में विशारद वादिकाएँ भी दी ।। 35

पुरुषों के रूप्धारण कर श्लाघ्य अभिनय करनेवाली नृत्यादि में विशारद, सुन्दर वेषधारिणी, अनेक अलंकारों से अलंकृत बहुत-सी अभिनेत्रियाँ भी दीं ।। 36

भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करनेवाले सहस्रों नर-नारी तथा विस्तृत खेत एवं बागवाले बहुत-से गाँव दिये ।। 37

हज़ारों गायें, भैंसे, बकरियाँ, हाथी, वेश्याएँ तथा बहुत-से घोड़े भी दिये ।। 38

श्रीन्द्रवर्मन द्वारा दान की गयी इन वस्तुओं का जो लोभ के वशीभूत होकर हरण करेंगे, वे सूर्य-चन्द्र की स्थिति तक के लिए घोर नरक में जायेंगे ।। 39

जो श्रेष्ठ श्रद्धा से इन दान की गयी वस्तुओं की वृद्धि करेंगे, वे सूर्य-चन्द्र की स्थिति तक स्वर्ग (कैलास) में वास करेंगे ।। 40

35

बकोंग के खड़े पत्थर का अभिलेख
Bakong Stele Inscription

प्रह को अभिलेख के बहुत निकट यह अभिलेख पाया गया है । इस अभिलेख में श्री इन्द्रेश्वर नामक लिंग के अतिरिक्त शिव के आठ रूपों की मूर्तियों का वर्णन है । ईंटों से निर्मित मन्दिरों के खण्डहर जिनकी संख्या आठ है, अब भी निकट में देखे जा सकते हैं । भगवान् शिव की मूर्ति गंगा तथा उमा की मूर्तियों के साथ थी ।

निम्नलिखित दूसरी मूर्तियों की भी स्थापना की गयी थी–

1. विष्णुस्वामी नामक विष्णु मन्दिर जो विष्णुलोक में गये जयवर्मन तृतीय की भलाई के लिए है,

2. हरिहर, जो राजा के पुत्रों द्वारा धार्मिक कार्य के लिए उत्सर्ग किया गया ।

3. इन्द्रलोक की रानी इन्द्राणी की भलाई के लिए (इन्द्रलोक में पिता की मृत्यु के बाद जन्मे एक राजा का नाम है)

4. महिषासुरमर्दिनी (उमा) राजा के द्वारा बनाया हुआ तथा राजमहल की

महिलाओं द्वारा उत्सर्ग किया हुआ।

5. नन्दिका, इस मन्दिर की नींव डाली गयी।

6. अम्रात्केश्वर, इस मन्दिर में शिवलिंग का उत्सर्ग।

यह अभिलेख बकोंग मन्दिर को इन्द्रेश्वर के साथ आत्मसात् करता है। इसमें संस्कृत के 49 पद्य हैं।

जॉर्ज सोदेस ने इस अभिलख का सम्पादन किया है।[1]

श्रीसिद्धि स्वस्ति जय नमश् श्रीन्द्रेश्वराय

VV 1.2. Prah Ko 1.2.

न वर(न्ध्रा)द्रिराज्यस्थश् श्रीन्द्रवर्म्मावनीश्वरः।
आसीदिन्द्रो नरेन्द्राणां महेन्द्रोपेन्द्र विक्रमः॥ 3

V.V. 4 - 18= Prah Ko 4, 5, 9, 19, 22, 13, 21, 17, 10
= 24, 16, 20, 11, 14, 18.

न स्थातुमशकधस्य हृदये कुसुमायुधः।
तत्सन्निहितचन्द्रार्द्ध चूड़ामणिभयादिव॥ 19

V.V. 20 - 22= Prah Ko 23, 26, 27.

तेनाग्निगगणवसुभि-
र्वसूपमेनेदमत्र वसुदात्रा।
श्रीन्द्रेश्वर इति लिङ्ग
त्रिभुवनचूड़ामणौ निहितम्॥ 23
श्रीन्द्रेश्वराङ्गनेप्यत्र दृशामुत्सवकारिणि।
त्वष्टुरप्यविसंवादिमनो विस्मयदायिनि॥ 24
इलानि (लाग्निचन्द्रावर्क-)स(लि)लाकाशयऽवन(:)।
राजवृत्तीरितेशस्य सोष्ट मूर्त्तीरतिष्ठिपत्॥ 25

V.V. 26 - 27 - a few letters legible.

तेषां विचित्रशिखरान् प्रासादान् स शिलामयान्
चकार ललिताकारान् धर्म्मबीजाङ्कुरानिव॥ 28
उभाङ्ग भुजलता संश्लिष्ट जघनस्थलम्।
स ईश्वरं स्थापित वानुभागङ्गा पतीश्वरम्॥ 29

---

1. *IC*, p.31

स विष्णुस्वामिनामानं मुरारातिमतिष्ठपत् ।
विष्णुलोक प्रयातस्य भूत्यै श्रीजयवर्म्मणः ॥ 30
अभिन्नतन्वोरीशानशार्ङ्गिनोः प्रतिरूपकम् ।
कृत्वा तत्स्थापनविधौ तनयान् सोप्ययोजयत् ॥ 31
सलीलालोकनाकल्य बलारिनयनावलिम् ।
इन्द्राणीमिन्द्रलोकस्थ महिषासुरमर्द्दनीम् ॥ 32
संभूय स्थापयामासुरवरोधवराङ्गनाः ॥ 33
यास्यामि सुगतिं पश्चादस्त्वयं लोकनन्दनः ।
इतीव स दयाविष्टः कल्पयामास नन्दिकम् ॥ 34
श्रीप्रातकेश्वर स्वामिनिदेशात् सलिलोद्धृतम् ।
शैवन्देवाश्रमे तत्र स लिङ्गं प्रत्यतिष्ठिपत् ॥ 35
स निर्म्मलञ्चकारेन्द्र तटाकङ्कीर्त्तिदर्प्पणम् ।
और्व्वाग्निमय पर्यस्तनिजस्थानमिवाम्बुधिम् ॥ 36
श्रीमतसिंहासनं श्रीन्द्रयानं श्रीन्द्रविमानकं ।
श्रीन्द्रासनं स स्वकृतं श्रीन्द्रप्रासादमन्वभूत् ॥ 37

V.V. 38 - 49 = Prah Ko 29 - 40

अर्थ–

श्रीन्द्रवर्मन द्वारा पूजित शिवजी को नमस्कार है ।

V.V. 1 - 2, Prah Ko 1-2.

799 शकाब्द में राज्यस्थ होनेवाले, विष्णु और इन्द्र के समान विक्रम वाले पृथिवीपति महाराज श्रीन्द्रवर्मन राजाओं के भी राजा थे ॥ 3

V.V. 4 -18= Prah Ko 4, 5, 9, 19, 22, 13, 21, 17, 10 = 24, 16, 20, 11, 14, 18.

अर्द्धचन्द्र चूड़ामणि श्री शिवजी के वहाँ सन्निहित होने के कारण भय से ही जिसके हृदय में कामदेव न रह सका ॥ 19

वसुओं के समान धन देनेवाले उसने ही 803 शकाब्द में इस श्रीन्द्रेश्वर शिवलिंग को त्रिभुवन चूड़ामणि योग में स्थापित किया ॥ 23

यहाँ स्थापित शिवजी की मूर्ति की शोभा आँखों को प्रसन्नता देनेवाली है

तथा विश्वकर्मा के मोहरहित मन में विस्मय पैदा करने वाली है ।। 24

राजवृत्ति से सम्पन्न उन्होंने पृथिवी, वायु, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, जल, आकाश तथा होत्री रूप शिवजी की आठों मूर्तियाँ स्थापित की ।। 25

V.V. 26 - 27 - a few letters legible.

उनके लिए उनके विचित्र शिखरयुक्त सुन्दर आकारवाले प्रस्तर निर्मित मन्दिरों की रचना की जो धर्मरूपी बीज से उगे हुए अंकुर की तरह ही थे ।। 28

उसने उमा के शरीर से, जंघा से भुजलता तक सटे हुए उमा गंगापतीश्वर भगवान् शिव की स्थापना की ।। 29

विष्णुलोक गये हुए श्री जयवर्मन के पुण्य के लिए विष्णुस्वामी नाम से मुरारि की स्थापना की ।। 30

शिव और विष्णु– दोनों की एक ही मूर्ति (हरिहर) बनाकर स्थापना विधियों में पुत्रों को लगाया ।। 31

इन्द्रलोकवासी पटरानी के पुण्य के लिए विलास मन्दिर की शोभा की रचना कर सहस्राक्ष इन्द्र तथा इन्द्राणी की स्थापना की ।। 32

उसके द्वारा बनाकर दी गयी महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति की स्थापना सुन्दर अंगोंवाली राजपत्नी द्वारा की गयी ।। 33

मुझे सुगति मिले तथा मेरे बाद में यह लोगों को हर्ष देनेवाला हो– इस विचार से उस दयालु ने नन्दी की स्थापना की ।। 34

श्री अम्रात्केश्वर भगवान् के जनपद में जल में से निकाले गये शिवजी के लिंग की उसने वहाँ देवाश्रम में पुनः स्थापना की ।। 35

कीर्तिदर्पण रूप स्वच्छ इस इन्द्र तालाब को उसने बनाया । समुद्र ने इस तालाब को अगस्त तेज के भय से मुक्त मानो अपना आश्रय ही मान लिया। (वह तालाब समुद्र के समान विस्तृत और गहरा था) ।। 36

श्रीमान् सिंहासन, श्रीन्द्रस्वामी के लिए रथ, आसन तथा अपने बनाये हुए प्रासाद को उसने दान किया ।। 37

V.V. 38 - 49 = Prah Ko 29 - 40

३६

बयांग मन्दिर अभिलेख

Bayang Temple Inscription

यह अभिलेख ट्रांग जिले में चाउडक के 15 मील दक्षिण-पश्चिम एक पहाड़ी पर उत्कीर्ण है । एक खड़े पत्थर के एक ही ओर यह खुदा हुआ है । इसमें शिवपुर के एक नये मन्दिर की नींव की बात है तथा राजा इन्द्रवर्मन के द्वारा धार्मिक दानों की भी चर्चा करता है । इस अभिलेख में 15 पद्य हैं जो सभी शुद्ध हैं ।

एम० बर्गेग्ने ने इस अभिलेख का सम्पादन किया है।[1]

नमश् शिवाय यो मूर्त्तिरप्यष्टतनुमिस् स्थितः ।
ततान भुवनं सर्व्वं कालाग्न्यन्तं शिवादिकम् ।। 1

VV 2 - 6 = Correspond respectively to verses 1,3,4,6, and 5 of No 55 of RCM

माद्यद्द्विषद्द्विरदकुम्भविल प्रवेश-

1. *ISC*, p.312

रक्तस् स्फुरत्कलफणस् स्फुटमौक्तिकोद्यैः ।
धारा प्रचण्डाधानो युधि यस्य चण्डो
दोर्द्दण्डचन्दनलतासिलतोरेजेन्द्रः ॥ 7
त्याग समाश्रुत पराक्रमशीलशौर्य्य-
प्रागल्भसत्व बल बुद्धिगुणोत्पन्नः ।
षाड्गुण्यवित् त्रिविधशक्तियुतो जितात्मा
योगान् जुगोप(म)नुवत् सुनयानज्ञः ॥ 8

VV 9 - 11 = Correspond respectively with verses 10,22 and 27 of No 55 of RCM.

तेन क्षितीश्वरशिरोधृतशासनेन
रत्नोज्जवलं ललित पत्रलता कलापम् ।
हैमं हिमादि वृतये तदिदं विमानम्
भक्तयार्धितं शिवपुरे परमेश्वराय ॥ 12
अन्यानि चोपकरणानि रणानिवृत्तो
हैमानि राजतयुतानि विराजितानि ।
चित्राणि स व्यदिशदस्य नवेन्दुमौत्वेः
पूजाविधौ परमधार्म्मिक राजसिङ्हः ॥ 13
दासादि पूरित पुराहृत वृत्ति सम्पत्-
सन्तर्प्पितातिथिजनादि स चैकवीरः ।
इन्द्राश्रमद्वयमिदं स तटाकवर्य्यं
भोगोपभोगपरिभोगयुतञ्चकार ॥ 14
ये श्रीन्द्रवर्म्मपरिकल्पि(तमेत)दीशे
लुम्पन्ति ते चिरतरन्नरके वसन्तु ।
ये तु प्रशस्तमतयः परिपालयन्ति
ते वान्धवैस् सह शुभाङ्गति(मा)प(नु)वन्तु ॥ 15

अर्थ–

उस शिव को नमस्कार है जिस मूर्ति ने भी आठ शरीरों से स्थित हो करके काल, अग्निपर्यन्त सभी भुवन को, शिव आदि को विस्तृत किया ॥ 1

V.V. 2 - 6 = Correspond respectively to verses 1,3,4,6

and 5 of No.55 of RCM.

मद से युक्त शत्रुरूपी हाथी के मस्तक के कुम्भरूपी बिल में प्रवेश करने से लाल फड़कती हुई फण वाला स्फुटित हुए, मोतियों के समूहों से धारा से प्रचण्ड दाँतोंवाला लड़ाई में जिसके प्रचण्ड दाँत है, बाहुदण्ड में चन्दन की लता के समान तलवाररूपी लता रखने वाला उरगेन्द्र है ।। 7

त्याग, क्षमा, वे दो शास्त्रों के श्रवण, पराक्रम, अच्छे स्वभाव, शूरता, ढिठाई, सत्व, बल, बुद्धि और गुणों से युक्त छः गुणों के ज्ञाता, तीन प्रकार की शक्तियों से युक्त आत्मा पर विजयी, जिसने योगों की रक्षा की, मनु के तुल्य सुन्दर नीति, अनीति का ज्ञाता था ।। 8

V.V. 9 -11= Correspond respectively with verses 10,22 and 27 of No.55 of RCM.

उसके द्वारा अर्थात् राजाओं के सिर से धारण किये हैं, शासन हैं जिसके रत्न के समान उज्ज्वल सुन्दर पत्रवाली लता का समूह है जिसमें ऐसे सुवर्ण से रचित विमान को तथा उस विमान को हिम आदि से आच्छादित शिवपुर में परमेश्वर के लिए भक्ति से समर्पित किया गया ।। 12

और अन्य उपकरणों को युद्ध से निवृत्त होने पर चाँदीयुक्त सुवर्णों को जो विशेष रूप से शोभनेवाले थे ऐसे चित्रों को इस शिव की पूजा की विधि में, उस परम धार्मिक राजा रूप सिंह ने समर्पित किया था ।। 13

भृत्य आदि से पूरित पुर से लायी हुई जीविका और सम्पत्ति से सम्यक् प्रकार से तर्पित अतिथिजन आदि उस एक वीर ने ये दो इन्द्राश्रम, श्रेष्ठ तड़ाग सहित भोग, उपभोग, परिभोगों से युक्त विधान किया ।। 14

जो श्री इन्द्रवर्मन से परिकल्पित इस महादेव के धन को लुप्त करें वे बहुत-बहुत काल तक नरक में बसें और जो प्रसिद्ध बुद्धिवाले सर्वतोभावेन इसका पालन करें, अपने बन्धु-बान्धवों के साथ कल्याणकारिणी गति प्राप्त करें ।। 15

37

प्रसत कोक पो अभिलेख

Prasat Kok Po Inscription

गकोर थोम के निकट पश्चिमी बारे के करीब एक मील उत्तर बसे हुए चार मन्दिरों के समूह का नाम 'प्रसत कोक पो' है । यह अभिलेख मन्दिर में संस्कृत तथा ख्मेर भाषाओं में खुदा हुआ है ।

संस्कृत-भाषा में उत्कीर्ण अभिलेख विष्णु की वन्दना से प्रारम्भ होता है । अभिलेख से हमें किसी पण्डित के परिवार की वंश-परम्परा का पता चलता है । यह जयवर्मन द्वितीय (802-850) को मनु के समान राजा बतलाता है । उसका प्रिय नाम भागवत कवि था तथा उसके पिता श्री स्वामी वेद, व्याकरण तथा दर्शनशास्त्र में पूर्ण पारंगत थे । इस बात की पुष्टि हमें इस अभिलेख के अध्ययन से होती है । राजा की ओर से उस पण्डित पुजारी को 'पृथिवीन्द्र पण्डित' की उपाधि तथा सोने की पालकी दी गयी थी । अभिलेख के ख्मेर-भाग में श्वेतद्वीप में श्री पुण्डरीकाक्ष को दिये गये दान का विस्तृत विवरण है ।

जॉर्ज सेदेस ने इसका सम्पादन किया है।[1]

---

1. *BEFEO*, Vol. XXXVII, p.387

सिद्धिः ।

नमोस्तु चक्रिणेचक्रं पाणौ यस्यातिलोहितम् ।
दैत्यकोपाग्निसंघातो दृप्तौ युद्ध इवादतः ॥ 1
भाति श्रीपुण्डरीकाक्षो योङ्घ्रि सौन्दर्य्यसम्पदा ।
विनापि योगज्जगतां साक्षादिम पुरःस्थितः ॥ 2
जितं श्रीकपिलाख्येण यस्येदं रूपमुत्रमम् ।
नृणां दृष्टिवतान्नित्यं हृदयान्तर संस्थितम् ॥ 3
आसीत् भूपो महावंशो वेदयुग्माद्रिराज्यमाक् ।
नाम्ना श्रीजयवर्म्मा यः ख्यातौ भूमौ मनुर्य्यथा ॥ 4
तस्यासीत् परमेशस्य योऽपि भागवतः कविः ।
अतिवल्लभतापन्नो विद्ययातिविशुद्धया ॥ 5
माननीयो गुरुः शास्ता विष्णुलोकः स्थितस्ययः ।
परमेश्वर पुत्रस्य राज्ञः श्रीजयवर्म्मणः ॥ 6
योपि श्रेष्ठपुरे धर्म्मपूर्ण्णे धर्म्मेण निर्म्मिते ।
पारम्पर्य्येण संप्राप्तमातृवंशोदयोभवत् ॥ 7
श्रीस्वामी यस्य च पिता वेदव्याकरणोत्तम : ।
तर्क्काभिपारगो विप्रो ब्रह्मैवेकं मुखन्दधत् ॥ 8
पृथिवीन्द्रपण्डिताख्यां दत्तान्तेन श्रियोज्ज्वलां विभवैः ।
निर्ज्जित सकल कवि वृषो यो यातः स्वर्णदोलाद्यैः ॥ 9
इष्टस्थापकदत्तैर्ग्रहमुनितुरगैरतिष्ठिपत् प्रतिमाम् ।
शुचिशशिदिने हरेश्चन्द्रग्रहणे यः श्रीनिवासकविः ॥ 10
तस्यैवभागिनेयी दुहितरि यः श्री जयेन्द्रवर्म्माख्यात् ।
आचाररुचिरचरितो भागवतोभूत् अमृतगर्भः ॥ 11
यः स्वर्गते गुरौ स्वे वंश्ये गुववित्त बुद्धिचारित्रैः ।
....मतिनिधिर्भवत् कर्त्तुमनेक क्रियां धर्म्मर्याम् ॥ 12
.............न्ये तत्र युवापीष्टमिष्टकाग्राम् ।
...............म इवोत्थितामिदंस्थिरं भक्तेः ॥ 13
यज्ञा(ι)...............इष्टकायां शराम्बराष्टशाके ।
याः कृत्वा......यं हरेरतिष्ठिपद् भूयः ॥ 14

तस्यैव भागि..............केशवोमृतोयूतम् ।
इज्याशिलौ गुणिनौ प्रहारसहौ मतौ राज्ञाम् ॥ 15
सौदर्य्यो स्थिरभाग्यौ स्थिरकरुणौ भूभृतां स्थिरप्रज्ञौ ।
वंशयस्य पुण्यवृद्धौ कृतरक्षौ सर्व्वहिंस्त्रेभ्यः ॥ 16

अर्थ–

सिद्धि प्राप्त हो । उस विष्णु को नमस्कार है जिसके हाथ में अतिशय लाल चक्र सोहता है, दैत्यों के क्रोध रूप अग्नि समूह युद्ध के समान लाया हुआ ॥ 1

शोभते हैं वे कमल के समान आँखोंवाले विष्णु भगवान् जो अपने चरण के सौन्दर्य रूप सम्पत्ति से बिना योग के भी चौदहों भुवनों के मानों आगे ही स्थित हैं ॥ 2

जिनका यह उत्तम रूप भी कपिल नामक के द्वारा जीता गया है। दृष्टिवाले विद्वान् लोगों के नित्य हृदय के अन्दर सम्यक् तथा स्थित है जो मूर्ति ॥ 3

बड़े कुलवाला राजा था जो एक सौ चौबीस राज्यों का स्वामी था तथा जो जयवर्मन नाम से प्रसिद्ध था और पृथिवी पर मनु के समान प्रसिद्ध था ॥ 4

उसके उस राजा के जो भी भगवद्भक्त कवि थे अतिशय प्रिय हुए अपनी अतिशय विशुद्ध विद्या द्वारा राजा के अतिशय प्रिय हुए थे ॥ 5

परमेश्वर के पुत्र राजा श्रीजयवर्मन के विष्णुलोक में स्थित होने पर याने स्वर्गीय होने पर माननीय गुरु शासक हुए थे ॥ 6

जो भी वह धर्म से पूर्ण धर्म से निर्मित श्रेष्ठपुर में परम्परा से प्राप्त माता के वंश का उदय करने वाला हुआ ॥ 7

जिसके पिताजी श्रीस्वामी जो वेद और व्याकरण में उत्तम ज्ञाता थे, तर्कशास्त्र की सभी विधाओं में पारंगत थे, ब्राह्मण थे । एक ही ब्रह्म है दूसरा नहीं, ऐसी बात बराबर मुख में रखते थे ॥ 8

'पृथिवीन्द्रपण्डित'– इस उपाधि को उसके द्वारा दिये गये विभवों से श्रीलक्ष्मी और शोभा से उज्ज्वल उपाधि को प्राप्त थे जिनने सभी कवि रूप विद्वानों को जीत लिया था तथा जो सुवर्णरचित डोले पर चलनेवाले थे ॥ 9

जिस श्रीनिवास कवि ने इष्ट की स्थापना करनेवाले के द्वारा 779

शकाब्द में प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी ।। 10

उसकी ही बहन की बेटी की बेटी जो श्री जयेन्द्रवर्मन नामक आचार्य से सुन्दर चरितवाला भगवान् का भक्त अमृतगर्भ हुआ ।। 11

जो अपने गुरु के स्वर्गीय होने पर अपने वंश में उत्पन्न गुण, धन, बुद्धि और सुन्दर चरितों से बुद्धि का ख़ज़ाना हुआ अनेक धार्मिक क्रियाओं के करने के लिए ।। 12

जो वहाँ जवान भी इष्टरूप ईंटों के अग्रभाग को..........म...........के समान उठे हुए इस भक्ति से स्थिर को............।। 13

जिस राजा ने इष्टियों में यज्ञ करके जिन भगवान् हरि की स्थापना की ।। 14

उस राजा केशव की मृत्यु हो जाने के बाद उसके दोनों भांजे जो सहोदर भाई थे, यज्ञ करनेवाले थे, गुणवान्, प्रहार सहन करनेवाले शक्तिशाली, राजा के मन्त्री थे, अचल भाग्यशाली, दृढ़ करुणामय थे, राजाओं में उच्च अध्यात्म ज्ञानसम्पन्न कुल के पुण्य को बढ़ानेवाले तथा शत्रुओं से रक्षा करनेवाले थे ।। 15-16

बान बंग के अभिलेख

Ban Bung Ke Inscription

आज यह अभिलेख थाईलैण्ड के उबोन प्रान्त के बान बंग नामक ग्राम में प्राप्त एक खड़े पत्थर पर शिलालेख के रूप में मिलता है। इस अभिलेख में शक संवत् 808 (886 ईस्वी) में सोमादित्य के द्वारा त्रैलोक्यनाथ की पत्थर मूर्ति की स्थापना का वर्णन है । यह एक बौद्ध देवता की मूर्ति है । यह अभिलेख दान देनेवाले के पिता के मोक्ष के लिए विभिन्न प्रकार के खेतों, बागीचों, नौकरों और भैंसों से दान की भी चर्चा करता है । इस अभिलेख का राजनीतिक महत्त्व इस बात में पाया जाता है कि यह राजा इन्द्रवर्मन की शासकीय क्षेत्र की सीमा को डांगरोक पर्वत के उस पार तक विस्तृत कर देता है ।

इस अभिलेख का विस्तृत विवरण हमें BEFEO, Vol. XXII, p.63 में मिलता है ।

मूर्त्तिर्व्योमाष्टभूते शकपतिसमये कल्पिते भूमिभागे
सोमादित्यस् स...........फलजनितश् श्रीन्द्रवर्मावनीशे ।

मोक्षायास्थापयद् यो जननमरगतेस् संप्रवृद्धाय नृणां
मूर्त्रीन् त्रैलोक्यनाथं सकलमुनिपतेस् संज्ञया शैलरूपीम् ॥ 1
क्षेत्रारामं -भृत्यमहिषानि च यद् धनम् ।
दत्तन्तस्म मुनीन्द्राय तत्तेन पितृमुक्तये ॥ 2
सुवर्णरजतादीनि रत्नानि विविधानि च ।
कंसताम्रा - - नि दत्तान्येतानि सर्व्वशः ॥ 3
विना पुण्याश्रय ..... तत् मूर्खाश्च हरन्ति ते ।
क्रमिका - श ऋद्धानां योनिं यान्तु सवान्धवाः ॥ 4
ये ये कुर्वन्ति वृद्धाय देवद्रव्याणि यत्नतः ।
ते ते दिव्यसुखापन्नाः स्मृद्धयन्तु विविधोदयैः ॥ 5
- - - श्रमण ब्राह्मणादयः ।
- - - - यथा विभववांस् सुखम् ॥ 6
सर्व्व - - - भवगत्यनवस्थिताः ।
अनेन पुण्यविधिना सुखैकान्तं लभन्तुते ॥ 7

अर्थ–

801 शकाब्द में कल्पित भूमि भाग में चन्द्र सूर्य फल से उत्पन्न श्रीइन्द्रवर्मन राजा के रहने पर मोक्ष के लिए स्थापित किया, मानवों के जन्म-मरण गति की वृद्धि के लिए त्रैलोक्यनाथ को सभी मुनियों के स्वामी की संज्ञा से पर्वत रूपी को स्थापित किया ॥ 1

खेत, वाटिका.........नौकर और भैंसे जो धन दिये गये उस मुनीन्द्र को सो उसके द्वारा अपने पितरों की मुक्ति के लिए ॥ 2

बहुत सोने-चाँदी आदि और रत्न अनेक प्रकार के कंसताम्रा..........इतने सब कुछ सभी प्रकारों से दिये गये ॥ 3

बिना पुण्य के आश्रय से .... जो मूर्ख हैं वे हरते हैं, वे बान्धव सहित खराब योनि में वे जायें ॥ 4

जो-जो व्यक्ति देव द्रव्यों की वृद्धि के लिए कार्य करें, वे सुन्दर सुखों से युक्त होकर विविध उदयों से समृद्ध हों ॥ 5

.........श्रमण और ब्राह्मण आदि........यथा विभववालों को वैसे स्थित थे सुखी थे ।। 6

............सर्व...........संसार की गति से नहीं अवस्थित थे । इस पुण्य विधि से एकान्त सुख वे पावें ।। 7

39

प्रह बट के खड़े पत्थर अभिलेख

Prah Bat Stele Inscription

कोन प्री या चुंग प्री जिला में प्रह बट नाम का यह स्थान बसा हुआ है । वहाँ की प्रचलित वर्णमाला में यह शिलालेख खड़े पत्थर में ही एक ओर उत्कीर्ण है । उस पत्थर की दूसरी तरफ़ यह उत्तरी भारतीय लिपि में दुहराया गया है । इस शिलालेख का विषय एक सा है । निस्सन्देह अन्तिम पंक्ति समसामयिक कम्बुज-वर्णमाला में लिखा गया है ।

प्रारम्भ में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव देवताओं की आराधना की गयी है। इसके पश्चात् राजा यशोवर्मन की वंश-परम्परा प्रारम्भ होती है। उनके पिता के द्वारा इन्द्र तड़ाग नामक एक तालाब तथा स्वयं राजा के द्वारा यशोधर तटाक नामक दूसरे तालाब की खुदाई की चर्चा इसमें है । राजा ने गणेश देवता के उपलक्ष्य में चन्दन पर्वत पर 'यशोधराश्रम' नाम के एक विहार की भी स्थापना की । शेष अभिलेख में उस विहार को नियमित रूप में चालू करने के लिए नियमों की चर्चा है । विभिन्न इलाकों में पाये गये 11 खड़े पत्थरों पर यही बात दुहरायी गयी है ।

आर०सी० मजूमदार का मत है कि राजा ने जहाँ से पत्थर पाये हैं, उन सभी स्थानों पर यशोधराश्रम की स्थापना की गयी होगी ।[1]

यद्यपि ये शिलालेख ज्यादा ऐतिहासिक महत्त्व के नहीं हैं तथापि वे राजकीय परम्परा से हमें अवगत कराते हैं । उन सभी 11 स्थानों में, जहाँ खड़े पत्थर पाये गये हैं, आश्रम थे, लेकिन उन आश्रमों के सम्बन्धित देवी-देवताओं की पहचान नहीं दी गयी है । इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः ये स्वतन्त्र थे ।

संस्कृत के कुल 50 पद्य हैं जो सभी शुद्ध एवं स्पष्ट हैं । पद्य-संख्या 1, 17 से 50 अनुष्टुप, पद्य-संख्या 2, 4, 7 एवं 8 वसन्ततिलक, पद्य-संख्या 3, 5, 9 से 12, 14 एवं 15 उपजाति, पद्य-संख्या 6 उपेन्द्रवज्रा, पद्य-संख्या 13 इन्द्रवज्रा एवं पद्य-संख्या 16 मन्दाक्रान्ता है ।

सर्वप्रथम बार्थ ने इसका सम्पादन किया था ।[2]

उत्पत्तिस्थित सङ्घारकरणञ्जगतां पतीन् ।
नमन्तु मन्मथारातिमुरारि चतुराननान्
आसीदनिन्दितपुरेश्वरवङ्शजातश्
श्रीपुष्कराक्ष इति शम्भुपुराप्तराज्यः ॥ 1
राज्ञो महेन्द्रगिरिमूर्द्धकृतास्पदस्य ।
मातुः स्थिरस् समिति मातुलमातुलो यः ॥ 2
तद्वङ्शजो व्याधपुराधिराज-
सन्तानसंपादितमातृवङ्शः ।
राजेन्द्रवर्म्मेति गुणैकराशि-
रवाप यश् शम्भुपुरेपि राज्यम् ॥ 3
तस्याकलङ्कतुहिनाङ्शुविशुद्धकीर्त्तेः
पुत्रो बभुव नृपतिर्नृपतीन्द्रदेव्याम् ।
यो दृप्मशत्रुभुजगेन्द्रभुजङ्गशत्रु-
प्र्योधाग्रणीर्य्युधि महीपतिवर्म्मनामा ॥ 4

1. *IK*, p.75
2. *ISC*, p.355

अथ द्विजोऽगस्त्य इत्ति प्रतीतो
यो वेदवेदाङ्गबिदार्य्यदेशे ।
लब्धोदयो या महिषीद्धवङ्शा
यशोमतीति प्रथिता यशोभिः ॥ 5
सुतस्तयोर्य्यो युधि दुर्म्मदश् श्री-
नरेन्द्रवर्म्मेति नरेन्द्रवर्य्यः ।
महीपतेस्तस्य सुतेव लक्ष्मी-
र्न्नरेन्द्रलक्ष्मीरिति या वभूव ॥ 6
तस्यामरिद्विरदराजमृगाधिपेन
जन्येषु राजपतिवर्म्मनराधिपेन ।
राजेन्द्रदेव्यमरगर्भनिभोदपादि
या दिङ्मुखावलिविकीर्ण्णविशुद्धकीर्त्तिः ॥ 7
तस्यामजीजनदनेकनरेन्द्रसिङ्ह-
वङ्शोदयाय स महीपतिवर्म्मदेवः ।
देवीमनुत्तमबपुश्श्रियमिन्द्रदेवीं
दुग्धाब्धिधौतयशसन्तपतीमिवार्कः ॥ 8
अथाभवत् तस्य महेन्द्रशैल-
कृतस्थितेश् श्रीजयवर्म्मनाम्नः ।
नरेन्द्रवृन्दारकवन्दिताङ्घ्रे-
स् सूर्य्यद्युतिस् सूनुरनूनवीर्य्यः ॥ 9
महीपतिश् श्रीजयवर्द्धनो यो
गर्भेश्वरश् श्रीजयवर्द्धनाख्यः ।
राज्यस्थितश् श्रीजयवर्म्मनामा
महामहीपालशिरोधृताङ्घ्रिः ॥ 10
तस्याधिराजो जननीजनन्या
जघन्यजो जय्यपराक्रमो यः ।
रुद्रैकचित्तो रणरौद्रकर्म्मा
श्रीरुद्रवर्म्मेति विशुद्धधर्म्मा ॥ 11
तद्भागिनेयो गुणरत्नसिन्धु-

र्व्वसुन्धरादोहविदग्धबुद्धि ।
पृथूपमो यः पृथिवीन्द्रवन्द्यः
पृथ्वीपतिश् श्रीपृथिवीन्द्रवर्म्मा ॥ 12
राजन्यवङ्शाम्बरचन्द्रलेखा
श्रीरुद्रवर्म्मावनिपालकन्या ।
राज्ञी सती श्रीनृपतीन्द्रवर्म्म-
पुत्र्यास् सुता या सुरसुन्दरीव ॥ 13
तयोः कुमारोऽरिकरीन्द्रसिङ्हो
नृसिङ्हवन्द्यो नरसिङ्हदृप्तः ।
गो दिङ्मुखप्रेङ्खदखण्डकीर्त्ति-
र्य्यश् श्रीन्द्रवर्म्मा सकलां वभार ॥ 14
शिलामये वेश्मनि लिङ्गमैशं
श्रीन्द्रेश्वराभिख्यमतिष्ठिपद् यः ।
ईशस्य देव्याश्च समं पद[1]र्च्चा-
श्चखान च श्रीन्द्रतटाकमनोरम् ॥ 15
तेनैतस्यामवनिपतिना श्रीन्द्रदेव्यां महिष्यां
निश्शेषाशावितततयशसा तेजसामेकराशिः ।
भूभृत्पुत्र्यामिव पुरभिदोत्पादितः कार्त्तिकेय-
श् शक्तिं विभ्रद्रिपुकुलभिदं श्रीयशोवर्म्मदेवः ॥ 16
उत्तुङ्गान्युत्तमाङ्गानि वृद्धान्यन्यत्र भूभृतः ।
अत्युत्तुङ्गत्वमिच्छन्तोऽकुर्व्वन्यच्चरणाम्बुजैः[2] ॥ 17
गुरुस् सूरिवरैस् सर्व्वेर्व्वरस्त्रीभिर्म्मनोभवः ।
महेन्द्रो धरणीनाथैर्य्य एकोप्येवमीरितः ॥ 18
दैत्येन्द्रवक्षोनिर्भेदविद्यामिव गदाभृता ।
शिक्षितश् शीघ्रहस्तो यो युद्धोदृप्तद्विपद्धतौ ॥ 19
दग्धाङ्गस्याप्यनङ्गस्य स्थितं सौन्दर्य्यजं यशः ।

---

1. Read पङ्च्चा
2. ०म्बुजे would give better sense.

तद्दग्धुमिव[3] रुद्रेण यो नु कान्ततमः कृतः ॥ 20
यस्य भ्रमति सर्व्वत्र यशश्चन्द्राङ्शुनिर्म्मलम् ।
प्रतापशोषणभयाद् दुग्धाब्धिरिव दिङ्मुखे ॥ 21
यस्याध्वरानलोद्धूत[4] धूमधूपितमम्बरम् ।
नीलोत्पलदलश्यामन् नूनमद्यापि दृश्यते ॥ 22
यस्य तेजोनयवपुस्त्यागदिग्यौवनश्रियः ।
क्षमोत्साहगुणाश्लाघायशोधर्म्मध्यलङ्कृताः ॥ 23
येन वर्द्धितधर्म्मेण दधता वसुधोद्धृतिम् ।
माधवेनेव विध्वस्तः क्काप्यधर्म्मः प्रधावति ॥ 24
खड्गास्खलितपातेन पुनर्म्मिश्राङ्गखण्डनात् ।
सुस्थिताद् येन नान्यो द्विड् द्विरुच्छिन्नोऽपतद्युधि ॥ 25
यं वीक्ष्य विस्मयो धातुरितीवायं प्रजापतिः ।
आत्मनः प्रतिसृष्टो मे किमभूत् परमेश्वरः ॥ 26
द्वाभ्यामवार्य्यवीर्य्याभ्यान्नाथवद्विष्टपद्वयम् ।
लोकोऽयञ्जयिना येन महेन्द्रेण त्रिविष्टपः ॥ 27
भूरिरत्नसुवर्ण्णादिदक्षिणानां सुदक्षिणः ।
कोटिहोमादियज्ञानामाहर्त्ता यो महीपतिः ॥ 28
वसुधैकपुरे यस्य बाहुप्राकारपालिते ।
नोद्योगो योगिनां शान्तौ केवलं धन्विनामपि ॥ 29
येन तुल्यं भवेद्वक्त्रमेकस्यापि पुरा यदि ।
मुखोपमानताञ्श्चन्द्रो नानीयेत विपश्चिता ॥ 30
समरे यं समुद्वीक्ष्य दुर्म्मदारातिमण्डलम् ।
दुस्सहं मस्तकाम्भोजै रविरित्यभ्यपूजयत् ॥ 31
चतस्रश् शिवयोरर्च्चा यश् श्रुतीरिव पावनीः ।
द्वीपे श्रीन्द्रतटाकस्य पितृभूत्यै समं व्यधात् ॥ 32

---

3. Bergaigne has amended it as दग्धमिव, but the text, as it is, gives better sense.
4. Bergaigne has amended it as ०नलोद्धत, but the text, as it is, gives better sense and metre.

दीर्घवृत्तोरुकठिनं स्वभुजस्पर्द्धयेव यः ।
लोहमेकासिपातेन त्रिखण्डं समखडयत् ॥ 33
यस् सव्यदक्षिणक्षिप्तशरो हरिसुहृद् युधि ।
एको गोग्रहणे वीरो जहार विजयश्रियम् ॥ 34
यशश्चन्द्रदमक्षोभं कम्बुजेशान्वयाम्बरे ।
यशोधरतटाकाख्यं यश्चकार पयोनिधिम् ॥ 35
यशोधराश्रमे दत्ते श्रीमतीन्द्वेकमूर्त्तिभिः ।
चन्दनाद्रिगणेशाय शासनं स व्यधादिदम् ॥ 36
रत्नकाञ्चनरूप्यादिगवाश्वमहिषद्विपाः ।
नरनार्य्यो धरारामा यानि चान्यानि कानिचित् ॥ 37
तानि सर्व्वाणि दत्तानि श्रीयशोवर्म्मभूभुजा ।
स्वाश्रमेऽस्मिन्नहार्य्याणि राज्ञापि किमुतेतरैः ॥ 38
राजकुट्यन्तरे राजद्विजातिनृपसूनवः ।
विशेयुरत्र निर्दोषन् त एवाभरणान्विताः ॥ 39
तदन्यस्तु स सामान्य जनो नोद्धतवेषणः ।
नन्द्यावर्त्त विना पुष्पन्न मालादिविभूषितः ॥ 40
कर्ण्णभूषां बिना तन्वीं न हैमं भूषणं भजेत् ।
भोज्यानि नैव भुञ्जीत न खादेत् क्रमुकन्तथा ॥ 41
कलहन्न च कुर्व्वीत सामान्यो न विशेदपि ।
दुश्शीला यतयस् सर्व्व न शयीरन् कदाचन ॥ 42
ब्राह्मणा वैष्णवाश शैवा जनाश् शिष्टाश्च शीलिनः ।
शयीरन् सर्व्व एवैते जपध्यानसमन्विताः ॥ 43
अन्तरेणैव राजानं पुरस्तादागतौ[1] बहिः ।
परा नाच्छादितश्छत्रैर्य्यानादवतरेदपि ॥ 44
आश्रमे यः कुलपतिर्न्नियुक्तस्तापसोत्तमः ।
तेनान्नपानक्रमुकैराचारैः प्रश्रयादिभिः ॥ 45
अतिथीनान् द्विजादीनां भूपालसुतमन्त्रिणाम् ।

1. ०गतो gives a better meaning.

बलाधिपानां शैवानां वैष्णवानान्तपस्विनाम् ॥ 46
श्रेष्ठानां मनुजानाञ्च सामान्यानां प्रयत्नतः ।
यथाक्रमं विधातव्यं सर्व्वदा परिपूजनम् ॥ 47
कल्पितं ये विलुम्पेयुल्लङ्घयेयुश्च शासनं ।
ते यान्तु नरकं यावत् स्थितौ चन्द्रदिवाकरौ ॥ 48
अनुकुर्य्युरिदं ये तु शासनं परिकल्पितम् ।
वर्द्धयेयुश्च पुण्यस्य फलार्द्धं प्राप्नुवन्तु ते ॥ 49
अम्बुजेन्द्रप्रतापेन कम्बुजेन्द्रेण निर्म्मितम् ।
अम्बुजाक्षेण तेनेदं कम्बुजाक्षरमाख्यया ॥ 50

अर्थ–

जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार के कारणीभूत जगत्पति कामशत्रु भगवान् शिव, मुरशत्रु भगवान् विष्णु (कृष्ण) और चतुर्मुख ब्रह्मदेव को नमस्कार करनेवाले अनिन्दितपुर के महाराजा के वंश में उत्पन्न श्री पुष्कराक्ष नामक राजा थे जिन्होंने शम्भुपुर का राज्य भी प्राप्त किया था ॥ 1

महेन्द्रगिरि शिखर पर जिसने अपने को स्थापित किया तथा जिसकी माता का मामा का मामा जो युद्ध में धीर था उसके वंश में उत्पन्न, मातृवंश से व्याधपुर राज्य प्राप्त गुणों की खान राजेन्द्रवर्मन नाम का था जिसने शम्भुपुर का राज्य भी प्राप्त किया ॥ 2-3

उस कलंकहीन चन्द्रमा के समान विमल कीर्तिवाले राजा की पत्नी नृपतीन्द्र देवी से एक पुत्र हुआ जो शक्तिशाली सर्प राजाओं के समान शत्रुओं के लिए सर्पशत्रु गरुड़ ही था तथा युद्ध में योद्धाओं का अग्रणी था, उसका नाम महीपतिवर्मन था ॥ 4

अगस्त्य नामक ब्राह्मण, जिसने देश में वेद-वेदाङ्ग का प्रसार किया था, उसके महान् कुल में उत्पन्न उनकी महारानी यशोमती, जो अपनी विस्तृत कीर्ति के कारण ही यशोमती थी ॥ 5

उन दोनों का युद्ध में अपराजेय पुत्र राजाओं में श्रेष्ठ नरेन्द्रवर्मन था । उन्हीं महाराज महीपतिवर्मन को पुत्र के समान तथा लक्ष्मी के समान पुत्री

नरेन्द्रलक्ष्मी हुई ।। 6

उसी नरेन्द्रलक्ष्मी देवी से गजेन्द्ररूपी शत्रुओं के विनाशकर्ता सिंह के समान महाराज राजपतिवर्मन ने राजेन्द्र देवी को जन्म दिया जो देवमाता के गर्भ की उत्पाद के समान थी तथा जिनका विशुद्ध यश चारों दिशाओं में फैला हुआ था ।। 7

उन्हीं देवी (नरेन्द्रलक्ष्मी) से महाराज महीपतिवर्मन ने वंश-विस्तारार्थ राजाओं में सिंह के समान अनेक राजपुत्रों को जन्म दिया तथा इन्द्रदेवी नाम की एक कन्या को, जो क्षीरसागर के क्षीर से धोयी गयी सी प्रतीत होती थी तथा यश विस्तार के कारण जो तपते हुए सूर्य के समान प्रतीत होती थी, जन्म दिया ।। 8

इस प्रकार महेन्द्र पर्वत पर निवास करते हुए महीपतिवर्मन के महाशक्तिशाली पुत्र जयवर्मन उत्पन्न हुए । सूर्य के समान तेजस्वी जयवर्मन के चरणों की वन्दना राजागण और देवतागण भी करते थे ।। 9

महाराज श्रीजयवर्मन जन्म से जयवर्द्धन नाम के थे परन्तु राज्यारोहण होने पर जयवर्मन कहे गये, जिनके चरणों पर बड़े-बड़े राजा अपना मस्तक रखते थे ।। 10

उन अधिराज महाराज जयवर्मन की नानी का सबसे छोटा पुत्र श्री रुद्रवर्मन नाम के थे जो युद्धभूमि में घोर पराक्रमी (भयानक) योद्धा थे तथा जो भगवान् रुद्र के अनन्य भक्त तथा शुद्ध धर्माचरण वाले थे ।। 11

उनकी बहन का पुत्र (भगिना) गुणरूपी रत्नों से भरे रत्नसागर के समान, व्युत्पन्न मतिवाले तथा सम्पूर्ण पृथिवी का दोहन करनेवाले महाराज पृथु के समान महान् पराक्रमी एवं राजाओं से वन्दित महाराज पृथिवीन्द्रवर्मन थे ।। 12

राजकुलरूपी आकाश में चन्द्रलेखा के समान श्री रुद्रवर्मन की पुत्री थी । उनकी सती रानी नृपतीन्द्रवर्मन की बेटी की देवाङ्गनाओं के समान सुन्दरी बेटी थी ।। 13

इन दोनों राजा-रानियों से उत्पन्न राजकुमार, जो शत्रुरूपी हाथियों का संहारक सिंह के समान था तथा भगवान् नृसिंह के समान तेजस्वी एवं सभी दिशाओं में अखण्ड कीर्ति फैलानेवाला था, जिसका नाम श्री इन्द्रवर्मन था ।। 14

इन्हीं श्री इन्द्रवर्मन ने पत्थरों से बने मन्दिर में श्रीन्द्रेश्वर नामक शिवलिङ्ग की स्थापना की थी । महाराज श्री इन्द्रवर्मन एवं महारानी ने समान भक्तिभाव से भगवान् शिवजी की आराधना की तथा श्रीन्द्रतालाब खुदवायी और आश्रम बनवाए ।। 15

उन्हीं महाराज श्री इन्द्रवर्मन जिनके निर्बाध यश-विस्तार से दिशाओं का तेज एकराशि हुआ था । उन्होंने अपनी पटरानी से, जो राजपुत्री थी, सभी बन्धनों से मुक्त प्रथित यशवाली पर्वतराज पुत्री पार्वतीपुत्र असुरपुर विनाशक कार्तिकेय के समान श्री यशोवर्मन नामक पुत्र उत्पन्न किया जो शक्तिशाली शत्रुओं का भी विनाशक हुआ ।। 16

दूसरे स्थानों के उन्नत मस्तकवाले बड़े वृद्ध राजागण और अधिक उन्नत होने की इच्छा से उनके चरणकमल में नत हो रहे थे ।। 17

सभी विद्वानों ने जिन्हें गुरु मान लिया था तथा सभी श्रेष्ठ नारियों द्वारा जिन्हें कामदेव मान लिया गया था, उन्हें सभी महाराजाओं द्वारा एकछच्त्र जगत्पति सम्राट् मान लिया गया ।। 18

दैत्यराज की छाती फाड़नेवाली, गदाधारिणी महाविद्या की तरह जो गदाधारी था तथा जिसने हस्तलाघव की शिक्षा प्राप्त कर ली थी, उसके द्वारा युद्ध में उग्र शत्रु भी मार गिराये गये ।। 19

भस्म हुए कामदेव के बचे रह गये सौन्दर्य यश को भी मानो जला देने की इच्छा से ही भगवान् शिव ने इसका सुन्दरतम रूप बनाया ।। 20

जिसके यश चन्द्रमा की किरणें सर्वत्र घूम रही थीं, अतः प्रताप शोषण के भयजनित वैवर्ण्य के कारण दिशाओं का मुख क्षीरसागर के समान सफेद हो गये थे ।। 21

जिसकी यज्ञाग्नि से उत्पन्न धूम से धूपित आकाश आज भी नीलकमल दल के समान नीला बना हुआ है ।। 22

जिसका तेजस्वी न्यायशरीर त्याग से भूषित होकर दिशाओं का यौवन सौन्दर्य बना हुआ था, उसका धर्म क्षमा, उत्साह, यश आदि उत्तम गुणों से सुशोभित था ।। 23

जिसके अभिवृद्ध धर्म के द्वारा पृथिवी को धारण करने के बाद अधर्म उसी प्रकार अपने लिए जगह खोजने लगा जिस प्रकार कृष्ण के द्वारा विध्वंस किये जाने पर भागा था ।। 24

युद्ध में उसके खड़े होने पर उसके तलवार के वार से और कोई नहीं अपितु उसके शत्रु का शरीर दो टुकड़े होकर गिर पड़ा ।। 25

जिसे देखकर चकित ब्रह्मा सोचने लगे क्या यह प्रजापति या प्रजाओं का स्वामी मेरी ही प्रतिसृष्टि (प्रतिकृति) है अथवा क्या स्वयं परमात्मा का अवतार है ।। 26

इन्द्र और इस राजा की अनिवार्य शक्ति के कारण दोनों लोक सनाथ हुए । यह भूलोक इस लोक जयी राजा के कारण तथा इन्द्र के कारण स्वर्ग ।। 27

जो राजा (पृथिवीपति) दाक्षिण्यादि गुणयुक्त वह बहुत से सुवर्ण-रत्न दक्षिणावाले एक करोड़ यज्ञों का कर्ता भी हुआ था ।। 28

सम्पूर्ण पृथिवी एक नगर की भाँति उसकी भुजारूपी सीमा में पालित होते रहने पर योगियों की साधना नहीं रुकी, अवश्य ही धनुर्धारियों का काम बन्द हो गया ।। 29

पहले यद्यपि एकमात्र जिसके मुख की समता चन्द्रमा से बतायी गयी, परन्तु बाद में पण्डितों ने चन्द्रमा में उसके मुख की उपमानता नहीं पायी ।। 30

मतवाले शत्रु समूह युद्ध में जिसे देखकर उसके तेज को सहन न कर पा सकने के कारण उसे साक्षात् भगवान् सूर्य ही समझकर मस्तकरूपी कमल के फूलों से उसकी पूजा की ।। 31

श्रीन्द्र तालाब के द्वीप में स्थापित दोनों शिवलिङ्गों की समान भाव से पितरों की पुण्य-वृद्धि के लिए चारों पूजाएँ की जो पूजा वेदों के समान पवित्र कर देनेवाली थी ।। 32

जो युद्ध दायें हाथ से दाहिने ओर बाण चलाकर हरिहर के समान था तथा जगत् मण्डल में एकमात्र वीर था, वह जयलक्ष्मी का अपहरण कर लिया ।। 33

लम्बी, गोल और कठिन अपनी जंघा से ही स्पर्धा करनेवाली भुजाओंवाला वह तलवार के एक ही वार से ही एक लोहे को तीन बराबर टुकड़े में काट दिया ।। 34

जिसका यशरूपी उपराग रहित चन्द्रमा कम्बुज राजवंशरूपी आकाश में विचरण करता था, उसने यशोधर तालाब को क्षीरसागर के समान बनवाया ।। 35

यशोधर आश्रम में स्थित चन्दनाद्रिगणेश के लिए चन्द्रमा के मूर्तिभूत श्रीमान् महाराज यशोवर्मन द्वारा दान किये गये पदार्थों के लिए यह राज्यादेश घोषित किया गया ।। 36

रत्न, सोना, चाँदी, घोड़े, महिष, हाथी, नर-नारी (दास-दासी), ज़मीन, बगीचा और जो कुछ भी है ।। 37

वे सब महाराज यशोवर्मन द्वारा अपने इस आश्रम को दान में दिये गये हैं, उसे दूसरे राजाओं द्वारा चाहे वे अपने ही उत्तराधिकारी ही क्यों न हों, उनके द्वारा न लिया जाये ।। 38

राज आँगन में राजा, ब्राह्मण और राजकुमार जो निर्दोष हो आभूषणाभूषित प्रवेश पावें ।। 39

इनके अतिरिक्त अन्य सामान्यजन उद्धत वेष में, अप्रदक्षिण तथा फूलमाालादि से विभूषित प्रवेश न पावें ।। 40

नारियाँ कर्णाभूषण या स्वर्णाभूषणभूषित प्रवेश न पावें । भोज्य पदार्थ यहाँ न खाये जायं । पान-सुपारी भी न चबाये जायं ।। 41

यहाँ सामान्य जन हों या विशिष्ट लोग हों, आपस में कलह न करें । भ्रष्ट संन्यासी तथा सामान्य– सभी लोग यहाँ सोवें ।। 42

ब्राह्मण, वैष्णव, शैव, शिष्टजन, शीलवान् पुरुष यहाँ विश्राम करें तथा वे सब भी जो जप-ध्यान में लगे रहते हैं ।। 43

दूर से आये हुए राजागण सामने आने पर छत्र न लगावें और वाहन से भी नीचे उतर जायें ।। 44

आश्रम में उत्तम तपस्वी, जो कुलपति पद पर नियुक्त हैं, वे भी

खान-पान, सुपारी खाने के आचार नियमों का पालन करें। उसको बढ़ावा दें तथा आश्रम में आश्रितों द्वारा भी पालन करावें ।। 45

अतिथियों, ब्राह्मणों, राजपुत्रों, मन्त्रियों, सेनापतियों, शैवों, वैष्णवों, श्रेष्ठ मनुष्यों और सामान्य जनों को सदा ही प्रयत्नपूर्वक क्रमानुसार पूजा करनी चाहिए ।। 46-47

दान किये गये पदार्थों का जो हरण करें या इस राजादेश का उल्लंघन करें, वे चन्द्र-सूर्य की स्थिति तक नरकवासी हों ।। 48

जो इस राजाज्ञा का पालन करेंगे तथा दान की रक्षा करेंगे, उनकी पुण्यवृद्धि होगी तथा इस दान के फल का आधा प्राप्त करेंगे ।। 49

भगवान् कमलेश विष्णु की कृपा से कम्बुजेश्वर यशोवर्मन द्वारा यह निर्मित हुआ तथा राजादेश को अम्बुजाक्ष कम्बुज लिपि में लिखा या व्याख्यायित किया ।। 50

40

लोले-अभिलेख

Loley Inscription

गकोरवाट से लगभग 10 मील दक्षिण-पूर्व में लोले बसा हुआ है। मन्दिर के एक बड़े पत्थर के दोनों ओर यह अभिलेख उत्कीर्ण है। पूर्व के समान ही दोनों तरफ एक ही प्रकार का विषय लिखा है : एक ओर प्रचलित लिपि में और दूसरी ओर उत्तरी भारतीय वर्णमाला में।

यह अभिलेख भगवान् शिव की वन्दना से प्रारम्भ होता है और उसके बाद राजा यशोवर्मन की वंशावली दी गयी है। राजा के राज्यारोहण की तिथि तथा उसके राज्य की सीमा चीन देश तक विस्तृत होने की चर्चा इसमें है। इस राजा ने एक सौ आश्रमों की स्थापना की तथा अपने ही द्वारा चित्रित शिव एवं दुर्गा की चार मूर्तियों को रखा। यहाँ एक तालाब भी खुदवाया। अपने माता-पिता के धार्मिक कृत्य को बढ़ाने के लिए उन्होंने ऐसा किया। राजा के दानों में भिन्न-भिन्न प्रकार के उपस्कर, सोने तथा चाँदी के पात्र, नृत्य में दक्ष लोग, गाँव, खेत, वाटिका एवं गायें थीं।

साहित्यिक दृष्टिकोण से यह अभिलेख महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यह उस समय के संस्कृत-साहित्य के उच्चतम विकास को सिद्ध करता है। इस अभिलेख से हमें कालिदास एवं सुश्रुत के शब्दों की जानकारी प्राप्त होती है।

इस अभिलेख में पद्यों की संख्या 93 है तथा सभी स्पष्ट एवं शुद्ध हैं। पद्य-संख्या 1 से 3, 5, 8, 9 एवं 67 वसन्ततिलक; पद्य-संख्या 4, 6, 10, 11 से 13, 15 एवं 16 उपजाति; पद्य-संख्या 14 इन्द्रवज्रा; पद्य-संख्या 17 मन्दाक्रानता एवं पद्य-संख्या 18, 66 एवं 68 से 93 अनुष्टुप-छन्द के हैं। बार्थ ने इस अभिलेख का सम्पादन किया था।[1]

नमश् श्रीन्द्रवर्म्मेश्वराय।
प्राक् केवलोपि भगवान् रतये त्रिधा यो
भिन्नश्चतुर्मुखचतुर्भुजशम्भुमूर्तिः।
प्रारम्भ एव भुवनस्य पुनर्य्युगान्ते
कैवल्यमेति च शिवाय नमोस्तु तस्मैः ॥ 1
वन्देऽरविन्दरिपुमण्डितकेशवृन्दं
भक्त्यारविन्ददृशमप्यरविन्दयोनिम्।
नम्रामरेन्द्रदितिजेन्द्रशिखण्डबन्ध-
मन्दारषण्डमकरन्दसुगन्धिताङ्घ्रिम ॥ 2
तद्वङ्शजो व्याधपुराधिराज-
सन्तानसंपादितमातृवङ्शः।
राजेन्द्रवर्म्मेति गुणैकराशि-
रवाप यश् शम्भुपरेपि राज्यम् ॥ 3
तस्याकलङ्कतुहिनाङ्शुविशुद्धकीत्तेः
पुत्रो बभुव नृपतिनृपतीन्द्रदेव्याम्।
यो दृप्तशत्रुभुजगेन्द्रभुजङ्शत्रु-
र्य्योधाग्रणीर्य्युधि महीपतिवर्म्मनामा ॥ 4
अथ द्विजोऽगस्त्य इति प्रतीतो

1. *ISC*, p.391

यो वेदवेदाङ्गबिदार्य्यदेशे ।
लब्धोदयो या महिषीद्धवङ्शा
यशोमतीति प्रथिता यशोभिः ॥ 5
सुतस्तयोर्य्यो युधि दुर्म्मदश् श्री-
नरेन्द्रवर्म्मेति नरेन्द्रवर्य्यः ।
महीपतेस्तस्य सुतेव लक्ष्मी-
र्न्नरेन्द्रलक्ष्मीरिति या बभूव ॥ 6
तस्यामरिद्विरदराजमृगाधिपेन
जन्येषु राजपतिवर्म्मनराधिपेन ।
राजेन्द्रदेव्यमरगर्भनिभोदपादि
या दिङ्मुखावलिविकीर्ण्णविशुद्धकीर्त्तिः ॥ 7
तस्यामजीजनदनेकनरेन्द्रसिङ्ह-
वङ्शोदयाय स महीपतिवर्म्मदेवः ।
देवीमनुत्तमबपुश्श्रिसमिन्द्रदेवीं
दुग्धाब्धिधौतयशसन्तपतिमिवार्कः ॥ 8
अथाभवत् तस्य महेन्द्रशैल-
कृतस्थितेश् श्रीजयवर्म्मनाम्नः ।
नरेन्द्रवृन्दारकवन्दिताङ्घ्रे-
स् सूर्य्यद्युतिस् सूनुरनूनवीर्य्यः ॥ 9
महीपतिश् श्रीजयवर्द्धनो यो
गर्भेश्वरश् श्रीजयवर्द्धनाख्यः ।
राज्यस्थितश् श्रीजयवर्म्मनामा
महामहीपालशिरोघृताङ्घ्रिः ॥ 10
तस्याधिराजो जननीजनन्या
जघन्यजो जय्यपराक्रमो यः ।
रुद्रैकचित्तो रणरौद्रकर्म्मा
श्रीरुद्रवर्म्मेति विशुद्धधर्म्मा ॥ 11
तद्भागिनेयो गुणरत्नन्धि-
र्व्वसुन्धरादोहविदग्धबुद्धिः ।

पृथूपमो यः पृथिवीन्द्रवन्द्यः
पृथ्वीपतिश् श्रीपृथिवीन्द्रवर्म्मा ॥ 12
राजन्यवङ्शाम्बरचन्द्रलेखा
श्रीरुद्रवर्म्मावनिपालकन्या ।
राज्ञी सती श्रीनृपतीन्द्रवर्म्म-
पुत्र्यास् सुता या सुरसुन्दरीव ॥ 13
तयोः कुमारोऽरिकरीन्द्रसिङ्हो
नृसिंङ्हवन्द्यो नरसिंङ्हदृप्तः ।
गां दिङ्मुखप्रेङ्खदखण्डकीर्त्ति-
र्य्यश् श्रीन्द्रवर्म्मा सकलां वभार ॥ 14
शिलामये वेश्मनि लिङ्गमैशं
श्रीन्द्रेश्वराभिख्यमतिष्ठिपद् यः ।
ईशल्य देव्याश्च समं षद च्चर्चा-
श्चखान च श्रीन्द्रतटाकमग्रय्म् ॥ 15
तेनैतस्यामविनिपतिना श्रीन्द्रदेव्यां महिष्यां
निश्शेषःशावितयशसा तेजसामेकराशिः ।
भूभृत्पुत्रसामिव पुरभिदोत्पादितः कार्तिकेय-
श् शक्तिं बिभ्रद्रिपुकुलभिदं श्रीयशोवर्म्मदेवः ॥ 16
उत्तुङ्गान्युत्तमाङ्गनि वृद्धान्यन्यत्र भूभृतः ।
अत्युत्तुंगत्वमिछत्रोऽकुर्व्वन्यच्चरणाम्बुजैः ॥ 17
गम्भीराह्लादिवपुषोयतो जगति दुस्सहः ।
प्रससार प्रतापाग्निरग्निरेकार्ण्णवादिव ॥ 18
येन बद्धोद्धता कीर्त्तिरच्छिन्नगुणविस्तरैः ।
जीर्ण्णब्रह्माण्डखण्डस्य पुनः खण्डभयादिव ॥ 19
द्वितीयो यस्य गाम्भीर्य्ये सिन्धुरस्ति वलेऽनिलः ।
धैर्य्ये मेरुहेरिर्व्वीर्य्ये रूपे दग्धो न तु स्मरः ॥ 20
यत्र वीर्य्याहृता लग्ना श्रीस्यक्त्वा नृपमण्डलम् ।
दिङ्नागमदगन्धान्धा नालिमालाब्जमीक्षते ॥ 21
राज्यलक्ष्मीमवाप्यैव लक्ष्मीपतिपराक्रमः ।

यो धराममराकीर्ण्णाञ्चकारेवामरावतीम् ॥ 22
प्रतापतप्ते भुवने यस्य स्फुरदिवोष्मणा ।
भूदिगद्रिद्रुमद्रङ्ग समुदान् द्राग् द्रुतं यशः ॥ 23
नारायणः किल पुरा स्त्रीकृतोऽमृततृष्णया ।
स यद्रूपामृतं वीक्ष्य न जातु नु पुमान् भवेत् ॥ 24
पूर्ण्णोप्यधृष्यसत्त्वोपि गम्भीरोपि महानपि ।
यस्य याने जुघूर्ण्णारिर्म्मारुतस्येव सागरः ॥ 25
शमिना येन गुप्तापि कृत्ये शक्तिः प्रकाशिता ।
तापसामेन हरिणा नखालीव गुहौकसा ॥ 26
वभञ्ज रत्नरचितं भूभृत्पतिशिरो रणे ।
रतये यो जयश्रीभिः क्रीड़ाद्रिङ्कल्पयान्निव ॥ 27
घृष्टौ द्विषा शिखारत्नैरापिल मधुधारया ।
क्षालितौ रणरक्ताद्रौ यस्य पादौ ससंभ्रमम् ॥ 28
न चचाल चलापि श्रीस्तिष्ठन्ती यस्य वक्षसि ।
वक्त्रे सरस्वती वक्त्राद्विनयश्रवणादिव ॥ 29
अदक्षिणोपि वक्रोपि विधिर्य्यस्यान्वमन्यत ।
सर्व्वात्मनापदानानि तेजोनयभयादिव ॥ 30
शङ्के समधिकं यस्य गाम्भीर्य्यं सागरादपि ।
तथा हि तद्भियारातिरभ्यगाहत सागरम् ॥ 31
राष्ट्रे क्षेत्रे प्रतापाग्निदग्धदृप्तारिदोहदे ।
उप्तं श्रद्धाम्बुभिर्य्येन धर्म्मबीजं व्यवर्द्धत ॥ 32
येनोपमेयतां मन्ये कामः कान्तोपि नार्हति ।
स हि चेत् सार्व्वसर्व्वाङ्गो न पतङ्गायितोनले ॥ 33
होमयोगादिनिरतो वेदसक्तः प्रजापतिः ।
विधात्रा सदृशो योपि परैरचलितोऽभवत् ॥ 34
युधि खड्गसहायो यस् समन्द्वयमदर्शयत् ।
उद्दृप्तविद्विषां खण्डमखण्डञ्च निजं यशः ॥ 35
प्रजानुशासनो धर्म्मर्य्योगीश्वरपरायणम् ।
राजन्यवन्द्यचरणो योऽभून्मनुरिवापरः ॥ 36

अभ्रङ्कषं सुधाधौतमरिवेश्मेन्दुमण्डलम् ।
शक्तिर्य्यस्याकरोद्भूयो मृगाङ्कं वाष्पदुर्द्दिनम् ।। 37
अनेन चोदिता भूपा व्यजहन् मामितीव यम् ।
वीरमालम्ब्य वृद्धोपि राजधर्म्मोऽवधीत् कलिम् ।। 38
यो विपत्स्वपि सद्वृत्तिं नन्दिनीं सर्व्वकामदाम् ।
प्रजासंपत्करीन्धेनुं दिलीप इव नाजहात् ।। 39
यस्यासङ्ख्यमखोद्धूतधूमजालैस्तरङ्गिभिः ।
शतक्रतुपदाक्रान्तिमानस्सौपानवानिव ।। 40
यः प्रजानान्न निरगान्मुहूर्त्तमपि मानसात् ।
कलौ कापथसक्तानि मनांसि विनयन्निव ।। 41
करत्यागेन यस्यार्थो वर्द्धितो दिग्गजस्य हि ।
उत्सारणाम्बुजामोदो मदे लग्नालिवर्द्धनः ।। 42
जगन्मण्डलचेतांसि यो जग्राह वपुर्गुणैः ।
निर्ज्जितस्य मनोजस्य संश्रयामर्षणादिव ।। 43
विहाय प्रत्युपकृतिञ्जगत्युपचकार यः ।
एकदापि कदा सूर्य्यः प्रतिबोधेप्सुरम्बुजात् ।। 44
अर्थिप्रार्थितसर्व्वार्थव्यतिरिक्तार्थदानतः ।
दिव्यः कल्पद्रुमी येन भूमिभूतोपि दर्शितः ।। 45
चतुराश्रममर्य्यादां शासिता कल्पयन्नपि ।
आश्रमाणां प्रशस्तानां शतन्दिक्षु चकार यः ।। 46
दत्तवानेकदा रामः कश्यपाय महीमति ।
जिगीषयेव यो नित्यं हेमाद्रिमदिशद् द्विजे ।। 47
मेधाधीधीरताश्लाघाभद्रताकरुणार्द्रता ।
अन्यदौर्भाग्यभीत्येव कान्तास्ता यमुपासत ।। 48
सुश्रुतोदितया वाचा समुदाचाररया ।
एको वैद्यः परत्रापि प्रजाव्याधिञ्जहार यः ।। 49
सुवर्ण्णं स्वच्छमर्च्चिष्मत्स्निग्धं गुरुसमं नहत् ।
वसुधामपि गां भूयो राजरत्नं वभार यः ।। 50
यस् सर्व्वशास्त्रशस्त्रेषु शिल्पभाषालिपिष्वपि ।

नृत्तगीतादिविज्ञानेष्वादिकर्त्तव पण्डितः ॥ 51
सव्यापसव्यदोर्म्मुक्तैर्य्यो जहार जयश्रियः ।
वाणैस् सर्व्वाङ्गमुक्तैस्तु कामवाणैर्व्वराङ्गनाः ॥ 52
खरः खडगैकपातेन यस्याच्छेदि त्रिधा महान ।
लोहदण्डोरिमानस्तु दूरतश् शतधा स्वयम् ॥ 53
अत्रातिपूर्ण्णं स्वयशो नयन्निव रसातलम् ।
यश्चखानोरुगम्भीरं तटाकं श्रीयशोधरम् ॥ 54
यश्चक्रयन्त्ररन्ध्रेण लक्षं विद्धयन्वियत्स्थितम् ।
नार्ज्जुनः केवलं कीर्त्त्या भीमोऽभूदपि रङ्हा ॥ 55
चीनसन्धिपयोधिभ्यां मितोर्व्वी येन पालिता ।
गुणावलीव कीर्त्तिस्तु विद्येव श्रीरिवामिता ॥ 56
तत्त्वोक्तिरभवत् सर्व्वस्तवो यस्य गुणाहृतः ।
यद्यत् स्पृशति मेरौ हि सौवर्ण्णन्तत्तदीक्षितम् ॥ 57
श्रीयशोवर्म्मणा तेन श्रीयशोधर्म्मशोभना ।
राजेन्दुनेन्दुवक्त्रेण चन्द्रेन्दुवसुभूभुजा ॥ 58
इमास् स्वशिल्परचिता गुरूणां पुण्यवृद्धये ।
चतस्रश् शिवशर्व्वाणीप्रतिमस्थापितास् समम् ॥ 59
विचित्ररत्नरचितं भूषणङ्कनकाम्बरम् ।
करङ्कालधौताम्भोभाजनानि प्रतिग्रहाः ॥ 60
शिविकाव्यजनच्छत्रमायूरामत्रराशयैः ।
बहूनि हैमरौप्याणि पूजोपकरणानि च ॥ 61
इदञ्च स्वकृतन्तार तटाकं ह्लादिकान्तिभिः ।
चतुष्कोणीकृतन्त्वष्ट्रा विधुविम्बमिवामृगम् ॥ 62
नृत्तगीतादिचतुराश् श्लाघ्या नरवराङ्गनाः ।
समग्रकरदग्रामगोधराराममण्डलम् ॥ 63
इदन्तेन च तत् सर्व्वं सार्व्वं सङ्स्थापनादिने ।
दत्तं राजाधिराजेन जगज्ज्वलिततेजसा ॥ 64
श्रीन्द्रवर्म्मेश्वरादीनां देवानां सर्व्वकिङ्कराः ।
विश्वम्भराधिराजेन न नियोज्यास् स्वकर्म्मणि ॥ 65

आगमः परचक्रस्य राष्ट्रे यदि भवेत् तदा ।
नियोज्यास्तद्विनाशाय नान्यदा तु कदाचन ॥ 66

अत्राङ्गने नृपतिरेव नृपात्मजोपि
भूषाविभूषिततनुः खलु वीतदोषम् ।
द्वारेण तेन महतोपि विशेदभूषाश्
शिष्टास्तु विप्रयतिमन्त्रिबलाधिपाश्च ॥ 67

ब्राह्मणादिस् ससामान्यजनो नोद्धतवेशकः ।
कर्ण्णभूषां विना तन्वीं न हैमं भूषणं भजेत् ॥ 68

नन्द्यावर्त्तं विना पुष्पन्न मालादिविभूषितः ।
न खादेत् क्रमुकं मुक्त्वा नृत्तागारादिवाह्यतः ॥ 69

न नीलचित्रवसनो न कुर्य्यात् कलहन्तथा ।
न भोगाभ्यन्तरगतो न च शस्त्रधरो भवेत् ॥ 70

न कञ्चिदवमन्येत न गृह्णीयाच्च मानुषान् ।
एवमादीन्यकार्य्याणि कुर्य्यान्नात्र शिवाङ्गने ॥ 71

उदक् चतुम्मु खद्वारादाश्रमान्ताद् ब्रजन्नरः ।
परानाच्छादितश्छत्रैर्य्यानादवतरेदपि ॥ 72

यस् साधुः पूजनप्रार्थी पुरुषः स्त्रीजनोऽपि वा ।
यथाविभवपूजाभिः प्रविशेत् सोपि भक्तितः ॥ 73

शिष्टा द्रविणहीनास्तु श्रद्धाभक्तिमहाधनः ।
पुष्पेणापि विशेयुस्ते भक्तिर्हि परमा शिवे ॥ 74

छिन्नाङ्गास्त्वङ्कितङ्गाये कृतघ्नाः कुब्जवामनाः ।
महापातकिनो च हीनदेशास्तथा परे ॥ 75

ये कुष्ठादिमहाव्याधिपीड़िताङ्गा विगर्हिताः ।
कदाचिदपि ते सर्वे न विशेयुश् शिवाङ्गम् ॥ 76

माहेश्वरा जितात्मानः कुलशीलादिशोधिताः ।
ते देवपरिचर्य्यार्हा भवेयुश् शान्तमानसाः ॥ 77

ये शासनमिदन्दर्प्पाल्लङ्घयेर्य्यदि द्विजाः ।
वधदण्डाद्यनर्हत्वान्निर्व्वास्यास्त इतोङ्गनात् ॥ 78

राजपुत्रास्तु दाप्यास्ते हेमबिङ्शत्यलैर्म्मितम् ।

तदर्द्धकन्तु कार्य्यो नृपतिज्ञामन्त्रिणाम् ॥ 79
तदार्द्धकन्तु दाप्यास्ते हेमदण्डातपत्रिणः ।
तस्याप्यर्द्धन्तु मुख्यानां श्रेष्ठिनां विनयो मतः ॥ 80
दाप्यास्तदर्द्धविनयं शैववैष्णवकादयः ।
तस्याप्यर्द्धन्तु विनयस् सामान्येषु समीरितः ॥ 81
धनन्दातुमशक्तास् सामान्या यदि मानुषाः ।
पृष्ठे वेत्रेण तान् हन्याच्छतमित्यनुशासनम् ॥ 82
पूजा पूजोपकरणं कालश् शोचं प्रकल्पितम् ।
एतच्चान्यच्च सर्व्वेषु क्षीयेतंकतमद्यदि ॥ 83
कुलपत्यादयोऽध्यक्षा दाप्या दोषान्वितेषस् सह ।
हेमविङ्शत्पलाद्येकपलान्तकमनुक्रमात् ॥ 84
कुलपत्याद्यसंपृक्ते दोषे दोषकृदेव तु ।
यथार्हन्द्रविणन्दाप्यो दण्ड्यो वा देशकालतः ॥ 85
पूजाकालव्यतिक्रान्तो भवेद् यदि पुरोहितः ।
रूप्यं विङ्शत्पलन्दाप्यः पलानि दश याजकः ॥ 86
स्वकार्य्यं यद्युपेक्षेत द्वाराध्यक्षोऽथ लेखकः ।
रूप्यं पञ्चपलन्दाप्यस्त्रिपलन्तूपकल्पकः ॥ 87
कारी महानसाध्यक्ष आगमाध्यक्षकस्तथा ।
रूप्यन्ते त्रिपलन्दाप्यः अङ्नाधिपतिस्तथा ॥ 88
सुवर्ण्णरजतालभे द्रव्याण्यन्यानि दापयेत् ।
इत्येषा तापसाधीना मर्य्यादा स्थापिता भेवत् ॥ 89
याचते श्रीयशोवर्म्मा भाविकम्बुपतीश्वरान् ।
इमं रक्षत भद्रं वो धर्म्मं धर्म्मधना इति ॥ 90
एष भारो हि भूपानां कल्पितः परमेष्ठिना ।
पालनं पालनीयानान्दण्ड्यानान्ददण्डनञ्च यत् ॥ 91
एषां वसुहरा राज्ञा दण्ड्यास्ते यान्तु दुर्ग्गतिम् ।
पान्ति ये पातु तान्भूपस्तेपि यान्तु परं पदम् ॥ 92
अम्बुजेन्द्रप्रतापेन कम्बुजेन्द्रेण निर्म्मितम् ।
अम्बुजाक्षेण तेनेदं कम्बुजाक्षरमाख्यया ॥ 93

अर्थ–

श्रीन्द्रवर्मेश्वर को नमस्कार है ।

आदिकाल में जो एक और केवल एक थे, वे सृष्टिकार्य के लिए तीन रूपों में पृथक्-पृथक् चतुर्मुख ब्रह्मा, चतुर्भुज विष्णु और शिव रूप में हो गये, परन्तु युगादि और युगान्त काल में पुनः एक ही रूप में रहनेवाले भगवान् शिव को नमस्कार है ।। 1

भ्रमर के समान काले घुंघराले केशों से मण्डित केशयुक्त कमलनयन भगवान् विष्णु को, कमलोद्भव भगवान् ब्रह्मा को तथा देव दानवों द्वारा मन्दार गुच्छयुक्त मस्तक निरन्तर जिनके चरणों में लगाकर नमस्कार करते रहने के कारण जिनका चरण निरन्तर सुगन्धित रहता है, उन भगवान् शिव को भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ।। 2

महेन्द्रगिरि शिखर पर जिसने अपने को स्थापित किया तथा जिसकी माता का मामा का मामा, जो युद्ध में धीर था, उसके वंश में उत्पन्न मातृवंश से व्याधपुर राज्य प्राप्त गुणों की खान राजेन्द्रवर्मन नाम का था जिसने शम्भुपुर का राज्य भी प्राप्त किया ।। 3

उस कलंकहीन चन्द्रमा के समान विमल कीर्तिवाले राजा की पत्नी नृपतीन्द्र देवी से एक पुत्र हुआ जो शक्तिशाली सर्प राजाओं के समान शत्रुओं के लिए सर्प-शत्रु गरुड़ ही था तथा युद्ध में योद्धाओं का अग्रणी था, उसका नाम महीपतिवर्मन था ।। 4

अगस्त्य नामक ब्राह्मण, जिसने देश में वेद-वेदांग का प्रसार किया था, उसके महान् कुल में उत्पन्न उनकी महारानी यशोमती, जो अपनी विस्तृत कीर्ति के कारण ही यशोमती थी ।। 5

उन दोनों का युद्ध में अपराजेय पुत्र राजाओं में श्रेष्ठ नरेन्द्रवर्मन था । उन्हीं महाराज महीपतिवर्मन को पुत्र के समान तथा लक्ष्मी के समान पुत्री नरेन्द्रलक्ष्मी हुई ।। 6

उसी नरेन्द्रलक्ष्मी देवी से गजेन्द्ररूपी शत्रुओं के विनाशकर्ता सिंह के समान महाराज राजपतिवर्मन ने राजेन्द्र देवी को जन्म दिया जो देवमाता के गर्भ की

उत्पाद के समान थी तथा जिनका विशुद्ध यश चारों दिशाओं में फैला हुआ था ।।7

उन्हीं देवी (नरेन्द्रलक्ष्मी) से महाराज महीपतिवर्मन ने वंश के विस्तार के लिए राजाओं में सिंह के समान अनेक राजपुत्रों को जन्म दिया तथा इन्द्रदेवी नाम की एक कन्या को, जो क्षीरसागर के क्षीर से धोयी गयी सी प्रतीत होती थी, तथा यश-विस्तार के कारण जो तपते हुए सूर्य के समान प्रतीत होती थी, जन्म दिया ।। 8

इस प्रकार महेन्द्र पर्वत पर निवास करते हुए महीपतिवर्मन के महाशक्तिशाली पुत्र जयवर्मन उत्पन्न हुए । सूर्य के समान तेजस्वी जयवर्मन के चरणों की वन्दना राजागण और देवतागण भी करते थे ।। 9

महाराज श्रीजयवर्मन जन्म से जयवर्द्धन नाम के थे, परन्तु राज्यारोहण होने पर जयवर्मन कहे गये, जिनके चरणों पर बड़े-बड़े राजा अपना मस्तक रखते थे ।। 10

उन अधिराज महाराज जयवर्मन की नानी का सबसे छोटा पुत्र श्री रुद्रवर्मन नाम के थे जो युद्धभूमि में घोर पराक्रमी योद्धा थे तथा जो भगवान् रुद्र के अनन्य भक्त तथा शुद्ध धर्माचरणवाले थे ।। 11

उनकी बहिन का पुत्र (भगिना) गुणरूपी रत्नों से भरे रत्नसागर के मान, व्युत्पन्न मतिवाले तथा सम्पूर्ण पृथिवी का दोहन करनेवाले महाराज पृथु के समान महान् पराक्रमी एवं राजाओं से वन्दित महाराज पृथिवीन्द्रवर्मन थे ।। 12

राजकुलरूपी आकाश में चन्द्रलेखा के समान श्रीरुद्रवर्मन की पुत्री थी । उनकी सती रानी नृपतीन्द्रवर्मन की बेटी की देवाङ्गनाओं के समान सुन्दरी पुत्री थी । 13

इन दोनों राजा-रानियों से उत्पन्न राजकुमार, जो शत्रुरूपी हाथियों के संहारक सिंह के समान था तथा भगवान् नृसिंह के समान तेजस्वी एवं सभी दिशाओं में अखण्ड कीर्ति फैलानेवाला था, जिसका नाम श्रीइन्द्रवर्मन था ।। 14

इन्हीं श्रीइन्द्रवर्मन ने पत्थरों से निर्मित मन्दिर में श्रीन्देश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना की थी । महाराज श्रीइन्द्रवर्मन एवं महारानी ने समान भक्तिभाव से भगवान् शिव की आराधना की तथा श्रीन्द्र तालाब खुदवायी और

आश्रम बनवाये ।। 15

उन्हीं महाराज श्रीइन्द्रवर्मन, जिनके निर्बाध यश-विस्तार से दिशाओं का तेज एकराशि हुआ था, उन्होंने अपनी पटरानी से जो राजपुत्री थी, सभी बन्धनों से मुक्त प्रथित यशवाली पर्वतराजपुत्री पार्वतीपुत्र असुरपुर-विनाशक कार्तिकेय के समान श्री यशोवर्मन नामक पुत्र उत्पन्न किया जो शक्तिशाली शत्रुओंका भी विनाशक हुआ ।। 16

दूसरे स्थानों के उन्नत मस्तकवाले बड़े वृद्ध राजागण और अधिक उन्नत होने की इच्छा से उनके चरणकमल में नत हो रहे थे ।। 17

गम्भीर आह्लादकारक रूपवान् होते हुए भी जिसके प्रतापाग्नि का विस्तार क्षीरसागरपर्यंत हो रहा था, वह लोगों के लिए असह्य हो रहा था ।। 18

जिसकी कीर्ति अपने विस्तार से उद्धत हो रही थी, उसे आच्छादित अब आगे विस्तार से रोकने के लिए ही मानो जिसने अपने गुणों का उससे भी अधिक विस्तार किया जिससे उसकी कीर्ति के विस्तार से टकराकर पुराने पड़े ब्रह्माण्ड के और खण्ड न हो जायें ।। 19

जो गाम्भीर्य में दूसरा समुद्र ही है; बल में वायु है; धैर्य और दृढ़ता में हिमालय और शक्ति में विष्णु के समान है, उसका रूप ऐसा कि मानो अभी कामदहन हुआ ही नहीं अर्थात् अदग्ध कामदेव के समान उसका रूप है ।। 20

जिसकी शक्ति से आकर्षित हुई राजलक्ष्मी राजाओं की मण्डली का त्यागकर उससे आ जुड़ी थी तथा दिग्गजों के मद के गंध से मस्त रहनेवाले भौंरे उसकी माता को पाकर अब उस गंध की इच्छा ही नहीं करते ।। 21

लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के समान पराक्रमी वह राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कर पृथिवी के देवताओं से भरकर (अर्थात् सर्वत्र देवताओं की स्थापना कर) पृथिवी को ही देवनगरी अमरावती बना दिया ।। 22

जिसके प्रताप से तृप्त सारे लोक से रही उष्मा निकल रही थी, वह उष्मा पृथिवी की सभी दिशाओं में स्थापित दिग्पर्वतों, वनों और समुद्रों को लाँघ गयी थी ।। 23

प्राचीन काल में भगवान् नारायण ने अमृत पाने की लालसा से मोहिनी नाम से स्त्री-रूप लिया था, वे अब जिसके रूप का अमृत देखकर पुरुष-रूप में आना ही नहीं चाहते थे ।। 24

जो पूर्ण भी था, अदम्य भी था, गम्भीर भी था और महनीय भी था, उसके रथ के चक्के का घूमना, शत्रुसागर में चक्रवात हुआ था ।। 25

संयमी होने के कारण जो अपनी शक्ति को गुप्त रखता था, परन्तु जिसने अपने कृत्यों में शक्ति का प्रयास किया, तपस्वियों में जो नारायण के समान था तथा वह गुहावासियों में नरसिंह के समान था ।। 26

युद्ध में जिसने श्रेष्ठ राजाओं के रत्नखचित सिरों को काटकर ऐसा ढेर किया मानो जयलक्ष्मी के साथ रतिक्रीड़ा के लिए क्रीड़ा पर्वत बनाया हो ।। 27

जिसके दोनों पैर युद्ध के रक्त में धुले हुए थे, वे धृष्ट राजाओं के मस्तकों की मुकुटमणि की आभा से मधु-धारा से अभिषिक्त चरण होने का भ्रम उत्पन्न कर रहे थे ।। 28

जिसके सीने लगी चंचला लक्ष्मी भी अचंचल हो गई थी तथा मुख में स्थित सरस्वती उसके मुख से विनय पाठ की तरह हो रही थी ।। 29

नियमों (विधि) के पालन में जो कठोर और टेढ़ा था तथा जो तेज और न्याय के भय के कारण सर्वात्म पदधारी बना था ।। 30

जिसके गाम्भीर्य से समुद्र को कम गहरा समझकर जिसके शत्रु समुद्र में जाकर डूब गये ।। 31

राष्ट्र में तथा देश में प्रतापाग्नि से जलकर शत्रु बीज गर्भ में ही समाप्त हो गये तथा श्रद्धारूपी जल सिंचित होकर धर्मबीज विकसित हो गया ।। 32

जिसकी सुन्दरता की उपमेयता कामदेव का सौन्दर्य न पा सका क्योंकि इसकी सुन्दरता शिव के तीसरे नेत्र की आग से कीट-पतंग की तरह जलकर भस्म न हुई ।। 33

होम और योग-साधना में निरत तथा वेदाध्ययन में आसक्त वह प्रजापति ब्रह्मा के सदृश होते हुए भी शत्रुओं के लिए अचल अडिग या पर्वत हुआ ।। 34

युद्ध में तलवार की सहायता से जिसने दो व्यवहार का समान रूप से प्रदर्शन किया– उद्धत शत्रुओं को खण्ड (टुकड़े-टुकड़े) कर दिया था तथा अपने यश को अखण्ड बना दिया ।। 35

जिसने प्रजा के पालन या अनुशासन में धर्ममार्ग का अनुसरण किया तथा जो योगेश्वर शिव की भक्ति परायण था तथा शत्रु राजे जिसके चरणों की वन्दना करते थे, वह दूसरा मनु के समान हुआ ।। 36

शत्रुगृह में प्रकाशित जिसकी शक्तिरूपी चन्द्रमा मेघ मण्डल से बाहर निकले अमृत से धुला हुआ था, परन्तु उसमें शत्रुओं के घरों से निकले दुःखभरे दिनों के कारण निकलते हुए वाष्प (आह) से लांछन (काला घटवा) बन रहा था ।। 37

इसके द्वारा प्रेरित राजाओं ने मुझे बहुत पीड़ित किया, जिस वीर का आलम्बन पाकर राजधर्म मज़बूत होते हुए भी कलि का नाश किया ।। 38

जो विपत्ति में भी सभी कामनाओं को प्रदान करनेवाली सद्वृत्तिरूपी गाय को अर्थात् प्रजाजनों को सम्पत्ति प्रदान करनेवाली सद्वृत्तिरूपी गाय को जिसने विपत्ति में भी वैसे ही नहीं छोड़ा, जैसे विपत्ति के समय भी महाराज दिलीप ने नन्दिनी को नहीं छोड़ा ।। 39

जिसके असंख्य यज्ञों के धूम्रजाल तरंग को देखकर सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र को अपने पद के छिन जाने का भय हुआ ।। 40

जिसने प्रजाजनों को अपने मन से क्षणभर के लिए भी वैसे ही बाहर नहीं किया जैसे कलिकाल में भक्तिपंथ में आसक्त मनवालों का मन विनय को छोड़ पाता था ।। 41

जिस दिग्गज की सम्पदा त्याग से ही बढ़ गयी, उस दिग्गज के मदगंध से आकर्षित भौंरे कमलामोद को त्यागकर उसके मद पर आ जुटे थे ।। 42

अपने शरीर सौन्दर्य गुण से जिसने जगत के चित्त को चुरा लिया मानो पराजित कामदेव के आत्मसमर्पण के बाद उसका आश्रय लिया हो ।। 43

प्रत्युपकार की इच्छा को भुलाकर जो जगत् के उपकार में लगा था

क्योंकि (विकास की आकांक्षा रखने वाले कमल कब सूर्य को छोड़ देते हैं) सूर्य बिना किसी इच्छा के कमलों को विकसित करना कब छोड़ देता है ।। 44

याचकों द्वारा याचना की गई वस्तु के साथ अर्थ (धन) दान के द्वारा जो देवलोक का कल्पवृक्ष पृथिवी पर ही बनकर दिखा दिया ।। 45

चारों ही आश्रमों की मर्यादा की रक्षा अपने शासन में बनाये रखते हुए भी जिसने बड़े-बड़े आश्रमों का सभी दिशाओं में निर्माण करवाकर आश्रमों को सौ संख्यावाला बना दिया। ।। 46

एक बार राम ने कश्यप ब्राह्मण को सारी पृथिवी दे दी तब नित्य पृथिवी जीतने की इच्छा की पूर्ति के लिये जिसने हिमालय पर्वत दिखा दिया ।। 47

बुद्धि, धैर्य, उत्तम सद्‌गुणों भद्रता, करूणार्द्रता आदि देखकर दूसरा कोई दुर्भाग्य अब न आ जाये इसलिए उसकी स्त्रियों ने उसकी उपासना की ।। 48

सुश्रुत के कथनानुसार सदाचरण के द्वारा ही एक अकेला वैद्य होते हुए भी सभी प्रजाओं के रोग को जिसने हरण कर लिया ।। 49

स्वच्छ सोने के समान चमकदार कोमल सुन्दर वर्ण तथा गुरु बृहस्पति के सामन धारण किये हुए था उसने अनेक राजरत्नों भरी धरतीरूपी गाय को भी धारण किया ।। 50

जो सभी शास्त्रों में, शिल्प, भाषा, लिपि, नृत्य, गीत आदि में तथा विज्ञान आदि शास्त्रों में आदि कर्त्ता ब्रह्मा के समान पण्डित था ।। 51

जिसके दायें, बायें दोनों हाथों से धनुष से छोड़े बाणों ने जयलक्ष्मी का हरण किया तथा जो स्वयं अपने को बाण के आघात से बचा रहा था वही उत्तम स्त्रियों के काम बाण से स्त्रियों के वश में हो गया था ।। 52

जिसके तीक्ष्ण तलवार का एक ही प्रहार ने महान लौह दण्ड को तीन टुकड़ों में तथा शत्रुओं की प्रतिष्ठा को दूर से ही सैकड़ों टुकड़ों में काट दिया ।। 53

भूलोक को अपने यश विस्तार से अति पूर्ण देखकर अर्थात् अब आगे यश-विस्तार के लिए भूलोक में जगह न देखकर ही अपने यश-विस्तार को पाताल लोक तक ले जाने के उद्देश्य से ही मानो उसने यशोधर तालाब के लिए

बहुत गहरी खुदाई करवाई ।। 54

जो चक्र यन्त्र के रन्ध्र से लक्ष्य बेधकर रण में न केवल अर्जुन की कीर्ति से ही अलंकृत हुआ अपितु अति बल पराक्रम के प्रदर्शन से भीम भी हुआ ।।55

जिसने चीन की सीमा से लेकर दोनों समुद्रों तक की सीमा से बँधी पृथिवी का पालन किया परन्तु उसके गुणों की पंक्ति के समान ही उसकी कृति भी उसकी विद्या और संपदा के समान असीम हुयी थी ।। 56

जिसके गुणों का हरण कर बनी शिव स्तुति तत्त्वोक्ति बन गई जो सुमेरु पर्वत तक स्पर्श कर गया जो देखने में सुमेरु स्वर्ण वर्ण के समान ही था ।। 57

उन्हीं यश और धर्म से सुशोभित महाराज श्री यशोवर्मा के द्वारा जो राजाओं में चन्द्रमा के समान न केवल इसलिए थे कि उनका मुख चन्द्रमा के समान था अपितु चन्द्रमा के समान एक अकेला सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करनेवाला एकच्छत्र सम्राट् होने के कारण था ।। 58

उसी एकच्छत्र सम्राट् श्री यशोवर्मा द्वारा गुरुजनों की पुण्यवृद्धि के लिए अपनी शिल्पकला द्वारा रची शिव और पार्वती की पृथुल बड़ी (चार या चतुष्कोण) मूर्ति साथ-साथ स्थापित किये गये ।। 59

उन्हीं के द्वारा विचित्र रत्नों से रचित आभूषण, स्वर्ण निर्मित वस्त्र और सोने का कमल पत्र धारण कराये गये ।। 60

अनेक पालकी, पंखे, मयूरछत्र तथा सोना-चाँदी के बहुत-से पूजा पात्र ।। 61

तथा अपने द्वारा बनवाये गये गहरा और आह्लादकारी शोभायुक्त तालाब जो मृगलांछन हीन (निष्कलंक) चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब के समान या जिसे कारीगरों ने चतुष्कोण बनाया था ।। 62

नृत्य-गीतादि में दक्ष पुरुष, श्रेष्ठ नारियाँ और कर देनेवाला सम्पूर्ण गाँव, गोचर भूमि और बागीचों सहित ।। 63

ये सब राजाधिराज के द्वारा जिसके तेज से जगत प्रज्वलित हो रहा था उसने ही शिवजी की स्थापना के दिन में प्रदान किया ।। 64

श्रीन्द्रेश्वर आदि देवों के लिए शिव सेवक भी दान किये जो जगत् के पालन करनेवाले राजाधिराजों इन्हें अपनी सेवा में नहीं लगाने योग्य हैं ।। 65

यदि राष्ट्र पर शत्रु संकट आ जाये तब ही शत्रु विनाश के काम में इन्हें लगाया जाय अन्यथा कभी नहीं ।। 66

इस देव-मन्दिर के प्रांगण में राजा और राजकुमार अलंकृत वेशभूषा में प्रवेश दोषरहित होगा । इसी द्वार से महान् होते हुए भी राजागण प्रवेश करें । ब्राह्मण, संन्यासी, मंत्री, सेनापति– सब शिष्ट रूप में प्रवेश करें ।। 67

ब्राह्मण आदि तथा सामान्यजन अलंकृत वेशभूषा में न आवें । कान में स्वर्णाभूषण तथा अन्य गहने पहनकर नारियाँ न आवें ।। 68

नीले रंग का वस्त्र न पहने न झगड़ा करें । अन्दर जाकर न खायें और न शस्त्र लेकर जाय ।। 70

किसी की अवमानना न करें न मनुष्य को खींचकर हटावें (मनुष्यों को पकड़े नहीं) शिव-मन्दिर के प्रांगण में इस प्रकार के काम न किये जाय ।। 71

शिव-मन्दिर के द्वार के सामने आश्रम के अन्त तक जाते हुए लोग दूसरों द्वारा आच्छादित छत्र के साथ न चलें और सवारी से उतरकर ही चलें ।। 72

जो सज्जन पूजा करने की इच्छा से स्त्री-पुरुष यथाशक्ति पूजा-सामग्री के साथ भक्तिपूर्वक प्रवेश करें ।। 73

शिष्ट लोग धनहीन भी हों तो श्रद्धा-भक्तिरूप उनका महाधन है केवल पुष्प के साथ ही प्रवेश करें क्योंकि शिवजी को भक्ति ही परम प्रिय है ।। 74

कटे अंगवाले, चिह्नित अंगवाले, कृतघ्न, कुबड़ा, बौना और जो महापापी हों, हीनदेश के वासी हों, के अतिरिक्त ।। 75

जो कुष्ठादि महाव्याधि से ग्रसित शरीरवाले घृणास्पद आदि सभी लोगों का कभी भी इस शिव-मन्दिर के प्रांगण में प्रवेश न करें ।। 76

जिनका चित्त भगवान् शिव में लगा हो, संयमी हों, आत्मजयी हो, शान्त चित्तवाले हों, जो दोनों कुलों से पवित्र हों, वे ही भगवान् शिव की पूजा करने योग्य हैं ।। 77

जो ब्राह्मण इस आज्ञा का अहंकारवश उल्लंघन करे, वे मृत्युदण्ड के भागी होते हुए भी उनका वध न किया जाय अपितु उनका धन छीनकर देश से बाहर कर दें (इस आंगन से बाहर निकाल दें) ।। 78

राजपुत्र आदि इस शासनादेश के उल्लंघन के अपराधी हों तो बीस पल सोना दण्ड के रूप में लिया जाय । राजपरिवार के अन्य लोग, बन्धु-बान्धवों तथा मंत्रियों को इसका आधा दण्ड हो ।। 79

इससे आधा दण्ड उन्हें जो छत्र धारण करनेवाले क्षत्रिय राजाओं तथा व्यापारी प्रमुखों को उसका आधा दण्ड दिया जाय ।। 80

शैवों और वैष्णवों को उसका भी आधा दण्ड दिया जाय तथा उसका भी आधा दण्ड सामान्य जनों को दिया जाय ।। 81

इस शासनादेश के अनुसार जो सामान्यजन दण्ड की राशि भरने में असमर्थ हों, उनकी पीठ पर सौ बेंत मारा जाय ।। 82

पूजा, पूजा के उपकरण या पूजा काल का तथा शुद्धि तथा दान-वस्तु में से यदि किसी एक का भी क्षय हो तो कुलपति, अध्यक्ष तथा अन्य भी दोषी होंगे । इन्हें क्रमोत्तर रूप में बीस पल सोने से लेकर एक पल सोने तक का दण्ड (जुर्माना) किया जाय ।। 83-84

जिस अपराध में कुलपति आदि की संलिप्तता न हो तो केवल अपराधी को ही यथायोग्य धन दण्ड हो अथवा देश-काल के अनुसार दण्ड दिया जाय ।। 85

पूजा के निर्धारित काल का यदि उल्लंघन हो जाता है तो पुरोहित को बीस पल चाँदी तथा पुजारी को दस पल चाँदी का दण्ड किया जाय ।। 86

यदि द्वाराध्यक्ष या लेखक अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करते हैं तो पाँच पल चाँदी का दण्ड दिया जाय तथा छोटे कर्मचारियों को तीन पल चाँदी का दण्ड दिया जाय ।। 87

रसोइया, रसोई का अध्यक्ष तथा अन्य रसोइये आँगनाध्यक्ष के कार्यच्युति पर तीन पल चाँदी का दण्ड हो ।। 88

सुवर्ण या रजत देने में असमर्थ हों तो दूसरे द्रव्य का भी दण्ड दिया जाये । इन सब नियमों का पालन तपस्वियों द्वारा करें ।। 89

श्रीयशोवर्मन भविष्य के कम्बुज के नरेशों से यह याचना करते हैं कि इस शिवधाम की एवं धर्म और दान की गई सम्पत्ति की रक्षा करें ।। 90

ब्रह्माजी द्वारा बनाए गए राजाओं पर यह भार दिया जा रहा है कि पालन करने के योग्य का पालन किया जाए तथा दण्ड देने योग्य को दण्ड दें ।। 91

शिवजी के धन का हरण करनेवाले राजा अपराधी माने जायें तथा वे दुर्गति को प्राप्त हों । इनकी रक्षा करनेवाले तथा इन रक्षकों की रक्षा करनेवाले राजा परम पद को प्राप्त होंगे ।। 92

कमलोद्भूत ब्रह्माजी के प्रताप से कम्बुज के राजा ने इन नियमों का विधान किया तथा अम्बुजाक्ष ने इस शिलापट्ट को कम्बुज-लिपि में लिख दिया ।। 93

41

पूर्वी बारे अभिलेख
Eastern Baray Inscription

उठे हुए किनारे जो एक आयताकार रूप से पूरब से पश्चिम 3 मील तथा उत्तर से दक्षिण 2 मील तक है, के साथ एक बड़े तालाब की सूखी तलहटी को पूर्वी बारे कहा जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस तालाब की खुदाई राजा यशोवर्मन द्वारा की गई है जिसे 'यशोधर तटाक' कहा जाता था। अंगकोर के पूरब में यह स्थित है। आयत के चारों कोने पर खड़े पत्थर पाये गये हैं। एक पत्थर पर एक तरह का शिलालेख और बाकी तीन पत्थरों पर दूसरे शिलालेख पाये जाते हैं। सभी शिलालेख उत्तरी भारतीय लिपि में लिखे गये हैं। लोले-अभिलेख के समान ही ईश्वर की वन्दना तथा राजा की वंशावली इस अभिलेख में है।

इस अभिलेख से निम्नांकित तथ्यों की ओर संकेत मिलता है–

1. राजा ने समुद्री यात्रा प्रारम्भ की थी।

2. उन्होंने महाभाष्य पर अपनी आलोचनाएँ लिखी थीं ।

3. इस अभिलेख से हमें यह जानकारी मिलती है कि कामसूत्र के लेखक वात्स्यायन थे ।

4. गुणाढ्य की पौराणिक कथा का वर्णन मिलता है ।

बार्थ ने इस अभिलेख का सम्पादन किया था ।[1]

VV 1.2 same as VV 1.2 in No. 61 of RCM

संसर्पिपाटलतलाङ्शुतरङ्गिताशङ्कङ्काङ्घ्रिपङ्कजयुगं भुवनं पुनातु ।
रुद्रार्द्धचन्द्रपटु कोटि निपात वेग वेद्यक्षरटक्षतज पुञ्जमिवाधुनापि ॥ 3

VV 4 - 18 same as VV 3 - 17 in No. 61 of RCM

ईदृश्यहं स्मरकृतङ्किल साधनन्ते यत् सत्यमात्मनिधनायतु साधिताहम् ।
सामर्षमित्य गजयाभिहितो नु भूयाः कामं व्यद्यादधिककान्त(त)मंयमीशः ॥ 19
यस्योरुकान्तेर्न्नव यौवनस्य कृष्टा चिरञ्जारुपराक्रमेण ।
समृद्धकामावनिमण्डलश्रीरुत्का नवा स्त्रीव सुसंमुखीना ॥ 20
प्रताप पुष्पायुद्यतप्तमुष्णं यस्योरसि स्वं स्तनमाजिलक्ष्मीः ।
अमज्जयद् गाढ़मुढ़स्त्रपातात् किणाङ्कभीत्येव रणाङ्गनेषु ॥ 21
नीलापि यस्यासिलता करस्था रणेऽरिरक्तारुणिताशु भूयः ।
विलीनपूर्व्वोत्थितधूमजाला ज्वालेवतेजोज्वलनस्य रेजे ॥ 22
यथा यथा यश् शितशस्त्रविद्धस्तथा तथा दीप्तनरोऽरिचक्रे ।
शस्त्राग्रमात्राल्लिखितोपि भानुस्तव्याज दीप्तिं श्वशुरस्य चक्रे ॥ 23
हृत्वाजितप्तो नृपमस्त्रपाणिं योऽयो जयाच्चामर चारणाय ।
हरेस्तु सज्जेऽपि पदापगन्धे प्रयोग जाऽचङ्गजकर्ण्णवायौ ॥ 24
अन्योन्यसंघहनहेतुकष्टे प्रादाद् विरामञ्जय एवयस्य ।
शास्त्रस्य श श्वत् षरिशोधितार्थो भ्रान्तिङ्गते मन्त्र इवाजिमूर्द्नि ॥ 25
जितेऽकरोदक्षतपक्ष एव शौर्य्यादशङ्कस् सदयो दयांयः ।
पक्षापहारादचले चलेपि पुनः पुनर्मुञ्चति बज्रमिन्द्रः ॥ 26
सहस्रदृष्टिः परिपूर्ण्णवत्सस् सहस्रभोगस् सुनिरस्तरन्ध्रः ।

---

1. *ISC*, p.432

सह(स्रधा)मरा जनितद्विज श्री जितेन्द्रनागेन्द्र दिवाकरो यः ॥ 27
क्रोड़ेन्द्रवक्त्रे दशनक्षताङ्गी नागेन्द्रभोगे गदवह्निदग्धा ।
अद्रीन्द्रपादे परिपीड़िता भूद्यूनापि तप्तेव पतिं विनायम् ॥ 28
सरस्वतीं वक्त्रगतामुपेक्ष्य यस्यालिलिङ्गे नितरामुरशर श्रीः ।
प्रायः प्रियं प्राप्य मनोनुकूलमुच्चैः पदं स्त्री सहते सपत्न्याः ॥ 29
सम्यग् भुवो येन च पालितायाः कश्चिन्न कस्मैचिदुवाच शल्यम् ।
पुरा स्वयं सातु पितामहाय पीड़ां मिया भर्तृकृताञ्जगाद ॥ 30
अपास्य पुष्यं भुवि पापबन्धुमपालयद् यो वृषभक्षमाङ्गम् ।
अस्यैकशेषस्तु यदङिघ्र-भङ्गे युगत्रयक्षत्रसुरक्षणन्तत् ॥ 31
श्रुतिङ्गतां सिद्धिमपास्य तन्वीमुदासि येनैव करो महत्याम् ।
अपि स्वयङ्ध्रातमदार्द्रगण्डां भृङ्गी करिण्यां करिणेव कामात् ॥ 32
शैत्यं हुताशात् कुलिशान्मृदुत्वन्तैलानि पाङ्सोरभृतं विषाङ्गात् ।
उपायतो लब्धुमलं य इच्छन् न तु स्वभुक्तिं हृदयात् प्रजानाम् ॥ 33
प्रजानयोत्साहबल प्रतापस्तम्भोद्धते यस्य च भाग्यभित्तौ ।
त्रिवर्ग्गमित्रेणं जगत्यशङ्कं पितुर्गृहे पुत्रइवामिरे मे ॥ 34
यः पूर्ण्णकामज्वलितप्रतापस् सुदानवृष्टिः स्फुटकीर्त्तिकुन्दः ।
दृग वाष्पकृदृर्शितवायुवेगस् सर्व्वर्तुतुल्योऽप्यकृत प्रकोपः ॥ 35
युद्धाब्धिमग्नाः किल यस्य मुक्ता दृप्ताद् द्विषश् श्रावित एव नाम्नि ।
रथाङ्गपाणेरिव शङ्खशब्दे प्रेताधिराजान्नरकाधिवासाः ॥ 36
साधारणान् न प्रमदादिनान्ये तृप्तिङ्गता यस्तु वृषेण राज्ये ।
चिरादभाग्येन हि रत्न बुद्धया लब्धा शिलाब्धौ हरिणामृतन्तु ॥ 37
बुद्धात्मलोभङ्गुणपञ्जरे यश् शेषप्रधानं हरतिस्म भागम् ।
श्रीदिष्ठतस् सर्व्वरसापहारे भ्रान्तिश् श्रिया(ं) सा तपनस्यहेतुः ॥ 38
धर्म्माय यः कञ्जन न व्यपेक्ष्य जगद्व्यवस्थाम करोदभीतः ।
अश्विद्वयेनापि बदेव सोममृषेर्भियेन्द्रोपि मदाच्च मुग्धः ॥ 39
जयामृतङ्कीर्तिं सुगन्धिशान्तिः पीत्वा यस्याजिमुखे हरेश्च ।
रक्तङ्गजास्ये मदगन्धवासन् द्रुतद्विषान्नो तु मृगैर्ब्बनाम्भः ॥ 40
द्वौ गन्धवत्यौर्ज्जनितावुभाभ्यां व्यासः कुमार्य्यां भुवि कीर्त्तिमारः ।
महर्षिणा येन च तत्र कृष्णो द्वीपे कृतोन्यस्तु सितस्त्रिलोक्यम् ॥ 41

सङ्स्थापयन् यस् स्वयमेव लोकं भार्ग्गेण सर्व्वं व्यचरत् प्रतापैः ।
चरत्यजस्रं परितस् सुमेरुं न हेमहेतोरहिमाङ्शुमाली ॥ 42
व्यक्तं मही सङ्हृतिवह्नि दाहादजस्र मेकार्ण्णवपीड़नाच्च ।
यस्य प्रतापाग्नियशोम्बु वेगं सोढुं समर्थाभ्यसनं वरं हि ॥ 43
यस् सर्व्वभूमृन्ननसापि नित्यं यत्नादना स्पृष्टगभीरभावः ।
अनादरं मन्दरपादसाध्यं गाम्भीर्थमब्धेर्ल्लंधयाञ्चकार ॥ 44
गुणेषु दोषावृतिरेव रागौ द्वेषो गुणारिः कृत एव पापे ।
गुणीकृतौ दोषवरावपि द्वौ गुणप्रयोगेषु तुयस्य का वाक् ॥ 45
नौकार्ब्वुद येन जयाय याने प्रसारितं सीतासितं समन्तात् ।
भिन्न महाब्धौ मधुकैटभाभ्यां ब्रह्माम्बुजस्येव दलार्व्वुदं प्राक् ॥ 46
रतौ द्रुतानां प्रियभिन्नहारमलक्तकार्द्र पदभङ्गनानाम् ।
यस्याज्ञयापास्य सरक्त मुक्तास्तनोति सिङ्होरिपुहर्म्य शृङ्गे ॥ 47
पीयूष तृप्तौ जयतर्प्पि तेन द्रुतप्रियो दिग् द्रुत कीर्त्तिनापि ।
लब्धापसरा लब्धवरश्रियाच स्पर्द्धीव येनानिहितोपि शत्रुः ॥ 48
त्वं मेरुवद्र मासि रविप्रतापान्तुषार सेकान्नुहिनाद्रितुल्यः ।
गुहाशयस् सिङ्ह इवेतिमित्रैर्य्यस्यानुनीतो गहने द्रुतोऽरिः ॥ 49
चक्री धराक्रान्तिभरेण सद्यो गम्भीरनि श्वासरनुबन्धनम् ।
अनामयत् प्रापितभोगभङ्गं यो भूमिभृन्नागशिरस् सहस्रम् ॥ 50
आश्रित्य तेजः प्रविकासि यस्य मित्राण्यमित्रानलमेव हन्तुम् ।
आश्रित्य तेजश् शिशिरेतराङ् शो श्चन्द्रानलौ ध्वङ्सयतस्तमांसि ॥ 51
यत श्च तुर्म्मार्ग्गगतिध्रुवाङ्गादशेषरत्नाकर हारिणीच ।
छिद्रे विदार्य्याखिलभूमृदिन्द्रङ्ङ्गेव नीतिर्हरति स्मलोकम् ॥ 52
गुणात्वितस्तिष्ठतु दूषितोपि स्थानार्प्पितो येन पुनर्गुणाढ्यः ।
गदोप्यलञ्चारुविभूषणाय हरप्रयुक्तः किमुतामृताङ्शुः ॥ 53
योऽजस्त्रम् प्रार्थितमप्यवाप भाग्यादसाधारणमर्थजातम् ।
पङ्कं हरिस्त्रीहर्रिचन्दनस्य स्नानाद् द्युनधा इव हेमपद्मः ॥ 54
वपुर्व्वयोवाग्बलवीर्य्यबुद्धिवंङशश्रुतश्री सुहृदेव दर्प्पः ।
गुप्तेऽपि सम्यक् सुहृदि श्रितानां वैरीव दूरीकृत एक्येन ॥ 55
छायाघने जीतिमति प्रतापे मुक्त्वान्यरक्षां बुभुजे श्रियं यः ।

सत्पुष्पधूलीशयने स्ववृक्षे किं शय्ययेन्द्रस्य शचीरतौहि ॥ 56
धर्म्मं पुरस्कृत्य जगन्निधिं यः स्थितां प्रतिज्ञामकरोद् द्विषावि ।
प्रतिज्ञया पार्श्वगतन्तुधर्म्मं विधाय वृत्रं बलमिदिभेद ॥ 57
वीरोरसोपि श्रियमिद्धधर्म्मा हरन्नहीनादहरत्तु योऽर्थम् ।
श्रितात्प्रति स्वं ददतो विहङ्गे नौशीनरस्य ग्रहणे ह्यशक्तिः ॥ 58
पैशुन्यविद्धोऽप्यचलस्थितिर्य्यो मित्रश्रियान्तः प्रकृतिं वितन्वन् ।
दृष्टि प्रशस्तामशनितप्रतप्तौ हेमद्रवं मेरुरिवावमासे ॥ 59
युगेनृपा धर्म्मनिधौ वृषाढ्या अप्यद्भुतं किं पुनरीदृशेयः ।
न दुर्ल्लभश् शुक्तिपुटे विभिन्ने यथा मणिः क्रुद्धफणीन्द्रभोगे ॥ 60
यस्याकराद्रत्नमुपायलब्धन्दृष्ट्वापि तप्तात्तदवाय नान्यः ।
विष्णुं विना पीतजलेऽपि सिन्धौ दृष्ट्यापि कश् श्रीपदमापपङ्के ॥ 61
पृष्ठेन भूमृन्थनं महीन्द्रे बिभ्रत्यअक्वपार इवादितश्रीः ।
पृष्ठं मुराराविव यत्र सातु प्रीत्योरसोर श्चतुरा बताहो ॥ 62
भिन्नः प्रबुद्धस्य न कण्टकेन कस्याश्रितोऽपि प्रसमं हरेस्तु ।
निद्राविजृम्भाम्भजतः क्षता श्री श्चचाल नाम्यम्बुजकण्टकेन ॥ 63
यश् शत्रु मप्याश्रितमेकवीरो दूरादपादुत्रमदुर्म्मदारेः ।
आलिङ्गमानं व्यजहान्तु रक्तं कृशानुतापादुरगेन्द्रमिन्द्रः ॥ 64
अन्योपि तावत् करुणात्मकेन संबर्द्धितो येन किमुस्वबन्धुः ।
लोकोदयायोदित एव मानौ पद्म प्रबोधं प्रतिशंशयः कः ॥ 65
उद्द्योतयन्यो जगदध्वरेषु शतद्रुदावृष्टिमिवाम्बुवाहः ।
मेरोर्व्विलीनस्य निजप्रतापाद्ववर्ष धारामिव हेमवृष्टिम् ॥ 66
यः स्त्रीसरूपा इव विष्णुमाया वाहीकसङ्घानिव गोसरूपान् ।
मत्तेभभूतानिव चादयमूर्खान पर्य्याप्तयेऽदादू द्विरहानस्त्रियोगः ॥ 67
शूरेण येनोज्जवलहेमरत्नं स्वं मार्ग्गवैर्न्नुन्नमपि स्वकोशात् ।
पुनः पुनर्व्युत्थितमुत्तमाङ्गन्दशोत्तमाङ्गादिव राघवेण ॥ 68
गुणाश्च भृत्याश्च विरोधहीनाः प्रजाश्च पुत्राश्च सुखेन बद्धाः ।
स्त्रियश्च भार्य्याश्च गुणानुरक्ताद्विषश्च दोषाश्चन यस्य जाताः ॥ 69
स्थितं मनो यस्य गुणेन सन्धितङ्गुणैस् समृद्धोनिजघानदुर्न्नयम् ।
क्षयङ्गतस् सोप्यरिराष्ट्र संश्रयस्त्रयत्रि वर्ग्गादयमपि प्रशासनः ॥ 70

चिन्ता विचिन्त्याभरणा विचिन्त्यङ्कालक्रियालङ्करणङ्कि यापि ।
फलप्रसूत्या मरणा फलानि पात्र प्रदानाभरणानि यस्य ॥ 71
यश्चातियाञ्चां परकोपहेतुं सेहेऽर्थिनान्दान विकासिवक्त्रः ।
चिरं विभर्त्तीन्द्रगजोपि गीतिं कुतो दूयहेपि प्रसवः फलार्थी ॥ 72
यः प्रत्यहं सत्स्वपि पण्डितेषु स्वयन्ददर्श व्यवहारमार्ग्गम् ।
लोकस्य गोमिश् शमयंस्तमांसि गमास्तिमालीव समानमसृस्थः ॥ 73
रवेयन्मरन्ध्रेय विभेद पक्षज्जगत्प्रियार्थ शिविकास्थितो यः ।
जितस्मरः कामजितोऽर्ज्जुनस्तु निजप्रियार्थज्जगतीतलस्थः ॥ 74
व्यायामकाले तृणराजपुज्जं विभेद भिन्नावनिमृद्रणोपि ।
यो मार्ग्गणेनापर पार्श्वगेन राजत्वलाभेप्यनतिक्रुधेव ॥ 75
दिव्याङ्गनानाङ्कृतकामतृप्तिश् श्रीनन्दनः कीर्त्यमृताभिवर्षी ।
यस्यैकचापध्वनिरेव दूरे समं विपञ्चीत्रयवादनन्तु ॥ 76
साग्रं यतीनामयुतन्द्विजेन्द्रानहन्यहत्यन्नवरेण देवान् ।
हव्यै पितृएतर्प्ययतिस्म कव्यैः स्वयन्तुयः कीर्त्तिगणैरतृप्तः ॥ 77
नियुद्धकाले बलिनोपि मल्लान् पुज्जीकृतान्बाहुसहस्रवेगात् ।
य आहरद्द्रदश पातयित्वा दशास्यमाजाविव कार्त्तवीर्य्यः ॥ 78
त्रिधाकृपाणैकनिपातनेन योलोहदण्डं सहसाविभेद ।
..........योग्यमिन्द्रो बज्रैकपातादिव तार्क्ष्यपक्षम् ॥ 79
तमोच्यनान्निष्ठतमायसं यः संक्रुद्मनी लोरग भोगभीमम् ।
भरेणरम्भा(न)लवद् विभेद दुरात्मचित्तानुकृति क्रुधेव ॥ 80
तालादिलाभे समवाय्य शिक्षां यस्य स्म नृत्यन्त्यवनीन्द्र कन्याः ।
........पि द्विषत्क्षत्रकलत्रगीत्यां कीर्त्तिर्न्नारीनर्त्तिविनैवशिक्षाम् ॥ 81
निरीक्षणादेव वपुर्व्विलास प्रस्प्रर्द्धयेवाकृत संप्रयोगः ।
वात्स्यायनादौ कुसुमास्रतन्त्रे कृतार्थतां यस्य वराङ्गनानाम् ॥ 82
यः पारिजातामृतगन्धबन्धुन्दिङ् नागदान प्रतिपक्षभूतम् ।
गन्धप्रयोगज्जित पुष्प पुञ्जन्दिव्याङ्गरागं पवनस्य चक्रे ॥ 83
पिष्टापि देवोरसि दिव्यमाला रत्या प्रयत्नाद्दयितास्तनेन ।
कषायितान्तर्म्मददाहदोषात् सुपुष्पनिष्पेषजिततैव यस्य ॥ 84
सर्प्पाद्दतौ यस्य विषापहारे विद्याबलं वीक्ष्यमियाधुनापि ।

गृह्णाति नागैस् सहकालकूटश् शङ्के शशाङ्काभरणस्य कण्ठम् ॥ 85
हृदीन्दु मौलिंवदने सरस्वतीं भुजे भुवं वक्षसियश् श्रियं स्थिरम् ।
द्विषि स्वदीप्तिं दिशि कीर्त्तिमर्प्पयन् पुरीं शुभेवास्तुधियं व्यदर्शयत् ॥ 86
शान्तस्य यस्यापि समित्समाप्तौ समुद्धते तेजसि नोत्थितोन्यः ।
सुप्तस्य विष्णोरुरगेन्द्रभोगे भीमे कुतः क्षोमकृतोझषेन्द्राः ॥ 87
य एकवीरोप्य करोत्सुयोधं शास्त्रानुसारेण विकासि दुर्ग्गम् ।
भ्रमाद भ्रमदंसिततिग्मीदीप्तौ ब्रह्मादयः किन्नवसन्ति मेरौ ॥ 88
बंधुप्रजां रक्षति वायसोपि तेजस्वितेजस् सहते पिपद्मः ।
भृङ्गोपि मध्विच्छति नाप्रफुल्तादित्यादि भूपान्नमतोऽन्वशाद्यः ॥ 89
द्वावेव यस्य परलोकजये सहायौ सङ् शोधितौ वृषकृपाणवरौ तयोश्च ।
धर्म्मश् श्रुतेन परिशोधित एवशुद्धौ नासिस सदाप्यरिशिरोभिरसृक्स्रवार्द्रः ॥ 90
क्रूरासिमित्रः स्थविरान् प्रताप्य बालोप्ययम्नामयति क्षितीन्द्रान् ।
आच्छिद्य दन्ते नमतेऽन्यराज्यमिव्युक्त दोषे रिपुयोषितायः ॥ 91
पुञ्जीकृतानां मधुरापि वाणी योग्यान यत्काव्यकृतौ कवीनाम् ।
गुड़ादिहेतुर्न्निहितं सुधायाः माधुर्य्य वृद्धाविति कस्यदृष्टिः ॥ 92
युक्तया जितानेर्न्न च तत्कुलीनो यस्याश्रितान् प्रत्यवधीद्विराजा ।
वेगाहिताहिच्युतदन्तभिन्ना गृद्धा मृता माङ्सलवार्थितो हि ॥ 93
नागेन्द्रवक्त्र विषदुष्टतयेव भाष्यं मोहप्रदं प्रतिपदङ्किल शाब्दिकानाम् ।
व्याख्यामृतेत वदनेन्दुविनिर्ग्गतेन यस्य प्रबोधकरमेव पुनः प्रयुक्तम् ॥ 94
नीलोत्पलाम्बुजवनाकृतिनापि सम्यगन्वीक्षितङ्क्षणकटाक्षनिरीक्षणेन ।
यस्य द्विपाश्वललनापुरुषादिरत्नं बज्रप्रभृव्युपलराशिषु का कथैव ॥ 95
अन्येऽखिलङ्कन कवद्भुवि मन्यमाना लोभग्रहग्रसन मूढ़ाध्यियोविनिन्धाः ।
यो दृष्टिपाटवदशान्तु नुतोनुपश्यन् हेमापि लोष्टुमयवत् किमिदंविचित्रम् ॥ 96
कामं मृगाधिपतयो हरिणानिवान्ये रक्षां विहाय पतिशब्दमुदग्रमाप्त्वा ।
घ्नन्ति स्वकान्नृपतयो बहवस् स्ववृत्तेस् सद्धत्तिदः पृथुरिवासतुयः प्रजानाम् ॥ 97
हेम प्रतानसमलङ्कृतचारु शृङ्गैरभ्रङ्कषैर्व्विविध सौघसुराधिवासैः ।
अत्यन्त दन्तुरितभागतया भुवोयश्वके पुरा पृथुसमीकृतिमुक्तिशङ्काम् ॥ 98
कामोऽभवत् कलितकोमलकार्मुकत्वात् कामं प्रकाममपकारिनिकारधारी ।
मैवन्तु तत्प्रतिनिधिर्व्वपुषा कृतोऽयमित्यब्जयोनिरसृजदृढ़ कार्म्मुकंपम् ॥ 99

आक्रम्य येन करकोमलयानुलिप्ता सौरम्यवासितादिगन्तरया स्वकीर्य्या ।
विस्रापि सान्द्रमधुरवेटममेदसार्द्राभूयो नु भूर्मवतिगन्धवतीति सार्था ।। 100
अन्ये नृपाः कलिजिताः कलिजिु योऽन्यो न्यायाभिरक्षित जगज्जगदेकवीरः ।
आदित्य शत्रुरपि किं स्मृतनाममात्रो विष्णौ श्रुते सचरवोयदि सैंहिकेय ।। 101
हुङ्कारदृप्त हरिताड़ितनागवाद्यै हृघे स्वरेण रिपुवेश्मनि झल्लिकानाम् ।
अद्यापियस्य पटुवीर्य्यक वीरितानि वृत्तानि नाटयति नृत्त पदुर्म्मयूरः ।। 102
तदिदमुदकसान्तेन खातन्तटाकाञ्जितमिव विद्युबिम्बं पातितं वक्त्रकान्त्या ।
भुविनिपतनवेगाद्धौतधौतं विलीनं विगलितमृगमुर्व्वी विभ्रमादर्शबिम्बम् ।। 103
स चाग्रवापी ददतां समस्तास्तान् भाविनः कम्बुजभूमृदिन्द्रान् ।
पुनः पुनर्य्याचत इत्ययं वस् स्वधर्म्मसेतु परिपालनीयः ।। 104
अवेक्ष्य मां स्वल्प तटाकपालान्नैतान् हरेयुस्तदुपप्लवस् स्यात् ।
सरोपि गुप्तन्धनदस्य पलात् कुतोपि भीमस् सहसोन्ममाथ ।। 105
भुवस्तटाकस्तननैः पयोमिस् संवर्द्धिता ये तरुबालवत्साः ।
वयस्स्राव्यक्तकल प्रलापास्तानक्षतं रक्षत पापसप्पाति ।। 106
श्लाघ्यानि रत्नान्यपि याचकेम्यो ददत्यसङ्गददतां वराये ।
एते भवन्तो जलमात्रमत्र कथन्त मह्यं वितरेपुरेव ।। 107
ज्ञातञ्च सत्यं मृतिरेव या च् जा राज्ञो विशेषेण तथापि सास्तु ।
धर्म्मस्य हेतोर्म्मरणे हि शस्तं सतामतस्यागिन एवयाचे ।। 108

अर्थ–

VV 1.2 same as VV 1.2 in No. 61 of RCM

श्री शिव के अर्द्धचन्द्र के समान करोड़ों चतुर जलों के निपात के वेग से जानने योग्य गिरते हुए एवं चोट खाये हुए जल के समूह के समान अभी भी सम्यक् प्रकार से प्रसरित पाटल के फूल के पेड़ के तल में किरणों से लहराई दिशाओंवाली गंगा के दोनों चरण कमल, भुवन को पवित्र करे ।। 3

VV 4-18 same as VV 3-17 in No. 61 of RCM

अमर्ष के साथ गिरिजा जी के द्वारा कहे हुए शिव जी ने जिस कामदेव को सर्वाधिक सुन्दर रचा था, उस कामदेव ने वासन्तिक साधनों से शिव पर बाण चलाकर सच ही अपने मरने के साधन जुटाये थे ।। 19

नयी जवानीवाले जिस कान्तिमान् के सुन्दर पराक्रम से बहुत दिनों तक खेती की गयी तथा उससे धनी कामना देनेवाली भूमियों के समूह सारी पृथिवी की लक्ष्मी और शोभा उत्कण्ठित आमने-सामने आलिंगन के लिए आती हुई नयी स्त्री के समान स्वत: अधिकार में आ गयी ।। 20

जिसकी छाती पर प्रताप-रूप कामदेववाली समान लक्ष्मी ने अपने तवे से गर्म स्तनों को घने रूप से अस्त्र के गिरने से रणाङ्गनों में किरणाङ्क के भय से मानो डुबा दिया ।। 21

जिसके हाथों में स्थित नील तलवार-रूपी लता भी आग की ज्वाला के समान शत्रु के रक्त से लथपथ शीघ्र पुन: रण में मानो लाल मालूम पड़ती थी पहले उठे हुए धुएँ के जाल के विलीन हो जाने, निर्धूम लाल आग की ज्वाला के समान शोभा पाती थी ।। 22

जैसे-जैसे जो तेज शस्त्रों से बिद्ध हुआ, वैसे-वैसे अधिक चमकदार शत्रु रूप चक्र में प्रशस्त अग्र मात्र से लिखित भी सूर्य ने श्वसुर के चक्र में प्रकाश बिखेरा था ।। 23

हरण करके रण से तप्त होकर अस्त्र हाथ में लेनेवाले राजा को जो युक्त हुआ चँवर चलाने के लिए विष्णु के या इन्द्र के तैयार होने पर भी मद जल के गन्ध में हाथी के कान की हवा में प्रयोग की जड़ता पायी गयी ।। 24

जिसके पारस्परिक संगठन हेतु कष्ट में हमेशा शास्त्र के परिशोधित अर्थोंवाले जिसके भ्रम को प्राप्त मन्त्र के समान समर-रूपी मस्तक पर विराम (विश्राम) दिया, जय ही प्रदान की ।। 25

पंखों के कटने पर भी पर्वत के चलने पर पुन:-पुन: इन्द्र अपने वज्र को छोड़ता हो, उसी प्रकार उस दयालु ने जीतने पर भी शत्रु पक्ष को नष्ट नहीं किया । पराक्रम से शंका रहित उसने दया रखी ।। 26

जो हज़ार आँखोंवाले (सर्वत्र दृष्टि रखनेवाले), वत्सों से परिपूर्ण, सहस्र भोगोंवाले, छिद्रों को ढके हुए, लक्ष्मी प्रदान से उत्पन्न ब्राह्मणों की शोभावाले, इन्द्र और सर्पराज को जीतनेवाले सूर्य के तुल्य मालूम पड़ते थे ।। 27

गोद में इन्द्र के मुँह में दाँतों से कटे हुए अंगवाली सर्पराज की फण में

विष या रोग-रूप अग्नि से जली हुई पर्वतराज के चरण में परिपीड़ित भूमि जिस पति के बिना धरने पर भी तवी हुई सी ही मालूम पड़ती थी अर्थात् राजाश्रय बिना पृथिवी सुखी नहीं होने वाली हुई, अतः राजा ने अपने हाथ में सत्ता ली ।। 28

मुखगत सरस्वती की उपेक्षा करके लक्ष्मी ने हृदय से जिसका अच्छी तरह आलिंगन किया था । प्रायः मनोनुकूल प्रिय को पा करके अपनी सौत के उच्च पद को नहीं सह सकती । राजा के मुँह में सरस्वती रूप सौत को देखकर राजा के हृदय से लक्ष्मी सट गयी– यही तात्पर्य है ।। 29

राजा के भली-भाँति शासनकाल में कोई किसी को काँटे के समान कठोर वचन नहीं कहने लगा । पहले स्वयं वह तो स्वामी से दी गयी पीड़ा को भय से पितामह को नहीं कह सकी ।। 30

जिसने पाप के बन्धु पुष्य को पृथिवी पर अक्षत अंगवाले बैल को पाला था, इसके एक शेष तो जिसके पैर का टूटना था, वह तीन युगों से क्षत्रिय धर्म का सुन्दर रक्षण था । सत्ययुग में धर्म-रूप बैल के चार पैर थे, क्रमशः एक-एक टूटते-टूटते कलियुग में उसके एक ही पैर बचा हुआ है किन्तु राजा चारों के रक्षण में उद्यत है अर्थात् सोलह आने धर्मरक्षण में तत्परता दिखाये हैं ।। 31

सुनी हुई सफलता को जीतकर जो सफलता कृशांगी है, उससे उदास होकर भी स्वयं सूँघे हुए मद जल से भीगे हुए कपोलवाली हथिनी में कामुकता से गज की नाईं हाथ डाला ।। 32

अग्नि से शीतलता को, वज्र से कोमलता को, धूल से तैलों को, विषाङ्ग से अमृत को उपाय से लाभ करने के लिए समर्थ जो चाह करता हुआ राजा ने हृदय से अपने भोग को न चाहकर प्रजाओं के भोग को चाहा था ।। 33

जिसके भाग्य-रूपी भित्ति पर प्रजा नीति, उत्साह, बल, प्रताप-रूपी खम्भे के उखड़ने से धर्म, अर्थ, काम– इन त्रिवर्ग-रूपी मित्रों से शङ्कारहित होकर रमण करती थी । जैसे पिता के घर में पुत्र सब प्रकार से रमण करता है, ऐसा मालूम होने लगा था ।। 34

जो पूर्ण कामनावाला प्रकाशित प्रताप होकर स्पष्ट कीर्ति-रूप कुन्द से (कुन्द नामक उजले फूल में कीर्ति की सफेदी की उपमा दी गयी है) शत्रु जो

रोकर आँसू गिरानेवाले हैं, उनसे दिखलाये गये वायु के वेगवाले सभी ऋतुओं में समान रूप से प्रकोप न करने वाले थे ।। 35

युद्ध-रूप समुद्र में डूबा हुआ जिसका मोती गर्वित शत्रु ही नाम के विषय में सुनाये गये, चक्रधारी विष्णु के पाञ्चजन्य शंख के शब्द में जैसे धर्मराज से नरक के रहनेवाले डरते हैं, वैसे ही राजा से शत्रु डरते थे ।। 36

साधारण तृप्ति को स्त्री आदि से दूसरे न तृप्त हुए राज्य में बैल से जो बहुत काल से क्योंकि प्रभाग्य से रत्न की बुद्धि से पत्थर की शिलाओं-रूप समुद्र में हरिण रूप अमृत पा सका था ।। 37

आत्मा के लोभ से बँधा हुआ जो गुण रूप पिंजड़े में शेष प्रधान भाग को जो हरता था, सभी रसों के अपहार में भ्रम हुआ लक्ष्मी से वह उसका तपन का हेतु हुआ ।। 38

जो निडर होकर धर्म के लिए किसी की विशेष अपेक्षा न करके विश्वभर की व्यवस्था करता था, ऋषि के भय से इन्द्र भी मद से मुग्ध के समान दो अश्विनीकुमारों से सोम पान करता था ।। 39

जय-रूप अमृत कीर्ति की सुगन्धि की शान्ति से युद्ध मुख में और विष्णु के अमृत को पी करके हाथी के मुँह में या मद की गन्ध से सुगन्धित शीघ्र शत्रुओं के रक्त को नहीं खेद है, मृगों से जल को पीता था ।। 40

दो गन्धवाले दो से उत्पन्न हुए एक कुमारी योजनगन्धा मल्लाहिन से व्यास और एक पृथिवी पर कीर्तिमान राजा जिस महर्षि से वहाँ द्वीप में कृष्ण और दूसरा उजला कीर्तिवाला राजा जो तीनों लोकों में उजला दीख पड़नेवाला हुआ था ।। 41

जिसने स्वयं ही लोक को मार्ग से संस्थापित किया था, प्रतापों से सभी जगहों पर विचरण करता था, सुमेरु पर्वत के चारों ओर सुवर्ण के लिए नहीं प्रताप बिखेरने के लिए सूर्य के समान प्रचण्ड किरणों के प्रसारण के लिए पर्यटन करनेवाला था ।। 42

व्यक्त ही स्पष्ट ही है कि पृथिवी संहार-रूप अग्नि के दाह से नित्य एकार्णव के पीड़न से भी खिन्न हैं, जिसके प्रताप-रूप अग्नि के समान यश-रूप

जल के वेग को सहने के लिए समर्थ अभ्यास श्रेष्ठ है ।। 43

जिसने सभी पर्वतों को मन से भी नित्य यत्न से गम्भीरता को न स्पर्श करने दिया, पर्वतों से भी गम्भीर रहा मन्दार पर्वत के पैरों से साध्य गम्भीरता को अनादर करता हुआ समुद्र की गम्भीरता को भी जिसने लघु कर दिया, वह राजा अति गम्भीर था ।। 44

गुणों में दोषों की आवृत्ति ही राग है, द्वेष गुणों का शत्रु है, पाप में किया हुआ है जो गुण नहीं है, उसे गुणीकृत करने पर श्रेष्ठ दोष भी दोनों गुणों के प्रयोगों में जिसकी वाणी क्या थी ? वाणी की क्या बात थी? ।। 45

संख्या में अरब नावें जिसके द्वारा जय के लिए आक्रमण में चलायी गयीं, प्रसारित की गयीं चारों ओर से पीली उजली रूपों की, महासमुद्र में ही टूट-फूट गयीं जैसे ब्रह्मा के कमल को अरब संख्यावाले पत्रों को पहले ज़माने में मधु और कैटभ नामक दो राक्षसों ने तोड़-फोड़ डाला था ।। 46

रमणकाल में शीघ्रगामिनी कामिनियों के पैरों को अलक्तक (अलता) रंग से रँगे हुए और प्रिय के टूटे हुए हार को जिसकी आज्ञा से जीतकर सरक्त गजमुक्ताओं को सिंह, शत्रु के महलों की चोटी पर विस्तारित करता है, ऐसा मालूम पड़ता था ।। 47

अमृत की तृप्ति में विजय से तर्पित शीघ्र प्रिय दिशाओं में शीघ्र कीर्ति फैलनेवाले के द्वारा भी लाभ की गयी दूसरी लाभ की हुई श्रेष्ठ लक्ष्मी से जिससे संग्राम में मारे गये शत्रु भी होड़ लेना चाहते हों, ऐसा मालूम पड़ता था ।। 48

तू मेरु के समान सोहता है सूर्य के समान प्रताप से, बर्फ के छींटों से हिमालय पर्वत तुल्य है, गुफाओं में जाने पर सिंह तुल्य हैं– ऐसे मित्रों से सुनी गयी और वन में रहने पर शीघ्र नाश करनेवाले शत्रु के समान दीखता है । इस प्रकार अनुनय करनेवाले जिसके मित्र कहते थे ।। 49

पृथिवी के आक्रमण के भार से विष्णु के समान हो उसी क्षण गम्भीर निःश्वास की आवाज का अनुबन्धन तुम्हारे नाम को बदल देता है । ऐसा मालूम पड़ता था जो पृथिवीधारी पहाड़-सा दिखनेवाला राजा हज़ार सिरोंवाले सर्पराज के समान अपने मस्तकों पर पृथिवी को धारण करनेवाला राजा था ।। 50

जिसका विकासशील तेज आश्रित होकर मित्रों को अमित्र रूप को मारने के लिए प्रचण्ड तेजवाले सूर्य के तेज को आश्रित करके चन्द्र और अग्नि– दोनों के तेज को धारण करनेवाला और अन्धकार को दूर करनेवाला राजा मालूम पड़ता था ।। 51

जिस ध्रुवांग राजा की अप्रतिहत (बेरोक) गति चारों मार्गों की गतिवाली है, जो समुद्र के सभी रत्नाकरों का हरण करनेवाली है। छिद्र में विदारण करके सभी पर्वतों को फोड़कर निकलनेवाली गंगा के समान राजा की नीति लोक को हरती थी ।। 52

दूषित होने पर गुणों से युक्त ठहरे जिससे स्थान पर अर्पित होकर फिर गुणों से सम्पन्न हो सकता है । सुन्दर विशिष्ट भूषणवाले शिव के लिए विष भी अलंकार ही हुआ, क्योंकि शिव से प्रयुक्त हुआ था, अमृत किरण चन्द्र की क्या बात ! वह तो अलंकार शिरोमणि है ही– शिव का विशिष्ट अलंकरण शशि है ही ।। 53

जिसने भाग्य से अधिक अधिक असाधारण अर्थ समूह को बिना माँगे ही पाया था । देव नदी मन्दाकिनी गंगा के स्नान से हरिविष्णु की स्त्री हरिचन्दन- स्वर्गीय वृक्ष के पंक को सुवर्ण का कमल जैसे प्राप्त होता है– ऐसा मालूम पड़ता था ।। 54

शरीर, वय, वाणी, बल, वीर्य, बुद्धि, वंश, सुने हुए वेद शास्त्र श्री लक्ष्मी शोभा मित्र ही दर्प है, गर्व है । मित्र के भली-भाँति गुप्त रहने पर भी आश्रितों के वैरी के समान जिससे दूरीकृत ही मालूम पड़ता था ।। 55

घनी छाया में नीति से युक्त प्रताप में अन्य की रक्षा छोड़कर जिसने लक्ष्मी का भोग किया, अच्छे फूल की धूल में शयन करने पर भी अपने वृक्ष में शय्या से क्या प्रयोजन ? क्योंकि इन्द्राणी के साथ रमण करने में इन्द्र की शय्या की क्या चर्चा ? ऐसा ज्ञात था ।। 56

संसार के निधि धर्म को आगे करके जिसने स्थितप्रतिज्ञा की (जिससे शत्रु रक्षा भी हो) प्रतिज्ञा से पार्श्वगत धर्म को करके जैसे इन्द्र ने वृत्र नामक असुर को छिन्न-भिन्नकर मार डाला था ।। 57

वीररस भी प्रकाशित धर्मवाली लक्ष्मी का हरण करता हुआ हीन से जिसने अर्थ का हरण न किया था। अपने आश्रित से धन देनेवाले के औशीनर की पक्षी के विषय में अशक्ति नहीं होती ।। 58

चुगलखोरपन से छिदे हुए रहने पर भी जो अचल स्थितिवाला है, वह मित्र की लक्ष्मी से अन्तर की प्रकृति का विस्तार करता हुआ वज्र की तप्ति में दृष्टि प्रशस्त रूप से मेरु पर्वत-जैसे सुवर्ण द्रव को जैसे बढ़ाता रहता है, वैसा सुशोभित होता था ।। 59

जो युगे राजा लोग धर्म-निधि में वृषों से आढ्या को भी क्या आश्चर्य है, फिर ऐसे में सीपी के पुट के फूटने पर जैसे मणि दुर्लभ नहीं है, वैसे ही सर्पराज के मस्तक में भी है ।। 60

जिस आकर से रत्न को उपाय से लाभ किया, उसे देखकर भी तप्त से उसे प्राप्त किया दूसरे ने नहीं, समुद्र के जल के पी जाने पर भी विष्णु के बिना दूसरे न पंक में लक्ष्मी पद को नहीं प्राप्त किया, विष्णु ने ही लक्ष्मी पद को पंक में पाया ।। 61

पीठ से पर्वत के मथनेवाले आदि से लक्ष्मी को राजा धारण करता है। जिस विष्णु के विषय में पीठ को प्रीति से छाती से वह चतुरा लक्ष्मी विष्णु की पीठ को पा लेती है- खेद है, आश्चर्य है ।। 62

जगे हुए जिस विष्णु के आश्रित भी दृढ़पूर्वक छिन्न-भिन्न हुआ था, नींद से जम्हाई से युक्त कटी हुई लक्ष्मी विष्णु की नाभि के नाल के कमल के कण्टक से चलायमान हुई थी ।। 63

जिस अद्वितीय वीर ने आश्रित शत्रु को दूर से उद्दाम एवं दुर्भेद शत्रु के आलिंगन करनेवाले रक्त को छोड़ दिया, जैसे इन्द्र ने कृश पश्चात् ताप से सर्पराज को छोड़ दिया था ।। 64

दयालु राजा द्वारा तब तक दूसरा भी सम्यक् रूप से वर्द्धित हुआ था, अपने बन्धु की वृद्धि की क्या बात ! वह तो अपना बन्धु ही है बढ़ेगा ही, जैसे लोक के अभ्युदय के लिए उगे हुए सूर्य के समय में कमल के खिलने में क्या सन्देह है ! अर्थात् दयालु राजा के राज्य में शत्रु और मित्र सब का विकास होता ही

है जैसे सूर्य के उगने पर कमल खिलता ही रहता है, इसमें क्या संशय है ! ।। 65

जो जगत् के यज्ञों में प्रकाश करता हुआ मेघ बिजली से प्रकाशित कर वृष्टि करता है, वैसे ही विलीन मेरु पर्वत के अपने प्रताप से सुवर्ण की वृष्टि की धारा की वर्षा हुई थी, होती थी ।। 66

जिसने स्त्री के समान रूपवाली विष्णु माया लक्ष्मी, गाय के समान रूपवाले बाहीक संघों को, मतवाले हाथी-रूपी आढ्य और मूर्खों को पर्याप्ति के लिए हाथियों को तीन योगों के रूप में दे दी थी ।। 67

जिस शूरवीर राजा के द्वारा सफेद सुवर्ण रत्न जो अपने धन थे, वाणों से प्रेरित भी अपने ख़ज़ाने से पुनः-पुनः विशेष रूप से उठे हुए शिखरवाले को श्रीराम के द्वारा दस सिरों के समान दिये गये थे ।। 68

जिसके सभी गुण और सभी नौकर विरोध से हीन थे, प्रजा और पुत्र-सुख से बँधे थे । स्त्रियाँ ब्याही भार्याएँ गुणों से अनुरक्त थीं तथा जिस राजा के शत्रु और दोष नहीं पैदा हुए थे ।। 69

जिसका मन गुण से युक्त होकर स्थित है, जो गुणों से समृद्ध होकर दुर्नीति को मार सका था, क्षय को भी प्राप्त वह शत्रु और राष्ट्र का सम्यक् सेवन करनेवाला त्रिवर्गों (धर्म, अर्थ और काम) से आढ्य तीनों को भी प्रशासन के अन्दर रखनेवाला था ।। 70

जिसकी चिन्ता विचार करके आभरण के समान है, विचार करने योग्य विशेष चिन्ता करने योग्य नहीं है, जिसकी क्रिया भी काल की क्रिया के अलंकरण के समान है, जिसके फल के प्रादुर्भाव रूप भूषण के समान हैं, अच्छे पात्र को प्रदान रूप आभरण जिसके हैं, वैसे ही राजा थे ।। 71

और जो अतिशय याञ्चा को दूसरा शत्रु पर के क्रोध का कारण है ऐसा समझकर सह लेता था, याचकों के दान के लिए खुला मुख रखनेवाला था, बहुत काल तक इन्द्र का हाथी ऐरावत भी गीति को धारण करता है, किस कारण से दो दिनों में भी फल चाहनेवाला प्रसव होता है। जल्द फल मिलने के कारण गाना गाने लगता है ।। 72

जो प्रतिदिन बहुत पण्डितों के रहने पर भी स्वयं व्यवहार के मार्ग को

देखता था, अपनी किरणों से लोक के अन्धकार को दूर करता हुआ सूर्य आकाश में स्थित रहकर भी स्वयं लोकदर्शन करता रहता है वैसे ही स्वकार्य प्रिय राजा थे ।। 73

आकाश में मन्त्र के छिद्र से जो विमान पर बैठा हुआ भी जगत् के प्रिय के लिए इन्द्र पर्वत के पंखों को काटता था, कामदेव विजयी, काम को जीत लेनेवाला अर्जुन पृथिवीतल पर स्थित होकर अपने प्रिय के लिए जैसे विपक्ष छेदन में दत्तचित्त था ।। 74

व्यायाम के समय में बाँसों के समूह को छिन्न-भिन्न कर डाला था, भिन्न-भिन्न राजाओं के समूह के रहने पर भी जो बाण से दूसरे के पास से जानेवाले राजत्व के लाभ में भी अतिशय क्रोध से ही ।। 75

सुन्दरी स्त्रियों की कामना की तृप्ति करनेवाला श्रीनन्दन नामक राजा कीर्ति-रूप अमृत को चारों ओर बरसानेवाला था, जिसके एक धनुष की ध्वनि ही दूर में वीणा के तीन प्रकार के वादन के समान मालूम पड़ती थी ।। 76

अग्रसहित दस हज़ार संन्यासियों उतने ही ब्राह्मण-श्रेष्ठों को प्रतिदिन सभी देवों को हविष्यान्नों से और सभी पितरों को पितृ कार्योचित पदार्थों से तृप्त करता था, पर स्वयं अपनी कीर्ति और गुणों से अतृप्त ही रहता था ।। 77

युद्धकाल में इकट्ठे हुए बली मल्लों को भी हज़ार बाँहों के वेग से झट दस को गिरा करके हरा देता था जैसे कार्तवीर्यार्जुन युद्ध में दसमुख रावण को हरा देता था ।। 78

एक कृपाण के निपातन से जो लोहदण्ड को एकाएक तीन टुकड़े कर देता था जैसे इन्द्र एक वज्र के पात से गरुड़ के पंख को काट डालता था ।। 79

घने अन्धकारों से युक्त लोहे के बने हुए सम्यक् क्रुद्ध हो करके नीले सर्प की फण के समान भयंकर को भी केले की हवा के समान काट डालता था । जैसे दुष्ट आत्मा के चित्त के अनुकरण से क्रोध से अन्धेरा होता है ।। 80

ताल आदि के लाभ में शिक्षा पाकर जिसके साथ राजेन्द्रों की कन्याएँ नाचती थीं, वैसे ही शत्रु क्षत्रिय की स्त्री गीत में बिना शिक्षा के ही कीर्ति बार-बार अतिशय रूप से नाचा करती थीं ।। 81

जिसके शरीर के विलास की होड़ से मानो सम्यक् रूप से प्रयोग किया गया हो, ऐसा ज्ञात होता है। वात्स्यायन-रचित कामशास्त्र आदि में कुसुमास्त्रतन्त्र में वाराङ्गनाओं की कृतार्थता राजा के सामने होती देखी जाती थी ।। 82

जो देवराज इन्द्र के नन्दन वन से पैदा होनेवाले पारिजात नामक पुष्प वृक्ष के अमृत के समान सुगन्ध के बन्धु के समान दिग्गजों के मद जल के प्रतिपक्ष रूप सुगन्ध के प्रयोग को जीतनेवाले फूलों के गुच्छों के सुन्दर अंगराग हवा से किया गया था ।। 83

देवों की छाती पर दिव्य पुष्पों की माला रमण से बचाने के प्रयत्न से भी देवाङ्गनाओं के स्तनों से पीसी जाने पर भी कसैलेपन से अन्दरूनी मद के दाह के दोष से सुन्दर पुष्पों के पीसने एवं जीते हुए ही के समान जिसकी माला की दशा थी ।। 84

जिसके सर्पों के आहरण में, विष के अपहरण में जिसकी विद्या के बल को देखकर भय से आज भी साँपों के साथ कालकूट को ग्रहण करता है । शंका करता हूँ कि शिव के कण्ठ में जाकर कलुक छिप जाया करता है ।। 85

हृदय में शिव को, मुख में सरस्वती को, हाथ में पृथिवी को, छाती पर लक्ष्मी को जो स्थिर रूप से शत्रु पर अपने प्रकाश को दिशा में कीर्ति को अर्पण करता हुआ शुभ में नगरी को अपने वास्तु-सम्बन्धी बुद्धि-वैभव को विशेष रूप से दिखलाया था ।। 86

जिस शान्त राजा की सभा की समाप्ति में सम्यक् एवं उत्कृष्ट रूप के तेज में अन्य कोई न उठ सका जैसे सोये हुए विष्णु भगवान् के रहने पर भयंकर सर्पराज की फण में मत्स्यों के राजा लोग कहाँ से क्षोभ करें ।। 87

जो एक अद्वितीय वीर भी शास्त्रों के अनुसार प्रकाशशील दुर्ग को सुयोधर सुख से युद्ध करने योग्य बना डाला था । भ्रम से ब्रह्मा आदि देव सूर्य के छिपने पर क्या मेरु पर्वत पर बसते हैं ? ।। 88

कौआ भी बन्धु और प्रजा की रक्षा करता है, तेजस्वी के तेज को कमल सहता है । भ्रमर भी मधु चाहता है किन्तु बिना खिले फूल से नहीं । राजाओं को जो सिर नवानेवाले हैं, उनका अनुशासन जिससे किया गया था ।। 89

दो ही जिसके परलोक जीतने में सहायक हैं– संशोधित वृष वर और संशोधित कृपाण वर और उनमें भी धर्म, वेदशास्त्र सुनने से परिशोधित ही है केवल तलवार जो हमेशा शत्रु के सिरों से निकलनेवाले रक्तों के स्नान से भीगी ही रहा करती है जो शुद्ध नहीं दीख पड़ती थी ।। 90

क्रूर तलवार ही जिसके मित्र थे, वह अवस्था में छोटा होते हुए भी बड़े वृद्ध राजाओं को भी प्रतापित कर झुकाया और दूसरे राज्य के राजाओं को मारकर झुका दिया । इस प्रकार शत्रुओं की पत्नियों को वियोगिनी बनाने का पाप किया ।। 91

इकट्ठे हुए कवियों की जो काव्यकृति में मधुरवाणी भी योग्य न हुई । अमृत के माधुर्य की वृद्धि में गुड़ आदि हेतु निहित है, यह किसकी दृष्टि है ? ।। 92

युक्ति से शत्रु जीतनेवाले राजा का वह कुलीन नहीं है जिसके आश्रितों को विशिष्ट राजा ने मार डाला था, क्योंकि वेग से आहत साँप के गिरे दाँत से कटकर गृध्रागरी थोड़े माँस की याचना से ऐसा मालूम पड़ा ।। 93

सर्पराज सहस्र फणोंवाले भाष्यकार के मुँह के विष से दूषित-सा भाष्य निश्चय ही मोहप्रद वैयाकरणों के सामने मालूम पड़ा था ।। 94

नीलकमल के वन की आकृतिवाले से भी सम्यक् पश्चात् एक क्षण देखने टेढ़े दर्शन से जिस गज और अश्व की स्त्री के पुरुष आदि रत्न को वज्र प्रभृति पत्थर के ढेरों में क्या बात ? 95

जो बहुमूल्य पदार्थ को भी टेढ़ी नज़र से देखकर लोभ नहीं करता, वह सबसे निर्लोभ है । जो दूसरे मानव समस्त वस्तु को सुवर्ण के समान मानते हुए लोभरूप ग्रह के ग्रास बनकर मूर्ख बुद्धिवाले हैं, उनकी विशेष निन्दा होती है । जो दृष्टि की चतुरता के वश प्रशंसा करने पर पश्चात् देखते हुए सुवर्ण को भी ढेले के समान समझते हैं– यह कैसी विचित्रता है ? ।। 96

सिंह यथेच्छ जैसे हरिणों की रक्षा करते हैं वैसे दूसरे व्यक्ति रक्षक बनकर पति कहलाते हैं और अपनी जीविका के लिए राजा अपनों को भी मारते हैं पर यह राजा प्रजा को अच्छी जीविका देकर राजा पृथु के समान है ।। 97

सुवर्ण के प्रतान सुशोभित सुन्दर चोटियों से जो मेघ को छूनेवाले हैं, विविध राजसदनों से जहाँ देव बसते हैं । अत्यन्त ऊँचे दाँतोंवाले भाग के कारण भूमि के जो पहले पृथु के समान मुक्ति की शंकावाले हैं ।। 98

धारण किये हुए कोमल धनुष के कारण जो कामदेव के समान हुआ जो अपकारी को निकालता है– ऐसा न हो उसके प्रतिनिधि के रूप में शरीर से यह राजा ब्रह्मा से बनाया गया मज़बूत धनुषवाला दृढ़कार्मुक रूप में समझा गया ।। 99

आक्रमण करके जिसके द्वारा कोमल कर कमल से सुगन्धित दिशा के अन्त तक जानेवाली कृति अतएव पृथिवी गन्धवाली नाम से सार्थक समझी जाने लगी ।। 100

दूसरे राज कलि से जीते गये जो दूसरे कलि को जीतनेवाला न्याय से जगत् का रक्षक एक वीर है देव (आदित्य) का शत्रु भी क्या नाम के स्मरण मात्र से विष्णु के सुनने पर यदि राहु सचरण हुआ ? ।। 101

हुंकार से गर्वित हरि से ताड़ित नाग के वाद्यों से सुन्दर स्वर से शत्रु के घर में झल्लिका शब्द आज भी जिस चतुर वीर्य बली के विषय में कवि की वाणियाँ नाचने में चतुर मयूर नाचते हैं ।। 102

सो यह जल श्रेष्ठ तड़ाग उसने खुदवाया जो चन्द्र बिम्ब को जीतनेवाला जैसा है पृथिवी पर गिरने के वेग से धोये-धोये विलीन विगलित मृग, पृथिवी के विभ्रम के आदर्श बिम्ब रूप से है ।। 103

कम्बुज के भावी राजाओं के सबसे पूर्व यह तड़ाग दिया गया । पुनः-पुनः यह याचना की कि अपने धर्म के सेतु की रक्षा कर्तव्य है ।। 104

मुझे देखकर छोटे तड़ागों के पालकों को इनका हरण करें तो उथल-पुथल मच जाय । सर भी गुप्त है कुबेर के यत्न से कहीं से भीम एकाएक मथनेवाला है ।। 105

पृथिवी के तड़ाग-रूप स्तन से उत्पन्न जल से सम्यक् वर्द्धित जो पेड़ बाल-बच्चे हैं, वय से न समझ में आने योग्य मधुर अनर्थक वचनोंवाले हैं उन्हें अक्षत अहत रूप से पापरूप सर्प से बचायें ।। 106

दानियों में जो श्रेष्ठ हैं वे राजा श्लाघ्य, पूज्य, धन्य, रत्न भी याचकों को देते हैं, वे आसक्ति से दूर हैं, ये आप जल मात्र यहाँ क्यों न हमें देंगे ही ।। 107

और ज्ञात है सत्य है माँगना मरण ही है राजा के लिए विशेष रूप से तो भी वह होवे । धर्म के लिए मरण प्रशस्त है, सज्जनों के लिए यह बात है, अतः त्यागियों को ही याचें ।। 108

पूर्वी बारे अभिलेख
Eastern Baray Inscription

चार खड़े पत्थर जिनका वर्णन इसके पूर्व में अभिलेख-संख्या 41 में हो चुका है, उन्हीं में से एक यह अभिलेख है। इस अभिलेख से प्रवरसेन जो सेतुबन्ध, सिंहावलोकित न्याय तथा गौतम के न्यायसूत्र के लेखक हैं, की जानकारी हमें मिलती है।

इस अभिलेख में संस्कृत के 108 पद्य हैं जिनमें पद्य संख्या 20 से 23, 79 से 82 अस्पष्ट हैं। पद्य संख्या 19 से 102 श्लोक, पद्य संख्या 103 वसन्त तिलक, पद्य संख्या 104 से 108 अभिलेख संख्या 41 के ही समान हैं।

इस अभिलेख का सम्पादन बार्थ ने किया है।[1]

VV. 1-18 are identical with those of No. 62 of RCM.

आशामकृत निश्शङ्कु यो द्विवोप्यर्थिनोऽनिशम्।

---

1. *ISC*, p.432

दक्षिणा(श)नं त्रि(शङ्कोर्ण) यमोपि सहते श्रिताम् ॥ 19
प्रजापत(ते)र्..................प्राक् प्रजाध्वंसिनो मुखात् ।
निर्य्ययुष्य(ॅ)स्य.................द् वृद्धयर्थ शासनामृतनम् ॥ 20
विहाय विषय(क)प्(टा)न्वैरिवर्ग्गार्द्दितो विशन् ।
विमु(क्तो)..........(य)स्य मण्डलन्तिग्मतेजसः ॥ 21
शि(र):........ रिपुरुल्लाघयन्निजम् ।
.........(यस्या)ङ्घ्रि नखज्योत्स्नामलयजाम्बुभिः ॥ 22
.... मदार्य्याब्धेर्द्धरोद्धृता ।
इति............... दोपाब्धेर्य्यो बभारोरसा श्रियम् ॥ 23
(क्षत्रं) विलङ्घ्य (धूम्रा)ग्निं द्विजार्थ प्राविशद्धरिः ।
(क्षत्र)ायुतग(ण)ार्थन्तु यस् स्वतेजोनलं रजः ॥ 24
(यो)गान्महावराहेण सुपाव नरकङ्किल ।
(धरणी ये)न तु स्वर्ग्ग गरीयाञ्जनकोद्भूतः ॥ 25
क्रोधादिवह्नयो यस्य न मनश्शेकुरीक्षितुम् ।
तन्निवासेश्वरशिरोगङ्गारयभयादिव ॥ 26
वातायत्ते(हतो?)भ्र इव या श्रीरन्यत्राचिरप्रभा ।
रघाविव प्रतापाढ्ये चाया यत्र तु सा(स्थिरा) ॥ 27
महाभाग्योप्यनयजं योऽजहात् सिद्धिकण्टकम् ।
पुरा क्रान्ताप्यविकला यत्कीर्त्तिः पङ्गुताङ्गता ॥ 28
कल्याणविग्रहपरं रोद्धुन्ध्रुवगतिश्रितम् ।
यमुद्युक्तापि भूभृन्नो रविं विन्ध्य इवाशकत् ॥ 29
येनार्द्धच्छिन्नमप्याजौ रिपुवृन्दन्नतिश्रितम् ।
वर्ज्जितं सैंहिकेयाङ्गञ्चक्रिणेव सुधाश्रितम् ॥ 30
परिरम्भे सकम्पोष्णौ स्मृत्वा यमरिदंपती ।
परस्परमशङ्केतां किं कामात् किं भयादिति ॥ 31
नैव कामादिविजयाज्जितेन्द्रिय इतीरितः ।
योगप्रणिधिदुर्व्वारपरार्थकतयापि यः ॥ 32
येनाश्रमशतं शस्तं पितृदेवातिथिप्रियम् ।
भागोपभोगभाग् भूतिभाजनं भावितं भुवि ॥ 33

येन प्रवरसेनेन धर्म्मसेतुं विवृण्वता ।
परः प्रवरसेनोपि जितः प्राकृतसेतुकृत् ॥ 34
अपराजितजेतापि जितं परिहरन्नपि ।
केनाप्यज(वि?)जितङ्कान्त्या योऽजयज्जलजध्वजम् ॥ 35
तृषा समं भुजङ्गारिञ्जित्वा गुरुवसून्यदात् ।
अर्थिभ्यस् सुप्रतीकोपि विभावसुरपीरितः ॥ 36
नालङ्गुणान्तमुत्तर्त्तुमपि विद्वन्मनोऽनिशम् ।
यस्य तत्सारविस्तारभाराक्रान्तिक्लमादिव ॥ 37
सर्व्वकामसमृद्धस्य यस्य विज्ञानिनो मही ।
समाक्रान्तिप्रहरणात् कृतकामेव कामिनी ॥ 38
पूर्णैः कान्तेपि कामे यो धर्म्ममर्थैरपूजयत् ।
प्रायः प्रियकरात् प्रेयान् हितकारी बहुश्रुते ॥ 39
यस्यावार्य्यप्रतापत्वाद् द्विपं पादाश्रितोऽदहत् ।
भानोस्त्विन्दुहतः पद्मो भूभृद्वारिततेजसः ॥ 40
बन्धातुवलिद्वेपी ज्येष्ठो निद्राधिकोऽनुजः ।
इन्द्रोपेन्द्रावपि व्यस्तौ श्रिया जुष्टौ विनैव यम् ॥ 41
सहस्रगुणएवाढ्यं कल्याणस्थितिकर्णिकम् ।
सुतेजः केसरं यस्य धातृपद्मायितं यशः ॥ 42
यत्र त्रिनेत्रभीत्येव दत्त्वा गुणनिधौ स्मरः ।
नूनं स्वकान्तिरत्नानि जगच्चिगुहाङ्गतः ॥ 43
लक्ष्मीञ्जहार नरकादसिपत्रवनाकुलात् ।
सद्दक्षिणः करो यस्य प्रजामिव निजाध्वरः ॥ 44
सूर्य्यतप्तास् सदाप्युच्चैस्तिष्ठन्त्यद्यापि भूभृतः ।
यत्तेजसाशु तु स्पृष्टाः प्रणेमुः कुलभूभृतः ॥ 45
भ्रान्तो मन्दरविभ्रान्त्या कीर्त्या पश्चात् कृतामृतः ।
रक्तश्रीः श्रीपतेर्य्यस्य प्रतापः कोस्तुभायितः ॥ 46
यस्य तस्थौ सुखं पादो भुभृन्मकुटकोटिपु ।
तीक्ष्णकण्टकभीमाजितरणाभ्यसनादिव ॥ 47
यस्य लब्धवा भुजाश्लेषं सुखं बभ्राम भूतये ।

लोकोऽयं माधवस्येव मन्दरोऽमृतलब्धये ॥ 48
यस् सर्व्वदानवयशोवर्द्धनोपि द्विषो बलात् ।
अहरद्भुवि रत्नानि वर्षन हरिरिवापरः ॥ 49
वरास्त्रपाटवेनापि न रूपेणैव यः स्मरः ।
तथा हि प्राहिणोदस्त्रं संमोहनमरिं प्रति ॥ 50
संयत्सभाप्रगल्भोपि योऽन्यस्त्रीदृष्ट्यधोमुखः ।
चन्द्रचन्द्रिकया सुप्तः किन्न पद्मोप शारदः ॥ 51
यस्योदयज्वलन्मित्रे रिपुस्त्रीबाष्पदुर्द्दिने ।
भाति लोके यशश्चन्द्रो द्रुतारिमृगमण्डलः ॥ 52
तेजस्विनोप्यूर्ध्वचरश् शुक्लपक्षाश्रयोपि यः ।
भूच्छायामलिनो नेन्दुरिवाप्यापूर्ण्णमण्डलः ॥ 53
यस्याढ्यलक्ष्मीप्रसवे सर्व्वभूभूरुहे हरत् ।
दूरन्निरस्य कुरवं करो मधुकरो मधु ॥ 54
तमःपूतियुतौ यस्य यशस् सुरभिनिर्म्मलम् ।
सदागतित्वे पि समे जयत्येव मनोनिलौ ॥ 55
हृदयाम्बुजवक्त्राब्जपादपद्मानबोधयन ।
यस्य प्रज्ञाबुधक्षत्रशिरोरत्नमरीचयः ॥ 56
मुक्ताधारविशेषं यः सर्व्वतो गुणमुत्तमम् ।
अहरन्न हरत्यम्भो मेध्यादेव गभस्तिमान् ॥ 57
येनारिश्रीरपि हृता भक्तैर्भुक्तेव तत्कुलैः ।
सिङ्होरसि पिवत्येव भृङ्गो गजमदच्छटाम् ॥ 58
सत्येनानुगतं यस्य चित्तमाज्ञा-समाहृता ।
सेवकेनेव पटुना कृतङ्कार्य्यमतन्द्रिणा ॥ 59
जगतां स्रष्टुरायत्यां तदात्वे वृत्रहारिणः ।
सदा विष्णोः स्त्रियं हन्तुर्निन्द्यङ्कर्म्म न यस्य तु ॥ 60
यं महेच्छम्महावीर्य्यमबलाशयतोषिणम् ।
लक्ष्मीः प्रबुद्धमक्लीवं सुरतौ कथमत्यजत् ॥ 61
तेजस्विमण्डलविभां हरद् यस्याश्रितं करम् ।
तेजोहतारिकान्तारं रथाङ्गमिव शार्ङ्गिणः ॥ 62

गुणप्रतापप्रसरप्रतप्ता येन निर्म्मदाः ।
प्रजान्त्यक्त्वारिभिस् सार्द्धन्दोषाः क्वापि वने द्रुताः ॥ 63
पूर्ण्णस् सदा सदानोपि देवादींस्तर्पयन्नपि ।
यश्चन्द्रस्त्ववर्द्धमासेन कृशी देवाहृतामृतः ॥ 64
उतङ्के वृत्रहायच्छद् गोमयच्छद्मनामृतम् ।
लोके वाक्छद्मना यस्तु दुर्ग्गमा महताङ्गतिः ॥ 65
इत्थं हर्त्तुमलं लक्ष्मीं यस्याग्रेऽरिकरो रणे ।
सपद्मकुड्मलनिभो यदा शिरसि दर्शितः ॥ 66
गुणाधिकतया येन सर्व्वे तेजस्विनो हताः ।
वज्रेणेवान्यमणयो भानुनेवानलादयः ॥ 67
वीर्य्यत्यागहृतो यस्य परोपि स्वात्मताङ्गतः ।
हेमतामिव हेमाद्रिश् शम्भोर्भूयश् शिलोच्चयः ॥ 68
देशकालप्रयुक्तोऽरिरपि यस्येप्सितार्थदः ।
गौर्य्या शम्भोः करोत्येव रतिं हृदि कृतस् स्मरः ॥ 69
विद्वद्ग्रहणतुष्ट्यर्थसिद्धिसुप्रीत्यवञ्चनाः ।
प्रापुय्यस्याङ्घ्रिमाश्रित्य न्यायारम्भमिवार्थिनः ॥ 70
सुदूरमुपरिस्थोऽपि गुणैरासन्नवत् स्थितः ।
शुद्धे यश् श्रीपतिपदे शरदिन्दुरिवाङ्शुभिः ॥ 71
मण्डले कुर्व्वतस् सिङ्हं यस्य निर्म्मलविग्रहम् ।
शुद्धिश्चन्द्रादहो दूरे स्त्रीदृष्टिं वहतो मृगम् ॥ 72
शूरवृत्तमपि त्यक्तं येनान्याय्यं तथापि तत् ।
सिङ्हावलोकितं शास्त्रे हृतङ्क्रान्तौ न भूभृताम् ॥ 73
यस् स्वचक्रान्तरे कृत्वा तप्त्वा तेजोग्निना गुरुः ।
करे कीर्त्तिसुधापूर्ण्णां पृथिवीकुण्टिकामधात् ॥ 74
मृदितादरितो रत्नं सूरिशूरादि योऽग्रहीत् ।
कुर्व्वन्त्युरगरत्नानि न वैरमुरगारिणा ॥ 75
यस्यावर्द्धन्त सुहृदो धर्म्मार्थावाप्तिदानवत् ।
क्षयङ्गतास्तु रिपवस्त्यागाः कामकृता इव ॥ 76
असति प्रतिकर्त्तव्ये स्वदोषे यो गुणाकरः ।

स्तुतिन्तत्त्वोक्तिम श्रृणोच्चारणाच्चारकादिव ॥ 77
शैवं योऽजीजनत्तेजो रोषजिन्मूर्द्धतोऽमलम् ।
ब्रह्मा तु रोषवशगो लल(ङ्घ)न्नीललोऽ(ह)(तम्) ॥ 78
यस्यैकसार्व्वभौमाङ्को ह्लादि.................. ।
कलाशतशलाकाढ्यं सितच्छत्रायित(ं) यशः ॥ 79
यज्ञाग्निधूमसुरभिव्यक्तमद्यापि दिङ्मुखम् ।
यस्य चुम्बत्यविरतन्तद् यशः प्रसरो यदा ॥ 80
धात्रा तपनमुल्लिख्य निर्म्मितो नु तदङ्शुभिः ।
प्रतपन् भुवनं यो हि तन्मुखाब्जमबोधयत् ॥ 81
दुर्ग्गाश्रयमपि प्राप्य............घा............य ।
सङ्हरन्माधवीं लक्ष्मीं कुर्व्वन्नीशः पदे रतिम् ॥ 82
वामनो दानहानेः प्राग् विघ्न(ं)बलिमुखेऽकरोत् ।
नरसिङ्होपि यस्योरुदाने वलिजितो न तु ॥ 83
कुर्व्वन्नप्याश्रमशतं शिवधर्म्मं भजन्नपि ।
चतुराश्रमकर्त्तैति क्षत्रधर्म्मभृदीरितः ॥ 84
कृपया कृपणानाथदीनादीनात्मपुत्रवत् ।
पालयन्नपि योऽजस्रं विशेषज्ञ इतीरितः ॥ 85
सम्यक्पालनपूर्ण्णार्थजिते जगति येन च ।
दूरेपि नाचरच्चौरो दण्डपातो नवो वत ॥ 86
श्रुतिश्लाघ्या फलकरी देशकलानुसारिणी ।
आज्ञा यस्याप्रतिहता जगतीव जगत्पतेः ॥ 87
यस्यापि वपुराह्लादि ह्लादिनीपु स्मरानलम् ।
प्राज्यं प्राज्वलयन्नीरन्नीरदालीप्विवाऩलम् ॥ 88
यः पक्षधर्म्मं सङ्साध्य दृष्टान्तागमहेतुभिः ।
अप्रमेयतमःपक्षमजयन्न्यायवित् कलिम् ॥ 89
नित्येपि काष्ठापगमे गलत्यपि दृगम्भसि ।
जज्वालैवारिकान्तानां यत्प्रतापानलो हृदि ॥ 90
नयप्रतापनिगलप्रथिता येन नाचलत् ।
श्रीम्मोंहितास् स्वपतयोऽनया पापरता इति ॥ 91

रिपुकान्ताशये यस्य तेजो हुतवहं व्यधात् ।
तेजस् सूर्य्यस्य लघयत् सूर्य्यकान्ताशयेऽग्निचित् ॥ 92
व्यापिना पटुना तत्त्वहेतुना तपनायितः ।
यश्चाराङ्शुसहस्रेण जगन्मतपयोऽग्रहीत् ॥ 93
स्वयङ्गृहीतरत्नोपि बान्धवाद्यैस्तुतोप यः ।
स्वयङ्गृहीते धनदो रुष्टो भ्रात्रापि पुष्पके ॥ 94
अनङ्गाङ्गवपुर्ल्लिङ्गमीश्वरव्याहृतिश्रुतिः ।
विष्णुवीर्य्येक्षणं लोके सति यत्र व्यजायत ॥ 95
दृप्तोऽपि सति युद्धे यो जगादैव सुभाषितम् ।
पीतोद्वान्तमिवानेकजयपद्माधरामृतम् ॥ 96
यद्द्विड्गेहे मदाद्वन्यः क्रान्तच्छायङ्गजाशया ।
बभञ्ज स्फटिकस्तम्भं यशोङ्कुरमिव द्विपः ॥ 97
यः कामस्यापि पूर्णत्वं व्यधाद्धर्म्मार्थयोरिव ।
द्विष्टेऽपि संश्रिते प्रायो दयात्मा हि कृतोदयः ॥ 98
यश्चाबहुमतां लक्ष्मीमकृतोरसि वल्लभाम् ।
कीर्त्तिन्त्वाशामगमयत् पटुर्भार्य्या मनोहृतौ ॥ 99
यो धर्म्मेणापि दुर्द्धर्षः प्रतापे सति किं पुनः ।
आस्तां सिङ्हो वृषस्थस्य को हरस्य पुरस् स्थितः ॥ 100
जहुरिन्द्रायुधं भूपकिरीटमणिरश्मयः ।
प्रत्यहं यस्य चरणस्पर्शलब्धबला इव ॥ 101
किमेवमपदानं स्यादिति यं प्रत्यसङ्शयः ।
सत्यगस्त्ये निपीताब्धौ विष्णौ वाक्रान्तविष्टपे ॥ 102
तेनावनीशपतिना तदिदन्तटाकं
खातं प्रफुल्लतरुतीरमुदीर्ण्णमाल्या ।
नृत्तभ्रमप्रसरपातितशान्तवेगा
मूर्द्धोवियत्सरिदिव त्रिपुरान्तकस्य ॥ 103

Vv. 104-108 are identical with those of No. 62 of ReM.

अर्थ–

निरन्तर स्वर्ग की आशा में यम की दिशा को प्राप्त कर वह आगे पतन से नि:शंक हो गया। उसे दक्षिण दिशा के स्वामी यमदेव भी अपनी ही दिशा का आश्रित जान सहन कर रहे ।। 19

जैसे धुएँ और अग्नि के आवरण के पारकर भगवान् हरि यज्ञकर्ता ब्राह्मणों के लिए यज्ञ में प्रवेश किये, वैसे ही अपने क्षत्रपों के लिए जिसने अपने तेज-रूप अग्नि को पारकर पृथिवी को अधिकृत किया ।। 24

जो पृथिवी महावराह द्वारा नरक सहित पृथिवी को पवित्र किया गया है, वह पृथिवी स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है तो इसमें आश्चर्य क्या है ! ।। 25

जिसके मन में सदा गंगाधर शिवजी के निवास होने के कारण गंगा के शीतल जल के भय से ही मानो उसके मन क्रोधादि अग्नियाँ टिकने की या प्रवेश करने की इच्छा न कर सकीं ।। 26

हवा में उड़ते हुए मेघ के समान उड़ते-फिरनेवाली जो लक्ष्मी कहीं भी स्थिर प्रभावती नहीं होती है, वह लक्ष्मी राघव राम के समान महाप्रतापवान् इस राजा के पीछे सदा अनुगामिनी छाया की तरह सदा संलग्न रही ।। 27

पहले जिसकी विक्रान्त अविकल कीर्ति पंगु बन गयी थी, उस महाभाग्यशाली ने अन्याय से उत्पन्न, विजय-मार्ग के कण्टकों (शत्रुओं) का विनाश कर कीर्ति के विस्तार के मार्ग को निष्कण्टक बनाया ।। 28

कल्याणमय शरीरवाले उस श्रेष्ठ को, जिसकी गति निश्चित (अनवरोध्य) था, उस राजा को रोकने के उद्यम में लगे शत्रु राजा लोग उसकी गति को वैसे ही नहीं रोक पाये जैसे सूर्य की गति को विन्ध्य पर्वत नहीं रोक पाया था ।। 29

युद्ध में जिसने शत्रु-समूह में से आधे को काट दिया, परन्तु शेष बचे आधे को जो आत्मसमर्पण सर नीचे कर उसका आश्रय ले लिये थे, उन्हें छोड़ दिया, ठीक वैसे ही जैसे सिंहिका पुत्र राहु को दो टुकड़े में भगवान् चक्रपाणि विष्णु ने काट दिया था, परन्तु अमृत का आश्रय ले लेने के कारण छोड़ दिया ।। 30

जिसका स्मरण कर परस्पर आलिंगित हुए शत्रु-दम्पति यह नहीं समझ

पाये कि यह आलिंगन भय के कारण हुआ या काम भावना के कारण हुआ ।। 31

जो न केवल कामादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ही जितेन्द्रिय हुआ अपितु कठिनाई से हटाये जाने योग्य योग विघ्नों को व्यर्थ कर भी जितेन्द्रिय हुआ ।। 32

जिसने देवता, पितृ तथा अतिथियों को प्रिय लगनेवाले भोगोपभोग के साधनों तथा मूल्यवान् बर्तनों से सम्पन्न सैकड़ों आश्रमों के निर्माण से पृथिवी को भर दिया ।। 33

पूर्व काल में प्रवरसेन ने जिस धर्मसेतु का वर्णन किया था, आधुनिक काल के इस प्रवरसेन ने भौतिक पुल का निर्माण करा उस शत्रु प्रवरसेन को भी जिसने जीत लिया ।। 34

अपराजेय शत्रुओं को जीतनेवाला इस जीत को छोड़कर अन्य किसी के द्वारा अपराजेय मकरध्वज कामदेव को भी जिसने अपने शरीर सौन्दर्य से जीत लिया ।। 35

तृषा ने जैसे गरुड़ को जीतकर बहुत-सा धन लाकर दिया था, वैसे ही इसने भी अपने गुरु को जीत से प्राप्त धन दिया तथा माँगनेवालों के लिए सुप्रतीक होने के कारण दूसरा विभावसु ही हुआ था ।। 36

जिसके गुणों का अन्त पाने के प्रयत्न में लगे विद्वानों का मन दिन-रात के परिश्रम के कारण थक रहा था, किन्तु जिसके गुणों की संख्या का बोझ इतना अधिक था कि आज भी पार नहीं पा सके, अतः उनकी थकान अभी भी ख़त्म नहीं हुई है ।। 37

सभी कामनाओं से पूर्ण जिस योगी (विज्ञानी) ने धरती को आक्रान्त किये हुए शत्रुओं का नाश कर पृथिवी को कामिनी नारी की तरह कृत्कृत्य किया ।। 38

जो सौन्दर्यपूर्ण और पूर्णकाम (आप्तकाम) हुआ था, उसने धन से धर्म किया; क्योंकि प्रिय करनेवाले धन से प्रेय (अपवर्ग) का साधन करना प्रायः हितकारी होता है– ऐसा प्रायः सारे बहुश्रुत विद्वान् कहते हैं ।। 39

जिसके अप्रतिहत तेज से हततेज हुए जो शत्रु उसके चरणों की शरण में आ गये थे, वे उसके प्रताप तेज से जलन (ताप) नहीं अनुभव कर रहे थे जैसे चन्द्रमा के तेज से आहत हुए कमल पुष्प चन्द्र प्रताप का निवारण करनेवाले सूर्य-तेज से ताप का अनुभव नहीं करते अपितु विकास को प्राप्त कर जाते हैं ।। 40

राजा बलि को बाँधने को आतुर बलिद्वेषी (इन्द्र या विष्णु) तथा उसका अधिक सोनेवाला छोटा भाई उपेन्द्र– दोनों बलि को बाँधने में ही व्यस्त देखकर लक्ष्मी को वे प्रियकर नहीं हुए और लक्ष्मी उन्हें छोड़कर इसके साथ आ जुड़ी ।। 41

जिसके सहस्र गुण, जिसका महाकमल सहस्र दल है तथा जिसका सुतेज उसका केसर है, वह उसका यश महाकमल ब्रह्मा का आसन कमल के समान हुआ था ।। 42

त्रिनेत्र शिवजी के भय से जिस गुणसागर में कामदेव अपने रूप-रत्नों को रख(स्थापित)कर स्वयं जगत् के जीवों के चित्तरूपी गुफा में जा छिपा ।। 43

असिपत्र नामक घोर नरक से अपनी प्रजा की रक्षा कर पुत्रों की तरह ही प्रजाजनों पर भी उसी प्रकार दया (दाक्षिण्य) किया जिस प्रकार तलवार के घोर युद्ध से भी लक्ष्मी का हरण कर अपने यज्ञों को दक्षिणा से युक्त किया ।। 44

तपनशील सूर्य से भी सदा ऊपर उसका प्रताप का तेज रहता था, जिसके तेज की किरणों का स्पर्श पाकर आज भी राजाओं का कुल उसे नमस्कार करता है ।। 45

घूमते हुए मन्दराचल के चक्कर से जिसका यश बाद में अमृत बना, परन्तु पहले मन्दराचल के चक्कर के कारण चारों ओर फैली हुई उसकी कीर्ति कौस्तुभ मणि बनकर विष्णु के वक्षस्थल से जा लगी जहाँ बाद में लक्ष्मी पहुँची ।।

अथवा

मन्दराचल के चक्कर से चक्कर खाई (भ्रान्ति में पड़ी) लक्ष्मी, जिसकी कीर्ति को कौस्तुभ मणि समझकर, भगवान् विष्णु समझकर उससे आसक्त हुई ।। 46

कठोर और भयंकर शत्रुओं को भीषण रण में जीत के अभ्यास के मार्ग से ही जिसके चरण करोड़ों राजमुकुटों के पादपीठ पर सुखपूर्वक आसीन हुए ।। 47

जिसकी भुजाओं का सहारा (संयोग) पाकर माधव (भगवान् विष्णु) का भुवन सम्पदा के लिए तथा मन्दराचल अमृत के लिए सुखपूर्वक घूमता रहा ।। 48

जो सर्वदा नये यश का विस्तार कर रहा था, वह शत्रु सैन्य से बलपूर्वक पृथिवी के रत्नों का हरण कर (भूमि जीतकर) उस भूमि पर रत्नों की वर्षाकर (प्रजाहित की वर्षाकर) दूसरे सूर्य के समान ही हुआ ।। 49

जो केवल रूप से ही कामदेव नहीं अपितु अस्त्र चालन-चातुर्य से भी कामदेव था क्योंकि उसने शत्रुओं पर सम्मोहन अस्त्र का प्रहार किया ।। 50

जो सभा में वाचाल (प्रगल्भ) अर्थात् सुवक्ता होते अत्यन्त संयत या शान्त था तथा जो परायी स्त्री पर दृष्टि पड़ने पर अधोमुख हो जाता था । सूर्य की किरणों से खिला हुआ कमल पुष्प क्या शरदचन्द्र की चन्द्रिका को देख सुप्त हो अधोमुख नहीं हो जाता है ।। 51

जिस सूर्य के उदय से उत्पन्न गर्मी से शत्रु स्त्रियों में अश्रुपूर्ण दुर्दिन आ गया तथा जिसका यश चन्द्रमा संसार की शोभा बढ़ा रहा था, उसके शत्रु मृगमण्डली में शीघ्र पलायन हो गया क्योंकि चन्द्रमा में मृग बन्दी हो जाता है (मृगलांछन के रूप में) ।। 52

वह तेजस्वी सबसे ऊपर रहनेवाला, शुक्ल पक्ष अर्थात् शुभ कर्मों का आश्रयी और पूर्णमण्डल (पूर्ण प्रकृतिमण्डल) होते हुए भी, पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह भू-छाया से मलिन नहीं था (उसमें ग्रहण नहीं लगा था) ।। 53

जिसकी लक्ष्मी सम्पूर्ण पृथिवी-पर्वतों से संग्रह की हुई सम्पदा के कारण बहुत विशाल (आढ्य) उसी प्रकार हुई जैसे दूर-दूर के फूलों से रस का संचय कर भौंरे मधु का ढेर कर देते हैं ।। 54

कालिमा से मुक्त जिसके यश का निर्मल सुगन्ध सदा विजय की इच्छा रखनेवाले चंचल मन को वैसे स्थिरता (समत्व) प्रदान किया जैसे सदा प्रवहमान

वायु को उसके यश के सुगन्ध से स्थिर कर दिया था, भर दिया था ।। 55

जिसके मुख कमल, हृदय कमल तथा चरण कमल को क्रमश: उसकी प्रज्ञा, शुभ्र छत्र और मुकुट मणियों ने विकसित किया अथवा उसकी प्रज्ञा और बुद्धिमान शासकों के मुकुट मणियों ने विकसित किया ।। 56

जो सर्वत्र गुणों की धारा की वर्षा करनेवाले उसने न तो यज्ञों से शक्ति और पृथिवी से जल का शोषण किया ।। 57

उन-उन कुलों से भोगी गयी लक्ष्मी का उसी प्रकार हरण किया जैसे सिंह के छाती से लगे हाथियों के मद (हाथियों को मारते समय उनकी छाती में लगे हाथी का मद) को जैसे भ्रमर पीते हैं ।। 58

सत्य का अनुगत हुआ जिसका चित्त तथा जिसने आज्ञोपदेश ग्रहण किया है वह निरालस्य होकर कर्मयोग की साधना में लगा ।। 59

जगत् के सृष्टिकर्ता के मार्ग में (धर्म के मार्ग में) चलते हुए वृत्रहन्ता विष्णु (या इन्द्र) के यज्ञों द्वारा विष्णुपत्नी लक्ष्मी का हरण करने पर भी उसका यह अपहरण कार्य निन्दा के योग्य नहीं हुआ ।। 60

उस उच्च संकल्पी, महाबली, प्रबुद्ध, अनपुंसक तथा नारियों के लिए सन्तोषप्रद के साथ प्रेम को लक्ष्मी कैसे छोड़ती ।। 61

जिसके तेज की किरणों ने तेजस्वियों के समूह के तेज का हरण किया था (ठीक वैसे ही जैसे सूर्योदय के प्रकाश से सभी तेजस्वियों के तेज का हरण हो जाता) उस तेजस्वी की तेज की अग्नि (ताप) ने शत्रुरूपी वन का नाश उसी प्रकार किया जैसे चक्रपाणि शार्ङ्गधनुर्धारी विष्णु शत्रुओं का नाश करते हैं ।। 62

जिस अहंकाररहित के प्रताप के प्रसार से प्रतप्त शत्रु और दोष प्रजाजनों को छोड़कर किसी वन में शीघ्र ही प्रवेश कर गये ।। 63

चन्द्रमा तो आधा महीना कृश होकर रहता है और देवताओं द्वारा सोमापहरण के कारण अन्त में (अमावस्या को) मृत हो जाता है, परन्तु जो सदा दान करते हुए भी तथा देवादि को तर्पण करते हुए भी सदा पूर्ण ही बना रहा ।। 64

जिस प्रकार गोमय के छद्म से इन्द्र ने उत्तङ्क को अमृत प्राप्त करा दिया

था उसी प्रकार संसार में अपने छद्मवाक् से उसने महापुरुषों की दुर्गम गति का प्राप्त किया ।। 65

जब माथे पर कुड्मलयुक्त कमल के समान दिखा तब युद्ध में लक्ष्मी हरण करनेवाले के शत्रुओं ने उसके आगे हाथ उठाकर 'बस-बस' कहा ।। 66

गुणाधिक्य के कारण उसने सभी तेजस्वियों के तेज को समाप्त कर दिया ठीक वैसे ही जैसे हीरा अन्य सभी रत्नों के प्रकाश को तथा सूर्य सभी तपनों अग्नि आदि के ताप और प्रकाश को फीका कर देता है ।। 67

जैसे हिमालय से सुवर्णमय होने की कृपा शिवजी द्वारा बन्द कर देने पर हिमालय पत्थरों का ढेर मात्र रह गया था, वैसे ही शक्ति का हरण कर लिये जाने पर उसके शत्रु भी अपने आप तक में सीमित होकर रह गये थे ।। 68

देश काल से जो कभी उसके शत्रु थे वे भी उसक अभिप्शार्थ (उसका हित करनेवाले) देने वाले हो गये थे ठीक जैसे शम्भु के हृदय में पार्वती के प्रति प्रेम कामदेव ने ही उत्पन्न किया जो कभी उनका शत्रु हुआ करता था ।। 69

जैसे अपनी सार्थकता के लिए सिद्धि, सुप्रीति और अवंचना विद्वानों का ग्रहण करते हैं वैसे ही धन चाहनेवाले उसके चरणों का आश्रय प्राप्त कर न्यायारम्भ पाया ।। 70

सुदूर ऊपर स्थित होते हुए भी शरदकालीन चन्द्रमा की उपस्थिति का बोध भूतल पर पड़नेवाली उसकी आह्लादकारी किरणों द्वारा होता है वैसे ही श्रीपति भगवान् विष्णु के शुद्ध चरणों में स्थित हुए भी उसकी उपस्थिति का बोध उसके गुणों के द्वारा हो रहा था ।। 71

मृगदृष्टि का वहन करनेवाली मृगनयनियों द्वारा जिस निर्मल शरीरवान् सिंह का घेरा बनाया जा रहा था, वह पुरुष सिंह दूरस्थ चन्द्रमण्डल स्थित चन्द्रमा से दूर था परन्तु शुद्ध था; क्योंकि चन्द्रमण्डल स्थित चन्द्रमा में मृगलांछन का दोष था ।। 72

वीरवृत्तिवाला होते हुए भी उसने अन्याय का त्याग कर दिया था, अतः उसका सिंहावलोकन (मुड़-मुड़कर या बार-बार देखना) शास्त्रों तक ही था, लुटे या सम्पत्ति हरण किये या पराजित राजाओं के प्रति नहीं था । अर्थात् धनापहृत या

पराजित राजाओं की ओर कभी मुड़कर नहीं देखा ।। 73

अपने तेज की अग्नि से दीप्त हुआ वह गुरु (स्वामी) सम्पूर्ण पृथिवी को अपने अधीन कर अपनी कीर्तिरूपी अमृत से भरी हुई कुण्डिका (कुम्भ) की तरह बना रखा था ।। 74

पराजित किये हुए शत्रुओं, विद्वानों तथा वीरों से ज्ञानरत्न और धनरत्न एवं मणियों को जिसने प्राप्त किया, परन्तु उसने सर्पों का वध कर रत्न और मणि प्राप्त करनेवाले गरुड़ से कोई वैर नहीं किया ।। 75

उसके धर्म और अर्थ की प्राप्ति के लिए किये गये दान से उसकी सुवृद्धि हो रही थी, परन्तु शत्रुओं का दान कामदेव द्वारा किये गये शरीर दान की तरह अंगनाश को प्राप्त हुआ ।। 76

असत्य और अधर्म के विरुद्ध अपने आचरणों के कारण जो गुणों का सागर था, उसने अपनी प्रशंसा चारणों और गुप्तचरों द्वारा सुनी ।। 77

उस क्रोधजित ने अपने मस्तक से निर्दोष शैव तेज को प्रकट किया, परन्तु ब्रह्मा क्रोध के वशीभूत होने के कारण नीले और लाल मिश्रित रंग के हुए ।। 78

जिसके यज्ञ-धूम से आज भी दिशाएँ सुगन्धित हो रही थीं, तथा जिसके यश का प्रसार उन दिशाओं के मुख चुम्बन से यश प्रसार भी सुगन्धित हो रहा था ।। 80

ब्रह्मा ने जिसके भाग्य में 'तपन' लिखकर बनाया था वह भुवनों को तपाते हुए भी अपनी किरणों द्वारा उनके कमल के समान मुख को खिलाया ही (प्रसन्न किया) । तपन अर्थात् सूर्य की किरणें कमल को खिलाती हैं इसी प्रसिद्धि के अनुसार विधाता के मुखकमल को राजा के प्रताप की किरणें खिलायीं अर्थात् विधाता को प्रसन्न कीं ।। 81

नरसिंह भगवान् भी जिसके जंघा (हृदय) विदारण से बलि को जीत न सके । उसी बलि को वामन भगवान् दान के पूर्व के विघ्न को गडुए के मुख में डालकर जीता ।। 83

शैव धर्म का अनुगमन करते हुए सैकड़ों आश्रमों का निर्माण कराने पर भी क्षत्रिय धर्म का पालक होने के कारण चार ही आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) का ही पालक प्रसिद्ध हुआ ।। 84

कृपा करने में अकृपण अर्थात् कृपालु उस राजा ने धनहीनों, अनाथों और दरिद्रों का समान रूप से पालन करते हुए भी निरन्तर विशेषज्ञ ही कहा जाता रहा ।। 85

जिसने सम्यक् पालन का पूर्णार्थ जगत् में जीत लिया (प्राप्त कर लिया) था उसके राज्य में दूर में भी चोर चोरी नहीं किये अर्थात् जैसे नाव चलाने का दण्ड (डण्डा) दूर में डाला जाता है, वैसे ही दूर में भी दण्ड के भय से चोर चोरी नहीं किये ।। 86

वेदों द्वारा प्रशंसित फल देनेवाला, देशकाल के विचार से युक्त उसकी धर्मसिद्ध आज्ञा, उस जगत्पति की आज्ञा के समान इस संसार में अनुलंघ्य था ।। 87

जिसके शरीर की आह्लादकता, आह्लादिनी स्त्रियों में कामाग्नि को इतनी प्रचुर मात्रा में प्रज्वलित किया कि शीतल जलवृष्टि करनेवाली मेघमाला भी आग के समान लगी ।। 88

जो दृष्टान्त रूप आगम हेतु द्वारा अप्रमेयतम (असाध्य) पक्षधर्म रूपधर्म का स्वमर्दन में साधन कर उस न्यायशास्त्र का ज्ञाता कलिकाल को जीतता हुआ प्रतीत हो रहा था ।। 89

जिसका प्रतापाग्नि शत्रुपत्नियों के हृदय में जल रहा था, वह आँखों के पानी (आँसू) में घुलकर नित्य होते हुए भी आँखों के कोर पर आ जाते थे– टपक पड़ रहे थे ।। 90

न्याय के प्रताप से जिसने जगत् का मार्ग प्रशस्त किया वह स्वयं न्याय के मार्ग पर नहीं चला क्योंकि लक्ष्मीपति नारायण तथा इस जगत्पति राजा– दोनों के प्रति आकर्षित लक्ष्मी को अपनी ही ओर खींच लिया ।। 91

शत्रु नारियों के चित्त में अग्नि की स्थापना कर उसने सूर्य के तेज को भी छोटा किया क्योंकि सूर्य तो अपने तेज को जड़ सूर्यकान्त मणि में स्थापित

करता है।।92

उस सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त राज्यवाले, तत्त्वज्ञान से दक्ष बने हुए राजा ने सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त ज्ञान से दक्ष सूर्य के समान ही हुआ अर्थात् सूर्य के धर्म का निर्वाह किया ठीक वैसे ही जैसे सूर्य अपनी सहस्र किरणों से जगत् का जल ग्रहण कर लेता है वैसे ही इसने जगत् में फैली सहस्रों चर रूपी किरणों से जगत् के मत रूपी जल को सोख लेता है ।। 93

उसने स्वयं रत्नों को प्राप्त कर अपने बन्धु-बान्धवों को सन्तुष्ट ही किया, परन्तु रावण तो पुष्पक को ग्रहण कर भाई कुबेर को रुष्ट ही किया ।। 94

कामदेव के रूप के समान रूप, ॐकार सहित वेद, भगवान् विष्णु की शक्ति एक साथ इस जगत् में (इस राजा के रूप में) अल्प काल के लिए यहाँ उत्पन्न हुआ है ।। 95

युद्ध में प्रज्वलित होते हुए भी जिसने मधुर भाषण को प्राप्त किया मानो अनेक जयलक्ष्मी के अधरामृतों का पान कर वमन करता रहा हो ।। 96

जो शत्रुओं के घरों में बने हुए वज्र स्तम्भों को जो उन शत्रुओं के यश के अंकुर के समान थे तथा उनमें शत्रुओं की छाया प्रतिबिम्बित थी उन वज्रस्तम्भों को जिस राजा ने मदोन्मत्त जंगली हाथियों की तरह तोड़कर रौंद डाला ।। 97

जिसने धर्म और अर्थ के समान काम की भी पूर्णता प्राप्त की, उसने यज्ञों के आश्रय से जगतात्मा की कृपा से आत्मोदय को प्राप्त किया ।। 98

जिसने बहुत चंचला लक्ष्मी को प्रियतमा बनाकर हृदय में बसा लिया उसकी कीर्ति लक्ष्मी चतुर पत्नी की तरह दिशाओं में चली गयी अर्थात् कीर्ति जब लक्ष्मी को उसके हृदय में प्रियतमा के रूप में देखी तो वह स्वयं दिशाओं में चली गयी अर्थात् उसकी कीर्ति दशों दिशाओं में फैल गयी और लक्ष्मी हृदयमात्र में बस कर रह गयी । इस प्रकार दोनों ही उसकी मनोहारिणी बनी रहीं ।। 99

जो धर्म में दुर्द्धर्ष था उसके प्रताप का तो कहना ही क्या ! परन्तु धर्म पर आरूढ़ तथा प्रतापी होते हुए भी कौन राजसिंह वृषारूढ़ शिवजी के आगे टिका अर्थात् वह राजसिंह शिवभक्त बना रहा ।। 100

राजाओं द्वारा प्रतिदिन मस्तक झुकाकर जिसका चरण स्पर्श किया जाता, उन राजाओं के मुकुट में लगे रत्नों की चमक से प्राप्त चमक से इन्द्र का आयुध वज्र की चमक को छीन लिया है, हरण कर लिया है ।। 101

क्या यह अपदान ही होगा इस संशय को प्राप्त हुए इस राजा ने अगत्स्य ऋषि द्वारा समुद्र पी लिये जाने पर तथा स्वर्ग का विष्णु से आक्रान्त हो जाने पर त्रिपुरासुर को मारनेवाले शिवजी के मस्तक पर आ विराजनेवाली गंगा की तरह ही पवित्र इस तालाब को उसी राजा ने खुदवाया जिसके किनारे पर प्रसन्न वृक्षों पर खिले फूलों पर से भौंरों के प्रसार द्वारा गिराये गये फूलों की लड़ियाँ मानो तालाब के जल की तरंगों को शान्त कर रही थीं ।। 102-103

43

पूर्वी बारे अभिलेख

Eastern Baray Inscription

इस अभिलेख का भी सम्बन्ध उपर्युक्त यशोवर्मन के दोनों अभिलेखों से है । यह भारवी, वसु (बन्धु) तथा कवि मयूर का वर्णन करता है तथा सांख्यदर्शन की ओर इंगित करता है । प्राकृत के लेखक के रूप में गुणाढ्यनीति पर लिखी पुस्तक के लेखक के रूप में विशालाक्ष, शुरा का अपने दुश्मन भीमक पर विजय प्राप्त करना तथा कल्याण नामक पूर्वा के लेखक के रूप में जीन को इस अभिलेख में वर्णित किया गया है ।

बार्थ ने इस अभिलेख को सम्पादित किया था ।[1]

VV. 1 - 18 are identical with those of RCM No. 62

वपुर्व्वीयैर्क निलयो यः प्राण इवाचक्रिणः ।
कृत्वा स्वाङ्ग हरिणाङ्गमनङ्गाङ्गे निवेशितः ॥ 19

---

1. *ISC*, p.452

.........(अक्ष्)यग्निना न्वीशस् सल्लभ्योऽक्षीन्दुना स्मर(म्) ।
कृष्टाक्षिमानुना कृष्यन्दिव्याङ्गम कृतेव यम् ॥ 20
येनामलास्यविभया जितं पूर्णेन्दुमण्डलम्।
पृथिवीमण्डल(च्छा)यास(ङ्)क्रान्त्यस् (पृ)ह(ण)ा दिव ॥ 21
यस्(तु)ङ्गमपयनालम्ब्य(नि)जभुजजितज्जगत् ।
.........दाप्तराज्यस्तु शक्तो वामनविक्रमात् ॥ 22
कामार्थ धर्म्मविद्वेष्टुर्भयार्थोद्धितहेतु ।
(अ)जहाज्जाप्तु यो धर्म्म(ं) मर्त्यधर्म्मान्द्विषन्नपि ॥ 23
...............न्मलभागिदुरुत्थितः ।
(जया)त्तु यस्य कीर्त्तीन्दुरमलस् स्वच्छतेजसः ॥ 24
प्राप्यार्ज्जुनो जिताङ्कृष्णा(ं) प्रिया(ं) भ्रातृपथेद्धतौ ।
व्यध(ा)ज्जिष्णुस्तु यो लक्ष्मीं दीपाज्जनपदोद्धतौ ॥ 25
(अ)प्रिय(म) द्विन अमून्निशिद्द्रान्निस्सृतो भुजात् ।
(न)रसिङ्ह इव स्तम्भात् प्रतापो यस्य भीषणः ॥ 26
योऽसिवैध प्रहितया यशश्चन्दनचर्च्चया ।
....ज् जयश्रिया शिष्टोमुक्तशेष.......युधि ॥ 27
शिते शितं पटु खरे वृत्तं यस्यानुकुर्व्वतः ।
मान्यमर्क्कमणेर्व्वज्रन्नु हारः पक्षपातिता ॥ 28
भुवः क्षत्र कलत्राणि पाययन्पति शोणितम् ।
भजन्नप्यनृशंसो यो नुतोऽन्यस्त्री पराङ्मुखः ॥ 29
चित्रं यत् त्रिदशान् कामान् द्विजान्धाता विधून्व्यधात् ।
न नरानमरान् यत्र वपुः कान्त्यामृतार्ण्णवे ॥ 30
जगन्मानस कोशेषु न्यस्तङ्गुणवसु स्थिरम् ।
दोषदस्युहतेर्य्यस्य तद्भाराविवृतेस्वपि ॥ 31
यस्याजस्येव दग्धारेः प्रबुद्धस्याङ्घ्रि पङ्कजम् ।
नम्रशेषसहस्रोच्चौशिशिरोरत्नाङ्शुबोधितम् ॥ 32
नागाद् गदन्नुदन्तीव शीतयन्तीव भानुमाम् ।
दहन्तीवेन्द्रदृक्पद्भन् द्रुता यत्कीर्ति चन्द्रिका ॥ 33
नरवाहनरत्नाढ्यो भुभृत्पतिशिरोधृतः ।

परमेशस्थितिश्लाघ्यो यः केलास इवापरः ॥ 34
गुणरत्नविमानेन राज्ञामूर्द्ध्व चरोपियः ।
न शासनेन पतितो वसुवट् धर्म्मवित्तमः ॥ 35
एकदो द्वनिवृष्ट्याः यः स्वस्यातिथिमवर्द्धयत् ।
युधि सव्यापसव्योत्थैर्व्वाणवर्षैस्तु वज्रिणः ॥ 36
योऽजहात् प्रत्युषकृतिन् त्रातैवप्लवगादपि ।
प्रतीक्षमाणं लघयन् राघवं प्रतयुपक्रियाम् ॥ 37
करिष्यन्नेकपत्नीं यस् सर्व्वभोग्यामपि श्रियम् ।
तज्याज तत्प्रियसखीन् दूरं विकृतिशाम्भलीम् ॥ 38
नखाङ्शुदण्डैः पादो वि यस्य नम्रमहीभुजाम् ।
मौलिरलाङ्शुमवधीद् वर्ण्णसङ्कर कारिणम् ॥ 39
सिषेच दग्धवारिधरां यसतत्कान्तादृगम्बुभिः ।
स्वान्तर्द्धामाग्निधूमौघमहामेघ स्तुतैरिव ॥ 40
यो विराजापि न जहौ सत्यं युधि युधिष्ठिरः ।
द्विजाद्ये पि वने जातस् सत्यन्द्रोणभियात्यजत् ॥ 41
सर्व्वभूपैरपि कृतङ्कर्म्म कामार्थकारणम् ।
अधर्म्मन्नान्वकृत यो धर्म्मस्य सुहृदो वशात् ॥ 42
नोच्चैश्शिरस्त्वमपि यो हतस्योच्छेदजन् द्विषः ।
से हे धुलक्ष्मीञ्च पदं भुमृन्मूर्द्धिन द्रुतस्य च ॥ 43
लोकोदयेष्वविकृतेः प्रधानात् प्रकृतेरपि ।
यतो वदन्त्यसाङ्खयन्तु तत्त्वज्ञा गुणविस्तरम् ॥ 44
दूषणादिहतेर्य्यस्य कीर्त्तिर्व्वहुमुखाहृता ।
क्रान्ताब्धिरपि दुर्द्धर्षा राघवस्येव मैथिली ॥ 45
बालैकशक्ति विधृतौ न शक्ता वह्वायस्त्रयः ।
एकश् शक्तित्रयं वृद्धं परार्थन्तु वमार यः ॥ 46
वनान्महावराहेण मुक्तैकेनोद्धृता मही ।
न तु यस्यारिवेश्मोर्व्वी महाक्रोड़ शतैरपि ॥ 47
भूर्भुजे भारती वक्त्रे लक्ष्मीर्व्वक्षसि रक्षिता ।
कीर्त्तिस्तु गत्वरी दिक्षुयेन रोषादिवाप्पिता ॥ 48

मर्त्यधर्म्मविरक्तो पि योऽर्थत्यागी जितस्मरः ।
भूमण्डलेन बुभुजे धर्म्मकामार्थमण्डलम् ॥ 49
कामाद् बाणजयाहूतो योऽनिरुद्धो पि तेजसा ।
न वृष्णिरिव चित्राद्यश्चित्रलेखाङ्किताकृतिः ॥ 50
अस्राश्रुसिक्तां विधवां भार्ग्गवो गामदादिति ।
स्पर्द्धयेव गवेन्द्राद्यं हेमाद्यङ्गोयुतन्ददौ ॥ 51
यो वामवाहुनाप्याशु जहार मदकुञ्जररम् ।
हरिं हरन्तन् द्विरदं भुजाभ्यां विहसन्निव ॥ 52
अधो भूभृच्छिरः कुर्व्वन् पुष्करावर्त्तको युधि ।
यः कीर्त्त्येकाणणवङ्कृत्वा सञ्जहार मुवश् श्रियम् ॥ 53
श्रुतिमात्रे नृपा यस्य न्यस्तास्रस्तेजसा जिताः ।
अमर्षादिव तत्कन्याः कामायुधारयन् ॥ 54
वयसा तरुणो योपि सत्यं वृद्धो गुणेन तु ।
धर्म्म सुहृदमालंब्य राजमार्ग्गङ्गतो यतः ॥ 55
यो वंशश्रीश्रुतकलावयोवीर्य्यवपुर्ब्बलैः ।
विभदोप्युग्रसङ्ग्राममहालाभमदोज्ज्वलः ॥ 56
यो धाम्ना पूर्व्वमप्याप श्रृण्वन्नवनवं यशः ।
श्रुतलिगीतिस् सिंहेन स्वाङ्कलग्नेमदानतः ॥ 57
मृदुतेजसि यं शान्तमुद्धतन्तिग्मतेजसि ।
पद्मोप्यनुकरोतीह श्रीस्थिरस्थितये ध्रुवम् ॥ 58
बलादुद्धत्य यशसे भूपं पुनरतिष्ठिपत् ।
स्वस्थानेऽमृतलाभाय योऽनन्त इव मन्दरम् ॥ 59
दर्प्पोष्णतृप्ता राज्यश्रीमदिामदमोहिताः ।
शान्तिमापुर्नृपाः पीत्वा यस्याह्लादि यशोमृतम् ॥ 60
यो रत्ने स्थापिते पात्रे शोधिते भुवनाङ्गने ।
सुलग्नाज्जयशब्देन कीर्त्तिं स्वप्रतिमां व्यधात् ॥ 61
(न)यन् सुहृत्सहस्राणि लक्ष्म्यात्मसमतां व्यधात् ।
यो लाघबन्धनपतेः पश्यतो नग्नमीश्वरम् ॥ 62
यस्यकीर्त्तिगुणाढ्या या द्यूल्लङ्घनरयादिव ।

पतिता भूसमुद्रादीन् क्षमागाम्भीर्य्यदिक् ॥ 63
बध्नन्तोऽपि जगद्दिक्षु गमयन्तोपि वल्लभाम् ।
कीर्त्तिङ्केनापि यस्योक्ता विनयामरणा गुणाः ॥ 64
नेत्रास्याङ्घ्रि कराम्भोजैर्य्यस्य व्याप्तं यशोविसम् ।
श्रीपद्मविस्तरस्येव जङ्गमस्य जगन्नदे ॥ 65
येन कीर्त्तिप्तमारत्न(ं) पूर्ण्णभुवनकोशकम् ।
करे रात्रिचरस्येन्दोश् शङ्क्येव वृषाङ्कितम् ॥ 66
यस्यारुणमणिप्तायैः स्वर्णैः क्रोड़मुखोद्धृतैः ।
अद्यापि लग्नरोषाग्निस्फुलिङ्गे वारिवासम् ॥ 67
लोभो जितेन्द्रियस्यापि यस्याजिज्ञानकीर्त्तिषु ।
सयदि स्यात् परस्वेपि जगत् स्यादुञ्छवृत्तिवत् ॥ 68
पारदः स्थिर कल्याणो गुणाढ्यः प्राकृतप्रियः ।
अनीतिर्य्यो विशालाक्षश् शूरो न्यक्कृत भीमकः ॥ 69
मयूररचिते पादस्तवे तुष्टेडङ्शुमानिति ।
स्पर्द्धयेवान्वहं प्राज्यराजहङ्सकृते तु यः ॥ 70
नालन्तपति यत्रारिर्न्निर्म्भाल्यमपि योषिताम् ।
हर्त्तुं भानोस्तु तपतो मातुर्भूषा हतारिणा ॥ 71
राज्यश्रियो ददर्शाङ्गं सुनिगूढं रतावपि ।
सर्व्वतो दृष्टिबाहुल्याद् यश् शच्या इव वृत्रहा ॥ 72
एतावानक्रमो राज्ये कृतो येन यदा विभुम ।
कलिं हत्वा गुरुकृतङ्कृतङ्कृतयुगं पुनः ॥ 73
उन्नतानान्दहच्छायान्नतानां परिवर्द्धयत् ।
व्यस्तानि भानुतेजांसि यस्य तेजः पराभवत् ॥ 74
मधुकैटभ संग्रामे सञ्जहार हरो हरेः ।
लीलां यस्याप्यरिध्वङ्से प्रनृत्यन् कीर्त्तिविस्तरः ॥ 75
यस्य क्रोधाग्निना दग्धा दृढ़ायुधधरायुधि ।
वीराक्रन्दाः स्मरारेस्तु स्त्रीसुहृत्कुसुमायुधः ॥ 76
अत्युत्तुङ्गातिधवला विवृद्धा द्विङ्गृहप्रिया ।
श्रीभूम्यां यस्य यूनोपि कीर्त्तिः केनापि वल्लभा ॥ 77

चक्रीवाक्रान्तलोकोपि यः पादन्दूरविक्रमः ।
प्रादाद् द्विण्मूर्द्धिनमुक्ताब्जङ्कृताङ्घ्रि मधुपैरिति ॥ 78
मित्रस्य कीचकशतं स्वं भीमो द्रौपदीरितः ।
रिपोर्व्वङ्शसहस्रन्तु योऽदहत् कीर्त्तिचोदितः ॥ 79
हरेन्दुरपटुश् शुद्धः श्रीप्रियः कौस्तुभोदृढ़ ।
सदा लोकैकभूषा यो न तद्दोषस्तु तद्गुणः ॥ 80
भूमृन्मुखोदितं यस्य यशो गायन्ति तत्प्रियः ।
वल्मीकजमुखोद्गीर्ण्णं स्वपुत्रो राघवस्य तु ॥ 81
हन्तुन्तेजोऽनलन्नालं भुजे दानाम्बुवृष्टयः ।
यस्य भूत्यै न तास् सो पि सन्धिनेव स्थिताबुभौ ॥ 82
एकः स्थितो पि तेजस्वी योऽधृष्यो दुर्म्मदारिभिः ।
और्व्वानलस्तत्कवलैः कल्लोलैर्ल्लुण्डितः कदा ॥ 83
उभयोरुमयेनैव श्लाघ्या रतिरभूद्भुवः ।
श्री क्रोड़दन्तैरघरे नितम्बे यत्करेण च ॥ 84
नैव चामीकराकारं यस्याङ्ग स्वान्तमप्यहो ।
यत् कृष्णगतिविश्लेषं दृढ़ं रसमधूकृतम् ॥ 85
चिन्ताभारो न विद(धौ) सुवृत्तोन्नतमण्डलः ।
दुर्ग्गाङ्गार्द्धस्तन इव स्थाणोर्य्यस्यारतिं हृदि ॥ 86
बलक्षपक्षकालान्ते कीर्त्तिज्योत्स्नाञ्जहार यः ।
कलङ्कसैंहिकेयास्यान्माधवी विधुमण्डलम् ॥ 87
वरास्त्रेणाप्यसंभाव्यो वाल्ये यस्य बधोऽरिभिः ।
परः कुवलयापीड़ संभावितबधो हरिः ॥ 88
यस्येय कुम्भसिन्दूर (र)क्तेन सरिदम्भसा ।
कलिदङ्राष्ट्रहतिवलाद्भूः स्नुतास्रेव यापिनः ॥ 89
सुमङ्गलस् सुसिद्धिर्य्यो हरेस्त्वादौ नगोद्धृतिः ।
मध्ये विषार्प्पणं हयन्ते युद्धङ्क्निामृतं हृतम् ॥ 90
करं प्राप्याप्रतिबलं विराट् सुवलवानपि ।
यस्य संपातिरपतद् घृणिङ्घर्म्मधृणेरिव ॥ 91
येन सुस्थानया दीपत्या दययालङ्कृतज्जगत् ।

मुखमन्तर्ज्जले मूलं भानौ पद्मस्य शोषणम् ॥ 92
यो युद्धलब्धमिद्धेद्धं पात्रे चन्द्रादिकं वसु ।
जयश्रीशेषमदिशद् विष्णुर्द्देव इवामृतम् ॥ 93
लक्ष्मील्र्लक्ष्मीपतेर्य्यस्य सद्भिस् सद्भिस् स्वयंहृता ।
सुधा सुधाभुजा लम्या सुरेन्द्रस्य हि नासुरैः ॥ 94
पालिताः सदृशस्यारादहरन् यस्य चेष्टितम् ।
नालं मलङ्क्षालयितुं स्वज्जलाद्योपि चन्द्रमाः ॥ 95
योऽदाद् भूयश् श्रियं बाल्ये पुष्पमेकन्ददत्यपि ।
कृष्णोऽखिलं पयः पीत्वा जघान किल पूतनाम् ॥ 96
बालोप्येकोपि विप्रेन्द्रङ्गजेन्द्रमिव माधवः ।
जग्राह ग्राहकादिच्छन् यः स्वं प्रतिनिधिङ्किल ॥ 97
यस्योत्तराचल स्थानास्थिताधः कृतकण्टका ।
लोके कीर्त्तिर वाधैव पृष्ठतः स्थापितामृता ॥ 98
भूह्लादनेऽरिदहने येन दीप्तिस् सुयोजिता ।
नखालीव नृसिङ्हेन श्रीरतौ दैत्यमर्द्दने ॥ 99
नान्यो हर्त्तुमलं स्थानं पृष्ठतो यस्य यामिनः ।
को निमग्नस् सुगम्भीरे मन्दरस्य पदे द्रुमः ॥ 100
भिन्नाधेनानुशरदं स्वमधु स्वेच्छयार्थिनः ।
श्री कोशपङ्कजवनात् पट्दारश्रियाहरन् ॥ 101
यस्य तेजोऽन्यजा शक्तिर्न्नानुकर्त्तुभलज्जये ।
सृणिस्तैक्ष्ण्यादिसाम्येपि न सिङ्हनखभारमाक् ॥ 102
युद्धोद्धतद्विषदुरस्थलतोपि खाता-
दुद्वेलितोल्लसितकीर्त्तिपयः पयोधिः ।
प्रह्लादनाय जगतां पुनरिन्दुकान्तं
स श्रीयशोधरतटाकमिदञ्चखान ॥ 103

VV. 104 - 108 are indentical with those of RCM No.62

अर्थ–

VV. 1 - 18 are identical with those of RCM No.62

वीर्य बलकाएँ अद्वितीय घर जिसका शरीर है, जो विष्णु के प्राणों के

समान है । जिसने अपने अंग-रूप हरिणांग को अनंग के अंग में निवेशित करके शोभा बढ़ायी है ।। 19

....आँख-रूप अग्नि से पीछे ईश, अच्छी तरह लभ्य आँख रूप चन्द्र से कामदेव को जिसे आकृष्ट आँख रूप सूर्य आकृष्ट करने योग्य सुन्दर अंगवाला मानो जिसे किया हो ।। 20

जिसके द्वारा निर्मल मुख की छवि सा पूर्ण चन्द्रमण्डल जीता गया है । पृथिवी समूह की छाया की संक्रान्ति से मानो होड़ ली जाती हो ।। 21

जो ऊँचे को न आलम्बन करके अपनी बाँहों से जगज्जयी हो..........प्राप्त किया है राज्य जिसने ऐसे इन्द्र जैसे वामन के विक्रम से मानो राज्य पाया हो ।। 22

धर्म के विद्वेषी के काम के लिए भय के अर्थ.........मानव धर्म से द्वेष करता हुआ भी जिसने धर्म न छोड़ा था ।। 23

.......पाप का भागी दुख के उत्थित जय से जिसकी कीर्ति-रूप चन्द्र स्वच्छ था जिस स्वच्छ तेजस्वी का यश........।। 24

जीती हुई कृष्ण को अर्जुन ने प्राप्त करके, प्यारी को भाई के चरण में उद्धृत किया था । जिस जय करनेवाले ने लक्ष्मी को प्रकाशित से जनपद में उद्धृत किया था ।। 25

अप्रिय मर्दन हुआ जो छिद्रहीन बाँहों से निकला था, नरसिंह के समान खम्भे से जिसका प्रताप भयंकर है ।। 26

जो तलवार से प्रेरित यशवाला चन्दन की पूजा से........ज्.........जयरूपी लक्ष्मी से आलिंगित छूटा हुआ सभी तापों से युद्ध में ।। 27

तेज अस्त्रवाले पर तेज अस्त्र चलानेवाला, तेजस्वी पर चतुर वात जिस नकलची का विष्णु के पक्षपाती से सूर्यकान्त मणि वज्र मान्य है ।। 28

दूसरी स्त्री से विमुख पृथिवी के क्षत्रिय के स्त्री जनों को पति का शोणित पिलाता हुआ सेवता हुआ भी हत्यारा जो नहीं था, प्रशंसित था ।। 29

यह विचित्र बात है कि देवों को इच्छा से ब्राह्मणों का स्रष्टा चन्द्रों को बनाया । मानवों को नहीं जहाँ देवों को शरीर की कान्ति से अमृत-रूप समुद्र

में ।। 30

संसार के मानस रूप ख़ज़ानों में गुण-रूप धन स्थिर किया । दोष-रूप डाकू की हत्या से जिसका उस भार के विवरण किये हुए में भी ।। 31

जिसे अज नामक राजा के समान जले हुए शत्रुवाले के जगे हुए के चरणकमल को नम्र शेषनाग के हज़ार सिरों से ऊँचे सिर के रत्न की किरणों से प्रकाशित था ।। 32

हाथी से या साँप से बोलते हुए हाथी के समान शीतल करते हुए सूर्य के समान जलाते हुए इन्द्र के नयन-रूप कमल को शीघ्रता देनेवाले यश की चाँदनी है जिसकी वैसा था ।। 33

मानव वाहनवाले रत्नों से धनी था पर्वत के राजा के स्वामी के सिर से धारण किया हुआ शिव की स्थिति ठहरने से पूज्य और धन्य जो दूसरे कैलास के समान था ।। 34

जो गुण-रूप रत्न के विमान के समान राजा से सिर के द्वारा ढोया जानेवाला शासन से नहीं गिरा हुआ धन के समान = देवों में आठ वसु हैं उनके समान या धन के समान वसु अतिशय धर्म ज्ञाता था ।। 35

एक बाँह के द्वारा दान की वर्षा से जो अपने अतिथि को बढ़ानेवाला था । युद्ध में दाएँ-बाएँ- दोनों हाथों से उठे हुए बाणों की वर्षा से इन्द्र के साथ युद्ध में था ।। 36

जिसने त्यागा प्रत्युपकार को वह स्वयं रक्षक ही वानर से भी प्रतीक्षा करते हुए को छोटा बनाता हुआ प्रत्युपकार को राम को ।। 37

एकपत्नी व्रतवाला होकर भी सबसे भोगने योग्य लक्ष्मी को भी अधिकार में करेगा ऐसा उसकी प्रिय सखी जो विकृति से युक्त है शम्भली नाम की है, उसे दूर से ही त्यागा था ।। 38

नख की किरण-रूप दण्डों से पैर भी जिन विनयी राजाओं का पैर भी वर्णसंकर या जारज या उपपति से पैदा हुआ पिण्ड देने में अयोग्य पुत्र पैदा करनेवाले रस लम्पटों के मस्तक के रत्न की किरण को निस्तेज करके मार डाला

था ।। 39

जिसने उसकी स्त्री की आँख के आँसुओं से जली वारिधरा वर्षा को सींचा था । अपने अन्दर के धाम में जो अग्नि है, उसके धुओं के समूह को महामेघ के चूने के समान सींचा था ।। 40

युद्ध में स्थिर रहनेवाला युद्ध में जिस विराजा ने सत्य न त्यागा, द्विज से भरे वन में उत्पन्न हुआ, द्रोण के भय से सत्य को त्यागा ।। 41

सभी राजाओं से भी किये कर्म को कामना पूर्ति और धन के कारण, अधर्म की नकल जिसने नहीं की थी, धर्म रूप मित्र के वश से ।। 42

नहीं ऊँचे सिरवाला तू भी जो मारे गये शत्रु के कटने से उत्पन्न स्वर्ग की लक्ष्मी को सहन किया और राजा के मस्तक पर चढ़े हुए चरण को ।। 43

लोक के उदयों में अविकार से प्रधान प्रकृति से भी जिस कारण कहते हैं असांख्य को तत्त्व लोग गुणों के विस्तार को ।। 44

दूषण आदि के हनन से जिसकी कीर्ति बहुत मुखों से आहत है, आक्रमण किया हुआ समुद्र भी राम की सीता के समान निडर है ।। 45

एक बाल शक्ति की विशेष धृति में तीन अग्नि न सके एक बढ़ी हुई तीन शक्ति को दूसरे के लिए धारण किया जिसने ।। 46

वन से महावराह के द्वारा मुक्त एक से पृथिवी उद्धृत हुई जिसके शत्रु के घर की पृथिवी के समान सैकड़ों महाकरोड़ों से भी नहीं ।। 47

पृथिवी हाथ में सरस्वती मुँह में और छाती में लक्ष्मी रखी हुई है और कीर्ति दिशाओं में जानेवाली जिसके द्वारा मानो क्रोध से अर्पित है ।। 48

मानव धर्म से विरक्त भी जो धन का त्यागी कामदेव को जीतनेवाला है । पृथिवी समूह से भोग किया धर्म, काम और धन के समूह को ।। 49

काम से तीन बाणों से आहूत जो अनिरुद्ध तेज से नहीं वृष्णि के समान चित्रों से भरापूरा चित्रलेखा से चिह्नित आकार ।। 50

अस्त आँसू से सिक्त विधवा को भृगु के पुत्र ने गाय दी, यह होड़ लेने के समान गवेन्द्र से आढ्य सुवर्ण से आढ्य गाय से युक्त दान किया ।। 51

जिसने बाएँ हाथ से भी शीघ्र मतवाले हाथी का हरण किया, विष्णु को, शिव को उस हाथी को विहँसता हुआ सा ।। 52

राजा के सिर को नीचा करता हुआ पुष्करावर्तक युद्ध में जिसने कीर्ति से एकार्णव करके पृथिवी की लक्ष्मी का सम्यक् हरण किया ।। 53

जिसके सुनने मात्र से राजा लोग तेज से हारकर हथियार छोड़ देते हैं, कामदेव के अस्त्र को न धारण करता हुआ उसकी कन्या मानो क्रोध से ।। 54

वय से जो युवक भी सत्य ही गुण से बूढ़ा है, क्योंकि धर्म-रूप मित्र को आलम्बन करके राजमार्ग को गया ।। 55

जो कुल लक्ष्मी, वेदों, शास्त्रों का श्रवण, कला, वय, वीर्य, शरीर और बलों से नष्ट है मतवालापन जिसका ऐसा भी उग्र संग्राम से महालाभ के मद से उज्ज्वल है ।। 56

जिसने धाम से पहले भी प्राप्त किया नये-नये यश को सुनता हुआ, सुने हुए भ्रमर गीत को सिंह के द्वारा अपने अंग में लगे मद जल से ।। 57

कोमल जोत में जिस शान्त को उद्धृत किया तीव्र तेज में कमल भी नकल करता है यहाँ लक्ष्मी की स्थिर स्थिति के लिए निश्चित रूप से ।। 58

राजा को बल से उद्धृत करके यश के लिए फिर स्थापित किया अपने स्थान पर अमृत के लाभ के लिए जिसने विष्णु के समान मन्दार नामक पहाड़ को ।। 59

गर्व की गर्मी से तवी हुई लक्ष्मी-रूप मदिरा के मद से मोहित राजा लोग जिसके आनन्ददायक यश रूप अमृत को पीकर शान्ति को प्राप्त किया ।। 60

जिसने पात्र में रत्न स्थापित करने पर शोधित भुवन-रूप आँगन में अच्छी तरह लगे हुए 'जय' शब्द से अपनी प्रतिमावाली कीर्ति को विधान किया ।। 61

जो हज़ार मित्रों को लक्ष्मी की आत्मा की समता नहीं की, जो लघुता धनपति कुबेर की देखते हुए नंगे ईश्वर महादेव को है ।। 62

जिसकी कीर्ति गुणों से आद्य है, जो स्वर्ग के लंघन के वेग के समान

मानो गिरी हुई पृथिवी और समुद्र आदि को क्षमा, गम्भीरता, धैर्य आदि से दिशाओं में व्याप्त है ।। 63

बाँधते हुए जगत् की दिशाओं में चलाते हुए भी प्रिया को जिसकी कीर्ति को किसी के द्वारा जिसकी कही गयी है जिसके गुणों के आभरण विनय है ।। 64

आँख, मुख, चरण करकमलों से जिसका यश-रूप कमलनाल श्रीकमल के विस्तार के समान जो चलनेवाला है संसार-रूपी झील में ।। 65

जिसके द्वारा कीर्ति की प्रभा का रत्न पूरा है सारे भुवनरूप कोष रात को चलनेवाले चन्द्र की किरण में मानो शंका से वृष से अंकित है ।। 66

जिसके अरुण मणि के समान सुवर्णों से जो करोड़ मुखों से उद्धृत हैं, उनसे आज भी लगे हुए क्रोधाग्नि के कण में जल के वास की भूमि है ।। 67

इन्द्रियों के जीत लेनेवाले का भी लोग जिसके संग्राम के ज्ञान की कीर्तियों में है, वह यदि रहे दूसरे के धन में भी तो संसार एक-एक कण-कण करके बीनकर जीविका चलाना रूप जीविका के तुल्य है ।। 68

पारा जो स्थिर कल्याणवाला है गुणों से आद्य प्रकृति से अप्रिय है, अनीति जो विशाल आँखों वाला शूरवीर जिसने अधिकृत किया है भयंकर को ।। 69

मयूर से रचित चरण की स्तुति में सन्तुष्ट सूर्य यह होड़ लेने के समान प्रतिदिन पूर्ण राजहंस द्वाकृत में तो जो ।। 70

जहाँ शत्रु स्त्रियों के निर्माल्य को भी पूर्ण रूप से समर्थ रूप से नहीं तपता है । तपते हुए सूर्य के हरने के लिए माता का गहना जो शत्रु से हरा गया है उसके द्वारा ।। 71

भली-भाँति छिपी हुई रति में भी राजकीय लक्ष्मी को या शोभा को देखा सभी प्रकारों से दृष्टि बहुलता से जो इन्द्राणी और इन्द्र के समान हैं– जैसे इन्द्र के एक हज़ार नेत्र हैं, वैसे ही रति में छिपे हुए एक राजलक्ष्मी को देख ।। 72

राज्य में यह विच्छृंखलता किया जिससे जब व्यापक कलियुग को मारकर फिर सत्ययुग को शुरू कर दिया ।। 73

उन्नतों की छाया को जलाते हुए गिरे हुओं को बढ़ाता था। व्यस्त सूर्य को जिसके तेज ने हरा दिया नीचा दिखा दिया था ।। 74

मधु और कैटभ नामक दैत्य का संग्राम में संहार किया शिव ने विष्णु की लीला को जिसके भी शत्रु के नाश में नाचता हुआ विस्तृत कीर्तिवाला था ।। 75

जिसके क्रोध की आग में जल गये मज़बूत हथियार धारण करनेवाले थे युद्ध में वीर आक्रमणवाले, शिव के तो स्त्री का मित्र कामदेव था ।। 76

अति ऊँचा अति उज्ज्वल बहुत बढ़ा हुआ शत्रु के घर की प्रिय शत्रु नारी जिस युवक की भी लक्ष्मी और भूमि से कीर्ति किसी के द्वारा प्रिया है ।। 77

विष्णु के समान आक्रान्त किया है लोक को भी ऐसा जिसने पैर को दूर विक्रमवाला शत्रु के मस्तक पर पैर को प्रदान किया जो पैर खुले हुए कमलवाला था जिस पर भ्रमर थे ।। 78

जिसने कीर्ति से प्रेरित होकर शत्रु के हज़ारों कुलों को जला डाला था, जैसे मित्र के सैकड़ों की चक नामक राक्षस को द्रौपदी के कहने पर भीम ने मारा था ।। 79

शिव के चन्द्र उज्ज्वल समुद्र से उत्पन्न सहोदर चन्द्र और लक्ष्मी हैं श्री शोभा लक्ष्मी है प्रिय जिसे ऐसे कौस्तुभ जो मजबूत है, कौस्तुभ मणि जो विष्णु के हृदय पर रहता है जो सर्वदा लोगों का एक अद्वितीय आभूषण है- वह उसका दोष नहीं वह गुण है ।। 80

पृथिवी धारण करनेवाले राजा के मुख से कहे जिसके यश को गाती हैं उनकी स्त्रियाँ जैसे वाल्मीकि के मुख से कहे हुए अपने बेटे लव-कुश राम के थे जो अपने पुत्र थे न पहचानने पर वाल्मीकि से ज्ञात हुआ ।। 81

तेज-रूप आग को नाश करने के लिए समर्थ नहीं बाँह में दान के जल की वृष्टियाँ जिसके ऐश्वर्य के लिए वे नहीं हैं– वह भी सन्धि के समान ठहरे– वे दोनों ।। 82

एक ठहरा हुआ भी तेजस्वी जो निडर दुर्भेद्य शत्रुओं से था कब और्वानल (एक प्रकार की अग्नि विशेष) कौरों से लहरों से लूटा गया था ।। 83

दोनों को दोनों से ही धन्य रति पृथिवी की हुई श्री करोड़ दन्तों से अधर में और नितम्ब से रति हुई ।। 84

जिसका अंग चँवर के आकार का नहीं और न मन ही वैसा है खेद है या आश्चर्य है । जो कृष्ण गति के वियोग जो दृढ़ है वह रस के माधुर्य से भरा है ।। 85

जो ऊँचा सुन्दर वृत्ताकार ऊँचा मण्डल चिन्ता भार जिसका न किया गया श्री दुर्गा जी गौरी जी के आधे अंग के आधे स्तन के समान महादेव जी हृदय में जिसकी रति नहीं है ।। 86

शुक्ल पक्ष के समय के अन्त में कीर्ति के प्रकाश को जिसने हरण किया । कलंक-रूप राहु के मुख से माधवी लता के समान चन्द्र के मण्डल को निकाला था ।। 87

बचपन में जिसका वध शत्रुओं से श्रेष्ठ अस्त्रों द्वारा भी सम्भव नहीं है पर कुवलयापीड़ हाथी कंस सम्बन्धी हाथी था जिसका नाम कुवलयापीड़ था उसका वध कृष्ण ने किया था, दाँत उखाड़ करके पर सम्भावना थी कंस की कि यह हाथी कृष्ण को मारेगा, हुआ उल्टा ही उसी प्रकार यहाँ भी समझना है ।। 88

जिस हाथी सिर के कुम्भ गोले भाग के सिन्दूर के रक्त से निकले जल से नदी हुई कलि के दाँत के आहरण के बल से पृथिवी मानो स्तुत अस्त्र के समान हमलावर के समान थी ।। 89

सुन्दर मंगल देनेवाला सुन्दर सिद्धिवाला जो विष्णु के द्वारा गज का उद्धार मोक्ष प्रदान था मध्य में विष का अर्पण क्योंकि अन्त में युद्ध क्या अमृत हरण करनेवाला था ।। 90

बल के असमान किरण को पाकर विराट् और बलवान् भी था जिसकी सम्पत्ति गिरा सूर्य के तेज के समान था ।। 91

जिसके द्वारा सुन्दर स्थानवाली प्रकाश से दया से संसार सुशोभित है अन्दर जल में मूल है सूर्य में कमल का शोषण है ।। 92

जिसने युद्ध से लाभ किये हुए जलते हुए चन्द्र आदि धन अच्छे पात्र को

दान दिया विजय रूपी लक्ष्मी शेष बची थी उसे विष्णु ने आदेश दिया कि अमृत देव को मिले उसी के समान था ।। 93

जिस लक्ष्मीपति विष्णु की लक्ष्मी सज्जनों द्वारा आप ही आप हरी गयी और अमृत पीनेवाले देव से लाभ करने योग्य था इन्द्र के सामने ।। 94

जिसकी चेष्टा ने समान के द्वार समीप में पालित का हरण किया, चन्द्रमा स्वयं भी जल से भरा पूरा भी अपने कलंक-रूप मल को मलिनता को धोने में समर्थ नहीं है ।। 95

एक फूल देने पर भी बचपन में बहुत धन जिसने पुनः दिया बहुत लक्ष्मी दी थी, कृष्ण ने सभी दूध पीकर निश्चित ही पूतना नामक राक्षसी को मार गिराया थ ।। 96

बालक भी अकेला भी कृष्ण जैसे गजराज समान विप्रराज को मारा था जिसने ग्राहक से चाहता हुआ अपने प्रतिनिधि को निश्चित ही ग्रहण किया था ।। 97

जिसके उत्तराचल उत्तर दिशा के पहाड़ के स्थान पर स्थित नीचे किये कण्टकोंवाली लोक में अबाध कीर्ति ही पीछे से स्थापित हुई मरी थी ।। 98

पृथिवी के प्रसन्न करने में शत्रु के जलाने में जिसके द्वारा प्रकाश की सुन्दर योजना की थी जैसे नखों की पाँती से नरसिंह के द्वारा लक्ष्मी के रमण में और दैत्य के मारने में काम लिया दोनों जगहों पर दोनों रूपों से नख का उपयोग प्रेम से और क्रूरता से किया ।। 99

जिसके पीछे हमला है, स्थान को हरण करने में समर्थ दूसरा नहीं था कौन वृक्ष मन्दार पर्वत के पद में जो बहुत गहरा है उसमें भी डूबा है वैसा ही था ।। 100

लक्ष्मी कोश रूप कमल वन से चतुर और उदार लक्ष्मी से हरण करता हुआ, अपनी इच्छा से याचक के अपने मधु को, छिन्न-भिन्न आधे से शरद के अनुसार थ ।। 101

जिसका तेज दूसरे से उत्पन्न शक्ति नहीं जय में नकल करने में समर्थ

है । सृणि और तीक्ष्णता में समानता रहने पर भी सिंह नख के भार का भागी नहीं होता है ।। 102

युद्ध से उद्धार किये गये शत्रु के वक्षस्थल उद्वेलित और उल्लसित कीर्ति रूप जल या दूधवाला समुद्र खोदा गया जो समुद्र के समान था । विश्व के प्रसन्न करने के लिए फिर चन्द्रकान्त मणि के समान शीतल तल धारा अनवरत चूनेवाले इस ' श्री यशोधर ' तड़ाग को उसने खुदवाया था ।। 103

VV. 104 - 108 are identical with those of RCM No.62

44

पूर्वी बारे अभिलेख
Eastern Baray Inscription

अभिलेख-संख्या 43 के समान ही यह अभिलेख है। गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या को इन्द्र के द्वारा भगा ले जाने की बौद्धिक कहानी का इस अभिलेख में वर्णन है।

इस अभिलेख में पद्यों की संख्या 108 है जिनमें पद्य-संख्या 25 से 27 एवं पद्य-संख्या 62 अस्पष्ट हैं।

सर्वप्रथम बार्थ ने इस अभिलेख का सम्पादन किया था।[1]

VV. 1-18 are identical with those of RCM No. 62

धात्रा तपन सन्तप्तचन्द्रद्रव इवादरान्।
सिक्तोऽनङ्गाङ्गबिम्बे यो हरतप्तेऽतिसुन्दरः ॥ 19
श्रीपद्मपाङ्सुगौराङ्गे धात्रा भुवनभूषणे।

1. *ISC*, p.504

यत्र हेम्नीव रत्नौधः कृतोलक्षणविस्तरः ॥ 20
सुमन्त्रसुहृदं सीताभूषणां सुविभीषणाम् ।
जुगोय यः कम्बुपुरीमयोध्यामिव राघवः ॥ 21
धात्रेव निजपद्मेन सौभाग्योन्निद्रमाननम् ।
तत्पासुना तु यस्याङ्गं हेमाममधुरकृंतम् ॥ 22
प्रविशन् राहुवदनन्दीप्तिं त्यजति चन्द्रमाः ।
देदीप्यतेऽरिवक्त्रन्तु कीर्त्तीन्दुर्य्यस्य निर्म्मलः ॥ 23
येन भिन्नेभकुम्भेषु रणरङ्गेषु दर्शितः ।
कीर्त्तिपुष्पाञ्जलिन्दिक्षु क्षिपत्विजयनर्त्तकः ॥ 24
यस्य लग्नः प्रतापाग्निः स्तम्भयन् भूभृतं भुजे ।
....द् दम्भोलिखि विच्युतः ॥ 25
.... हत्वा यो बहुनसिना रिपून् ।
.... नखैस्त्वेकं नृसिङ्हस् सिङ्हवद्वने ॥ 26
.... भूतिभृदपि ज्वरितारिरपि ज्वरः ।
....यस्य न स्थाणोरिव............. ॥ 27
कालकूटं शिवन्नीत्वा यो हत्वा दानवान् द्विषः ।
जयेन वसुधां हृत्वा बुभुजे श्रियमच्युतः ॥ 28
पूर्णामलशशाङ्कश्रीर्यस्य कन्न हरत्यलम् ।
कीर्त्तिः क्रान्तत्रिजगतो गतिं हंसस्य विभ्रती ॥ 29
शूरश् शूराधिपश्छत्रम साधारणमाप यः ।
पुच्छचछत्रेण कियती छाया मृगपतेर्हरेः ॥ 30
विना मित्रकरं भ्रष्टलक्ष्मीर्म्मित्रे कृतश्रिया ।
नास्येन्दुनैव वृत्त्यापि येन पद्मो निमीलितः ॥ 31
यतश् शक्तिश् शरवने बवृधे भूमृदुद्गते ।
कूर्व्वतीशादिव गुहो जगत्स्तिमिततारकम् ॥ 32
जितशङ्खे शुचौ यस्य प्रजा यशसि शासनात् ।
रामराज्येपि शम्बूकात् त्रस्तो द्विज इति स्मयः ॥ 33
प्रसारितोपि भुवने येन द्रविणविस्तरः ।
चिरेण द्रविणाध्यक्षरक्षोदर्व्वादिवाक्षतः ॥ 34

हरिस्पर्द्धयपि शौर्य्येण यस्य दोर्द्दण्डपीड़ितः ।
मदं बिराडू उपेन्द्रस्य पित्रन्ताक्ष्र्य इवाजहात् ॥ 35
दूराद्देयोदयान्भक्तानन्वीक्षितुमिवादरात् ।
यस्यारुरोहाङिघ्र रजो भूभृन्मूर्द्धपरंपराम् ॥ 36
वरच्छत्रञ्जगज्जेतुर्हितीयमियतेरितम् ।
यञ्जगत्तायनुद्यस्य यशश्छत्रं शशिप्रभम् ॥ 37
किमिन्द्र द्विरदेन्द्रस्य माद्यन्मधुपतर्प्पणम् ।
दानं यस्य तु विप्रादिजगत् तृप्तिकरं सदा ॥ 38
गौर्य्या हरं हरन्ती नु धातुर्व्वा योगविघ्नकृत् ।
निद्राध्रुग्वा हरिर्थ्यस्य पाण्डुः कीर्त्तिः ककुब्द्रुता ॥ 39
श्रीः पद्मेति यशः कीर्त्तिरिति वर्म्म तनुच्छदः ।
इत्याख्यावयवं यस्य भ्रान्त्यारिस् स्वान् समन्वशात् ॥ 40
योऽति दीप्तोपि दयितावल्लभो द्विष्टतेजसम् ।
भानुस्तु वाजिभूतोभूदद्रुतां भार्य्यामनुद्रुतः ॥ 41
पादेन गां स्पृशद्भयां यो लङ्घयाद्भयां हरेः पदम् ।
समोपि कान्तितेजस्सु चन्द्रर्क्काभ्यां बरो गतौ ॥ 42
वालाञ्जितां भुवं वृत्त्या कान्तान्धीभूषया श्रियम् ।
वृद्धामाचारतो विद्याम् यः कामीवान्वलालयत् ॥ 43
विगलन्मौक्तिकस्वेदं ममर्द्द कठिनोन्नतम् ।
लक्ष्मीस्तनभिवारी भकुम्भङ्खङ्गनखेन यः ॥ 44
बीड़ानतमुखा दध्यौ श्रुत्वा स्वगुणवर्ण्णनम् ।
लोकेऽनन्तगुणं विष्णुं द्वितीयं यस् स्मरन्निव ॥ 45
यस्याध्वराग्निर्धूमौधैर ग्रसत् तिग्मतेजसम् ।
दोषाभावे परिभवप्रतिकारन्नयन्निव ॥ 46
हरिकेलिनखोल्लेखस्फुरिता लोल लोचना ।
यस्यारि हम्भर्य कान्तेव कलकण्ठस्वरा मृगी ॥ 47
पिबन्तेजस्वितेजांसि जगन्मुखगुहास्थितम् ।
तपस्वीव यशो यस्य पृथन्यजगदिच्छया ॥ 48
बलेन लोष्ट्र विषमा या भूः पृथुसमीकृता ।

तां पुनः कालविषमां यस् समां मनसाकरोत् ॥ 49
रक्षणायेदमुदरे मुरारिरकरोदिति ।
स्पर्द्धयेव जगत्सर्व्वं हृदये यो न्यवेशयत् ॥ 50
यस् स्वभोगसहस्रेपि विन्यस्तपुरुषोत्तमः ।
न त्वरातिहतज्ञातिश् शेषवद्विधृतक्षमः ॥ 51
यो लोकं वश्यमकरोन्नवेपि वयसि स्थितः ।
अभङ्गशासनोऽनङ्गोऽनङ्गोपि किमुताङ्गवान् ॥ 52
यज्ञशीलो मरुत्तोऽयं मान्धाता युद्धदुर्म्मदः ।
क्षमी जनक इत्यर्थ्यैर्न्नानार्था यो निषेवितः ॥ 53
गुणान् सतोऽनयद्वृद्धिं वृत्तिं कीर्त्तिशुभामधात् ।
पापञ्चौरं समदहच्छ्रुतं महदवाप्य यः ॥ 54
साम्यं सर्व्वत्र भूतेषु दृढ़मौदार्य्यशालिनः ।
आत्मानमपि यस्यादौ जेतुः का पक्षपातिता ॥ 55
सद्गुणौन्मुख्यविकला यस्यास्ये पि सरस्वती ।
सङ्ख्यामारेपि खिन्नेव मूका निजगुणं प्रति ॥ 56
द्वाभ्यां द्वौ कुम्भयोनी द्वे हृतौ भासयतो द्वयात् ।
कालेनाम्बुदिशोऽगस्त्यौ येनारी मान्मणिर्य्यशः ॥ 57
अच्युतश्रीपदानाढ्यो द्विजस्पृष्टेशमस्तकः ।
पीतवागमृतो यस्य दिवसो मथनोत्सवः ॥ 58
लोकसंवर्द्धनन्तेजस्विशमनोधतम् ।
यस् स्मरास्त्रायितञ्जैत्रं बभारकुसुमाकरम् ॥ 59
वासिताशा यशोमाला यस्याद्यापि जयश्रिया ।
दत्ता जितामरागस्रग् विष्णुलक्ष्मी स्वयंवरे ॥ 60
प्रतापप्रसरो यस्य यशसो ह्लादनादपि ।
दुग्धाब्धेः कालकूटो हि सलिलादुक्षितोऽनलः ॥ 61
भ्रामितो मन्दरो लक्ष्मी.........शयात् ।
यो चाल्यस् त्वाशु सुहृदां..........म् ॥ 62
भूभृतां मानतुङ्गो यः काञ्च नामा(ं) शुभान्दधत् ।
कान्ति तेजोनिधिर्म्मेरुर्धृताक्केन्दुरिवाबभौ ॥ 63

येन स्वात्मेन्द्रियजिता जितभूमूपतिश्रिया।
कीर्त्तिरेका प्रियतमाऽवार्य्या केनापि गत्वरी ।। 64
सर्व्वतस् सुरमार्ग्गस्थः पाटवेनापिबद् गुणान् ।
ज्येष्ठाद् विशेषतोऽजस्रं यो रसानिव भास्वरः ।। 65
शक्त्यैकयावधीत् स्कन्दो मातुलं सत्यवादिनम् ।
शक्ति त्रयेन यो ज्ञातीनन् पालयित्वादहद्र द्विषम् ।। 66
अत्युत्तुङ्गातिधवला विवृद्धारिगृहप्रिया ।
श्रीभूम्यां यस्य यूनोपि कीर्त्तिः केनापि बल्लभा ।। 67
व्यधात् कल्याण पद्मौधादुपायरदनो द्धतात् ।
श्रीमृणालीं मदोष्णो यो बलभिद्वारणो हृदि ।। 68
द्विटतप्तोपि दधन्मूर्द्धर्ना भूमृद् यस्याङ्घ्रि पीड़नम् ।
सुप्रसादाम्बुभिश् शान्तो गोमन्त इव चक्रिणः ।। 69
भूपालैर्य्यः स्तुतो यज्ञे निन्द्यमानस्तु पाण्डवः ।
शिशुपालेन नु व्याजाद् राज्यन्त्यक्त्वा वनङ्गतः ।। 70
वीरासीन्दीवरवनाद् धृत्वा भिन्नादपि व्यधात् ।
जयलिङ्कीर्त्तिझङ्कारभिनो यः करपुष्करे ।। 71
युधिनर्म्मणि सर्व्वत्र कृच्छ्रे नावससाद यः ।
संरक्ष्यमाणस् सत्येन त्रिर्विशुद्धेन बन्धुन ।। 72
सुयोधनजिता कृष्णा पाण्डवानां पुरः प्रिया ।
यस्य कीर्त्तिस् सिता दूराद्दुर्य्योधनमनामयत् ।। 73
परलोकार्थनिपुणो रणयज्ञं समाप्य यः ।
पुरोहितस्यागमयत् पृथ्वीं कीर्त्ति सुदक्षिणाम् ।। 74
यस्य दृष्ट्वा सुचरितन् निष्ठुरो पि मृदूकृतः ।
किन्न मुञ्चति वारीन्दुमणिरिन्दु कराहतः ।। 75
पद्मादुर्ल्ललितं यस्य नेत्रं पद्ममिवानने ।
पद्मारिपीड़नामर्षाञ्जित पद्मिद्विषि स्थितम् ।। 76
नातिह्रस्वातिदीर्घो यो नापि कृष्णोऽन्वशाज्जगत् ।
विक्रमाप्तं हरिस्त्विन्द्रे तद्व्याप्ताङ्गो व्यदादिदम् ।। 77
यस्यारिप्राङ्गणोत्सङ्गे सिङ्हमातङ्गमङ्गतः ।

मुक्ता मुक्ता इवोन्मुक्ताः स्त्रियाधाप्यश्रुविन्दवः ॥ 78
श्रीहृदि स्तनसंवाद्ये सक्ते द्वे भूषणे द्वयोः ।
भुजाश्लेषवलाद्यस्य प्रतापः कौस्तुभो हरेः ॥ 79
राजवृन्दज्जितज्जन्ये दीप्तया रत्नमालया ।
कीर्त्त्या तु योऽभ्यलङ्कृत्य दिङ्मण्डलमलालयत् ॥ 80
करे भुवनकुम्भोऽयं पूण्णों यस्य यशोम्भसा ।
वलानिलाढयते जोग्निशङ्कयेव जगत् प्रति ॥ 81
शास्त्रकाव्यादिरसिको योऽभ्यासान्मति पाटवात् ।
सुधारसं प्रशङ्सन्ति सुरा हि नसुरापकाः ॥ 82
दग्धेस्वकीर्त्तिकुमुदे तेजसा यस्य राजभिः ।
रुषेव पादपद्मोपि शिखारत्नांशु शारितः ॥ 83
क्ष्माक्षतं रक्षिता येन सा पुरा पतिपीड़िता ।
गत्वा लोकं परं भूयो दैवात् स्वां प्रकृतिङ्गता ॥ 84
चक्रिचक्रङ्किल स्थाणौ हरौ परशुरैश्वरः ।
वज्रिवज्र मदे भगनन् त्रिष्वप्यस्रन्न यस्यतु ॥ 85
पयोधरोऽरिपुवतेर्दृक् सन्ततपयोधरः ।
गमितो यस्य वीर्य्येण दपयेव कृतार्थताम् ॥ 86
वैरिणोऽभिमुखानेव विद्धश् शरशतैरपि ।
शशास मृत्युना सम्यग् यो भीष्म इव पाण्डवान् ॥ 87
धूमायुधेन चिच्छेद यमाश्रित्याध्वरानलः ।
सहस्रकरमुण्णाङ्शोरर्ज्जुनस्येव भार्ग्गवः ॥ 88
भुवः करग्रहं मुक्ता पदापि तलमस्पृशन् ।
यः प्राप प्रियतां वीरो वल्लभो महतीं ग्रति ॥ 89
अद्रष्टे व्यवहारे यो दोषामासमपाकरोत् ।
कण्टकोल्लिखिते स्नातास्तने नाब्जस्य कामिता ॥ 90
न मन्त्रगुप्तिर्म्मथने ध्रुवं ह्याश्रित्य दुर्ल्लभः ।
यस्य वाग्वक्त्रवक्षांसि सुधेन्दुश्रीययोनिधिः ॥ 91
यस्य दीप्तिं प्रति रवौ बलं प्रति समीरणे ।
प्रतिलोमे पि नित्योऽभूदुदिते च बुधे जयः ॥ 92

यो धामनखभिन्नारिनीर्तिदङ्ट्रश् श्रुतेक्षणः ।
दिक्कीर्ण्णकीर्त्तिहुङ्कारो नृसिङ्हो गुणकेसरः ॥ 93
को वा मृगयितुं शक्तश् शुक्ले विस्तारितेगुणे ।
यस्यान्तर्व्वर्त्तिनीं लक्ष्मीं नृसिङ्हस्येव केसरे ॥ 94
दोषाभावन्तु भयाद् यस्योक्तो गुण एव हि ।
पातयत्यशनिन्नेन्द्रो वेदे जारत्वशंसिनि ॥ 95
लोके कालानलप्लुष्टे यः कीर्त्त्येकार्ण्णवे निजे ।
प्रजां वीर्य्योदरे रक्षन्निवेश्याशेत विष्णुवत् ॥ 96
यस् संरक्ष्याश्रितान् यत्नादुन्ममाथोद्धताम्बुधिम् ।
मन्दरो निष्पिपेषाब्धौ श्रितान् स्वभ्रान्तिपातितान् ॥ 97
नु विस्तारितो येन गुणौधः कामतो जगत् ।
वामनैक पदा क्रान्तिमात्रमे कैकशो यदा ॥ 98
युधिष्ठिरनिरस्तेन सत्येन रणमूर्द्धनि ।
भीष्मो दृढ़ व्रतत्वेन योऽमर्षादिव सेवितः ॥ 99
हतमित्रीकृतनृपं राज्यरन्ध्र परङ्कलिम् ।
यो जघान जघन्याशङ्कृतध्वानान् दुरन्तता ॥ 100
करेणेन्द्र धनुर्भानुर्व्वाता भ्राम्यामदर्शयत् ।
पदा यस्तु नमभूपशिरोऽने कर्माणत्विषा ॥ 101
अन्तर्व्वहिररीञ्जित्वा कृत्वा यस् सद्गुणोदयम् ।
दत्त्वा लोकं यशः पूरे जगच्चिन्तगुहाङ्गतः ॥ 102
ललितदलसहस्रन्तीरकास्फालनेन
स्फटिकफलकफुल्लैरुल्लसद्भिस्तरङ्गैः ।
तटकुसुमरजोभिः केसरालं पतद्भिस्
स कजमिव विधातुस्तन्तटाकञ्चखान ॥ 103

VV. 104-108 are identical with those of RCM No.62

अर्थ–

VV. 1-18 are identical with those of RCM No.62

विधाता के द्वारा सूर्य से सन्तप्त चन्द्र द्वारा छोड़े द्रव के समान आदर से सिक्त कामदेव के अंग के बिम्ब में जो शिव से तप्त था तो भी अति सुन्दर

था ।। 19

विधाता द्वारा श्रीपद्म की धूल से सुन्दर गोरे अंगोंवाले संसार के भूषण में जहाँ सुवर्ण में रत्नों के समूह के समान लक्षणों का विस्तार किया गया ।। 20

सुमन्त रूप मित्र से युक्त सीता-रूप भूषण से युक्त सुन्दर विभीषण से युक्त अयोध्या को जैसे राम ने पाला, वैसे कम्बुपुरी को राजा ने पाला था ।। 21

सुन्दर भाग्य से जगे मुँहवाले अपने कमल से विधाता के समान उसकी धूल से जिसके अंग को जो सुवर्ण की आभा के समान आभावाला था, वैसा ही मधुर बना सका था ।। 22

चन्द्रमा राहु के मुख में प्रवेश करता हुआ प्रकाश त्याग देता है किन्तु जिसकी कीर्ति स्वच्छ है वह यदि शत्रु के मुँह पैठता है तो शत्रु के मुख को देदीप्यमान कर देता है ।। 23

जिसके द्वारा फोड़े गये गज के मस्तक-रूप घड़ों के समान युद्धों में दिखलाया कि इस युद्ध में शत्रु के गज के कुम्भ को फोड़ा गया है । सभी दिशाओं में कीर्ति-रूपी पुष्पों से भरी अञ्जलि पुष्पाञ्जलि फेंकता हुआ विजय के नाच को दिखानेवाला नर्तक यह राजा था ।। 24

जिसके लगे प्रताप-रूप अग्निबाँह में राजा को खूँटे के समान कर देनेवाले में...........वज्र के समान विशेष रूप से चूआ था ।। 25

.........मारकर जिसने बहुत शत्रुओं को तलवार से.........नखों से एक हिरण्यकशिपु को नरसिंह ने सिंह समान वन में ।। 26

.........ऐश्वर्य धारण करनेवाला भी शत्रुओं को ज्वरित करनेवाला बुखार लानेवाला भी ....जिसका नहीं शिव के समान........ ।। 27

जिस विष्णु ने जैसे कालकूटवाले शिव को लेकर और शत्रु दानवों को मारकर जय से धरणी को हरण करके लक्ष्मी को भोगा, वैसे ही राजा ने पृथिवी भोगी ।। 28

पूर्ण स्वच्छ चन्द्र की श्री शोभा श्री लक्ष्मी जिसकी त्रिजगत् को आक्रमण करनेवाली कीर्ति हंस की गति को धारण करनेवाली पर्याप्त रूप से

किसका न हरण करने वाली है ।। 29

शूर शूरों का अधिपति जो असाधारण छत्र को प्राप्त करनेवाला था, मृगपति सिंह की कितनी छाया उसकी पूँछ रूप छाता से होती है? ।। 30

बिना मित्र के हाथ बिना सूर्य की किरण के या बिना मित्र के हाथ के भ्रष्ट हुई लक्ष्मी को मित्र में कर दी है लक्ष्मी जिसने ऐसे के द्वारा नहीं मुखचन्द्र से ही वृत्ति से भी जिसके द्वारा कमल मुरझा गया ।। 31

जिससे शक्तिबाणों के वन में राजा के उद्गत होने उठने पर शक्ति बढ़ी थी, जैसे कार्तिकेय सेनापति ने जगत् को टिमटिमाता तारा कर दिया था ।। 32

जीता है शंख को जिसने ऐसे पवित्र राज्य में जिसकी प्रजा शासन से यश में है । रामराज्य में भी सीपी से डरा हुआ चन्द्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और पक्षी यह आश्चर्य है ।। 33

जिसके द्वारा भुवनभर में धन का विस्तृत रूप प्रसारित भी है । बहुत काल से धन के अध्यक्ष राक्षस श्रेष्ठ के समान अविनष्ट था ।। 34

जिसने बाहुदण्ड से पीड़ित शूरता से विष्णु से होड़ लेनेवाला भी विष्णु के बड़े भारी मद को, गरुड़ के समान पित्त को त्यागा ।। 35

दूर से देय उदय से भक्तों को पश्चात् देखने के लिए, खोजने के लिए मानो आदर से जिसके चरण की धूलि राजाओं के मस्तकों के सिलसिले को आक्रान्त कर चढ़ गयी थी ।। 36

दूसरे बड़े छाते को संसार के जीतनेवाले के इतने से कहे हुए को, जो संसार के सन्ताप को नष्ट करनेवाला जिसका यश-रूप छाता चन्द्र की प्रभा के समान है ।। 37

क्या इन्द्र के ऐरावत के मदपूर्ण मधु का तर्पण है जिसका दान- मद जल, दान- वितरण, त्याग तो ब्राह्मण आदि समस्त विश्व की तृप्ति सर्वदा करनेवाला है ।। 38

गौरी के शिव को हरनेवाली बड़ी उजली या ब्रह्मा के योग में विघ्न करनेवाली या निद्रा से द्रोह करनेवाली कीर्ति जो बड़ी उजली है वह दिशाओं तक

फैली है ।। 39

श्री लक्ष्मी पद्मा इस नाम से ख्यात् यश या कीर्ति यह कवच शरीर को ढँकनेवाला इस नाम के अंग को जिसके भ्रम से शत्रु अपनों को पा धनों को अनुशासित किया था ।। 40

जो अतिशय प्रकाशित भी प्रिया का प्रिय, शत्रु के तेज को, सूर्य तो घोड़ा-सा बन गया भागती भार्या के पीछे दौड़नेवाला बना हुआ था या है ।। 41

पैर से गाय का, स्पर्श करते दोनों के द्वारा, जो विष्णु के पद को लाँघते हुए दोनों के द्वारा कान्ति और तेज में बराबर भी चन्द्र और सूर्य से श्रेष्ठ गतिशील हुए थे ।। 42

वाला जीती हुई पृथिवी वृत्ति से सुन्दरी को बुद्धि-रूप गहने से, लक्ष्मी को बूढ़ी को विद्या. को आचरण करते हुए जो कामी समान पीछे प्यार करने लगा ।। 43

गिरते मौक्तिक और पसीनेवाले को कठिन और ऊँचे को, लक्ष्मी के स्तनों के समान शत्रु-रूप गज के मस्तक रूप घड़े को तलवार-रूप नख से जिसने विदारण किया था ।। 44

जो अपने गुणों के वर्णन को सुनकर लज्जा से सिर नीचे करनेवाला हो गया लोक में अनन्त गुणोंवाले द्वितीय विष्णु का जिसने मानो स्मरण किया हो ।। 45

जिसके यज्ञ की आग ने धुओं के समूहों से सूर्य को ढँक दिया था । दोष के अभाव में या दोषा रात्रि के अभाव में पराजय के छुटकारे को लेता हुआ सा मालूम पड़ने लगा ।। 46

हरि की केलिक्रीड़ा के समय नख के उल्लेख से फड़कती एवं चंचल आँखोंवाली जिसके शत्रु मकान की सुन्दरी-सी मधुर कण्ठस्वरवाली मृगी के समान मालूम पड़ती थी ।। 47

तेजस्वियों के तेज को पीता हुआ संसार के मुखरूपी गुफा में स्थित जिसका यश तपस्वी के समान जगत् में प्रथित है ।। 48

बल से ढेलेवाली पृथिवी को ऊबड़-खाबड़ करके जो पृथिवी पृथु के

समान हुई, उसको फिर काल के अनुसार विषम से सम मन से कर दिया था ।। 49

इस भुवन की रक्षा के लिए इसने विष्णु ने अपने उदर में रख लिया था, यह जानकर विष्णु से होड़ लेने के समान जिसने समस्त विश्व को अपने हृदय में निवेशित कर लिया था ।। 50

जो अपने हज़ार फणों के रहने पर भी विष्णु को सब फण शय्या के लिए दिया । नहीं जल्द अतिशय नष्ट परिवारवाले शेषनाग के समान विशेष रूप से धरणी को अपने मस्तक पर रखने में समर्थ हुआ था ।। 51

जिसने नयी उम्र में भी स्थित रहकर लोगों को वश में कर लिया था । अटूट शासनवाला कामदेव अंगहीन होकर भी क्या अंगवाला नहीं ? अर्थात् है ही ।। 52

यह एक मरुत्त नामक राजा यज्ञशील है मान्धाता सत्ययुग में राजा था जो युद्ध करने में दुर्मद था जनक राजा मिथिला में हुए हैं त्रेतायुग में जो क्षमाशील हुए थे पर इन तीनों के अर्थों को सार्थक करनेवाला एक ही अद्वितीय है जिसमें उक्त सभी गुण हैं ।। 53

गुणों के रहने पर उनकी बढ़तीवाले रास्ते पर ले गया उन्हें कीर्ति की वृत्ति को शुभ किया । पाप-रूप चोर को सम्यक् जला डाला जिसने महान् वेदों और शास्त्रों का श्रवण किया उसी श्रवण से सब कुछ अच्छा कर्म ही किया जिस राजा ने ऐसा ही यह राजा था ।। 54

सर्वत्र सभी प्राणियों में समानता की भावनावाला वह समता दृढ़ रूप की थी औदार्य से शोभा पानेवाला जिसकी आत्मा भी आदि में समर्पित थी, जीतनेवाले क्या पक्षपात हो ? 55

अच्छे गुणों की ओर उन्मुख रहनेवाला विकलतापूर्वक ऐसी सरस्वती मुख में भी थी, संख्या के मार से दुबली-सी, गूँगी अपने गुणों के वर्णन के प्रति रहती है इनकी सरस्वती ।। 56

दोनों से दो अगस्त्य हुए दो से छत हुए, समय पाकर जल दिश अगस्त्य हुए जिसके द्वारा दो शत्रु प्रभापूर्ण मणि के समान यशवाला हुआ ।। 57

श्रीविष्णु के श्रीपद से अनाढ्य ब्राह्मण से स्पृष्ट ईश्वर का मस्तक ऐसा, वाणीरूपी अमृत पी चुकनेवाला, जिसका दिन मथन रूप उत्सव से युक्त है ।। 58

जिसका तेज लोगों को सम्यक् बढ़ानेवाला, तेजस्वी के तेज को शान्त करनेवाला जो कामदेव के अस्त्र के समान आचरण करनेवाले जीतनेवाले वसन्त को धारण करनेवाला है ।। 59

जिसकी यशरूपी माला से दिशाएँ सुगन्धित हैं, जिसकी जयलक्ष्मी से आज भी ऐसी बात है । विष्णु लक्ष्मी स्वयंवर में जिसने विजयिनी माला दी थी ।। 60

जिसका प्रताप फैला हुआ है यश की प्रसन्नता से भी दूध के समुद्र से कालकूट निकला वैसे ही पानी से आग उठी थी ।। 61

समुद्र मथने के लिए मन्दार पर्वत घुमाया गया लक्ष्मी......शयात्.........जो शीघ्र मित्रों के द्वारा चलाने योग्य.......।। 62

राजाओं के ऊँचे मान के रूप में जो है, सुवर्ण की छटा जो शुभ है उसे धारण करता हुआ कान्ति-रूप तेज का समुद्र मेरु पहाड़ है जिसने धारण किया सूर्य और चन्द्र को उसी के समान राजा शोभा पाता था ।। 63

जिसके द्वारा अपनी आत्मा जीती गयी इन्द्रियाँ जीती गयीं ऐसे राजा के द्वारा भूमि जीती गयी एवं राजलक्ष्मी जीती गयी एक प्रियतमा कीर्ति है जो अनिवार्य रूप से अचल है ।। 64

सभी प्रकारों से देवता के बताये मार्ग पर चलनेवाला चतुरता से गुणों को पी चुका, ज्येष्ठ से विशेष रूप से नित्य जो रसों के समान तेजस्वी है ।। 65

देवों के सेनापति कार्तिकेय ने एक अद्वितीय शक्ति से सत्यवादी मामा को मार डाला, तीन शक्तियों से जो अपनी जातिवालों को पाला और शत्रुओं को जला डाला ।। 66

अतिशय ऊँची एवं अतिशय उजली विशेष रूप से बढ़ी शत्रु के घर की प्रिया लक्ष्मी और पृथिवी से जिस युवक की भी कीर्ति किसी के द्वारा प्यार पाने वाली है ।। 67

कल्याण-रूप कमलों के समूह से उपाय-रूप दाँतों के उद्धार से श्रीलक्ष्मी रूप कमलनाल को मद से गर्म होकर बल को भेदनेवाला हृदय में हाथी के समान है ।। 68

शत्रु से तप्त भी सिर से धारण किया हुआ, राजा जिसके चरण की पीड़ा को कुचलने में सुन्दर प्रसन्नता-रूप जलों से शान्त गोमन्त के समान जैसे विष्णु का गोमन्त हो वैसा होता है ।। 69

यज्ञ में जो राजाओं द्वारा प्रशंसित, निन्दा पानेवाला पाण्डव है जिसकी निन्दा शिशुपाल ने इसलिए की कि राजसूय-यज्ञ में पाण्डवों ने श्रीकृष्ण और रुक्मिणी की पूजा की थी । यज्ञ में श्रीलक्ष्मीनारायण की पूजा तब होती है तिला से आह्वान करें जब अवतीर्ण भगवान् नहीं रहते किन्तु अवतीर्ण कृष्ण की देह की पूजा जिसको शिशुपाल राजा न सह सका और कृष्ण की निन्दा की थी । छल से राज्य छोड़कर जो वन में गया था ।। 70

वीर तलवार-रूप कमल वन से धारण करके भिन्न से भी विधान किया जय की पाती को कीर्ति के पालक को जो चन्द्र किरण-रूप पोखरे में या कमल में करनेवाला है ।। 71

युद्ध में नर्म में सर्वत्र कठिनाई में जो दुःखी न हुआ था सत्य से सम्यक् रक्षा की गयी जिसकी ऐसा और तीन विशेष शुद्ध बन्धु से रक्षित है ।। 72

दुर्योधन से जीती हुई कृष्ण पाण्डवों के आगे स्थित हुई जिसकी कृति उजली दूर से दुर्योधन नाम घर वास की, सुयोधन-दुर्योधन वन के सार्थक नामवाला बना था इसी कारण ।। 73

जिसने परलोक के लिए कार्य करने में निपुण युद्ध रूप यज्ञ को समाप्त करके पुरोहित को कीर्ति-रूप सुन्दर दक्षिणावाली पृथिवी दे डाली थी ।। 74

जिसके सुन्दर चरित को देखकर निठुर भी कोमल बन गया क्या चन्द्रकान्त मणि चन्द्र की किरणों से चोट खाकर जल नहीं छोड़ती है अर्थात् छोड़ती है ।। 75

लक्ष्मी जिसके असुन्दर नेत्र को कमल के समान मुख में, कमल के शत्रु के पीड़न के क्रोध से जीत चुका है कमल के शत्रु में रहनेवाले को जो जैसा

है ।। 76

जो न अति छोटा और न अति बड़ा और न काला था जिसने विश्व पर शासन किया था । विक्रम से प्राप्त विष्णु ने इन्द्र में उस प्रकार व्याप्त अंगोंवाला इसे विशेष रूप से दिया ।। 77

जिसके शत्रु के प्रांगण-रूप गोद में सिंह और हाथी का भंग हुआ, जिससे सिंह के द्वारा हाथी की मुक्ता छोड़ी गयी मानो स्त्रियों द्वारा आज भी मोती की झड़ी-सी आँसू की बूँदें छोड़ी जाती हैं ।। 78

लक्ष्मी के हृदय पर स्तनों के सम्बन्ध से दबाने से दोनों पर दो चिह्न हो गये हैं जो भूषण से लगते हैं । वह प्रताप विष्णु का है कि विष्णु के हृदय पर एक कौस्तुभ मणि है विष्णु की बाँहों से दबाने पर कौस्तुभ मणि का चिह्न दोनों स्तनों पर है ।। 79

प्रकाशित रत्नों के समूह से राजाओं के समूह जीते गये और जिसने अपनी कीर्ति से सभी ओर अलंकृत करके सभी दिशाओं के समूह को प्यार किया ।। 80

जिसके हाथ में यह संसार रूप घड़ा है जिसके यश-रूप जल से पूर्ण है । बल-रूप अग्नि से आढ्य तेज-रूप अग्नि की शंका से मानो संसार के प्रति दीखता है ।। 81

शास्त्रों और काव्यों आदि और विषयों का रसिक जो अभ्यास से एवं बुद्धि चातुर्य है, अमृत के रस की प्रशंसा देवता करते हैं न कि मद्य पीनेवाले नीच लोग अमृत की प्रशंसा कर सकते हैं ।। 82

राजाओं के द्वारा जिसके तेज से अपनी कीर्ति-रूप कमल के जल जाने पर मानो पैर-रूप कमल भी चोटी के रत्न की किरण से चालित हो ऐसा लगता है ।। 83

जो पहले पति द्वारा पीड़ित पृथिवी के घाव को रक्षित कर सका फिर पर लोक में जाकर दैवयोग से अपनी प्रकृति को प्राप्त हुई ।। 84

विष्णु का सुदर्शन चक्र शिव में और शिव का परशु विष्णु में और इन्द्र

का वज्र मद में भग्न हुए और तीनों में जिसका अस्त नहीं है ।। 85

शत्रु युवती का स्तन आँख के सन्तप्त होने आँसू बहानेवाला बन गया बहने लगा ऐसी दशा जिसके वीर्य बल से हुई, मानो जिसकी दया से कृतार्थता हुई ।। 86

आमने-सामने खड़े शत्रुओं को सैकड़ों बाणों से छिन्न-भिन्न कर डालनेवाला भी मृत्यु से सम्यक् रूप से शासन किया जिसने मानो भीष्म ने जैसे पाण्डवों पर शासन किया ।। 87

जिसे आश्रितकर यज्ञ की आग ने धुआँ रूप शस्त्र से काटा था सूर्य हज़ार किरणों को जैसे अर्जुन-भार्गव कथा में घटना घटी ।। 88

पृथिवी का कर ग्रहण छूटा हाथ से ग्रहण छूटा (कर=हाथ, कर=मालगुजारी) पैर से भी पृथिवी के तल को भी छू दिया जिस वीर ने प्रियता प्राप्त की, जो बड़ी पृथिवी का प्रिय हुआ ।। 89

अदुष्ट व्यवहार में जिसने दोष के आभास का नाश किया, काँटे से उल्लिखित मासिक धर्म के चौथे दिन स्नान किये नारी-स्तन में कण्टक-सा दीख पड़ता है उस पर कमल की कामिता नहीं होती ।। 90

मथने में मन्त्र की गुप्ति नहीं, निश्चित रूप से आश्रित कर दुर्लभ है जिसके वचन, मुख और छाती वाक्-सुधा के समान मुख चन्द्र के समान और दूध के समुद्र के समान हैं ।। 91

जिसके प्रकाश के प्रति सूर्य में बल के प्रति वायुदेव में, उल्टा करने पर भी (प्रतिलोम में भी) नित्य हुआ और बुध के उदय होने पर जय हुई ।। 92

जो धाम-रूप नख से काट चुका है शत्रु को, नीति रूप दाँतवाला, वेदशास्त्र श्रवण रूप आँखवाला, दिशाओं में विस्तृत कीर्ति रूप हुँकारवाला, नरों में सिंह के समान नरसिंह जिसकी गर्दन का बाल (केसर) कहा जाता है, वह केसरी सिंह होता है । यहाँ राजा के गुण ही केसर हैं ।। 93

उजले फैलाये हुए गुण में कौन खोज सकता है लक्ष्मी को, जिसकी लक्ष्मी भीतर रहनेवाली है जैसे नरसिंह भगवान् के केसर में लक्ष्मी का निवास है उसे कोई देखता है ।। 94

क्योंकि दोष के अभाव से न कि भय से जिसका गुण ही कहा गया है। इन्द्र वेदपर वज्र नहीं गिराता है जो वेद इन्द्र को कहता है 'जार'। जार=उपपति - रसलम्पट आदि ।। 95

लोक में काल रूप अनल से व्याप्त में जो अपनी कीर्ति के द्वारा एकार्णव संसार में प्रजा की रक्षा वीर्य-रूप उदर में करनेवाला है तीन वेश्याओं से उजले विष्णु के समान ।। 96

जिसने यत्न से आश्रितों की रक्षा करके उद्दण्ड समुद्र को मथ डाला, उस मन्दार पर्वत ने समुद्र में मथा आश्रितों को जो अपने भ्रम से उसमें गिरे पड़े थे ।। 97

कहाँ जिसके द्वारा फैलाया गया इच्छा से गुणों का समूह संसार जब वामन भगवान् ने तीन डगों से भूमि नापी थी उसने एक पैर के आक्रमण से ही एक-एक बार जब नाप ही लिया तब स्थान कौन बचा ? ।। 98

रण के मस्तक पर युधिष्ठिर द्वारा निरस्त सत्य से भीष्म ने अपने दृढ़ व्रतत्व से मानो क्रोध से सेवित है ।। 99

मारे गये, मित्र बनाये गये राजा को राज्य के छिद्र में तत्पर कलि को जिसने मारा जघन्य आशावाले को क्योंकि जो किये हुए उपकार को नहीं मानता उसका अन्त खरा है ।। 100

किरण से इन्द्रधनुष, सूर्य हवा का भ्रमण दिखाता है। जब जो नवते राजा के सिर के ऊपर स्थित मार्ग के प्रकाश से सुशोभित है ।। 101

अन्दरूनी दुश्मनों और बाहरी दुश्मनों को जीतकर जिसने अच्छे गुणों का उदय करके यश से भरे संसार लोक को देकर संसार जिसके चित्त-रूप गुफा में पैठ गया ।। 102

सुन्दर हज़ार पत्तोंवाले कमलों से युक्त वीर के आस्फालन स्फटिक की शिला के समान खिले उल्लसित लहरों से तट पर फूल की धूलों से केसर के पर्याप्त गिरने से युक्त ब्रह्मा के कज के समान तड़ाग को खोदा ।। 103

VV. 104-108 are identical with those of RCM No. 62

45

प्रसत कोमनप के खड़े पत्थर का अभिलेख

Prasat Komnap Stele Inscription

यह अभिलेख खड़े पत्थर पर पाया गया है । रूप एवं विस्तार में यह उस खड़े पत्थर के समान है जो प्री प्रसत, तेप प्रनम तथा क्रम संख्या 41, 42, 43 एवं 44 में वर्णित पूर्वी बारे के चारों कोने पर पाये गये हैं । ये सातों अभिलेख एक ही क्षेत्र से सम्बन्धित हैं यानी यशोधर तटाक के पड़ोस से ।

इस अभिलेख में वैष्णवाश्रम के लिए राजकीय नियमों की चर्चा है । मनुसंहिता से उद्धृत एक पंक्ति इसमें सम्मिलित है ।

इस अभिलेख में कुल 108 पद्य हैं जिनमें पद्य-संख्या 18 से 20 एवं 27 और 81 अस्पष्ट हैं । शेष सभी शुद्ध एवं स्पष्ट हैं । क्रम संख्या 41 के समान ही सभी पद्यों के छन्द हैं ।

जॉर्ज सेदेस ने इस अभिलेख का सम्पादन किया था ।[1]

1. *BEFEO*, Vol. XXXII, p.88

VV. 1-17 same as in No. 61 of RCM

पद्मोन्नतिस्तभः स्रस्टुमन्यतेजोलयङ्गतम् ।
लग्नः ककुभि रागश्च यस्य.....र् रवोदये ॥ 18
भग्नराजद्रुमकी.....................................।
द्विजिह्वदमनं यस्य.............................. ॥ 19
किञ्चिदुन्मुक्तबाल्ये यो..............।
बभौगमस्तिमालीव भूरि नातिचिरोद् ॥ 20
संक्रान्तं यन्मुखे ज्ञानमेक वाया गुरोर्म्मुखात् ।
सुषम्नयां शुमद्बिम्बाद् इन्दुबिम्ब इवामृतम् ॥ 21
यः स्निग्धसाधुता कृष्टाशिक्षितामिरि वादरात् ।
सकलाभिः कलालीभिरनुकूलामिराश्रितः ॥ 22
समस्तसंहिता सिन्धु समुत्तार श्रमादिव ।
विश्रामयतिर्य्यस्य परे रुद्राध्रि रोचसि ॥ 23
खण्डयामास कन्दर्प्पं स्फुरति यौवने ।
यः स्निग्धस्वाङ्ग सौभाग्य दस्युतारुषितादिव ॥ 24
मुखधाम्नि सुधादिग्धमिति स्निग्धमना इव ।
हृत्वा सूनृतसर्व्वस्वं तस्थौ यस्य सरस्वती ॥ 25
येन सौजन्यबद्धेन कृशोपि विलङ्घितः ।
बद्धागुणास्तु केनापि वृद्धभूपातिलङ्घनः ॥ 26
पूज्यं पुण्यभुजां राज्यं दृप्तवत्.......र् नः ।
प्रीतेन गुरुणा दत्तं ....दे ॥ 27
यस्य वक्षः क्षमं लक्ष्मीः क्षमं क्षेप्तुं न चक्षमे ।
वामन प्रमुखाकार विरागादिव शार्ङ्गिणः ॥ 28
कामोऽनङ्ग पुनः साङ्ग इत्यद्भुतमुदेव यः ।
वाहिनीपच्यलङ्कारमकरैश्चुम्बितः पदे ॥ 29
मुद्धर्ना दधार यस्याज्ञां दुर्म्मदोपि नराधिपः ।
वेलां लोलोर्म्मिमालोपि नोर्म्मिमाली हि लङ्घयेत् ॥ 30
यश् शौर्य्यसम्पदाधरभासुरः सुरराडिव ।
धात्रा केनापि कामेन साक्षाद्र ामवतारितः ॥ 31

शक्तिविद्यागुणोपायैर्य्यश्चतुर्भिरलंकृतः ।
वक्त्रैरिव चतुर्व्वक्त्रो भुजैरिव चतुर्भुजः ॥ 32
द्विषि क्रूरोप्यमर्षोपि क्रूरोपि बलवानपि ।
यः प्रज्ञाबृंहितां न जहौ मृगराडिव ॥ 33
दानार्द्रिता पुनर्धूलिधूसरा यस्य यायिनः ।
वसुधा सह्यवीर्य्येव स्विन्न शुष्का मुहुर्मुहुः ॥ 34
विपद्गुरुं द्रुतकृपां पतद्दुर्य्योधनां युधं ।
योऽदर्शयदिवातन्वन् पुनर्भारतविग्रहम् ॥ 35
प्रतापो यस्य दुर्द्धषं द्विट्प्रतापमशीशमत् ।
अहो नवमिदं लोके दग्धोवह्निर्य्यदग्निना ॥ 36
न दध्युरद्ध्वरे यस्य वासं स्वं स्वर्गवासिनः ।
सर्व्वे सततमाहूताः सुप्ताः सोममदादिव ॥ 37
आकीर्ण्णार्ण्णवगम्भीरदानं यत्र चयच्छति ।
निमग्नशङ्क्येवास यातमुच्चैः पदज्जगत् ॥ 38
यस्यापि हारहासांशुहारिणा यशसा बभौ ।
मग्नसक्तस्फुरत्फेन मण्डलीव वसुन्धरा ॥ 39
यो दधानै रसोत्कष विसर्प्पद्भिरितस्ततः ।
चारैरिव सहस्रांशुरंशुभिः शुद्धमण्डलः ॥ 40
भूतधात्री यथार्था सा पत्यौ यत्र यदादधे ।
स्रवता पयसा काले प्रजाः पीन पयोधरात् ॥ 41
सुव्यक्तं वदनं यस्य नोपमाई सरोरुहा ।
जितमब्जं हि चन्द्रेण चन्द्रस्तेन तु निर्ज्जितः ॥ 42
प्रसारितकरः कर्त्तुं प्रजानां वाष्पमार्ज्जनं ।
यः प्रसादयिताऽजस्त्रं सवितेव पितेव च ॥ 43
चिच्छेदातिमहान्तं यास्त्रिगुणं दण्डमायसं ।
दृढ़बन्धं प्रधानामं बन्धध्वंसविचक्षणः ॥ 44
अर्ज्जुनस्यार्ज्जुनां कीर्त्तिं सव्यसाचितया चितां ।
रमणीयः परस्त्रीषु निष्कामः कथमप्यगात् ॥ 45
यशोधर तटाकाख्यं यस्तटाकममानुषं ।

चकार सर्व्वभूपालमानानिव निमज्जयन् ॥ 46
विशुद्ध दृष्टि कल्याण मोक्षधर्म्मानुसारिणा ।
सदापि विषमा येन सुगमा राजपद्धतिः ॥ 47
काञ्चीझणझणात्कारधारिणी नगरी द्विषां ॥ 48
चन्द्रप्रभा वयस्या मे कियद्द्वरे चरेदिति ।
यस्य तीर्णार्णवा कीर्त्तिस्तत्त्वालोकमना इव ॥ 49
यमेकं सूरिरस्तौषीत् सहस्रेषु महीभुजां ।
ऋक्षे क्षिपति कश्चक्षुर्व्वीक्ष्य चन्द्रं नवोदितं ॥ 50
श्रीयशोवर्म्मणा तेन दधता धाम वैष्णवं ।
वैष्णवान्नातिसर्ग्गाय कृतोऽयं वैष्णवाश्रमः ॥ 51
शासनं श्रीयशोवर्म्मराजस्येदं इहाश्रमे ।
कुलाध्यक्षेण कर्त्तव्यं कृतस्नैः कर्म्मकरैरिति ॥ 52
विदध्यादाश्रमस्यास्य परिवर्द्धनसम्पदं ।
उत्तरोत्तरसंवृद्धांस्तज्जनानपि पालयेत् ॥ 53
अतिथीन् मानयेद् यत्नादातिथ्यानि च बर्द्धयेत् ।
अतिथेर्म्मननात् कृत्यमधिकं स्थानिनान्नहि ॥ 54
अथावनीन्द्र एवात्र सावरोद्योप वागतः ।
तं यथाश्रमसम्पत्त्या यत्नैः सुरवदर्च्चयेत् ॥ 55
स हि विश्वम्भराधीशः सर्व्वलोकगुरुः स्मृतः ।
यदिष्टन्तस्य तत्कुर्य्याद् व्यासगीतमिदं यथा ॥ 56
सर्व्वलोक गुरुश्चैव राजानं योतिमन्यते ।
न तस्य दत्तन्नं कृतं न श्राद्धं फलति क्वचित् ॥ 57
अथ द्विजोधिकं पूज्यः परेभ्यो वहवो यदि ।
प्राप्तास्ते क्रमशः शीलगुणविद्या विशेषतः ॥ 58
राजपुत्रश्च मन्त्रीच बलाध्यक्षश्च सज्जनः ।
ते सर्व्वे पूजनीयाः स्युरानुपूर्व्या प्रयत्नतः ॥ 59
मान्यो विशेषतः शूरो रणे दृष्टपराक्रमः ।
रणार्थी त्वरणार्थिभ्यो धर्म्मरक्षा हितत्स्थिता ॥ 60
यैविद्योनन्तरं पूज्यं आचार्य्यस् स च शाब्दिकः ।

एक विद्भयो विशेषेण ब्रह्मचर्य्यचरस्तथा ॥ 61
पञ्चरा च विधानज्ञात् शब्दशास्त्रविदस्तथा ।
अध्यापकं विशेषेण ताभ्यामार्च्यमर्च्ययेत् ॥ 62
आचार्य्यवद् गृहस्थोपि माननीयो बहुश्रुतः ।
अभ्यागतगुणानाञ्च परा विद्येति मानवम् ॥ 63
वित्तं बन्धुर्व्वयः कर्म्म विद्याभवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद् यदुत्तरम् ॥ 64
सामान्यमानवान् सर्व्वान् बालवृद्धरुजान्वितान् ।
दीनानाथांश्च यत्नेन भवेद् भक्तौषधादिभिः ॥ 65
नित्यं होमार्च्चनविधिं विदधीत यथाविधि ।
तृणदानोपचाराभ्यां कपिलामपि पूजयेत् ॥ 66
श्राद्धोपरागकालेषु पिण्डविषुवयोरपि ।
तण्डुलस्यैकया रवार्य्या कुर्य्यादाश्रम यज्वनः ॥ 67
ये भक्त्या पतिता युद्धे ये च भक्ताः परासवः ।
अपिण्डाः कृपणानाथबालवृद्धाश्च ये मृताः ॥ 68
एतेषामेव सर्व्वेषां चतुराढ़कतण्डुलैः ।
मासावसाने सर्व्वत्र पिण्डैः कुर्व्वीत तर्प्पणम् ॥ 69
एतस्मिन्नाश्रमे पिण्डं कृत्वानीय च सर्व्वशः ।
यशोधर तटाकान्ते तस्मिन्नेव तु निर्व्वयेत् ॥ 70
यशोधरतटाकाक्ष्यतीर्थस्नान विधायकान् ।
तस्यान्तपस्य मासस्य पौर्णमास्याञ्च भोजयेत् ॥ 71
त्रिसन्ध्यविधिसंसक्ताः शीलाध्ययन तत्पराः ।
गृहस्थकर्म्मनिर्म्मुक्ताः शश्वदिन्द्रिय निग्रहाः ॥ 72
वर्षास्वनन्यशयिता एकभक्तेन जीविनः ।
एवं विद्या भागवता वास्तव्या वैष्णवाश्रमे ॥ 73
न वैष्णवाश्रमस्यास्य वैष्णवो वासथेत् स्त्रियं ।
कदाचिदुपशल्येपि सहधर्म्मचरीमपि ॥ 74
वैष्णवा बालवृद्धाद्या ये सदाध्ययेन रताः ।
एतेषामियती वृत्तिर्द्दातव्या प्रतिवासरं ॥ 75

चत्वारि दन्तकाष्ठानि तथाष्ट क्रमुकाणि च ।
तण्डुलार्द्धाढ़कान्नञ्च षष्टिस्तम्बुलकानि च ॥ 76
दीपिकामुष्टिरेका च तथैद्यस्यैकपूलकः ।
तान्याचार्य्याय देयानि तथैव ब्रह्मचारिणे ॥ 77
दन्तकाष्ठ त्रयं सार्द्धं तण्डुलप्रस्थभक्तकम् ।
तम्बुलविंशती द्वे चक्रमुकाणि षडेव तु ॥ 78
एका चदीपिकामुष्टिरिन्धनस्यैक पूलकः ।
वैष्णवेभ्यः प्रदेयानि वृद्धेभ्यस्तानि सर्व्वशः ॥ 79
दन्तकाष्ठद्वयञ्चैव तण्डुल प्रस्थभक्तकम् ।
त्रिंशतम्बुल पत्राणि चत्वारि क्रमुकाणि च ॥ 80
तथैव दीपिकामुष्टिरेकैधस्यैव पूलकः ।
यु....................प्रेदयं सर्व्वमेत तत् ॥ 81
तदन्नं द्वित्रिकुडुवाः तण्डुलाः क्रमुकद्वयं ।
तम्बूलविंशतिथ्यैका दीपिकामुष्टिरमके ॥ 82
अध्येतरि गृहस्थे च वृत्तिर्देया यथावयः ।
अन्नं काकेषु दातव्यं अर्द्धप्रस्थकतण्डुलम् ॥ 83
प्रत्यहं कल्पितं भक्तं तण्डुलाध्यर्द्धखारिका ।
न दधात्तण्डुलानेव दधादेवौदनीकृतान् ॥ 84
त्रीणि पात्राणि यावत् तद् व्यञ्जनं दशपात्रतः ।
सत्कारमाददानानां आनुपूर्व्वीव्यपेक्षया ॥ 85
चतुर्मासोभोगार्हं घटघपाग्निभाजनं ।
आचार्य्यायैकशः दधात् ज्यायसे सात्त्वताय च ॥ 86
रिक्तपात्रं मसीं मृत्स्नां दघादध्येतृ साधवे ।
भोज्यं विशेषयेद्देशे काले पञ्चोत्सवे तथा ॥ 87
कुटयां कुर्य्यादनुसभाः शयनं क्षुरकर्त्तरी ।
इहस्था वैष्णवाः सर्व्वेनाध्यक्षे वैश्यतां गताः ॥ 88
याद्यपातकिनो भीता इहागत्य समाश्रिताः ।
पीड़यित्रे न तान् दधात् गृह्णीयान्न सतानपि ॥ 89
कर्म्मणा मनसा वाचा न हन्यान्नमिषं दिशेत् ।

परस्वायाश्रम स्यान्तर्ब्बहिर्व्वापि कथञ्चन ॥ 90
सर्व्वानवाधकान् सत्त्वानाश्रमस्यास्य सन्निधौ ।
यशोधर तटाकस्य तस्यान्ते च न हिंसयेत् ॥ 91
राजात्मजा राजपुत्री राजवृद्धस्त्रियः सती ।
अत्रान्यातिथिवत्पूजा नारोहेयुः कुटीस्तुताः ॥ 92
या स्तदन्याः स्त्रियो हीना या वा चतुरविभ्रम ।
नात्र प्रवेशमर्हन्ति ता एवाभ्यागता अपि ॥ 93
चतुराश्रम्यपतिभिः सर्व्वैः सम्भूय यत्नतः ।
यशोधर तटाकारम्यं पालनीयार्भदं सदा ॥ 94
किंकरैराश्रमस्यास्य यद्धनं धनिनार्ज्जितं ।
तदेव नान्यतो हार्य्यं भुत्त्वा सम्वर्द्धयचाश्रमं ॥ 95
अस्याश्रमनिकेतस्य कृत्स्नोपकरणान्यतः ।
अन्यत्र नापनेयानि हैमानि राजतानि वा ॥ 96
पर्य्याय परिचर्य्यार्हमेतावत् परिकल्पितं ।
दासीदासं तदुभयोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ 97
द्वौ लेखकौ राजकुटीपालौ पुस्तकरक्षिणौ ।
ताम्बूलिकौ च पानीयहारौ षट् पत्रकारकाः ॥ 98
उत्कैध हाराश्चत्वारश्चत्वारस्तथा शाकादिहारकाः ।
दासाश्च द्वौ तदध्यक्षावष्टौ भक्तकरा जनाः ॥ 99
दास्थास्तण्डुलकारिण्यो द्वादशैव प्रकल्पिताः ।
पञ्चाशदेषां पूर्ण्णाः स्याद्वृद्धा वा माधमाभवेत् ॥ 100
अध्यापकविदग्धस्य शीलसंवरणस्य च ।
जनानध्यापकस्य त्रीण् कल्पयेत् परिचारकान् ॥ 101
दास्येका नव दासाश्च कर्त्तरी क्षुरकस्तथा ।
पञ्च शाय्यः कुलपतेः तथा दासकृषीबलाः ॥ 102
यद्येव शासनमिदं न कुर्व्वीत कुलाधिपः ।
निर्द्दयं दण्डयतां राज्ञा स चायत्तस्तपस्विषु ॥ 103
परार्थसम्पत्कृति कांक्षिणे मे
निष्पादितं पुण्यमिदं नरेन्द्राः ।

स्वस्यान्तरे रक्षतं रक्षणार्ह-
रक्षैव लोके भवतां हि भारः ।। 104
इतीरयत्यव्यपदेशयाञ्जं
भविष्यतः कम्बुजराजराजान् ।
पश्यन् प्रदानप्रतिपत्ति दृष्द्या
स श्रीयशोवर्म्मनराधिराजः।। 105
कुमारमन्त्रि प्रमुखाश्च मुख्या
यशः शरीराः सकलौरुपायैः ।
इदं महीपाल निवेदनाद्यैः
पायसुरायासपराः परार्थं ।। 106
र्ज्जगन्त्य.........म स्वार्थः प्रतनुरपिकः स्याद्धिदधता
स्थितिः शस्ता ह्येषा भवति महतां स्वार्थ विमुखा ।
भवन्त्युद्यद्यत्नाः परहितविभूत्यै यदनिशं ।। 107
वसु हरति वितीर्ण्णं यो नृपेणैतदस्मिन्
सरमसपतनः स्याद् रौरवादिष्विवाङ्स ।
तदापि च परिवृद्धं यस्तु दत्ते स यायाद्
अजरमामरमिद्धं धाम शुद्धं परार्द्धंय ।। 108

अर्थ–

VV. 1-17 same as in No. 61 of RCM

कमल की उन्नति या लक्ष्मी की उन्नति अन्धकार की सर्जना के लिए अन्य तेज लय को प्राप्त, लगा हुआ दिशा में रंग जिसके......र.......सदृश उदय में ।। 18

टूटे राजा रूपवृक्ष............की.........साँप के दमन जिसके...........।। 19

कुछ उन्मुक्त बचपन में........जो.............सूर्य के समान सोहता था, बहुत नहीं अतिशय बहुत काल........ ।। 20

गुरु के मुख से एक वाणी से जिसके मुख में ज्ञान सम्यक् पैठा, सुषुम्ना नाड़ी द्वारा सूर्य के बिम्ब से चन्द्र के बिम्ब के समान जैसे अमृत पैठता है वैसे

ही ।। 21

जो स्नेहिल सज्जनता के आकृष्ट शिक्षित सभी कलाओं की पांतियों से अनुकूल कलाओं से आश्रित मानो आदर से शिक्षा जिसने पायी थी ।। 22

सभी संहिता ग्रन्थों रूप समुद्र के सम्यक् उत्तीर्ण होने के श्रम के समान जिसकी बुद्धि ने विश्राम पाया सबसे परे शिव के चरण की शोभा में ।। 23

जिसने फड़कती युवावस्था में कामदेव के गर्व को खण्डित किया, स्नेहिल अपने अंग के सुन्दर भाग्य के डाकूपन से क्रुद्ध हुआ-सा मालूम पड़ता था जैसे डाकू, कामदेव के सौन्दर्य को लूटा हो ।। 24

मुख रूप धाम पर अमृत बढ़ा है यह स्निग्ध मन के समान जिसकी सरस्वती ठहरी थी मानो सत्य और प्रिय सर्व धन को या सर्वस्व को हरण करके जिसके मुख पर वाणी स्थित थी ।। 25

जिसके द्वारा सज्जनत बँधकर दुबला भी विशेष रूप से लांछित न हुआ था गुण बँधे थे किसी बूढ़े राजा के अतिशय लाँघनेवाले राजा के द्वारा ।। 26

पूजनीय पुण्यभोगी राजाओं के राज्य को गर्वीला तुल्य ....र्........नः... ...प्रसन्न गुरु के द्वारा दिया गया............दे ।। 27

जिसकी छाती समर्थ है लक्ष्मी को धारण करने के लिए, लक्ष्मी को फेंकने में असमर्थ है। विष्णु के वामनावतार है प्रमुख जिन विष्णु के अवतारों में उनके आकार के विराग से मानो ऐसा मालूम पड़ता है ।। 28

कामदेव अंगों से रहित है फिर राजा अंग सहित है इस आश्चर्यपूर्ण हर्ष से मानो जो चरण पर सेना, पैदल सिपाही रूप अलंकारों से चुम्बित है ।। 29

दुःख से मद दूर करने योग्य दुर्मद राजा ने भी जिसकी आज्ञा को सिर से धारण किया था क्योंकि चंचल भँवरों का समूह है माला जिसकी वह भी समुद्र को नहीं लाँघ सके ।। 30

जो शूरता रूप सम्पत्ति के आधार से प्रकाशित इन्द्र के समान किसी विधाता द्वारा जो काम के समान है या कामना से साक्षात् पृथ्वी पर उतारा गया हो ऐसा लगता था ।। 31

शक्ति, विद्या, गुण और उपाय इन चारों से जो विभूषित है, मुखों के समान चतुर्मुख और बाँहों के समान चतुर्भुज मालूम पड़ता था ।। 32

शत्रु पर निर्दय भी, क्रोधी भी, क्रूर भी बलवान भी जो सिंह के समान बढ़ी हुई बुद्धि को न त्याग सका था ।। 33

जिसके हमलावर मद जल से भीगे फिर धूल से धूसरित हुए, पृथिवी सहने योग्य वीर्य वाली-सी पसीने से भीगकर सूखी हुई बार-बार मालूम पड़ती थी ।। 34

जिस महाभारत-युद्ध में विपदग्रस्त गुरु हुए कृपाचार्य जिसमें थे, दुर्योधन का पतन हुआ एवं गिरता हुआ दुर्योधन जिसमें था ऐसे युद्ध को जिसने दिखलाता हुआ एवं विस्तारित करता हुआ फिर भी महाभारत के युद्ध को दिखा दिया इस राजा ने ।। 35

अहो ! आश्चर्य है कि जिस राजा का प्रताप दुख से घर्षित करने दुर्धर्ष है जिसने शत्रु के प्रताप का शमन बार-बार किया, अतिशय रूप से शान्त किया था, यह लोक में नयी आग है जिस आग से आग जल गयी थी ।। 36

सभी स्वर्गवासी देव लोग जिसके वास को न धारण कर सके थे जिसके यज्ञ में सदा बुलाये जाने पर भी सोया ही रहा मानो उन्होंने सोमरस पीने के मद से मतवाले होकर यह कार्य न किया कि यज्ञ में 'वास' धारण करते ।। 37

फैले हुए समुद्र के गम्भीर दान जहाँ देता है डूब जाने की शंका से मानो संसार ऊँचे पद पर जाकर बैठा ।। 38

जिसके हार, हास और किरण के हरण करनेवाले उजले यश से पृथिवी टूटे हुए फड़कते हुए फेनों की मण्डली के समान प्रकाशित हुई थी ।। 39

जिसने इधर-उधर विशेष रूप से ससरते हुए रस के उत्कर्ष को धारण करनेवाली किरणों से उज्ज्वल मण्डलवाला चन्द्रमा हज़ार किरणोंवाला चन्द्र रस के उत्कर्ष को धारण करनेवाले राजा ने खुफियों के समान आचरण किया ।। 40

प्राणियों के धारण करनेवाली, यथार्थ वह पृथिवी जहाँ जब पति के द्वारा आधा न करने पर समय पर पुष्ट स्तनों से प्रजाजन दूध बरसाने लगे थे, जब

आवश्यकता हुई सहर्ष प्रजाजन स्तन से दूध के समान स्रवित करके राजा को दिया ।। 41

जैसे पति जब चाहता है, जहाँ चाहता है, जो चाहता है पत्नी तब, तहाँ और वह वस्तु देती है उसी तरह पृथिवी के प्रजाजन यथेच्छ धनराशि राजा को दिया करते थे (इसी से वह पृथिवी अपने अर्थ के अनुकूल प्राणियों के धारण करनेवाली बनकर यथार्थ अर्थ में भूतधामी कहलाती है) ।। 42

पिता और सूर्य दोनों की भाँति अपनी किरणों के फैलाने से हाथों के फैलाने से (पिता के पक्ष में) किरणों के फैलाने से (सूर्य के पक्ष में) प्रजाजन के आँसू पोंछनेवाला होता है जो सूर्य या जो पिता किरण या पुत्र के हाथ फैलाने पर अविलम्ब वाष्पमार्जन करने के लिए उद्यत होता है वैसे ही नित्य राजा प्रजाजन को प्रसन्न करने के लिए उद्यत था ।। 43

जिस राजा ने तीन गुणोंवाले लोहे के दण्ड को जो दण्ड अति महान् था उसका बन्धन दृढ़ था उसकी आभा प्रधान थी, उस दण्ड को भी राजा ने अविलम्ब काट डाला था ।। 44

अर्जुन की उज्ज्वल कीर्ति जो कीर्ति सव्यसाची अर्जुन की बाएँ हाथ से बाण चलाने वालापन से इकट्ठी की हुई अर्जित कीर्ति पर स्त्री में निष्काम भावना रखनेवाला रमणीय सुन्दर राजा किसी प्रकार प्राप्त कर सका था स्वर्गगामी हुआ या कीर्ति प्राप्त की थी ।। 45

'यशोधर' तड़ाग नामक जो तड़ाग मनुष्यों द्वारा खोदा गया न प्रतीत था । सभी राजाओं के मानों को डुबोता हुआ-सा तड़ाग खनन कार्य किया था ।। 46

विशेष रूप से शुद्ध है दृष्टि जिसकी ऐसे एवं विशुद्ध दृष्टि, कल्याण, मोक्ष एवं धर्म का अनुसरण करनेवाले के द्वारा सर्वदा विषम रहनेवाली राजमार्ग जिसके द्वारा सुगम की गयी थी ।। 47

रमणीय से प्रीति करनेवाले के द्वारा वह भी शत्रु की नगरी सारस पक्षी के शब्दों से डँड़कस की झनझनाहट को धारण करनेवाली शत्रु की नगरी अधिकार में की गयी थी ।। 48

मेरी चन्द्रप्रभा नाम की हमउम्र सहेली कुछ दूर में चले यह सोचकर के

जिसकी कीर्ति ने समुद्र को पार किया था (अर्थात् चन्द्र की प्रभा के समान उजली कीर्ति मेरी (राजा की) हमउम्र सहेली है वह कुछ दूर तक चला करे इस विचार से समुद्र को पार करनेवाली कीर्ति कमायी थी तत्त्व के आलोक को सोचनेवाले मन वाले के समान– यहाँ चन्द्रप्रभा, वयस्सा, तीर्णार्णवा= तीर्ण पार किया, अर्णव=समुद्र को जिसने वह तीर्णार्णक है । ये विशेषण कीर्ति के विशेषण हैं) ।। 49

जिस एक राजा को विद्वान् ने हज़ारों राजाओं में प्रशंसित किया था जैसे नये उगे चन्द्र को देखकर कौन मूर्ख तारा पर आँख फेंकेगा ? या फेंकता है ? ।। 50

उस श्री यशोवर्मन के द्वारा विष्णु के धाम वैकुण्ठ के धारण करने पर विष्णु–सम्बन्धी तेज धारण करनेवाले के द्वारा वैष्णवों के निमित्त यह वैष्णवाश्रम बनाया गया ।। 51

श्री यशोवर्मन का शासन यह है इस आश्रम में कुल के अध्यक्ष के द्वारा कठिन कार्यकर्ताओं की नियुक्तियाँ हों जो कर्मठ कार्यकारी, सच्चे कार्यकारी हों उन्हें रखा जाये ।। 52

इस आश्रम की सम्पत्ति की वृद्धि का विधान किया जाये उत्तरोत्तर सम्यक् रूप से बढ़े हुए उन जनों को भी पाले ।। 53

यत्न से अतिथियों को मानें और आतिथ्य सत्कार को बढ़ावें क्योंकि अतिथि–सत्कार से बढ़कर गृहस्थों, मठाधीशों, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थियों तथा संन्यासियों के लिए दूसरा कोई अधिक पुण्य देने वाला कार्य नहीं है ।। 54

इसके बाद राजा ही यहाँ पर अवरोध से या स्वयं जाये । उनका सत्कार और उनका पूजन सुखदायक रूप से यत्नों–प्रयत्नों से जैसी आश्रम सम्पत्ति रहे तदनुसार किया जाये ।। 55

जो उनको रुचे वह कार्य किया जाये वह सेवा दी जाये, जैसे– व्यास द्वारा गाये गये ग्रन्थों में यह उल्लेख पाया जाता है ।। 56

सभी लोगों के गुरु जो राजा को नहीं मानते हैं कहीं उनका दिया हुआ दान, किया हुआ कृत्य, श्राद्ध नहीं फलते हैं । अतः राजा सर्वलोक गुरु मान्य

हैं ।। 57

यदि बहुत पूज्य है दूसरों से पहले ब्राह्मण अधिक पूज्य हैं वे क्रमशः शील से गुणों से विद्या से विशेष रूप से पूजनीय हैं । शीलवान् ब्राह्मण, गुणवान् ब्राह्मण, विद्यावान् ब्राह्मण में उत्तरोत्तर अधिक पूज्य हैं ।। 58

आनुपूर्वी से प्रयत्न से वे सभी सम्यक् प्रकार से पूजनीय हैं– राजपुत्र, मन्त्री, सेनाध्यक्ष एवं सज्जन लोग ।। 59

युद्ध में पराक्रम दिखानेवाले शूरवीर विशेष रूप से माननीय हैं, जल्द चाहनेवालों से युद्ध चाहनेवाले पूज्य हैं क्योंकि उसमें धर्म की रक्षा स्थित है ।। 60

त्रैविध उसके बाद पूज्य हैं जो आचार्य शब्द-शास्त्रज्ञ हैं वैयाकरण हैं– वे पूज्य हैं । एक एक जानकार से विशेष रूप से ब्रह्मचारी पूज्य है ।। 61

पाञ्चरात्र के विधान के ज्ञाता से तथा शब्दशास्त्र व्याकरण के ज्ञाता से विशेष रूप से आचार्य अध्यापक को पूजना चाहिए ।। 62

आचार्य के तुल्य गृहस्थ भी जो बहुत वेदों और शास्त्रों को सुन चुका है, वह माननीय है । अभ्यागत के गुणों के मानव को पराविद्या यह मानने योग्य है ।। 63

धन, बन्धु, वय, कर्म, विद्या ये पाँच हैं– ये मान्य स्थान हैं जैसे-जैसे उत्तरोत्तर कहा गया है वैसे-वैसे अतिशय श्रेष्ठ हैं । धन से अधिक बन्धु, उससे अधिक वय उससे अधिक कर्म उससे अधिक विद्या मान्य है ।। 64

सामान्य मानवों को सबको बाल, वृद्ध रोगियों को दीनों अनाथों को यत्न से भात और दवाओं आदि वस्तुओं से आतिथ्य सत्कार करना चाहिए ।। 65

प्रतिदिन होम और पूजाविधि यथाविधि से करनी चाहिए । घास देने, उपचार करने से कपिला गाय 'कैली गाय' को भी पूजना चाहिए ।। 66

श्राद्ध और ग्रहण के समय में पिण्डदान और विषुव काल में भी आश्रम के यज्ञकर्ता को एक खारी चावल से आतिथ्य सत्कार करना चाहिए ।। 67

जो भक्ति से पतित हैं युद्ध में और जो भक्त मर गये, जो पिण्डहीन हुए, कृपण, अनाथ, बाल-वृद्ध हैं– वे मर गये ।। 68

इन सभी को चार अढ़ैया चावलों से माह के अन्त में सर्वत्र पिण्डों से तर्पण करना चाहिए ।। 69

इस आश्रम में पिण्डदान करके सभी प्रकारों से जा करके यशोधर तड़ाग के समीप उसी जगह पर गाड़ देवे जो अन्तिम संस्कार हो कर देना चाहिए ।। 70

यशोधर तड़ाग नामक तीर्थ में स्नान करनेवालों को फाल्गुन मास की पूर्णिमा में उसी समय भोजन करावे ।। 71

त्रिसन्ध्याविधि में सम्यक् आसक्त तीनों सन्ध्यावन्दन नित्य विधि में आसक्त जो हैं, शील और अध्ययन में जो तत्पर हैं गृहस्थ कर्म से जो निर्मुक्त हैं सनातन रूप से इन्द्रियों पर जिनने विजय पायी है ।। 72

वर्षा ऋतु में अनन्य सोनेवाले, एक बार भोजन करनेवाले और उससे जीनेवाले– इस प्रकार की विद्यावाले भगवान् के भक्त वैष्णवाश्रम में निवास करें ।। 73

इस वैष्णवाश्रम में वैष्णव स्त्री को वास न करने दें, किसी समय भी उपशल्य में भी और सहधर्मचारिणी अपनी पत्नी को भी वास न करने दें ।। 74

वैष्णव जो बाल, वृद्ध आदि हैं जो हमेशा अध्ययन में लगे रहते हैं, इन लोगों की प्रतिदिन इतनी जीविका देनी चाहिए ।। 75

चार दंतवन और आठ सुपारियाँ आधा अढ़ैया अन्न-चावल, साठ पान– ये सभी चीजें देनी चाहिए ।। 76

एक मुष्टिकावाला दीपक एक और लकड़ी की एक पूली-गठरी– ये चीजें आचार्य को दें वैसे ही ब्रह्मचारी को भी दें ।। 77

तीन दंतवन, डेढ़ पसेरी चावल का भात, बीस पान, छह सुपारियाँ देवें (बीस पान दो-दो करके देवें) ।। 78

एक दीपिका मुट्ठीवाली, लकड़ी का एक पोला, सभी प्रकारों से वृद्धों और वैष्णवों को प्रदान किये जाएँ ।। 79

दो दंतवन, एक पसेरी चावल का भात, तीस पान के पत्ते, चार सुपारियाँ देवें ।। 80

वैसे ही दीपक एक मुट्ठी एक पोला जलावन..........यु.........(मालूम पड़ता है..........यु से युवक होना चाहिए) ये सब देने योग्य हैं ।। 81

वह अन्न तीन कुडुवा (एक मात्रा विशेष है) उतना चावल, दो सुपारियाँ, बीस पान एक दीपिका मुष्टि देवें ।। 82

अध्येता अध्ययन करनेवाला और गृहस्थ को अवस्थानुसार जीविका देनी चाहिए । कौओं को आधा प्रस्थ चावल देनी चाहिए ।। 83

प्रतिदिन राँधा हुआ भात आधा खारी के अनुसार दें– इसमें कहा गया है कि चावल न दें चावल का भात बना हुआ ही दें ।। 84

तीन पात्र जब तक वह व्यञ्जन दस पात्र से सत्कार ग्रहण करनेवालों की आनुपूर्वी की विशेष अपेक्षा से देवें ।। 85

चार माह तक भोगने योग्य घड़े से पानी लायक पात्र, आग का पात्र आचार्य को एक-एक करके देवें जो ज्येष्ठ है और सत्त्व गुणवाले हैं उन्हें देवें ।। 86

खाली पात्र रोशनाई, मिट्टी का बना पात्र अध्ययन करनेवाले साधु को देवें । भोजन की वस्तु को विशेष रूप से दें तब जब देश, काल और पञ्च उत्सव का समय हो ।। 87

कुटी में अनुक्षम शयन करें, छुरा, कतरनी यहाँ रहनेवाले सभी वैष्णव अध्यक्ष न रहने पर वैश्य हो जाएँगे ।। 88

यदि जो पापी न है डरे हैं यहाँ आकर आश्रय लें पीड़ा देनेवाले को न उन्हें दिया जाय और न उनसे वे वस्तुएँ लें भी ।। 89

कर्म से, मन से, वचन से न जन्तु को मारें, न मांस का व्यवहार करें, दूसरों के लिए आश्रम के अन्दर या बाहर किसी प्रकार भी ।। 90

सभी जो न बाधा देने वाले जानवर हैं, उन्हें आश्रम के समीप में और यशोधर तड़ाग के नजदीक में न मारें ।। 91

राजा के बेटे, राजा की बेटी, राजा की वृद्धा सती स्त्री यहाँ अन्य अतिथिवत पूजा कुटी से स्तुति पाने पर पूजा के लिए न चढ़ें ।। 92

और जो उनसे दूसरी स्त्रियाँ हों, हीन हों या चतुर हों, भरमती हों यहाँ प्रवेश न करें वैसी ही अभ्यागत स्त्रियाँ भी प्रवेश पाने योग्य नहीं हैं ।। 93

सभी चारों आश्रमों के मालिकों द्वारा यत्न से सम्भव करके यह यशोधर तड़ाग सर्वदा पालन करने लायक है ।। 94

इस आश्रम के नौकरों द्वारा धनी से जो अर्जन किया धन हो वही दूसरे से न हरण करें– खा करके आश्रम को बढ़ा करके रखें ।। 95

इस आश्रम भवन के कठिन बहुमूल्य उपकरणों को, जो सोने और चाँदी के हैं, उन्हें अन्यत्र न ले जायें ।। 96

पर्याय और परिचर्या के योग्य इतनी परिकल्पना की गयी । दासी और दास– वे दोनों कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष में काम करनेवाले अपने कार्य करें ।। 97

दो लेखक, दो राजकुटी के रक्षक, दो पुस्तक रक्षक, दो पानवाले, दो जल भरनेवाले और छह पत्ता बनानेवाले रहें ।। 98

चार लकड़हारे, दस शाक आदि लानेवाले, दो दास, दो उनके अध्यक्ष, आठ भात बनानेवाले लोग रहें ।। 99

चावल कूटनेवाली दासियाँ बारह रहें जो प्रकल्पित हैं । इनकी पूरी संख्या पचास है जो वृद्ध या मध्यम वयवाली रहें ।। 100

अध्यापक पण्डित शील-संकोचवाले अध्यापकों के तीन परिचारक रहें ।। 101

एक दासी, नौ दास, कर्तरी, छुरा, पाँच साड़ियाँ कुलपति को तथा दास खेतीबाड़ी के लिए दिये जायें ।। 102

यदि ऐसा शासन कुलपति न करें तो राजा के द्वारा निर्दय रूप से दण्ड के भागी बनें, वह काम तपस्वियों के अधीन है ।। 103

दूसरों के अर्थ-सम्पत्ति की कृति की इच्छावाले मेरे द्वारा यह निष्पादित किया गया है जो पुण्य देनेवाला कार्य है, राजा लोग अपने अन्दर रक्षा करने योग्य रक्षा करें क्योंकि लोक में आप राजाओं का भार रक्षा ही है ।। 104

इस बात का कहनेवाला वह श्री यशोवर्मन है जो भविष्यकाल में होनेवाले राजाओं जो कम्बुज में होंगे, उन्हें देखता हुआ प्रदान की प्रतिपत्ति की दृष्टि से आग्रह करता है कि वे इसकी यथावत् रूप से यथाविधि रक्षा करते रहेंगे ।। 105

कुमार, मन्त्री और प्रमुख मन्त्री जिनका यश ही है शरीर, ऐसे सभी उपायों से इस राजा के निवेदन आदि से परिश्रम करके दूसरों के लिए रक्षा करें ।। 106

पृथिवी, जल, आग, हवा, आकाश, सूर्य, चन्द्र संसार के सभी स्वार्थ से. ....धारण करनेवाले कोमल भी कौन हैं ? स्थिति प्रशस्त है । महान् लोगों की स्थिति दूसरों के लिए होती है दिन-रात ऐश्वर्य के लिए उद्योग यत्नवाले सज्जन दूसरों के लिए कार्य करते हैं ।। 107

राजा द्वारा यह इस संसार में जो धन हरण किया जाता है, वितरण किया जाता है, रौरव नरक आदि में पड़ना पड़ता है । वेग से जो हरण किया जाता है, वह बढ़ा करके जो दान देता है, वह अजर न वृद्ध होनेवाले अमर धाम जाते हैं ।। 108

46

तेप प्रनम के खड़े पत्थर का अभिलेख

Tep Pranam Stele Inscription

इस अभिलेख की विस्तृत जानकारी के लिये अभिलेख-संख्या 45 देखें। इस अभिलेख में बौद्ध-आश्रम के लिए राजकीय आदेशों की चर्चा है।

इसमें कुल पद्यों की संख्या 109 है जो सभी स्पष्ट एवं शुद्ध हैं।

पद्य-संख्या 1 एवं 2 RCM के No. 61 के 1 एवं 2 के समान

पद्य-संख्या 4 से 18 RCM के No. 62 के 3 से 17 के समान

पद्य-संख्या 48 से 56 RCM के No. 66 के 52 से 60 के समान

पद्य-संख्या 59 से 62 RCM के No. 66 के 63 से 66 के समान

पद्य-संख्या 64 से 66 RCM के No. 66 के 68 से 70 के समान

पद्य-संख्या 68 RCM के No. 66 के 71 के समान

पद्य-संख्या 73 RCM के No. 66 के 76 के समान

पद्य-संख्या 75 RCM के No. 66 के 78 के समान

पद्य-संख्या 77 RCM के No. 66 के 80 के समान

पद्य-संख्या 79 से 82 RCM के No. 66 के 82 से 85 के समान

पद्य-संख्या 86 RCM के No. 66 के 88 के समान

पद्य-संख्या 87 से 93 RCM के No. 66 के 89 से 95 के समान

पद्य-संख्या 95 से 97 RCM के No. 66 के 97 से 99 के समान

पद्य-संख्या 99 RCM के No. 66 के 101 के समान

पद्य-संख्या 101 RCM के No. 66 के 103 के समान

जर्नल एशियाटिक- 1908 (I) पृ० 203 में विस्तृत विवरण है।

VV. 1-2 same as VV. 1.2 of RCM No. 61

संसारपञ्चर विनिःस्सरणाभ्युपायं
योऽ बोधयत् त्रिभुवनं स्वयमेव बुद्धा
निर्व्वाण सौख्य फलदाय कृपात्मकाय ।
बुद्धाय वन्धचरणाय नमोस्तु तस्मै ॥ 3

VV. 4-18 same as VV. 3-17 of RCM No. 61

क्षत्रवंशनमश्चन्द्रो योऽपि कीर्त्तिकरं कि(र)न् ।
केनापि गम्भीरतरं द्विड़हृदब्धिमशोषयत् ॥ 19
मानिनी मानसे यस्य कान्तिपीयूषपूरिते ।
न्यमज्जन्मन्मथो भूयो हरदाहभयादिव ॥ 20
कीर्त्तिदुग्धाब्धिनिःष्यन्दैर्भुवने मधुरीकृत ।
अस्थानमिव लावण्यं वक्त्रे यस्यावसत् सदा ॥ 21
चतुःष्टि कलावल्या बाल्यात् प्रभृति पुष्कलः ।
अक्षयो योऽकलङ्कोपि ख्यातो मृदुकरो भुवि ॥ 22
येन राज्येऽभिषिक्तेन विद्विड्भृत्यमनोदिशः ।
भीत्या हर्षेण यशसा सममासादिता.......... ॥ 23
गर्ज्जद्रजेन्द्रमेघानां याने दानाम्बुवृष्टिरिभिः ।
ततान शस्त्रविद्युद्भिः प्रावृषं यः शरद्यपि ॥ 24
यस्यापि बाहुयुगलं बहुविद्विड्बधे युधि ।

सव्यापसव्यगमितै सहस्रमिव पत्रिभिः ॥ 25
रणे रणेऽखिलारातीन् यत्प्रतापविभावसुः ।
दग्ध्वादहदतृप्त्येव तेषाञ्चे तांसि योषितां ॥ 26
षाड्गुण्य प्रथितो योपि दृप्रद्विड्ध्वंसने युधि ।
प्रकर्षेण दानानामनन्त गुण ईरितः ॥ 27
उद्ग र्ज्जत्यधिकं सिंहो निर्ज्जयन्नपि कुञ्जरं ।
न जातु विस्मितो यस्तु निर्ज्जयन् राजकुञ्जरान् ॥ 28
जिताः षडरयो येन वयं सर्व्वजितो जिताः ।
अनेनेति ह्रियेवान्तर्न्निलीना हृत्सु दुर्हदां ॥ 29
रक्षाम्बुसिक्तवृद्धस्य राष्ट्रमण्डलभूरुहः ।
येन दत्तद्विजादिभ्यः श्रीफलं स्वादुकामतः॥30
ममकीर्त्तिश्चरन्त्येका दुर्ग्गे भुवनगह्वरे ।
स्खलेदिति भियेवाशा येन निष्कण्टकाः कृताः ॥ 31
सौन्दर्य्यमण्डितं यस्य मुखाखण्डेन्दुमण्डलं ।
केनाप्यनन्दयन्नित्यं नारीनयन नीरजं ॥ 32
यद्गुणाधिष्ठाता वाणी भविनामतिपावनी ।
अध्वराग्नेर्हविर्ग्गन्धगर्म्भेव मरुतां गतिः ॥ 33
अति शुक्लगुणं विष्णुर्य्यं विडम्बार्यतुं ध्रुवं ।
दुग्धाब्धिमध्यमध्यास्ते कार्ष्ण्यं लुम्पन्निवात्मनः ॥ 34
ब्रह्माण्डमण्डले येन यशोभिर्म्मरिते पुनः ।
यशो यद्वर्द्धितं नित्यमन्यत्पूर्य्यन्नु तद्भवेत् ॥ 35
यस्य तेजोरयः स्मृत्वा वने वृष्टि यदा अपि ।
प्रावृट्कालेऽतिसन्तापा युगान्ताग्निहता इव ॥ 36
अनारतं रतो यस्य पुष्कलाङ्को वृषोभवत् ।
हृदगुहायां वृषाङ्कस्य सन्निधाने विद्योरिव ॥ 37
धने धनायया यस्य तावदेव विजृम्भितं ।
यावत् पूर्ण्णोर्थिनामर्थः कौलेस्तीर्ण्णस्य किम्भवेत् ॥ 38
अनन्तविद्यो लोकेशो वृषस्थः कामदीपनः ।
यः शङ्करोपि सततं दत्तदक्षोदयोऽभवत् ॥ 39

अपि हेमाचलतनुः प्रज्जवलन्नपि तेजसा ।
कथमप्यवलानां या हृत्सु तिष्ठन् सुखंव्यधात् ॥ 40
अहो संसर्गमाहात्म्यं लक्ष्मीरपि चलाचला ।
यस्मिन् निश्चलया लग्ना भारत्या पदचापला ॥ 41
कलिकालेर्ज्जितं जित्वा यो धर्म्मेणैव दुष्कृतं ।
तत्संश्रयादिवामर्षो निर्ज्जिगायाखिलान् रिपून् ॥ 42
निरस्तकण्टकां स्फीतां यो विध्वस्तमहीभृतं ।
एकच्छत्रामविषमां पृथ्वीं पृथुरिवाकरोत् ॥ 43
योपि खड्गसहायोपि राजसिंहनिषेवितः ।
अक्रूरपरिवारोऽयमिति केनाप्युदीरितः ॥ 44
यस्याज्ञास्वान्त संवास धर्म्मस्येवानुशासनात् ।
सामादिभिर्य्यथामव्य उपायैर्व्यनयत् प्रजाः ॥ 45
को हरेरनिरुद्धारेः स्वचक्र भ्रान्तिभिर्ज्जयः ।
यस्य त्वभ्रान्तचक्रेणानिरुद्धारिशताज्जयः ॥ 46
स श्रीयशोवर्म्मनृपो नृपेन्द्रः कम्बुभूपतिः ।
सौगताभ्युदयायैतं कृतवान् सौगताश्रमं ॥ 47

VV. 48-56 same as VV. 52-60 of RCM 66

विद्याभुजोद्विजात् किञ्चिद्नमाचार्य्यमर्च्चयेत् ।
बुद्धज्ञानविदं शाब्दं द्विविदन्तु विशेषतः ॥ 57
बुद्धज्ञान विधान शांश्छब्दशास्त्र विदस्तथा ।
अध्यापकं विशेषेण ताभ्यामाचार्य्यमर्च्चयेत् ॥ 58

VV. 59-62 same as VV. 63-66 of RCM 66

श्राद्धोपरागकालेषु पिण्डविषुवयोरपि ।
तण्डुलस्यैकयाखार्य्या प्रकुर्व्वीत यथाविधि ॥ 63

VV. 64-66 same as VV. 68-70 of RCM 66

नमस्यस्य चतुर्द्दश्यां शुक्लायामुत्संवतथा ।
कुर्य्याद्दानं प्रदद्याच्च बुद्धशास्त्रे यथोदितं ॥ 67

V. 68 same as V. 71 of RCM 66

त्रिसन्ध्यविधिसंसक्ता शीलाध्ययन तत्पराः ।
गृहस्थ कर्म्मनिर्म्मुक्ता यतयो विजितेन्द्रियाः ॥ 69
वर्षास्वनन्यशयिता एकभक्तेन जीविनः ।
स्वधर्म्मकर्म्मशक्तास्ते वास्तव्याः सौगताश्रमे ॥ 70
यतयः शीलरहिता दुष्टाः श्रुतविवर्ज्जिताः ।
स्वधर्म्मकर्म्म विभ्रष्टा निर्व्वास्याः सौगताश्रमात् ॥ 71
भिक्षवो यतयो येपि सदाध्ययन तत्पराः ।
एतेषाभियनी वृत्तिर्द्दातव्या प्रतिवत्सरं॥ 72

V. 73 same as V. 76 of RCM 66

दीपिकामुष्टिरेका च तथैद्यस्यैकपूलकः ।
आचार्य्यायैव सर्व्वाणि(तानि)दधात् प्रयत्नतः ॥ 74

V. 75 same as V. 78 of RCM 66

एका च दीपिका मुष्टिरिन्धनस्यैकपूलकः।
यतिभ्यश्च प्रदेयानि वृद्धेभ्यस्तानि सर्व्वशः ॥ 76

V. 77 same as V. 80 of RCM 66

तथैव दीपिका मुष्टिरेकैधस्यैक पूलकः ।
यौवनस्थाय यतये प्रदेयं सर्व्व......... ॥ 78

VV. 79-82 same as VV. 82-85 of RCM 66

धूपभाजनभृङ्गारौ वह्निभाजनमेव च ।
एकैकशश्चतुर्म्मासभोग्यान्येतानि यत्नतः ॥ 83
आचार्य्येभ्यः प्रदेयानि वृद्धाभिक्षुभ्य एव च ।
रिक्तपत्रं मषीं मृस्नामध्येतृषु दिशेदपि ॥ 84
देशे काले च संप्राप्ते भोजनं प्रतिवर्द्धयेत् ।
भोजयेन्तु विशेषेण पञ्चोत्सवसमागमे ॥ 85

V. 86 same as V. 88 of RCM 66
VV. 87-93 same as VV. 89-95 of RCM 66

('अहिंस्रान् सकलान् सत्त्वान्' होना चाहिए- 89 श्लोक में)
यदाश्रमोपकरणं हेमरूप्यादि कल्पितं ।
भिक्षाभाजन चक्रादि भिक्षार्थं नान्यतो हरेत् ॥ 94

VV. 95-97 same as VV. 97-99 of RCM 66

दास्यस्तण्डुलकारिण्यो द्वादशैव प्रकल्पिताः ।
तच्च पिण्डीकृतं सर्व्वं पञ्चाशत्परिमाणकं ॥ 98

V. 99 same as V. 101 of RCM 66

परिचर्य्याकरा दासा नवैकादासिका क्षुरौ ।
पञ्च शाय्यः कुलपतेः सूच्यौ दश कृषीबलाः ॥ 100

V. 101 same as V. 103 of RCM 66

भविष्यतः कम्बुजराजराजान्
स श्रीयशोवर्म्ममहाधिराजः ।
पुनः पुनर्याचत एवधर्म्म-
मिमं नृपेन्द्राः परिक्षतेति ॥ 102

सनातनो भूमिभुजां हि धर्म्मो
धर्म्मस्थितीनां परिरक्षणं यत्
वर्ण्णाश्रमाणां सूरपूजनानां
दण्डयेषु दण्डश्च यथापराधं ॥ 103

धर्म्मातिभारान् भवतोपि जानन्
पुनः पुनर्ध्धर्म्मधनं प्रयाचे ।
स्वधर्म्मसंरक्षणलुब्धभावो
धर्म्मी न तृप्तोस्ति हि धर्म्ममार्ग्गैः ॥ 104

संरक्ष्यमाणे मम शासनेऽस्मिन्
सम्भाविनः कम्बुजभूमिपालाः ।
सम्वर्द्धयिष्यन्ति च शासनं वः
प्राग्भूपकर्म्मानुकरोति भूपः ॥ 105

ये मन्त्रिणः सर्व्वबलाधिपाश्च
दुष्टं यद्दिस्यात् सुगताश्रमेस्मिन् ।
तत् कम्बुजेन्द्राय निवेदयन्तु
मन्त्रयादिसंस्थः खलु सर्व्वभारः ॥ 106

ये श्रीयशोवर्म्मनराधिपेन
श्रीकम्बुजेन्द्रेण नरादि दत्तं ।
इहाश्रमे लुब्धतया हरन्ति

सवान्धवास्ते नरकं पतन्तु ॥ 107
ये श्रद्धया परमया परिवर्द्धयन्ति
तत्सर्व्वमेव सुरनाथपदं प्रयान्तु ।
निर्व्वाधमग्रयमनघं सह वन्धुमिस्ते
यावन्मृगाङ्कतपनौ भुवने विभातः ॥ 108
अम्बुजेन्द्रग्रतापेन कम्बुजेन्द्रेन निर्म्मितं ।
अम्बुजाक्षेण तेनेदं कम्बुजाक्षरमाख्यया ॥ 109

अर्थ–

जिस बुद्धदेव ने स्वयं ही पूर्व आत्मज्ञान करके तीनों भुवनों को संसार-रूपी पिंजड़े (=जन्म-मरण से छुटकारा न पाने रूप पिंजड़े) से विशेष रूप से निकलने मोक्ष पाने के सर्वतोभाव से उपाय को समझाया-बुझाया, ऐसे निर्वाण-सुख के फल देनेवाले कृपात्मक पूज्यपाद उस बुद्धदेव को नमस्कार होवे ॥ 3

कोई जो क्षत्रिय के कुल-रूप आकाश के चन्द्र, जिसने कीर्तिरूपी किरण को बिखेरता हुआ अतिशय गम्भीर शत्रु के हृदय रूप समुद्र को सुखा दिया ॥ 19

मानवती रूठी नायिका के हृदय में जिसमें कान्तिरूपी अमृत भरा है, उसमें कामदेव फिर भी डूब गया शिव के द्वारा जला डालने के भय से मानो डरकर डूबा ॥ 20

जिसके मुँह में सर्वदा लावण्य सौन्दर्य बसता था, जिसकी कीर्ति-रूप दुग्ध-समुद्र से निकले मधुर रसों से भुवन के मधुरीकृत होने पर कहीं स्थान न पा करके मानो इस राजा के मुँह में सौन्दर्य का निवास सदा के लिए हुआ था ॥ 21

चौंसठ कलाओं की पंक्तियों से बचपन से ले करके पूर्ण रूप से अक्षय होकर जो पृथिवी पर कलंकहीन भी कोमल किरणोंवाला अर्थात् परम दयालु प्रसिद्ध हुए थे ॥ 22

जिसके राज्य पर अभिषिक्त होने से शत्रु के नौकर के मन की दिशाएँ भय से हर्ष से यश से साथ-साथ समरूप से रहने लगीं ॥ 23

गरजते हुए गजेन्द्र और मेघों की चढ़ाई के समय हाथी के मद जलों और

मेघों के वर्षा जलों से शस्त्र-रूप बिजलियों से जिसने शरद ऋतु में भी वर्षा ऋतु को विस्तारित किया।।24

जिसकी दोनों बाँहें युद्ध में बहुत शत्रुओं के वध करने में दाएँ-बाएँ- दोनों के संचालनों से दोनों हाथों से हज़ारों बाणों द्वारा मानो शत्रु संहार किया था ।। 25

युद्ध में सभी शत्रुओं को जिसके प्रतापरूप सूर्य ने उन शत्रुओं की स्त्रियों के चित्तों को जलाकर भी तृप्ति बिना पाए ही मानो जला डाला था ।। 26

छः गुणों से प्रसिद्ध भी जो गर्वीले शत्रु के नाश में युद्ध में सुन्दरता से दानों का अनन्त गुण पाया यह कथित विषय है ।। 27

सिंह उच्च स्वर से गरजता है अधिकाधिक रूप से हाथी जीतता हुआ भी जो कभी अचरज में नहीं पड़ता है राजा-रूप हाथियों के जीतने में ।। 28

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य- सभी छः शत्रुओं को जिसने जीत लिया है, हम सबके जीतनेवाले की भी हार हुई इस राजा के द्वारा इस लज्जा से मानो दुष्टों के हृदयों में भीतर जा करके सभी छः शत्रु डूब गये ।। 29

रक्षा के जल से सिक्त होकर बढ़े हुए राष्ट्र समूह-रूप पौधे जिसके द्वारा अच्छे स्वाद की कामना से ब्राह्मणों को और अच्छे पात्रों को श्रीफल का वृक्ष दे दिया गया ।। 30

मेरी कृति अकेली चलती हुई किले में संसार-रूप गुफा में कहीं गिर न पड़े- स्खलित न हो जाये इस भय से मानो जिसके द्वारा दिशाएँ शत्रु संहार करके शत्रुहीन निष्कण्टक बना डालीं ।। 31

जिसके मुख का पूर्ण चन्द्रमण्डल सुन्दरता से सुशोभित है । नित्य किसी के द्वारा आनन्दित हुआ, नारी के नेत्र के जल छलछला पड़े थे ।। 32

संसारवासियों की अतिशय पवित्र करनेवाली जिन गुणों में अधिष्ठित होकर शोभती थी, यज्ञ की आग की सुगन्धि से पूर्ण हविष्य के गर्भ में स्थित सुगन्ध के समान मानो महान् लोगों की गति हुआ करती है ।। 33

अतिशय उज्ज्वल गुणोंवाले विष्णु निश्चित रूप से अपने गुणों को

अतिशय उज्जवल बताने के लिए दूध के समुद्र में अपना कालापन दूर करते हुए मानो दुग्धाम्बुधि में शयन करते रहते हैं ऐसा लगता था ।। 34

समूचे ब्रह्माण्ड मण्डल में यशों से भरे समस्त विश्व में पुन: जिसके द्वारा जो यश बढ़ाया गया– नित्य ही अपना यश पुन: बढ़ाया और दूसरी चीज पूरणीय वह हो, निश्चित रूप से ऐसा मालूम पड़ता है ।। 35

जिसके तेज के वेग को स्मरण करके वन में जब भी वर्षा हुई, वर्षा ऋतु में अतिशय सन्ताप हुए जो युग के अन्तकालीन अग्नि से जले हुए से सन्ताप हुए थे ।। 36

सर्वदा रत जिसका हृष्ट-पुष्ट अंग धर्म हुआ था, हृदयरूपी गुफा में श्रीशिव के समीप में जो शिव वृषांक कहलाते हैं, वृषभ पर चढ़नेवाले हैं उनके समीप चन्द्र के समान ।। 37

धन में धन की आय द्वारा उतनी ही हाकी गयी निकली रकम खर्च हुई, जितनी रकम याचकों ने याची थी उतनी पूर्ण हुई दी गयी नाव से तरनेवाले का क्या हो ? ।। 38

अनन्त विद्यावाला लोकेश बैल पर स्थित काम का जलानेवाला जो श्रीशंकर जी भी हमेशा दे दी है रक्षा का उदय जिनने ऐसे हुए थे ।। 39

हिमालय पहाड़ के शरीर को भी अपने तेज से जलाता हुआ कैसे स्त्रियों के हृदयों में ठहरता हुआ सुख विद्या न कर सका था जो बुद्धदेव ।। 40

आश्चर्य है संसर्ग की महत्ता देखकर लक्ष्मी भी चल हैं वे भी जिसमें निश्चय रूप से मग्न रह सकीं क्योंकि सरस्वती जो अचंचला हैं, स्थिर हैं, उनके संसर्ग से ही लक्ष्मी भी निश्चल बन गयीं ।। 41

कलिकाल में बढ़े पाप को धर्म से ही जिसने जीतकर उस संश्रय से मानो क्रोध हुआ और सभी शत्रुओं को जीत ही तो लिया था ।। 42

सभी शत्रुओं को जीतकर निष्कण्टक बनाकर अपने यश से उजली बनाकर सभी राजाओं का नाशकर के सम रूप से एकच्छत्र पृथिवी को पृथु के समान बना डाला । चक्रवर्ती रूप सार्वभौम होकर एकच्छत्र राजा जैसे पृथु ने

किया वैसे ही किया ।। 43

जो तलवार की सहायता से भी राजाओं में सिंह के समान राजाओं से अच्छी तरह सेवित हुआ । इससे किसी के द्वारा 'यह अति दयालु परिवार है' यह कहा गया, तलवार रखने पर सिंह के समान बहादुर बनने पर भी किसी ने क्रूर परिवार न कहकर अक्रूर परिवार ही कहा था ।। 44

जिसकी आज्ञा मन में सम्यक् रूप से बसनेवाले धर्म के अनुशासन के समान, साम, दण्ड, विभेद आदि से जैसा हो सका उपायों से प्रजा जन को विनयी बनाया था ।। 45

कौन विष्णु जो अनिरुद्ध के शत्रु हज़ार बाँहोंवाला कार्तवीर्याजुन थे उनके अपने चक्र के भ्रमों से जय प्राप्त हुई थी विष्णु ने जो चक्र मारा उसे अपना समझने के भ्रम से सहस्रार्जुन हारे थे लेकिन इस राजा के तो भ्रम न थे जिसके निभ्रान्तचक्र से अनिरुद्ध के शत्रु सैकड़ों से जय प्राप्त हुई ।। 46

वह पूर्वोक्त गुणोंवाला श्री यशोवर्मन नामक राजा राजेन्द्र कम्बुज राज महात्मा बुद्ध के अभ्युदय के लिए इस बुद्धाश्रम का निर्माण किया था ।। 47

विद्या से अर्जित धन के भोगी ब्राह्मण से कुछ कम आचार्य की पूजा करनी चाहिए । यह शब्द-सम्बन्धी ज्ञान बुद्ध-सम्बन्धी ज्ञान है दोनों विद्या और बुद्ध के ज्ञाता विशेष रूप से पूज्य हैं ।। 57

बुद्ध के ज्ञान के विधान के ज्ञाताओं को तथा शब्दशास्त्र= व्याकरण के ज्ञाताओं को विशेष रूप से उन दोनों से अधिकतया आचार्य अध्यापक पूजनीय हैं ।। 58

श्राद्ध और ग्रहण के समयों में पिण्डदान और विषुव के समय में एक खारी चावल से विधिपूर्वक सत्कार किया जाये ।। 63

श्रावण मास की चतुर्दशी को जो शुक्ल पक्ष में हो उत्सव किया जाये, दान-प्रदान किया जाये जैसा कहा है उस रूप से ।। 67

तीनों संध्याओं की विधि त्रिसान्ध्य विधि है उसमें सम्यक् सक्त संन्यासी लोग जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है ।। 69

वर्षा ऋतु में अनन्य शयन करनेवाले एक बार भोजन करके जीनेवाले अपने धर्म-कर्म में वे सकने वाले सौगताश्रम बुद्धाश्रम में वास करें ।। 70

जो संन्यासी लोग शील से हीन हों, दुष्ट हों वेदों शास्त्रों के न सुननेवाले अपने धर्म-कर्म से विशेष रूप से भ्रष्ट लोग बुद्धाश्रम से निकाल दिये जाएँ ।। 71

सर्वदा अध्ययन में तत्पर रहने वाले जो संन्यासी भिक्षु हैं उन्हें हर वर्ष यह जीविका दी जाये ।। 72

दीपिका एक मुष्टिकावाली तथा लकड़ी की एक पूली, प्रयत्नपूर्वक वे सभी चीजें आचार्य को ही दी जाएँ ।। 74

एक मुष्टिकावाली एक दीपिका, लकड़ी की एक गट्ठर सभी प्रकारों वृद्ध संन्यासियों को दी जाएँ ।। 76

वैसे ही दीपिका मुष्टि का एक लकड़ी की एक पूली युवक संन्यासी को दी जाएँ ।। 78

धूप का पात्र भृंगार आग का पात्र चार माह तक एक-एक करके चार मास भोगने योग्य यत्नपूर्वक ये चीजें दी जाएँ ।। 83

आचार्य वृद्ध भिक्षु को खाली पत्र मसी (रोशनाई) मिट्टी की बनी मृत्स्ना अध्ययन करने वालों को दी जाएँ ।। 84

देश में काल में भोजन बढ़ाया जाये, पाँच उत्सव समागम के समय में विशेष रूप से भोजन कराया जाये ।। 85

जो आश्रम का उपकरण सोने-चाँदी का बना भिक्षा पात्र चक्र आदि भिक्षा के लिए दूसरों से न हरण किया जाये ।। 94

चावल कूटने, छाँटने तैयार करनेवाली बारह दासियाँ प्रकल्पित हैं । वे सभी जोड़ करके पचास हैं ।। 98

परिचर्या करनेवाले दास लोग नौ, एक दासी, दो छूरे, पाँच साड़ियाँ, दो सूइयाँ दस किसान खेती करने वाले कुलपति को दिये जाएँ ।। 100

भविष्य में होनेवाले राजाओं से वह श्री यशोवर्मन महाधिराज फिर-फिर याचना करते हैं ही कि इस धर्म की रक्षा राजा लोग करें ।। 102

राजाओं का यह सदा से आनेवाला, त्रिकाल में चलनेवाला यह शाश्वत धर्म है कि धर्म स्थितियों का सर्वतोभावे न रक्षण किया जाये । वर्णों, आश्रमों, देवों के पूजन की रक्षा की जाये । दण्ड के योग्य लोगों को अपराधों के अनुसार दण्ड दिये जाएँ ।। 103

धर्म के अतिशय भारों को आप लोगों के भी जानता हुआ बार-बार धर्म धन की याचना करता हूँ । अपने धर्म की सम्यक् रूप से रक्षा में लुब्ध भाव से मैं याचता हूँ क्योंकि धर्मी व्यक्ति धर्ममार्ग से तृप्त नहीं हो पाता है ।। 104

इस सम्यक् रक्षा करते हुए मेरे शासन में भावी कम्बुज राजा लोग, आप लोग सम्यक् धर्म बढ़ावेंगे, शासन को भी बढ़ावेंगे । प्राचीन राजाओं की नकल करनेवाले नये राजा होते हैं ।। 105

जो मन्त्री लोग और सभी बलों के सेनाधिप लोग यदि इस आश्रम में कोई दुष्ट हो तो वह बात कम्बुज के राजा को निवेदित करेंगे मन्त्री आदि के अधीन ही निश्चित रूप सभी भार रहा करते हैं ।। 106

जो श्री यशोवर्मन राजा द्वारा श्री कम्बुजेन्द्र द्वारा आदमी आदि दिये गये हैं इस आश्रम में लोभी होकर हरण करें, वे बन्धु सहित नरक को जाएँ ।। 107

जो श्रद्धा से परम श्रद्धा से सभी ओर से इसे बढ़ावें, वे सभी स्वर्ग जाएँ, इन्द्र पद पावें, निर्बाध रूप से सबसे आगे निष्पाप रूप से बन्धुओं सहित वे यावत् काल तक सूर्य चन्द्र संसार में विशेष रूप से प्रकाशित रहें, तब तक स्वर्गसुख भोग करें ।। 108

अम्बुजेन्द्र के प्रताप से कम्बुजेन्द्र से निर्मित कमलनयन से रचित यह उसके द्वारा कम्बुज के अक्षरों के नाम से लिखित है ।। 109

47

प्री प्रसत अभिलेख
Prei Prasat Inscription

इस अभिलेख की विस्तृत जानकारी के लिए क्रम संख्या 45 देखें । शैव आश्रम को नियमित रूप से संचालित करने के लिए इस अभिलेख में राजकीय नियमों की चर्चा है ।

अभिलेख में कुल पद्यों की संख्या 96 है ।

इस अभिलेख की जानकारी हमें अंशतः निम्न स्रोतों से मिलती है।[1]

VV. 1-16 same as VV. 1-16 of RCM No. 61

V. 17 missing (probably same as V. 17 of RCM No. 61

VV. 18-21 only few letters at the end of each line are preserved.

..................................पूर्व्वसम्भवे ॥ 18

..................................पुण्डरीक विलोचनः ।

1. *ISC*, p. 418 cf. *BEFEO*, Vol. XXXII, p.85

.................................युक्तो यो युक्तमीरितः ॥ 19

..................................सर्व्वालङ्कार भूषिता ।

....................................रतीपतौ ॥ 20

................स्य बुद्धा.......वा..........तं ।

..................र्भीत्येवाद्यापि संश्रितः ॥ 21

..................स्तमोभूतभिदज्जगत् ।

................तोर.............ङ्क........... ॥ 22

.....................न् महद्भिर्मन्त्रिभिर्वृतः ।

..................न अनायासञ्चकार यः ॥ 23

.................युद्धाब्धौ यो व्यद्याद् ध्रुवम् ।

...............सप्रेम विजयश्रियः ॥ 24

...............यं वीक्ष्याधिकविक्रमम् ।

.................त् काकास् समभवन् युधि ॥ 25

..............विपद(ं) श्रीपरिग्रहम् ।

.............सरस्तुल्याञ्चकार यः ॥ 26

.............न् नो प्रामीणत पण्डितः ।

................वैरिवन्धौनि ॥ 27

नानारत्नैपि चितन् नम्रभूमीन्द्रशेखरम् ।

यस्याङ्घ्रि नरवरश्मीद्धं रत्नैरेवारुणैरिव ॥ 28

यः प्राप्य राज्यमजय..........भिर्दुर्ज्जयङ्कलिम् ।

..........यस्य जये शक्तः पुरुषोत्तम एव हि ॥ 29

जी...य्यो धनारातिर्भीमो प्याजौ बलेन यः ।

लक्ष्मीलुब्धं परिणतन् धृतराष्ट्रमहर्षयत् ॥ 30

यज्ञधूमध्वजोद्धत धूमैर्धूसरितन्नमः ।

धूमवर्षैरिव बभौ भृशं यस्य कलेर्व्वधे ॥ 31

यो राजरत्नमर्थिभ्यश्चिन्तितानाप्य चिन्ततान् ।

अर्थान्दिशञ्ज हासेव मणिञ्चिन्तितदायिनम् ॥ 32

तिष्ठन्त्युरसि यस्य श्रीरस्थिरापि स्थिराऽभवत् ।

अनेक गुणसंबन्धा वीर्य्य प्राकार वारिता ॥ 33

तप्तन्तीव्रप्रता (पेन) भुवनं ह्लादयन्निव ।
योऽ किरत् सर्व्वतश् शुभ्रयशोमृतमनारतम् ॥ 34
सर्व्वानन्दक(री) कीर्त्तिः कामिनी कामचारिणी ।
तथापि यस्य दयिता.........च गदिता वधैः ॥ 35
बलादियुक्तों युक्तोयं मतः प्रति जगत् स्थितौ ।
इति बुद्धायमम्भोधौ सुखं शेते न माधवः ॥ 36
निरावरण बुद्धित्वात् सर्व्वं वेद्यं विदन्नपि ।
राजस्थितिरलङ्घेयति चारचक्षुर्बुभूव यः ॥ 37
यथाभीष्ट प्रदा(ं) साध्वीं धर्म्मश्रीमहिषीं प्रियाम् ।
सर्व्वोपयुक्तां यस्यापि कुर्व्वतः कर्म्म सत्स्तुतम् ॥ 38
यस्याजौ भिन्नवैरीम कुम्भमुक्ताम्बु वृष्टिभिः ।
..........रिवातिधवलं यशो दिशि विसर्प्पति ॥ 39
पृथुकीर्त्तिः पृथुगुणः पृथुश्री पृथुविक्रमः ।
पृथुपृथ्विः प्रतिनिधिः पृथिव्यामिव यः पृथोः ॥ 40
यस्यानुशासनजलञ्जगन्मान समभ्यगात् ।
तत्स्थितस्य कलङ्कस्य बिदधन्नुविशोधनम् ॥ 41
स्थानेषु सर्व्ववर्ण्णानां गुणवृद्धिकरोऽपि यः ।
श्रीपाणिनेर........शब्दविद्याविदीरित(:) ॥ 42
......................स् तार्थो सरोरुहम् ।
..........यस्त..........भानुभेणुरिवाभवत् ॥ 43
.............र्ज्जुनयशो शङ्खचक्रलासत्करः ।
भूधरः पुण्डरीकाक्षो योपि कृष्णो न कर्म्मणा ॥ 44
महाकालोदयकरो वृषस्थितिकृतादरः ।
नुतनन्दी स्मरातिर्यो वभार भवश्रियम् ॥ 45
शतक्रतुकृतश् शक्रादधिकोप्यमित ऋतुः ।
भूरक्षार्थङ्करुणया यो न धात्रावतारितः ॥ 46
यस् स्तूयमानसत्कर्म.................... ।
सौमित्रिरिव सङ्ग्रामे .... ॥ 47
युक्तदण्डकरतेन........................ ।

....॥ 48

.......................र्य्यस्य विष्णोरिवाभवे ।

...........................ज्ञेयमन्यत्र दुष्करम् ॥ 49

....................................चेतसा ।

.......................य ब्राह्मणाश्रमः ॥ 50

VV. 51-59 same as VV. 52-60 of RCM No. 66

शैवपाशुपताचार्य्यौ पूज्यौ विप्रादनन्तरम् ।

तयोश्च वैयाकरणः पूजनीयोऽधिकंभवेत् ॥ 60

शैवपाशुपतज्ञानशब्द शास्त्रविदां वरः ।

आचार्य्योऽध्यापकश् श्रेष्ठमत्र मान्यो वराश्रमे ॥ 61

VV. 62-70 same as VV. 63-70 of RCM No. 66

त्रिसन्ध्यविधिसंसक्ता (श् शीलाध्ययन तत्पराः) ।

गृहस्थकर्म्मनिर्मुक्ता (यत तो विजितेन्द्रियाः) ॥ 71

वर्षास्वनन्यशयिता ए (कमक्तेन जीविनः) ।

एवं विद्या............यतयो (वास्तव्या ब्राह्मणाश्रमे) ॥ 72

ब्राह्मणा यतयो ये पि स (दाध्ययन तत्पराः) ।

एतेषामियती वृत्ति (द्दतिव्या प्रतिवासरम्) ॥ 73

V. 74 same as V. 76 of RCM No. 66

दीपिका मुष्टिरेका च (तथद्यस्यैकपूलकः) ।

सर्व्वाण्येतानि देयानि......................... ॥ 75

ततोन्यान् पूजयेद्रविधि....................... ।

वृत्तिद्द्या तथाचार्य्ये.......................... ॥ 76

V. 77 same as V. 78 of RCM No. 66

एका च.................................... ।

यत्तिभ्यश्च प्रदेयानि.................. ॥ 78

V. 79 same as V. 80 of RCM No. 66
V. 80 same as V. 78 of RCM No. 67
VV. 81-84 same as VV. 82-85 of RCM No. 66

भस्माढ़ कज्जटाशुद्धिक्षार भस्माढ़ कन्था ।

एकन्तद्भाजनन् धूपभाजनं वह्निभाजनम् ॥ 85

भृङ्गारञ्च द्विजाचार्य्य परिवृद्धतपस्विषु ।

एकैकत्र चतुर्मासं प्रदेयं सर्व्वभेव तत् ॥ 86

रिक्तपत्रं मषीं मृत्स्नामध्येतृषु दिशेदपि ।

भोज्यं विशेषयेद्देशे काले पञ्चोत्सवे तथा ॥ 87

कुर्य्यात् कुटीषु सर्व्वासु शयनं प्रतिवत्सरम् ।

इहस्था यतयस् सर्व्वे नाध्यक्षे वश्यताङ्गताः ॥ 88

VV. 89-95 same as VV. 89-95 of RCM No. 66

यदाश्रमोपकरणं हेमरूप्यादि....................।

भस्मभाजनदण्डादि भिक्षार्थन्ना..................॥ 96

अर्थ–

..........पहले उत्पन्न होने पर, सम्भव होने पर ॥ 18

.........कमल के समान विशिष्ट लोचनोंवाला ।

.........युक्त जो युक्तियुक्त - उचित कहा ॥ 19

.........सभी अलंकारों से शोभित स्त्री ॥ 20

.........स्य बुद्धा- जगी ....वा तं

.........र्भीत्ये वाद्यापि- डर से मानो आज भी सम्यक् सेवित है ॥ 21

.........स्तमोभूतम्- अन्धकार रूप यह संसार । .....तोर.........ङ्क.....॥22

............म् बड़े मन्त्रियों से घिरा हुआ । ....नहीं अनाचार किया जिसने ॥ 23

........युद्ध-रूप समुद्र में जिसने निश्चित किया ....प्रेम सहित विजय लक्ष्मी का॥24

..........जिसे देख करके अधिविक्रमवाले को । ..कौए हुए युद्ध में ॥ 25

.........विपत्ति को..........लक्ष्मी के परिग्रह को ....तालाब तुल्य किया उसने ॥ 26

............न् नहीं - मरा (प्रमाणित हुआ) विद्वान् । ....वैरी बन्धु में नि. ....॥ 27

बहुत रत्नों से भी युक्त विनयी राजा के श्रेष्ठ को जिसके पैर के नखों की

किरण दीप्त लाल रत्नों के समान थी ।। 28

जिसने पाकर राज्य जीता । दुख से जीतने योग्य कलि को.........जिसके जय में रुका हुआ क्योंकि पुरुषोत्तम विष्णु ही ।। 29

जी....जो.........धन का शत्रु भयंकर पाण्डवों में एक भीम, युद्ध में बल से जो...........लक्ष्मी का लोभी परिणत धृतराष्ट्र को प्रसन्न किया...........।। 30

यज्ञ के धुएँ-रूप पताका से उठे धुओं से धूसरित मलिन आकाश, धुएँ की वर्षा के समान शोभित हुआ अधिकाधिक जिस कलि की हत्या में ।। 31

जो राजाओं में रत्न के समान याचकों के लिए चिन्तितों को भी अर्थों का निदेश करता हुआ हँसा सा मणि के समान चिन्तित देनेवालों को ।। 32

जिसकी छाती पर ठहरती हुई चंचल लक्ष्मी भी स्थिर हो गयी । अनेक गुणों से सम्बन्ध रखनेवाली वीर्यबल रूप घेरे से रोकी हुई ।। 33

तेज प्रताप से तवा हुआ संसार को आनन्दित करता हुआ सा सर्वदा जिसने चारों ओर उजले यश-रूप अमृत फैलाया था ।। 34

सबों को आनन्दित करनेवाली कृति मन के अनुकूल आचरण करनेवाली कामिनी-सी थी तथापि जिसकी स्त्री.........और कही हुई..........।। 35

बल आदि से युक्त प्रति संसार की स्थिति में यह माना हुआ युक्त, यह जानकर यह विष्णु समुद्र में सुख से नहीं सोता है ।। 36

बिना ढक्कनवाली खुली बुद्धि के कारण सभी जानने योग्य को जानता हुआ भी राजा की स्थिति लाँघने योग्य नहीं है जिसने यह समझकर खुफियों के नियुक्त करके उन्हीं को अपनी आँख बनायी थी ।। 37

जैसे अभीष्ट देनेवाली, साध्वी, पत्नी जो प्यारी है, सब के द्वारा उपयुक्त है जिसका भी कर्म करते हुए वह जो सज्जनों से प्रशंसित है ।। 38

जिसके युद्ध में कटे वैरी-रूप गज के स्थिर करके कुम्भ की मुक्ता के जल की वृष्टियों से..........अतिशय उज्ज्वल यश दिशा में विशेष रूप से फैलता है ।। 39

पृथिवी पर पृथु राजा के समान कीर्तिवाला पृथु के समान गुणवाला, पृथु

के समान लक्ष्मीवाला, पृथु के समान पराक्रमवाला, पृथु के समान पृथिवीवाला, पृथिवी पर जो पृथु के प्रतिनिधि के समान जो विराजता है मानो सभी बातों में पृथु ही है ।। 40

जिसके अनुशासन-रूप जल संसार के मानस को पहुँचा उसमें स्थित कलंक के विशेष शोधन करता हुआ-सा दीखता है ।। 41

स्नानों में सभी वर्णों के कहीं गुण सन्धि कहीं वृद्धि सन्धि जोड़नेवाला जो पाणिनि मुनि है.............व्याकरणशास्त्र के ज्ञाता द्वारा कथित........... ।। 42

...............कमल को.............जो..............सूर्य के प्रकाश के समान हुआ ।। 43

..........उजला यश है जिसका..........शंख चक्र से शोभित हाथवाला...... ....पृथिवी को धारण करनेवाला कमल नयन जो भी कृष्ण नहीं........कर्म से ।। 44

महाकाल के उदय करनेवाला वृष की स्थिति का आदर करनेवाला नन्दी से स्तुति शिव की होती हो कामदेव का जो शत्रु हो उसने शिव के समान राजा ने संसार की लक्ष्मी को धारण किया था ।। 45

जो सौ अवश्मेध करनेवाले इन्द्र से भी अधिक अगणित यज्ञ करनेवाला इन्द्र द्वारा किया हुआ, पृथिवी की रक्षा के लिए दया से विधाता द्वारा अवतीर्ण किया गया है मानो इन्द्र को ही ब्रह्मा ने यहाँ भेजा है ।। 46

जो प्रशंसमान अच्छे कर्म........श्री लक्ष्मण जी के समान युद्ध में.....।। 47

....।। 48

..............जिसके.......विष्णु के समान शोभित हुआ था । दूसरी जगह कठिन है ।। 49

...........चित्त से ....ब्राह्मणों के लिए आश्रम....................।। 50

ब्राह्मण के बाद शिव भक्त और शिव भक्त आचार्य पूजनीय हैं । उन दोनों से भी अधिक पूज्य व्याकरण के ज्ञाता हैं ।। 60

इस श्रेष्ठ आश्रम में शिव-सम्बन्धी ज्ञानी और पशुपति-सम्बन्धी ज्ञानी व्याकरण शास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ आचार्य अध्यापक श्रेष्ठ रूप से मानने लायक हैं ।। 61

जो सुबह, दोपहर और सायंकालों में तीन बार संध्या-वन्दनादि नित्य कर्मों में सम्यक् रूप से आसक्त हैं शीलवाले हैं अध्ययन में तत्पर हैं गृहस्थ के कामों से निर्मुक्त हैं (यत्न करनेवाले विशेष रूप से इन्द्रियों को जीत चुके हैं) ।। 71

वर्षा के समय में अन्यत्र अकेले सोनेवाले (एक बार भोजन कर सोनेवाले) इस प्रकार के संन्यासी..........ब्राह्मणाश्रम में बसें ।। 72

जो ब्राह्मण हैं और जो संन्यासी हैं (दान और अध्ययन में तत्पर हैं) इन लोगों की इतनी जीविका (प्रतिदिन दी जाये) ।। 73

एक मुष्टिकावाली एक दीपिका और (लकड़ी की एक पूली)– ये सभी देने योग्य हैं...।। 75

इसके बाद दूसरों को पूजे विधि..............। जीविका देनी चाहिए......... तथ आचार्य के विषय में.............. ।। 76

एक.........और............संन्यासियों को दिये जाएँ ।। 78

भस्म एक अढ़ैया तथा जटा को शुद्ध करने का क्षार भस्म एक अढ़ैया, उसका एक पात्र और धूप का पात्र तथा अग्नि का पात्र ।। 85

भृंगार, ब्राह्मण आचार्य वृद्ध तपस्वी लोगों में एक-एक चतुर्मास तक वह सब दें ।। 86

खाली पत्र, रोशनाई, दावात मिट्टी की बनी सब अध्ययन करनेवालों को दिये जाएँ भी । भोज्य विशेष रूप से बढ़ाया जाये, देश, काल, विशेष रूप से पञ्चोत्सव में वैसे ही हैं ।। 88

जो आश्रम का उपकरण....... सोने-चाँदी ....इत्यादि भस्म के पात्र, दण्ड आदि भिक्षा के लिए ....।। 96

48

लोले द्वार-स्तम्भ अभिलेख
Loley Door-Pillar Inscription

स्एलो ज़िले में स्थित लोले के चार मन्दिरों के द्वार-स्तम्भ पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है । इस अभिलेख के संस्कृत-भाग में भगवान् शिव तथा भवानी देवी की स्थापना की चर्चा है । दो और देवताओं तथा देवियों की स्थापना की भी चर्चा है जिनकी पहचान नहीं हो सकी है । पवित्र रचनाओं की सुरक्षा के लिए भविष्य के राजाओं के लिए इस अभिलेख में चेतावनी है । राजा जयवर्मन के राज्यारोहण की तिथि भी इसमें अंकित है । ख्मेर-भाग में दान की विस्तृत चर्चा है । इसी अभिलेख से हमें यह पता लगता है कि चार मन्दिरों में चार देवी-देवताओं की मूर्तियाँ पायी जाती हैं । इन मन्दिरों के देवी-देवता हैं– इन्द्रब्रह्मेश्वर, इन्द्रादेवी, महीपतीश्वर तथा राजेन्द्रादेवी । राजा के माता-पिता ऊपर पहले दो देवी-देवताओं का नामकरण हुआ और बाकी दो केवल माता के नाम पर ।

इस अभिलेख में कुल 12 पद्य हैं ।

मन्दिर–I (A) पद्य 7, (B) पद्य 2

मन्दिर–II पद्य 1

मन्दिर–III पद्य 1

मन्दिर–IV पद्य 1

इस अभिलेख के विस्तृत विवरण के लिए देखें।[1]

Temple No. I - Text (A)

श्रीसिद्धि स्वस्ति जय ।
शशाङ्क चन्द्राष्टशकाप्तराज्य-
स्स श्रीयशोवर्म्मनरेन्द्रराजः ।
स्वस्थापितायादित किङ्करादि
सर्व्वन्तदस्मै परमेश्वराय ॥ 1
स चाग्रयायी ददतां समस्तां
स्तान् भाविनः कम्बुजभूपतीन्द्रान् ।
पुनः पुनर्य्याचत इत्ययं व-
स् स्वधर्म्मसेतुः परिपालनीयः ॥ 2
अवैमि ये स्थास्नुयशश् शरीरा
जिहासवोऽसूनपि धर्म्महेतोः ।
भवन्त उच्चैश्शिरसां वरिष्ठा
देवस्वभिच्छेयुर पीदृशास्ते ॥ 3
प्रायस् स्थिते गोप्तरि सन्मुखा ये
छिद्रे सुरद्रव्यहरास्तु सन्ति ।
इदन्ततो रक्षत साधुगे पि
राहुर्ज्जहारैव सुधां सुरामः ॥ 4
यथा च राहु प्रमुखान् विजित्य
ररक्ष देवानमृतञ्च विष्णुः ।
तथा भवन्तोऽपि निहत्य चौरा-

1. ISC, p.319-31

न् सुरं सुरस्वं परिपालयन्तु ॥ 5
ज्ञातञ्च सत्यं मृतिरेव याञ्चा
राज्ञो विशेषेण तथापि सास्तु ।
धर्म्मस्य हेतोर्म्मरणं हि शस्तं
सतामतस् त्यागिन एव याचे ॥ 6
कुमार मन्त्रि प्रमुखैश्च पुण्य-
न्निवेदनाद्येन तदेव रक्ष्यम् ।
युष्मासु भारः परिपालनादि-
स् स्निग्धेषु विद्वत्सु कृतोहि राज्ञा ॥ 7

Temple No. I - Text (B)

श्रीसिद्धि स्वस्ति जय
वाणैकाष्टशके शुचेश् शितिदिने षष्ठे झषद्धिंविधौ
सिङ्हञ्चन्द्रसुते वृषं सभृगेजे लग्ने कुलीरं रवौ ।
चापन्देव गुरौ तुलां सरविजे भौमे गते स्थापिता
गौरीश प्रतिमास् समं स्वरचितास्ताश् श्रीयशोवर्म्मणा ॥ 1
अस्यासुमन्तो हरणं हरन्ति
येते नरेन्द्रादिह यातनार्हाः ।
यमादमुत्रापि च पालयन्ति
ये यान्तु ते धाम शिवं शिवस्य ॥ 2

Temple No. II

श्रीसिद्धि स्वस्ति जय
मृगाङ्कचन्द्राष्टकाप्त राज्य-
स् स श्रीयशोवर्म्मनरेन्द्रवर्य्यः ।
स्वस्थापितायामिह किङ्करादि
भक्तया भवान्यान्तदिदं व्यतारीत् ॥ 1

Temple No. III

श्रीसिद्धि स्वस्ति जय
श्रीमान् यशोवर्म्मनरेन्द्र चन्द्र-

स् स चन्द्र चन्द्राष्टशकाप्तराज्यः ।
अस्मिन्धरा रामनरादि सर्व्वं
स्व स्थापितेशे तदिदं व्यतारीत् ॥ 1
ज्मउचसम छवण प्ट
श्रीसिद्धि स्वस्ति जय
स श्रीयशोवर्म्म महीन्द्रो
द्विजेन्द्र चन्द्राष्टमिराप्तराज्यः ।
स्वस्थापितान् नृवराङ्गनादि
देव्यां व्यतारीदिह तत् समस्तम् ॥ 1

अर्थ–

Temple No. I - Text (A)

श्री, सिद्धि, स्वस्ति तथा जय हो।

811 शकाब्द में जिन्होंने राज्य प्राप्त किया है वे राजाओं के भी राजा श्रीमान् यशोवर्मन ने स्वयं अपने से स्थापित भगवान् के लिए सेवक आदि सब कुछ दान किया ॥ 1

उस अग्रयायी ने सब कुछ दान करनेवाले भविष्यम्भावी कम्बुज–राजाओं से अपने धर्ममार्ग के प्रतिपालन की बार–बार याचना की ॥ 2

यश के स्थायी शरीरवाले धर्म के लिए सब कुछ त्याग करनेवाले उच्चों में जो उच्च हैं, उन आप बड़े लोगों को जानता हूँ तथा उन्हें भी जानता हूँ जो आप बड़े लोगों में छिपकर देवताओं को दान किये गये धन की इच्छा करते हैं ॥ 3

ये देवस्व का हरण करनेवाले शासकों के सामने प्रायः छिपकर रहते हैं। ऐसी स्थिति में देवताओं के रूप में छिपकर अमृत चुरानेवाले राहु की तरह वे तथा बड़े लोगों के रूप में उनके साथ रहकर (उनके बीच रहकर) देवस्व हरण करनेवालों से इस अच्छे युग में भी देवस्व की रक्षा करें ॥ 4

प्राचीन काल में जैसे राहु आदि प्रमुख राक्षसों को (मारकर) जीतकर भगवान् विष्णु ने देवताओं तथा अमृत की रक्षा की थी, उसी प्रकार आप भी देवस्व चुरानेवाले चोरों को मारकर देवताओं तथा देवताओं के धन की रक्षा

करें ।। 5

राजा लोग धर्म-रक्षणार्थ युद्ध में मृत्यु की चाहना करते हैं– यह सत्य सबों को मालूम है । इस रक्षण-कार्य में मृत्यु निश्चित है, यह जानकर भी राजा लोग इन चोरों को विशेष रूप से दण्ड दें क्योंकि धर्म के लिए प्राप्त मरण को सज्जनों ने प्रशस्त माना है तथा त्यागी लोग ऐसे मरण की ही चाहना करते हैं ।। 6

इस पवित्र निवेदन के अनुरूप ही कुमार तथा मन्त्रीप्रमुखों से धर्म की रक्षा की जाये तथा आपलोगों में यह भार है कि विद्वानों पर ही राज्य के शासन तथा धर्म के परिपालन का भार दिया जाये ।। 7

Temple No. I - Text (B)

श्री सिद्धि स्वस्ति जय।

815 शकाब्द में आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को मीन राशि में अर्द्धचन्द्र के सिंह में बुध को, वृष लग्न में शुक्र के, कर्क में सूर्य के, धनु राशि में गुरु के तथा तुला राशि में शनि के साथ मंगल के स्थित होने पर राजा श्रीयशोवर्मन ने सर्वसुलक्षणोपेत तथा अपने से बनाये हुए भगवान् गौरीपति की प्रतिमा स्थापित की ।। 1

जो लोग इस प्रतिमा के अलंकार का हरण करते हैं, वे राजाओं से दण्ड्य हैं तथा परलोक में यमराज द्वारा भी दण्ड्य हैं । परन्तु जो इनका संरक्षण करते हैं वे भगवान् शिव के पास शिवलोक को जाते हैं ।। 2
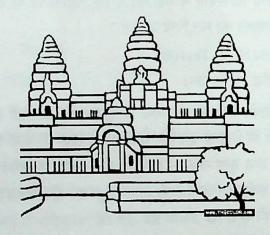
Temple No. II

श्री सिद्धि स्वस्ति जय ।

811 शकाब्द में जिन्होंने राज्य प्राप्त किया है, वे राजाओं में श्रेष्ठ श्रीयशोवर्मन ने अपने स्थापित भवानी की सेवा में थे नौकर आदि दान किया ।। 1

Temple No. III

श्री सिद्धि स्वस्ति जय ।

वे राजाओं में चन्द्रमा के समान अद्वितीय महाराज यशोवर्मन, जिन्होंने 811 शकाब्द में राज्य प्राप्त किया है, अपने द्वारा स्थापित इन महादेव जी की सेवा में भूमि, बागीचा तथा नौकर आदि सब कुछ दान किया ।। 1

Temple No. IV

श्री सिद्धि स्वस्ति जय ।

वे राजाओं के भी राजा, श्रीयशोवर्मनजिन्होंने 811 शकाब्द में राज्य प्राप्त किया है, उन्होंने स्थापित देवी के लिए सेवक आदि सब कुछ दान किया ।। 1

49

प्रसत तकेयो अभिलेख
Prasat Takeo Inscription

प्रसत तकेयो नामक मन्दिर के चहारदीवारी के भीतर यह अभिलेख पाया गया है । अंगकोरथोम के निकट यह मन्दिर है । अभिलेख में उत्तरी भारतीय वर्णमाला का प्रयोग हुआ है ।

इस अभिलेख में उस परिवार की चर्चा है जो अभिलेख-संख्या 50 में वर्णित है । मालूम पड़ता है कि उस समय के कम्बोडिया में महिलाओं के उत्तराधिकार का प्रचलन था ।

इस अभिलेख में पद्यों की संख्या 30 है ।

फिनौट ने इसका सम्पादन किया है ।[1]

नमोऽस्तु मन्मथजिते.............................।
............ष्टेत ताम्रतालतृतीयाक्ष्यनलार्च्चिष ।। 1

1. *BEFEO*, Vol. XXV, p.297

आसीद....................वङ्शसमुद्भवा ।

पिङ्खङ् ग्रामवती................................॥ 2

तत्सुताः ख्यात..............................।

ज्येष्ठः प्रणवशर्व्वः ....आष्टयी ॥ 3

कृष्णपालस्य मद्य (धात्री)............।

.......(केशव) भदस्य भवानी कुलमा (वनी) ॥ 4

.......................रशालिनः ।

तेऽभवन् भूतये............................॥ 5

(कम्बुज) लक्ष्म्याख्या प्राणाख्या प्राण........।

....॥ 6

ह्यङ्चन्द्राख्या भवत् साध्वी प(त्नी तस्य)...।

........(सं)पत्तिं मग्रान्त उद्धारयन् ॥ 7

.........(सुषुवे साध्वीं सुतामेकां) प्रभावतीं ।

तस्मात् केशवभट्टाख्यात्............वेत्तिसः ॥ 8

वभूवानम्रभू(पाल) मौलिमालितशास(नः) ।

(राजा श्री) जयवर्म्मेति जयश्रीशालितद्युतिः ॥ 9

चतुर्भुजाचलोर्व्वी (धृ)च्चतुर्भुज इवापरः ।

चतुर्विद्यास्वधी ती यश्चतुर्वक्र इवावभौ ॥ 10

कृष्णपालो महेन्द्रारिमथनाख्याम वाप्तवान् ।

विप्रः केशवभट्टाख्यस् स च राजपुरोहितः ॥ 11

दधत् प्रजवशर्व्वस् स नृपेन्द्रादिविक्रमम् ।

नामभोगसुतं प्राप्त पंचा वर्ण्णेण्वधीशताम् ॥ 12

शिवात्मा शयन स्थान मन्दिराधिपतिर्वरः ।

राज्ञे निवेद्य सभ्रातापालयत् संततेः पुरम् ॥ 13

पूर्व्वे पिंस्वम्भू वस् सीमा त्रिकष्टामरभूरभूत् ।

त्रैलोक्यनाथो याम्ये(न) कन्या क्रमश्च पश्चिमे ॥ 14

......स्तामुत्तर सीमा सीत्तत्राच्र्या श्रौधरस्य ता(म्) ।

अवर्द्धयत्स नृपाभिदत्तदासादिभिः पुनः ॥ 15

वननेत्रक्षितेस् सीमा पूर्व्वेणेयं कङ्तिङ्महो ।

दक्षिणेन शरक्रमः स्तुग्वो नद्यपि पश्चिमे ॥ 16
उत्तरे ध्रुवसीमासीत् (तारा) यू भूम्यविधश्चसः ।
स्वयम्भूरभवत्पूर्व्वे दक्षिणे जय................॥ 17
........हतिवन सिन्धुश्च सीमा पश्चिमतोऽभवत् ।
(वे)ग्रिङ् सीमोत्तरेणासीद् गोलकाङ्कित सन्निधिः ॥ 18
स्थलीक्षोणीन्नरपतिन्ते प्रणम्य यथाचिरे ।
................मान्तां भुवमिह माप्य ग्रामं प्ररक्ति... ॥ 19
पूर्व्वतो व्येक् नदी सीमा तस्या याम्येन पार्त्तवोङ् ।
ब्लेङ् वोच् नदी तु वारुण्यामुचरतोऽभवद्भदा ॥ 20
तत्र ते शाम्भवं लिङ्गं महिषासुरमथिनीम् ।
विधिना स्थापयामासुरम्भोध्यम्बोधि पर्व्वतैः ॥ 21
आविलक्ष्मां स सन्तोष्य (वेद) प्रियं महीभृतम् ।
श्रीमहेन्द्रारिमथनस् स्यालैर्भूपमचायत ॥ 22
.........ग्राहक निक्षेप स्नाणं(?) सीमास्त पूर्व्वतः ।
कृता गाढ़ नदी याम्ये........पश्चिमेऽभवत् ॥ 23
सिद्धकाध्वाभवत्सोप्य वधिरुत्तरतः कृतः ।
.......त्वा धनानि ते तासु भूषु ग्रामान् प्रयक्रिरे ॥ 24
स्थापितेऽष्वाविलग्रामे..............न्देषु पञ्चसु ।
प्रत्येकं षोड़शप्रस्थधृतान्येवार्प्पितानि.......... ॥ 25
श्वेताक्षतञ्च गणितं पञ्चरवरिकया कृतम् ।
कल्पितं प्रतिवर्षं तद्भक्त्या भद्रेश्वरेश्वरे ॥ 26
..........रूपछन्मङ्गलै.............. ।
.............श्रीयशोवर्म्मनामधृक्......... ॥ 27
...................................तः ।
देवी पूर्व्वापदा सा तु..............॥ 28
......................प्रिया तस्यालं.......मनस्विनः ।
.................................निर्म्मितम् ॥ 29
बलाध्यक्षस् सालंनामा स्थलीग्रामे चबुद्धिमान् ।
(बाणविध्वष्टमिश्) शैवं लिङ्गंभवमतिष्ठिपत् ॥ 30

अर्थ–

कामदेव के जीतनेवाले शिव को नमस्कार। ताँबे के समान लाल तीसरी आँख की आग की ज्योति से ।। 1

था........कुल में उत्पन्न थी। पिंख ग्रामवाली ।। 2

उसके बेटे ख्याव...........। ज्येष्ठ प्रणव शर्व.....आष्टयी ।। 3

कृष्ण पाल की कहा (धाय)। केशव भट्ट की भवानी पार्वती कुलभा(वनी) ।। 4

..........शोभनेवाले का।...........वे हुए ऐश्वर्य के लिए........।। 5

कम्बुज लक्ष्मी नाम की.........प्राग नाम की........प्राण...........।। 6

ह्यङ् चन्द्रा नाम की हुई पतिव्रता प(त्नी उसकी)।

...........सम्पत्ति को आगे अन्त उद्धार करता हुआ ।। 7

.........प्रभावती नाम की एक बेटी को जन्म दिया। उससे केशव भट्ट नामक से ....जानता है वह ।। 8

आनम्र राजाओं के मस्तक पर माला के समान शासन करनेवाला राजा श्री जयवर्मन नामक हुआ जो विनय रूपी लक्ष्मी से शोभित प्रकाशवाला था ।। 9

जो चतुर्भुज विष्णु द्वारा अचल पृथिवी को धारण करनेवाला दूसरे चतुर्भुज विष्णु के समान था। चार विद्याओं का पढ़नेवाला चतुर्मुख ब्रह्मा के समान शोभित था ।। 10

कृष्णपाल जो महेन्द्र का शत्रु था उसका मथनेवाला नाम पाया था केशवभट्ट नाम का राज्य पुरोहित वह था ।। 11

ओंकार के साथ शिव को धारण करता हुआ नृपेन्द्र के पराक्रम को नाम भोग पुत्र को प्राप्त करनेवाला पञ्चावर्णों में अधिकता को प्राप्त हुआ था ।। 12

शिव की आत्मावाला 'शयन स्थान' मन्दिर का श्रेष्ठ अधिपति राजा से निवेदन करके भाई सहित सन्तति के पुर को पाला था ।। 13

पूर्व में पिं स्वम् पृथिवी की सीमा त्रिकष्ट अमर पृथिवी हुई दक्षिण में

त्रैलोक्यनाथ पश्चिम में कन्या क्रमशः था ।। 14

.......स्ता........उत्तर सीमा थी, वहाँ श्रीधर विष्णु की पूजा होती थी । राजा द्वारा दिये गये दास आदि ने पुनः उसे बढ़ाया था ।। 15

वन नेत्र पृथिवी की सीमा पूर्व से यह कं ति पृथिवी थी.......दक्षिण से शर क्रम पश्चिम में स्तुग्व नदी थी ।। 16

उत्तर में ध्रुव सीमा थी, भूमि की अवधि सीमा तारा थी । पूर्व में स्वयम्भू, दक्षिण में जय......।। 17

हतिवन और सिन्धु सीमा पश्चिम हुई । वे ग्रिङ् सीमा उत्तर से थी जो गोलक से चिह्नित नजदीक में थी ।। 18

अकृत्रिम स्थल, क्षोणी पृथिवी को, राजा को वे प्रणाम कर जैसे बहुत काल में ...मान्तां..सीमान्त पृथिवी को यहाँ नापकर, ग्राम को........।। 19

पूर्व से व्येक नदी की सीमा उसकी दक्षिणी सीमा पार्तवोङ् पश्चिम में ब्लेङ्वोच नदी उत्तर से सीमा हुई..........।। 20

वहाँ उनने शिवलिंग की स्थापना की थी और महिषासुरमर्दिनी भगवती की मूर्ति स्थापना की थी विधिपूर्वक समुद्र और पर्वतों से युक्त स्थल पर स्थापना की गयी ।। 21

आविलक्ष्मी को उसने सन्तुष्ट करके वेदप्रिय राजा को सन्तुष्ट करके श्री महेन्द्र शत्रु के मथनेवाले राजा ने श्यालों से राजा की थी ।। 22

.........ग्राहक निक्षेप स्नान सीमा का अस्त पूर्व से, दक्षिण में गाढ़ नदी सीमा की........पश्चिम में हुई ।। 23

सिद्धक रास्ता हुआ वह भी सीमा उत्तर से की गयी । .....त्वा, धनों को उनने उन भूमि में ग्राम से प्रकृष्ट रूप से सीमा की गयी ।। 24

अविल ग्राम में स्थापितों में..........न्देषु.....पाँचों में प्रत्येक को सोलह प्रस्थ घी अर्पित हुए ।। 25

गिने हुए उजले अक्षत- न टूटे हुए चावल, पाँच खारी अर्पित किये गये । उन देवी-देवताओं की भक्ति से भद्रेश्वर के ईश्वर के विषय में अर्पित हुए ।। 26

..........रूप के हरण करनेवाले.......मंगलों से......श्री यशोवर्मन नामधारी........।। 27

...........त- से............देवी जिनने पहले आपत्ति डाली थी वे.....।। 28

मनस्वी........................निर्मित हुआ ।। 29

साल नाम का सैनिकों का अध्यक्ष स्थली ग्राम में और बुद्धिमान वाम गति से ८१५ शाके में शिवलिंग............नया स्थापित किया गया ।। 30

50

नोम प्रह विहार के खड़े पत्थर का अभिलेख

Phnom Prah Vihar Stele Inscription

यह स्थान म्लू प्री प्रान्त में डांगरेक पर्वत की चोटियों में से एक पर बसा हुआ है । यह अभिलेख उत्तरी भारतीय लिपि में है तथा कम्बोडिया में इसके प्रयोग का अन्तिम उदाहरण प्रस्तुत करता है । इसमें उस परिवार की चर्चा है (माना जाता है कि उस परिवार का कुछ सम्बन्ध जयवर्मन द्वितीय से है) जो भिन्न-भिन्न राजाओं से धार्मिक कार्यों के लिए धार्मिक उपकरण या दान प्राप्त करते थे । वंश-परम्परा केशव भट्ट तथा उनकी लड़की प्रभावती से शुरू होती है । कम्बुज लक्ष्मी जिसे प्राणा भी कहा जाता है इस परिवार का एक सदस्य था । यह परिवार दो शताब्दियों तक चर्चा में रहा ।

इस अभिलेख में कुल 51 पद्य हैं ।

बार्थ ने इस अभिलेख का सम्पादन किया है ।[1]

VV. 1-4 are identical with VV. 7-10 of RCM No. 71

तस्य कम्बुजलक्ष्मीस् सा प्राणाख्याप्यनुजा सती ।
देवी बभूव धरणीश्रियौ लक्ष्मीपतेरिव ॥ 5
योऽसौ विष्णु वलाख्योपि लक्ष्मीन्द्राख्यामवाप्तवान् ।
एकवित्ताधिपत्ये स युयुजे जयवर्म्मणा ॥ 6
नासाख्यस्तस्य भृत्योऽभूद्भूक्त्या विश्वस्त सन्मतिः ।
धृति रत्नाकरो धीरो भद्रो भद्र इवापरः ॥ 7
ततश् श्रीनृपेन्द्रादिविजयाख्यामवाप्तवान् ।
(योन) रपश्रीहरणे वीरोऽभूद वाहिनीपतिः ॥ 8
अपूर्व्वां पृथिवीमध्यां नरेन्द्रदान्ता(ं) महीयसीम् ।
आख्यायमार्य्यास्य जघतो ह्यङ्चन्द्राख्या प्रियाभवत् ॥ 9
पवित्राख्या च सा पत्नी विन्द्रुर्द्धस्य महाधियः ।
प्रभावती प्रिया हृघा हृषीकेशद्विजन्मनः ॥ 10

VV. 11-14 are identical with VV. 11-14 of RCM No. 71
VV. 15-16 are identical with VV. 25-26 of RCM No. 71

महारथारुणस्य क्ष्मांवनाख्यां वैष्णवीयुताम् ।
शून्यां सशिवलिङ्गा प्रागापुस्ते भूपशासनात् ॥ 17
चेतना पुरकं पूर्व्वे दक्षिणे मूषिक स्थला ।
लापङ् पश्चिमतस्तस्या ला(ं)पङ् सीमोत्तरे भुवः ॥ 18
देव्या प्राणाख्याया भ्रामा लक्ष्मीन्द्राख्येन तौ सुरौ ।
दत्तदासादिपूजाभिर्य्यत्नादुन्मीलितौ पुनः ॥ 19
भवालयभुवं मान्यन्ते पुरस्कृत्य शासनम् ।
भूभुनो वल्लभा भक्त्या तेमिरे धर्म्मबुद्धयः ॥ 20
नदी पूर्व्वेऽवधिस्तस्या याम्ये राजेश्वरस्तथा ।
पश्चिमेऽभूद्भवपुरं सौम्ये देवातिदवेकः ॥ 21
देवी कम्बुजलक्ष्मीस् सा साध्वी स्त्री धर्म्मवर्त्तिनी ।

1. *ISC*, p. 525

श्रीधर्म्मवर्धनं पुत्र सुषुवे धर्म्मवर्धनम् ॥ 22
ह्यङ्चन्द्राख्या स्म सा सूतेः परमार्थशिवात्मजम् ।
सरुद्राणीमुमां सामवेदं पोड्इति चात्मजम् ॥ 23
प्रभावतीति सा सोमसोम्माकृति रति प्रभा ।
अध्यापकाख्यं सुषुवे सुतं शास्त्रविदां वरम् ॥ 24

....

....त्रिपुरद्विषः ॥ 25
......................शक्त्या शक्तिभृतां वरम् ।
................असूत देव्युमाख्याप्युमासमा ॥ 26
..............या पोङ्सा लक्ष्मीरिव वपुश्श्रिया ।
पुरुषोत्तमस्य पत्नी भूपबन्धोर्म्महात्मनः ॥ 27
दधदध्यापकाख्यस् स नाम राजेन्द्रपण्डितम् ।
रुद्राश्रमे भूमिभुजा नियुक्तोऽध्यापकः कृती ॥ 28
परमार्थशिवो भूयो वल्लभस्तस्य भूपतेः ।
पृथिवीन्द्रोपकल्पाख्यां श्रीमतीं प्रथितामधात् ॥ 29
सा पोङ्असूत गोविन्दं माधवीं कमलामिव ।
सुताञ्च भान् इत्यपरां पुरुषोत्तमतस्........ ॥ 30
राम मह प्रिया सूत माधवी शिवशक्ति(तः) ।
पञ इत्याख्याम् अव् इत्याख्याञ्चानाख्याङ् गरुड़न्त(था) ॥ 31
भान् इत्याख्या अव् साध्वी विदुषोऽभूद्वि(भावसोः) ।
नाम्नाविभावसोस् साक्षान्मूर्त्तस्येव वि(भावसोः) ॥ 32
राजेन्द्रपण्डिताख्यस् स लेभे भूपात् षदीभु(वम्) ।
राजहोत्रा शिखाशान्तिनाम्ना स्यालेन स(ं)युतः ॥ 33
पूर्व्वे तटाकपादोऽस्या भूमेस् सीमास्ति दक्षि(णे) ।
कुटीतटाक कश् शक्तदेवक्ष्मा पश्चिमेऽवधिः ॥ 34
उत्तरे गंधसारक्ष्मा ताभ्यां तस्यां कृतं पु(नः) ।
स्थापित ज्यामवत्स्वर्णलिङ्गन् त्रिव्योम मूर्त्तिभि(ः) ॥ 35
राजेन्द्र पण्डित सुतो नागपालोऽतिकोविदः ।
भागिनेयश् शिखाशान्तुश् चंकाक्ष्मामाप भूपतेः ॥ 36

प्राच्यां सुरधृटन्तस्यास् समोङ् सीमास्ति दक्षिणे ।
पश्चिमे लोहकारक्ष्मा नगरीमार्ग्ग उत्तरे ॥ 37
टण 38 पे पससपहपइसमण
..........स............सून्नष्ट महात्मनः ।
हतति(मिरोणा) शीति ब्रह्मविव्रभवज्ञक(:) ॥ 39
सावित्री पञ्चगव्याख्या ब्रौनाम्नी माधवी तथा ।
तेषान्धर्म्म प्रवृत्तीनान्द्यम्र्म्यास् सन्ततयोऽभवन् ॥ 40
बलाध्यक्षस् सालं नामा स्थलीग्रामे चबुद्धिमान् ।
वाणविध्वष्टामिश् शैवं लिङ्ग भवमतिष्ठिपत् ॥ 41
शिवशक्तिस् स(च) आचार्य्यश् शिवशक्तिविभागवित् ।
शिवशक्त्येक वस्(ति) श् शैवा (चा)र्य्याधिपोऽभवत् ॥ 42
नीर(ज)श्चेत(स्)ा यस्य नीरजासन सन्मतेः ।
नीरजस्येव पादस्य नीरजो रजसा जगत् ॥ 43
विद्वान्........यो वाग्मी विद्याधु(त्य)भिलाषि(णः) ।
(वाचा) द्रविणवाक् सोमैस् सम्यांश्चके.....यस् सदा ॥ 44
संसारे पि निरालोके दुर्ग्गेण स्खलित(:) क्वचित् ।
दिङ्वर्ग्गजाल सक्तोपि यश् शमैकरतिर्युधि ॥ 45
यशोभिर्द्दीपयन्नाशाः क्रतुज्वलनसर्प्पणे ।
धूमैस् सतिभिराश्चक्रे यो योगी युगपत् सदा ॥ 46
अधर्म्मे यो जड़ो धर्मे पटीयानभवद्रगुणी ।
पङ्गु कुवर्त्मसु व्यक्तं शीघ्रगामी सुवर्त्मसु ॥ 47
धन्यान्येतानि सर्व्वाणि सार्व्वस् सन्तान तारणात् ।
यत्नात् स पालयामास भूपभक्त्यनुभावतः ॥ 48
शिवशक्तयनुभावेन शिवशक्ती विवर्द्धिते ।
शिवशक्ति मुने र्व्वन्धुशिवायास्तां शिवात्मनः ॥ 49
वर्य्याः कीर्त्त्यांगरीयस्यास् सन्ताना ये सदाशाः ।
सन्तानपुण्यपालास्तान् पान्तु पद्मालयादयः ॥ 50
यथा ब्रह्मादिवशकृच्छिवशक्तेश् शिवाढयता ।
हृत्सत्कारुण्यवशकृच्छिववशक्तिं मुनेस्तथा ॥ 51

अर्थ–

VV. 1-4 are identical with VV. 7-10 of RCM No. 71

वह उसकी कम्बुज की लक्ष्मी प्राणा नाम की अनुगामिनी पतिव्रता-सी देवी हुई पृथिवी और लक्ष्मी– दोनों ही लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु की सी हुईं ।। 5

जो वह विष्णुबल नामवाला भी लक्ष्मीन्द्र नाम पा सका था, वह जयवर्मन द्वारा एक धन के आधिपत्य पर नियुक्त हुआ था ।। 6

नासा नामक उसका नौकर था जो भक्ति से विश्वासी और अच्छी बुद्धि वाला था । धैर्यरूप रत्न की खान, कल्याणकारी दूसरे भद्र के समान हुआ ।। 7

उसके बाद श्री नृपेन्द्र है आदि में जिसके अर्थात् श्री नृपेन्द्र विजय नाम जिसने पाया था, जो राजा की लक्ष्मी के हरण करने में वीर सेनापति था ।। 8

अपूर्व विलक्षण ऐसा पृथिवी मध्यवाला, राजाओं को दमन करनेवाला, अतिशय महान् नाम पास का, आर्य का ह्यङ चन्द्र यह नाम प्रिय हुआ ।। 9

पवित्रा नामवाली वह पत्नी महाबुद्धिमान विन्द्वर्ध की और प्रभावती प्यारी सुन्दरी हृषीकेश ब्राह्मण की स्त्री थी ।। 10

VV. 11-14 are identical with VV. 11-14 of RCM No. 71 and MKS No. 49

VV. 15-16 are identical with VV. 25-26 of RCM No. 71 and MKS No. 49

महारथ अरुण की पृथिवी नामवाली वैष्णवी से युक्ता शून्या को शिवलिंग सहित पहले राजा के शासन से उसको पाया था ।। 17

उसके पूर्व में चेतना पुरक, दक्षिण में मूषिक स्थला, पशिचम में लोपङ्, उत्तर में लोपङ् पृथ्वी की सीमाएँ थीं।।18

देवी प्राणा नामवाली के भाई के द्वारा जो भाई लक्ष्मीन्द्र नामक था उससे वे दोनों देव हुए दास आदि पूजाओं से यत्न से फिर उन्मीलित आँख खोलनेवाले हुए थे ।। 19

शिव के मन्दिर की पृथिवी को जो मान्य थी वे शासन के द्वारा पुरस्कार करके राजा के प्रिय भक्त धर्म बुद्धिवालों ने प्राप्त की थी ।। 20

उसके पूर्व में नदी सीमा थी तथा दक्षिण में राजेश्वर, पश्चिम में उद्धवपुर, उत्तर देवातिदेवक– ये सीमाएँ थीं ।। 21

वह देवी कम्बुज की लक्ष्मी पतिव्रता, धर्म से बरतनेवाली थी, उसने श्री धर्मवर्द्धन, जो धर्म को बढ़ानेवाला था ऐसे पुत्र को जिसका नाम श्री धर्मवर्द्धन पड़ा, जन्म दिया था ।। 22

ह्यङ्चन्द्र नामवाली उसने परमार्थ शिव के पुत्र को गणेश के, रुद्राणी सहित उमा देवी को सामवेद को पेटङ्– इस नामवाले पुत्र को जन्म दिया ।। 23

प्रभावती इस नामवाली वह चन्द्र के समान सुन्दर आकृति से युक्त अतिशय प्रभावशाली थी । शास्त्रों को जाननेवालों में श्रेष्ठ पुत्र को जिसका नाम अध्यापक था उसे जन्म दिया ।। 24

.............त्रिपुर नामक राक्षस के शत्रु को– शिव को ।। 25

.......शक्ति से शक्ति बलों में श्रेष्ठ को......जन्म दिया देवी उमा को जो उमा के समान थी भी ।। 26

......जो पोङ् नामवाली है वह लक्ष्मी के समान शरीर की शोभावाली है । महात्मा भूपबन्धु पुरुषोत्तम की पत्नी है ।। 27

अध्यापक नामवाला वह राजेन्द्र पण्डित को रुद्राश्रम में राजा के द्वारा नियुक्त प्रयत्नशील अध्यापक हुआ ।। 28

फिर उस राजा का प्रिय परमार्थ शिव पृथिवीन्द्रोपकल्पा नामक प्रसिद्ध श्रीमती को धारण कर सका था ।। 29

उस पोङ् ने गोविन्द को जन्म दिया और लक्ष्मी के समान माधवी नामक पुत्री और दूसरी पुत्री भान् नामवाली को पुरुषोत्तम से जन्म दिया था ।। 30

रामभद्र की प्रिया ने शिव की शक्ति से पञ नामवाली अच नामवाली चाना नामवाली तथा गरुड़ को उत्पन्न किया था ।। 31

विभावसु नामक विद्वान् की प्यारी साध्वी भान् नामवाली नाम से विभाव सो: जो साक्षात् सूर्य का मूर्तरूप–सा लगता था, जन्म दिया ।। 32

उस राजेन्द्र पण्डित ने राजा से दी मुख को राजा के हवन करनेवाले के

द्वारा शिखा शान्ति नामक साले से युक्त हो प्राप्त किया था ।। 33

इस भूमि के पूर्व में तटाक पाद सीमा का दक्षिण में कुटी तटाकक: पश्चिम में शक्तदेवक्ष्मा सीमा है ।। 34

उत्तर में गन्धसारक्ष्मा सीमा उन दोनों के द्वारा उसमें पुनः स्थापित किया गया था । स्वर्णलिंग को त्रिव्योम मूर्तियों से स्थापित किया गया था ।। 35

राजेन्द्र पण्डित का पुत्र नागपाल जो अतिशय विद्वान् है, शिखा शान्ति की बहन का पुत्र था राजा से चंकाक्ष्मा प्राप्त की थी ।। 36

उसके पूर्व में सुरधृट सीमा दक्षिण में सम्रोङ् सीमा है, पश्चिम में लोहका रक्ष्मा सीमा है और उत्तर में नगरी मार्ग सीमा है ।। 37

..........वह..........पुत्र नष्ट हुआ जिसका ऐसे महात्मा का हतति मिरोणाशी इस नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानी प्रभवज्ञ था ।। 39

सावित्री पञ्चगवी नाम की पुत्री को जन्म दे सकी, माधवी ने कौ नाम की पुत्री को जन्म दिया था । उन धर्मात्माओं की धर्मात्मा सन्तानें हुईं ।। 40

बुद्धिमान साल नामक सेना का अध्यक्ष सेनापति स्थली ग्राम में हुआ जिसने 815 शाके में नये शिवलिंग को स्थापित किया ।। 41

वह शिव की शक्ति से आचार्य हुआ और शिव की शक्ति के विभाग का ज्ञाता हुआ और एक शिव की शक्ति के वासवाला होकर शैवों के आचार्यों का अधिप हुआ ।। 42

जिसके चित्त से कमल हुआ, ब्रह्मा के समान अच्छी बुद्धिवाले के कमल के समान चरणों वाले की धूल से कमल रूप जगत् हुआ ।। 43

जो विद्वान् जो थोड़ा और सार बोलनेवाला, विद्या की ज्योति की इच्छावाले की वाणी से धन-रूप वाणीवाला, चन्द्रों से हमेशा जिसने सब सम्य किया ।। 44

आलोक-रहित संसार में कहीं किले से स्खलित होकर शत्रु-समूह के जाल में फँसे रहने पर भी जो लड़ाई में एकमात्र शान्ति से रति करनेवाला था ।। 45

अपने यशों से दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ जो योगी एक बार हमेशा यज्ञाग्नि उड़ने में धुओं से अन्धकार सहित दिशाओं को किया था ।। 46

पापकर्म में जो मूर्ख-सा हुआ, धर्म-कर्म में जो अतिशय चतुर हुआ, खराब रास्तों पर जो लंगड़ा-सा स्पष्ट रूप से प्रतीत हुआ और जो अच्छे मार्गों पर शीघ्रगामी था ।। 47

ये सभी धन्य हैं सन्तान के तारने से शिवभक्त हुआ, यत्न से उसने पालन किया राजा की भक्ति के अनुभाव से ।। 48

शिव की शक्ति के अनुभाव से दो शिव-शक्तियाँ विशेष रूप से बढ़ी हुई, शिवशक्ति नामक मुनि के बन्धु शिवात्मा के कल्याण के लिए हो ।। 49

श्रेष्ठ लोग कीर्ति में अतिशय विशाल हों, जो सन्तान अच्छे आशयवाले हैं, सन्तान के पुण्य के पालनेवाले हैं उन्हें पालें, पद्मालय आदि देवलोग ।। 50

जैसे ब्रह्मा आदि के वश करनेवाले शिव शक्ति की कल्याणाधिकता है, वैसे ही दयापूर्ण हृदय का वश करनेवाले शिव शक्ति मुनि की कल्याणाधिकता थी ।। 51

51

नोम देई मन्दिर अभिलेख
Phnom Dei Temple Inscription

अंगकोर के दस मील उत्तर यह एक छोटी पहाड़ी है । यह अभिलेख संस्कृत और ख्मेर– दोनों भाषाओं में है। संस्कृत में लिखे अभिलेख के भाग से यशोवर्मन के द्वारा मन्दिर के संचालन की सीमा मालूम होती है । हर और अच्युत को यह मन्दिर समर्पित है, जो एकसाथ एक शरीर में मिले हुए हैं और जिन्हें हरिहर कहा जाता है । पुरन्दर या नोम देई नामक पर्वत को यह अधिकार में लिये हुए है ।

इस अभिलेख में केवल दो पद्य हैं ।

यह अभिलेख जॉर्ज सोदेस द्वारा सम्पादित किया गया था ।[1]

द्वि.....पुत्रहरौ यौ च संवृत्तौ भेदमागतौ ।
जगतश् शङ्करौ वन्दे नित्यञ्चैतौ हरीश्वरौ ।। 1

---

1. *BEFEO*, Vol. XVII, p.13

श्री हराच्युतयोस् सीमा श्रीयशोवर्म्मणा कृता ।
श्री हराच्युतयोर्दत्ता श्री पुरन्दर पर्व्वते ॥ 2

अर्थ–

दो – पुत्र, दोनों ईश्वर जो एक ही हैं तथा स्वयं ही भेद प्राप्त किये हैं, ऐसे दोनों जगत् के ताप को शमन करने वाले हरि तथा शिव की नित्य वन्दना करता हूँ ॥ 1

इन दोनों श्री हरि तथा श्री शिव के परकोटे (प्राकार) का निर्माण श्रीमान् यशोवर्मन ने श्री पुरन्दर पर्वत पर किया तथा श्री शिव एवं श्री विष्णु की सेवा में समर्पित किया ॥ 2

52

नोम संडक के खड़े पत्थर का अभिलेख

Phnom Sandak Stele Inscription

यह स्थान नोम संडक नामक छोटी पहाड़ी पर स्थित है । यह कोहकेर से पन्द्रह मील उत्तर एवं डांगरेक पर्वत से 30 मील दक्षिण में स्थित है । यह एक जर्जर मन्दिर है । अभिलेख खड़े पत्थर के दोनों ओर उत्कीर्ण है ।

इस अभिलेख में त्रिमूर्ति देवी, गौरी और सरस्वती की प्रार्थना की गयी है तथा यशोवर्मन का गुणगान किया गया है । इसमें सोमशिव के शिष्य (जिसका नाम नहीं दिया गया है) के धार्मिक आधार को अंकित किया गया है । यह अज्ञात व्यक्ति राजा श्री इन्द्रवर्मेश्वर के राज्य में प्राध्यापक था । राजा यशोवर्मन ने एक राज्य शिव को प्रदत्त किया जिसका नाम अपने पिता के नाम पर रखा और शिवपुर नामक पर्वत पर एक महाविद्यालय की स्थापना की जहाँ उच्च शिक्षा की व्यवस्था

थी । यही प्राध्यापक, जो शिव की आराधना करता था, अवनति की ओर गिरता गया । उसके द्वारा एक लिंग की स्थापना की गयी जिसका नाम भद्रेश्वर था ।

आयमोनियर का विचार है कि इन्द्रवर्मेश्वर लोले के क्षीण हो रहे मन्दिर में देखा जा सकता है और सोमशिव के विषय में उनका विचार है कि वह अवश्य ही शिवसोम है जो इन्द्रवर्मन का गुरु था ।[1] खड़े पत्थर की किनारी पर अभिलिखित ख्मेर-अभिलेख में इनके दान का विस्तृत वर्णन है । आर०सी० मजूमदार के अनुसार खड़े पत्थर पर अभिलिखित यह अभिलेख इसकी स्थापना के बहुत बाद खोदे गये और यह यशोवर्मन के जीवनकाल का नहीं हो सकता ।[2]

खड़े पत्थर के दूसरे पृष्ठ पर त्रिमूर्ति और देवी अर्पणा की आराधना करते हुए जयवर्मन द्वितीय का गुणगान किया गया है । अभिलेख के आठवें पद्य से यह विदित होता है कि कम्बुज के राजपरिवार के अन्त के बाद जयवर्मन द्वितीय राजा हुआ और उसने महेन्द्रवर्मन पर अपनी राजधानी स्थापित की । इसमें पाणिनि के एक सूत्र का भी उल्लेख किया गया है ।

इस अभिलेख में 39 पद्य हैं । भाग (अ) में 26 तथा भाग (ब) में 13 हैं जो सभी स्पष्ट एवं शुद्ध हैं । बार्थ ने इस अभिलेख का सम्पादन किया है ।[3] सर्वप्रथम आयमोनियर ने हमारा ध्यान इस अभिलेख की ओर आकृष्ट किया है ।[4]

भाग (अ)

श्री सिद्धि स्वास्ति जय ।
नमश् शिवाय यत्पादनखज्योत्स्ना विराजते ।
नमेन्द्रमूर्द्धमन्दार मधुसेकादिवोद्गता ॥ 1
रुद्रन्नमत यस्याङ्घ्रि सरोजोदरजं रजः ।
धूमायते सुरशिरोरुहरत्नाग्निकोटिषु ॥ 2
जितन्धूर्ज्जटिना यस्य जटा विस्फुरितारुणाः ।
दहनाशङ्कया शङ्के गङ्गा विशदुमारुषः ॥ 3

---

1. Quoted by R.C. Majumdar in *IK*, p.151
2. *Ibid*
3. *ISC*, p.392
4. *Ibid*, p.545

जितं महावराहेण विषाणौ यस्य राजतः ।
लोकत्रय पद व्यापि यश सामङ्कुराविव ॥ 4
विष्णुन्नमामि यस्याङ्गमा सा पाणौ विभामि भूः ।
द्विटछीकच ग्रहामोदालग्नेव भ्रमराङ्गना ॥ 5
एकोर्ण्णवसरः पद्मे ब्रह्मवक्त्राणि पान्तु वः ।
पद्मानीवोद्गतान्यब्जे मधुकैटभ मृत्यवे ॥ 6
नमन्तु ब्रह्मणः पादपल्लवौ सततारूणौ ।
सुस्थित्यायासनाम्भोजबोधं कर्त्तुमिंव स्वयम् ॥ 7
वन्दे गौरी ह्रिया यस्यास सञ्चुकोच मुखाम्बुजम् ।
नवसङ्गे हरस्येन्दु चन्द्रिको चुम्बनादिव ॥ 8
नमो देव्यै सरस्वत्यै यस्याश् शब्दमयो गुणः ।
अधिदेवतया वायां श्नूयतेऽप्यन्य कीर्त्तने ॥ 9
राजेन्दुश् श्रीयशोवर्म्मा भवत्पूर्णणतरोदयः ।
यशः क्षीरार्ण्णवोत्पूर संप्लावितजगत्रयः ॥ 10
नोपैति नाशमद्यापि कीर्तिर्यस्यातिभास्वती ।
गायि दिव्याङ्गनावक्त्रपीयूष लुठनादिव ॥ 11
नूनन्धात्रामृतेनैव सौन्दर्य्यं यस्य निर्म्मितम् ।
यदक्ष्णा वाष्पमार्ग्गेण विवेश जगतां मनः ॥ 12
न स्ववृद्धिः प्रजावृद्धिं-विना यस्मै स्म रोचते ।
किं स्वयं वर्द्धते चन्द्रस् सिन्धुवेलामवर्द्धयन् ॥ 13
समरे वैरिरक्ताक्तो यस्य खड्गो व्यराजत ।
चरणात्मक्तकाङ्क्षार्द्रः पन्था इव जयश्रियः ॥ 14
अदीर्घनिद्रमागन्तुकामा यं स्वकुलैम् स्थिता ।
कौस्तुभालालनाल्लक्ष्मीश् शङ्के केशववक्षसि ॥ 15
यमसामान्य सौन्दर्य्यं सृष्ट्वा स्रष्टान्वयिन्तयत् ।
उपमानमयञ्चेत्स्याद् उपमेयोऽपरः कथम् ॥ 16
श्रीमान् स्वभावलावय्यो गम्भीरो रत्नसन्निधिः ।
यस् समुद्रसमानोऽपि संपूर्ण्णो न परोदयैः ॥ 17
तस्य राज्ये मुनिवरो मुनिवन्धाङिघ्र पङ्कजः ।

नाम्ना सोमशिवश् शास्त्ररत्न रत्नाकरोऽभवत् ॥ 18
भगवच्छिदवसोमस्य शिष्यो यो धरणीभुजा ।
श्रीन्द्रवर्म्मेश्वर क्षेत्रेऽध्यापकत्वे न्ययुत्यत ॥ 19
शिवशास्त्रार्ण्णवं बुद्धिमन्दरेण विमथ्य यः ।
स्वयं ज्ञानामृतम् पीत्वादययान्यान पाययत् ॥ 20
गलन्नधुर साकार शब्दशास्त्र मनोहरे ।
सरस्वती मधुकरी यस्यास्याब्जे रताभवत् ॥ 21
देवता गुरु विप्रार्य्यातिथि पूजाविधौ कृती ।
गरीयसामपि गुरूर्य्यो जघन्य इवाभवत् ॥ 22
स श्राचार्य्य इदं लिङ्गमैशं शिवपुरे गिरौ ।
क्षीणपूजञ्चिरत्वेन पूजावृद्धया व्यवर्द्धयत् ॥ 23
स चात्र सम्यग्विधिना श्रीभद्रेश्वरमाख्यया ।
शैलेन्दु मूर्त्तिशाकाब्दे शिवलिङ्गमतिष्ठिपत् ॥ 24
धनान्येतानि दत्तानि केदारारामकिङ्करान् ।
तेनाभ्यां मिश्रभोगाभ्यां पान्ति ये यान्तु ते दिवम् ॥ 25
लभन्तां यातनान्ते तु नरकेष्वाभुवः स्थितेः ।
अवीचिरैरवाधेषु मर्द्दयन्ति हरन्ति ये ॥ 26

भाग (ब)

श्रीसिद्धि स्वास्ति जय ।
नमोऽस्तु शम्भवे यस्य निष्कलस्यापि चिन्तने ।
भास्वन्मूर्त्तौ सकलता दर्श्शेन्दोरिव दृश्यते ॥ 1
विभाति धूर्ज्जटिजटा गलद् गङ्गाम्बु विन्दुभिः ।
तद्धारमौक्ति कैश्चन्द्र कोटिच्छेदच्युतैरिव ॥ 2
जयति त्रिपुरध्वंसी यस्याङ्घ्रिनखभा बभुः ।
आलढ़ि भारनागेन्द्र रोषवह्नयद्भा इव ॥ 3
नमोऽस्तु हरये यस्य पदः पद्माङ्कशायिनः ।
भाभिस्तन्नाभिरवदद् भिन्न नीलाब्ज सन्निभा ॥ 4
स्वयम्भूः पातु वो यस्य भास्वत्-वर्ण्णनिमंवपुः ।
आभाति संभवम्भोजकञ्जल्क स्पर्शनादिव ॥ 5

वन्देऽपर्ण्णां पदोर्य्यस्याः गुल्फौ लीनौ विराजतः ।
आसन्न तरसर्प्पाभनू पुरातिभयादिव ॥ 6
आसीच्छ्री जयवर्म्मेति भूपधीनामधीश्वरः ।
भूपाल मौलिरत्नांशुवर्द्धिताङ्घ्रिनरवद्युतिः ॥ 7
योऽभूत्प्रजोदयायैव राजवंशेऽतिनिर्म्मले ।
अपङ्कजमद्यपद्मे पद्मोद्भव इवोदितः ॥ 8
रामा यं वीक्ष्य जल्पन्ति कामाभिमिषलोचन ।
न हि नो मनसोऽपैति सुभगोऽयं क्षणादिति ॥ 9
यस्य रूपोपमेयत्वं न स्यात् स्यादपि विघ्नगम् ।
मुखच्छायानुरूपो हि चन्द्रमा राहुणावृतः ॥ 10
नातिभारा भुजे यस्य धराम्भोनिधिमेखला ।
यथा ज्याघातकिणता भूभृतोऽपि व्यनामयत् ॥ 11
सिंङ्हमूद्धर्न्यासनं यस्य राजमूर्द्धनि शासनम् ।
महेन्द्राद्रेःपुरी मूर्द्धिन तथापि न तु विस्मयः ॥ 12
सद्धर्म्मनिरतेर्य्यस्य पदं राज्येन चक्तिरे ।
उपसर्ग्गाः क्रियायोगे ते प्राग् धातोर्म्मुनेरिव ॥ 13

भाग (अ)

अर्थ–

उस शिव को नमस्कार है जिसके चरण के नखों की ज्योति शोभती है । हिमालय के शिखर पर मन्दार के फूल के मधु के सिंचन से मानो उत्पन्न हो ।। 1

उस रुद्र को नमन करो जिसके चरणकमल से उत्पन्न धूल धुएँ के समान आचरण करता है- देवों के केश-रूप रत्न के समान करोड़ों अग्नियों में ।। 2

जीता गया है शिव के द्वारा जिसकी जटा से विशेष रूप से फड़कती हुई लाल आग की शंका से, लेखक शंका करता है कि गंगा उमा के क्रोध के भय से जटा में छिप गयी ।। 3

महावराह से जीते गये जिसके दो सींग शोभते हैं तीनों लोकों के पदों में व्याप्त होनेवाले यश के अंकुरों के समान ।। 4

विष्णु को नमन करता हूँ जिसके अंग की छवि वह हाथ में विशेष शोभा पाती पृथ्वी है । मानो भ्रमर की स्त्री शत्रु के केश पकड़ने के हर्ष से लगी हो ।। 5

जब एकारा विद्या उस सरोवर के कमल में ब्रह्मा के सभी मुख तुमको पालें जो कमलों के समान कमल में उत्पन्न हैं मधु और कैटभ राक्षस के मारने के लिए ।। 6

ब्रह्मा के सर्वदा लाल चरण पल्लवों को लोग नमन करें, सुन्दर स्थिति के परिश्रम-रूप कमल का बोध करने के लिए मानों स्वयं तत्पर हों ।। 7

उस गौरी की वन्दना करता हूँ जिसकी लज्जा से मुखरूप कमल संकुचित शिव के नवीन संगम में मुखरूप चन्द्र की चन्द्रिका के चुम्बन से मानो लजाकर मुँद गया हो ।। 8

श्री देवी सरस्वती जी को नमस्कार है जिनका शब्दमय गुण वाणी की अधिष्ठात्री देवी के द्वारा भी अन्य के कीर्तन में भी सुना जाता है ।। 9

राजाओं में चन्द्रमा के समान श्री यशोवर्मन अतिशयपूर्ण उदयवाला हुआ जिसके यशरूप दुग्ध समुद्र से पूरी पटी हुई त्रिलोकी हो ।। 10

जिसकी कीर्ति अति सोहनेवाली आज भी नष्ट नहीं हुई है गानेवाले देव-स्त्री के मुख के अमृत पर लोटने के समान आज भी है ही ।। 11

निश्चित ही ब्रह्मा ने अमृत से ही जिसके सौन्दर्य का निर्माण किया, जिसकी आँख से आँसू के रास्ते से लोगों का मानस पैठ गया हो ऐसा लगता है ।। 12

जिसे प्रजा की वृद्धि के बिना अपनी वृद्धि नहीं रुचती थी, समुद्र की वृद्धि के बिना क्या चन्द्रमा स्वयं ही बढ़ता है ।। 13

जिसकी तलवार वैरी के रक्त से लथपथ होकर विशेष सोहती थी, चरण के अलता भीगे रास्ते पर जैसे विजयरूपी लक्ष्मी शोभती थी ।। 14

लेखक शंका करता है कि लक्ष्मी कम सोनेवाले के घर पर अपने कुलवालों के साथ स्थित रहती है अतएव श्री विष्णु भगवान् के हृदय पर समुद्र से

ही निकली कौस्तुभमणि लक्ष्मी का सहोदर भाई है, उसके प्यार करने के कारण ही तो लक्ष्मी विष्णु के हृदय पर विराजती है । यह श्लोक स्वकुलवालों के साथ वहाँ रहती है लक्ष्मी जहाँ उसके सहोदर का प्यार होता है ।। 15

जिस असाधारण सुन्दरता को पैदा करके ब्रह्मा पछताने लगे कि यदि उपमा नहीं उपमा न होने पर दूसरा बचा कौन जो उपमेय हो सके कैसे हो सके ? उपमानमय विश्व में उपमेय दूसरा मिले कौन ? अद्वितीय सौन्दर्य सृष्टि श्री यशोवर्मन हैं– यह तात्पर्य है ।। 16

श्रीलक्ष्मीवान् शोभावान् मनोहर गम्भीर रत्न के निकट या रत्नों की शोभा अच्छी निधि जो समुद्र के समान होकर भी दूसरों के उदयों से सम्यक् रूप से पूर्ण नहीं है ।। 17

उसके राज्य में मुनियों में श्रेष्ठ मुनियों द्वारा प्रणाम करने योग्य चरणकमलों वाला नामतः सोमशिव थे जो शास्त्ररूप रत्नों का समुद्र हुआ ।। 18

भगवान् शिवसोम के शिष्य जो राजा द्वारा श्रीन्द्रवर्मेश्वर क्षेत्र में शिक्षकत्व में नियुक्त हुए ।। 19

जिसने बुद्धिरूपी मन्दार पहाड़ द्वारा विशेष रूप से मथ करके शिव शास्त्ररूप समुद्र को स्वयं ज्ञानरूप अमृत पीकर कृपा करके दूसरों को भी पिलाया ।। 20

जिसके गिरते हुए मधु (पुष्प रस, मधु=मद्य, मधु=शहद, मधु नामक एक राक्षस है) यहाँ मधु=मधुर गिरते मधु रसवाले आकार के व्याकरण जो मनोहर हैं, उस मुख कमल में मधुकरी=भ्रमरी के समान सरस्वती रत हुई ।। 21

देवता, गुरु, ब्राह्मण, श्रेष्ठ, अतिथि की पूजा की विधि में प्रयत्नवान् अतिशय गुरुओं के भी गुरु जो हत्यारे के समान हुआ ।। 22

उस आचार्य ने शिवपुर में पहाड़ पर जघन्य शिवपुर पर्वत पर ईश के लिंग को कम पूजावाले को बहुत कालों तक जारी रहनेवाली पूजाओं की वृद्धि के माध्यम से विशेष रूप से बढ़ाया ।। 23

उसने यहाँ सम्यक् प्रकार से नामतः श्रीभद्रेश्वर शिवलिंग की प्रतिष्ठा

811 शक संवत् में की ।। 24

धन इतने दिये खेत, वाटिका, नौकर-चाकर, टहलू वगैरह बहुत बहुत इन मित्र और भोगों से जो रक्षा करता है, वे स्वर्ग जाएँ ।। 25

जो इन दिये पदार्थों का हरण करता है, वे जबतक पृथिवी टिकी रहेगी, तबतक अवीचि नरक, रौरव नरक आदि नरकों में यातनाएँ पाते हैं ।। 26

भाग (ब)

उस शिव को नमस्कार है जिसके कालहीन रूप के भी चिन्तन में प्रकाशित मूर्ति में कलाओं सहित रूप देखा जाता है जैसे सूर्य और चन्द्र के संगम के समय का दृश्य हो ऐसा ही लगता है ।। 1

शिव की जटा सोहती है गिरते हुए गंगा जल की बूँदों से उसकी धारारूपी मुक्ताओं से करोड़ों छेदोंवाले चन्द्रमा से चूते अमृत के समान लगती है ।। 2

त्रिपुर नामक राक्षस को नाश करनेवाले की जय हो, जिस शिव त्रिपुरारि के पैरों के नखों की छवि शोभती है । पृथिवी के भार को धारण करनेवाले गजराज के क्रोधरूपी आग की छवि के समान शोभती है ।। 3

उस विष्णु को नमस्कार है जिनके चरण लक्ष्मी की गोद में सोनेवाले हैं । प्रकाशों से उनकी नाभि बोली– गहरे नीलकमल के समान है । जो नाभि गहरी है, उससे नीले कमल की उत्पत्ति है उसी के समान ।। 4

तुम लोगों की रक्षा ब्रह्मा जी करें जिनका शरीर चमकते हुए सोने के प्रकाश के समान है । शरीर शोभता है मानो पैदा हुए कमल के केसर का स्पर्श उसने किया हो ।। 5

देवी पार्वती को नमस्कार है जिसने शिव के लिए तपस्या करते समय पर्ण तक खाना छोड़ दिया था, अतएव अपर्णा कहलाती हैं, जिसके चरणों के घुटी डूबी हुई है और शोभती है । गुल्फ की हड्डी मांस से डूबी रहे तो उसकी प्रशंसा होती है । अतिशय समीप रहनेवाले साँप की आभावाले नूपुर के भय से मानो डरकर डूबी हो ।। 6

सभी राजाओं का अधीश्वर श्री जयवर्मन इस नाम से ख्यात् था, जिसके पैरों के नखों का प्रकाश राजाओं के सिरों के रत्नों की किरणों से बढ़ा हुआ है ।। 7

अतिशय स्वच्छ राजकुल में जो उत्पन्न हुआ था प्रजा के उदय के लिए ही पंक न रहने पर भी महाकमल में ब्रह्मा के समान जो उदित हुआ था ।। 8

स्त्रियाँ जिसे देखकर कहती हैं यथेच्छ रूप से टकटकी लगाकर देखती हुई यह कहती हैं कि हमारे मन से यह सुन्दर दूर नहीं जा पाता– यह एक क्षण भी मन से नहीं हटता है ऐसा अतिशय सुन्दर दीख पड़ रहा है ।। 9

जिसके रूप की उपमा नहीं हो सकती, यदि हो भी सकी तो विघ्न से भरी हुई उपमा हो सकेगी क्योंकि चन्द्रमा राजा के मुख की छाया से मिलता-जुलता है पर वह तो राहु से घिरा हुआ है और मुखरूप चन्द्र तो वैसा नहीं है ।। 10

जिसकी बाँह पर पृथिवी जिसकी डॅड़कस सात समुद्र है अतिशय भारवाली नहीं है । जैसे धनुष की डोरी की चोट से काला धब्बा है उसने राजा को भी विशेष नाम बढ़ाया था ।। 11

जिसका आसन सिंह के मस्तक पर है और जिसका शासन राजाओं के मस्तक पर है । महेन्द्र नामक पहाड़ के मस्तक पर जिसकी पुरी है तो भी कोई अचरज नहीं है ।। 12

अच्छे सनातन धर्म में निरत जिसका चरण राज्य से सत्कार पानेवाला है । क्रिया में जब उपसर्ग जोड़ते हैं तो क्रिया से पूर्व ही उसका स्थान मुनि के समान रहता है ।। 13

53

फिमनक अभिलेख

Phimanaka Inscription

अंगकोर थोम में एक भवन है जिसे फिमनक कहते हैं । अंशतः संस्कृत और अंशतः ख्मेर-भाषा में यह अभिलेख इस भवन के द्वार पर उत्कीर्ण है । अभिलेख के प्रारम्भ में त्रिमूर्ति की प्रार्थना के साथ-साथ माधव (कृष्ण) जिसे त्रैलोक्यनाथ कहा गया है, की स्थापना का वर्णन है । यशोवर्मन के मन्त्री ज्योतिष एवं नक्षत्र विद्या में निपुण था । ख्मेर मूल लेख में दासों की एक सूची भी है । इस अभिलेख में कुल 12 पद्य हैं ।[1]

सिद्धि स्वास्ति पान्तु विष्णु चरणाम्बुजरेणवः ।
पितामह महेन्द्रादि शिरोरत्नाङ्शुचारवः ।। 1
वन्देऽचिन्त्यगतिं विष्णु(ं) प्रकृत्या यस्यवक्षसि ।
स्थिता लक्ष्मीर्भुजे भूमिर्नाभिपद्मे प्यजस् सदा ।। 2
ब्रह्माव्जगन्ध सन्तान.................विग्रहाम् ।

1. *ISC*, p.345

वन्दे गोविन्ददृद्धारि................नीं श्रियम् ॥ 3

आसीदशेषभूपाल मस्तकधृतशासनः ।

राजेन्द्रश् श्रीयशोवर्म्मा महेन्द्रोपेन्द्रविक्रमः ॥ 4

युद्धमायुधयोधादि मदान्धोभेन्द्र भीषणम् ।

प्राप्य यस्य प्रतापेऽर्क्को दृष्टश्चन्द्रो यशस्यपि ॥ 5

यस्याङ्गसङ्गि सौन्दर्य्यविसरैर्ह्लादिता रतिः ।

स्वभर्तृवधवैधव्यञ्जहौ सा वञ्चनाभिव ॥ 6

यशोयस्यं मनोहारि शारदेन्दुकरादपि ।

क्रीड़ायां शयने याने गीयतेऽधापि देहिभिः ॥ 7

तस्य राजाधिराजस्य होराशास्त्राब्धिपारगः ।

यश् श्रीसत्याश्रयाख्योऽभून्मन्त्री मन्त्रीव बज्रिणः ॥ 8

करङ्कङ्कलशं पात्रन्तारं रैरशनाभापि ।

सितच्छत्रस्मितां लक्ष्मीं यो लेभे स्वामिभक्तितः ॥ 9

तेनैव स्थापितो भक्तया भगवग्निह माधवः ।

स श्रीत्रैलोक्यनाथारण्यो यश् श्रियाभाति भूतले ॥ 10

सुवर्ण्णं रजतङ् क्षेत्रमारामङ् किङ्करंस्त्रियम् ।

कल्पितं यो हरेन्मोहादितो यातु स दुर्ग्गतिम् ॥ 11

द्वित्रयष्टाब्दे विद्यातुर्म्मद्युसितदिवसे याति कन्यादिमिंदौ

मेषं शीतेतराङ्शौ सबुधरविसुते मेषमिन्द्रारिपूज्ये ।

तौलं क्षोणीतनूजे वृषभमरगुरौ द्वन्द्वराशिञ्च लग्ने

स श्रीत्रैलोक्यनाथम् स्थित इह भगवान् वो विभूतिं विधेयात् ॥ 12

अर्थ–

पितामह (ब्रह्मा) महेन्द्र आदि के शिरोरत्न की पवित्र किरणें तथा विष्णु चरणकमल की धूलि सिद्धि, कल्याण दें तथा रक्षा करें ॥ 1

स्वभावतः जिनके वक्षस्थल पर लक्ष्मी, भुजाओं में भूमि तथा नाभि-कमल में ब्रह्मा भी स्थित हैं, उन भगवान् विष्णु नमस्कार है ॥ 2

इन्द्र और विष्णु के समान पराक्रमी राजाओं का राजा श्री यशोवर्मन था जिसके शासन को समस्त भूपाल मस्तक पर धारण करते थे ॥ 4

युद्ध, शस्त्र, योद्धा आदि मदान्ध हाथी जो सबमें श्रेष्ठ है, उसके समान भयंकर जिसके प्रताप को पाकर उसके यश में सूर्य और चन्द्रमा भी दृष्टिगत होता है ।। 5

जिसने अपने पति के वध से प्राप्त वैधव्य को वंचना की तरह छोड़ दिया है वह कामदेव की पत्नी रति राजा यशोवर्मन के अंगों की सुन्दरता के प्रसार से प्रसन्न होती है ।। 6

शरदकालीन चन्द्रमा की किरणों से भी जिसका यश मनोहारी है (उस राजा के) यश का गुणगान आज भी लोग खेलते, सोते और चलते करते हैं ।। 7

उस राजाधिराज (यशोवर्मन) का मन्त्री जो ज्योतिषशास्त्ररूपी समुद्र में पारंगत था, वह इन्द्र के मन्त्री के समान श्री सत्याश्रय नाम से प्रसिद्ध था ।। 8

जिसने श्री सत्याश्रय स्वामी की भक्ति से करंक कलश, पात्र तथा धनरूपी करधनी को तथा श्वेत छत्र के समान प्रसन्न लक्ष्मी को पाया था ।। 9

उसने भक्ति से भगवान् माधव की यहाँ स्थापना की जो त्रैलोक्यनाथ के नाम से प्रसिद्ध होकर पृथिवी पर लक्ष्मी से शोभित होते हैं ।। 10

दान में दिये स्वर्ण, चाँदी, खेत, फुलवारी, नौकर का जो हरण करे, वह मोह मोहित होकर दुर्गति को प्राप्त करे ।। 11

जिस त्रैलोक्यनाथ की स्थापना उसने (राजा ने) शक संवत् 832 में चैत्र शुक्ल पक्ष में, कन्या में चन्द्रमा के जाने पर, मेष में सूर्य के जाने पर, बुध और शनी से युक्त इन्द्र के शत्रु राक्षसों से पूज्य तथा तुला में मंगल के जाने पर, बृहस्पति के वृष में जाने पर, लग्न में द्वन्द्व राशि के जाने पर किया था, वे भगवान् श्री त्रैलोक्यनाथ तुम लोगों के लिए ऐश्वर्य का विधान करें ।। 12

54

बयांग अभिलेख
Bayang Inscription

इस अभिलेख में भगवान् शिव की प्रार्थना तथा यशोवर्मन के गुणगान का वर्णन है । अभिलेख में आमराभावा नामक एक ऋषि का वर्णन है जिसे राजा द्वारा कई प्रकार के विरुद प्राप्त थे । यह ऋषि एक महान् विद्वान् था । यह उत्तरी इन्द्राश्रम के प्रधान के पद पर नियुक्त किया गया था जो मन्दिर का प्रधान था । इन्होंने ईश्वर के लिए दक्षिणी घाटी में एक शाला का निर्माण करवाया । जब एक तालाब खुदवाया जा रहा था तो उसे सोने का एक ताबा मिला जिससे उसने उत्सव मनाने के लिए शिव की एक मूर्ति बनवायी, जिसे 'उत्सव' मूर्ति कहा गया है ।

इस अभिलेख में केवल 18 पद्य हैं जो केवल पद्य संख्या तीन को छोड़कर सभी शुद्ध हैं । इस अभिलेख का सम्पादन जॉर्ज सोदेस ने किया है ।[1]

---

1. *IC*, p.256

श्रियं वो धूर्ज्जटिः पातु यस्याङ्घ्रेः भारयीडया ।
वधिरीकृत सर्व्वाशान्दशास्यो व्यकृत स्वरान् ॥ 1
कम्बुजाधिती राज्ञां मूर्द्धस्वाहितशासनः ।
श्रीन्द्रवर्म्मेति राजा यो दिक्षु ख्यातपराक्रमः ॥ 2
सेवाराज समाहारमौलिरत्नांशुर्गिमैः ।
रत्नसिंहासनं यस्य द्विगुणीकृतशोभनम् ॥ 3
एकैकाष्टशकाप्तराज्यश्रीः श्रीयशोनिधेः ।
श्रीयशोवर्म्मनामा सत्तिस्य पुत्रः प्रतापवान् ॥ 4
धर्म्मावियोगिकृत्यस्य राज्ये यस्य कृतं युगम् ।
परोक्षमप्यति प्रीत्या वर्तमानम् भूदिव ॥ 5
यतो निर्य्याय सत्कीर्त्तिर्भूयसी परितो दिशः ।
दूराद्धश्रमतप्तेव पस्पर्शाम्भो महोदधेः ॥ 6
तेन राज्ञा कृतज्ञत्वात् सम्पद्भिर्य्यो यतीश्वरः ।
सौवर्ण्णभस्म पात्राक्षमालाद्याभिः सुसत्कृतः ॥ 7
परार्द्ध्यमासनं पद्मदलकेसर पंक्तिमत् ।
यतीनामाद्यिपत्येन योऽध्यास्ते स्म नृपाज्ञया ॥ 8
शैवज्योतिष शब्दार्थवादि शास्त्रार्थ वेदिना ।
येनात्मान्तर्त्रिगूढ़ोपि योगेन ददृशे शिवे ॥ 9
श्रीन्द्रवर्म्मनियुक्तो य उत्तरेन्द्राश्रमाधियाः ।
तीयं विज्ञापयामास दुर्लभं भोग्यमाश्रये ॥ 10
इति विज्ञापितो येन श्रीन्द्रवर्म्मावनीश्वरः ।
तटाकं कारयामास नरैर्विषयावासिभिः ॥ 11
तटाके खन्यमाने यत् सौवर्ण्णगुरुमण्डलम् ।
पूर्व्वोपनिहितं भूमावुद्धतं खननीद्यरैः ॥ 12
येनेदं प्रतिमायै तच्छम्मोर्भवतु भूपते ।
राज्ञो विज्ञापितस्येति साधुवाच्यनुकूलता ॥ 13
शाम्भवी प्रतिमा येयं सौवर्ण्णी शिविकास्थिता ।
नीयतेऽद्यापि यस्तस्याः निमित्तमभवत् किल ॥ 14
श्रीयशोवर्म्मणा पश्चात् स्वाश्रमेऽधिकृतः पुनः ।

य आचार्य्याधिपत्येन लब्धवान् प्रवरासनम् ।। 15
यदयशो हारकह्लारनीहाराकृति कान्तिमत् ।
निष्कलङ्कं कलावन्तं कलङ्काङ्कमिवाहसत् ।। 16
प्राणि प्राण परित्राण प्रधान परिमाणतः ।
यो रागी वीतरागोपि शिवत्वैकत्ववेदितः ।। 17
स एवामर भावाख्यो यतीनां प्रवरो गुणैः ।
शालामकृत देवस्य दक्षिणोपत्यकातले ।। 18

अर्थ–

तुमलोगों की लक्ष्मी की रक्षा शिव करें जिनके पैर के भार की पीड़ा से सभी दिशाओं के बहरे होने पर रावण ने विकृत स्वरों का उच्चारण किया था ।। 1

कम्बुज का अधिपति सभी राजाओं पर शासन करनेवाला श्री इन्द्रवर्मन नाम का था जिसका पराक्रम सभी दिशाओं में प्रसिद्ध था ।। 2

सेवा करनेवाले राजाओं के समूह के मस्तक के रत्नों की किरणों के निकलने से जिसका सिंहासन रत्नजटित था दुगुना सोहता था ।। 3

811 शक में श्री यशोनिधि से राज्य पानेवाले के प्रतापी पुत्र श्री यशोवर्मन नाम के थे ।। 4

धर्म के अनुसार कार्य करनेवाले के राज्य में जिसने सत्ययुग ला दिया था अति प्रीति से परोक्ष को वर्तमान बना डाला था मानो कलि में सत्ययुग आ गया ।। 5

जहाँ से निकलकर अच्छी कीर्ति सभी दिशाओं में बार–बार प्रकाशित हुई थी दूर से प्रकाशित परिश्रम से तभी से समुद्र के जल को छू लिया था ।। 6

उस राजा के द्वारा कृतज्ञता के कारण सम्पत्तियों से जो संन्यासियों में श्रेष्ठ सुवर्ण के बने भस्म पात्र, रुद्राक्ष माला आदि से सुन्दर रीति से सत्कृत हुए ।। 7

अधिकाधिक मूल्यवान् आसन जिसमें कमल पत्र केसर की पंक्ति थी, संन्यासियों के स्वामित्व से राजा की आज्ञा से आसन पर बैठते थे ।। 8

शिव–संबंधी दर्शनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र के शब्दों के अर्थ लगाने में

वादी प्रतिपक्षियों से शास्त्रार्थ करनेवाले थे जिन्होंने आत्मा के अन्दर छिपे भाव को भी शिव में योग क्रिया द्वारा देखा था ।। 9

श्री इन्द्रवर्मन द्वारा नियुक्त हुए जो उत्तरवाले इन्द्राश्रम के स्वामी थे । उन्होंने आश्रम में दुर्लभ योग्य का विज्ञापन किया था ।। 10

यह विज्ञापन कर देने पर जिसके द्वारा श्री इन्द्रवर्मन राजा ने विषयी लोगों के द्वारा तड़ाग खुदवाने का काम किया था ।। 11

तड़ाग खोदते समय सुवर्ण का भारी समूह पहले से रखा हुआ पृथिवी से खोदने के हथियारों से निकला ।। 12

वे सभी सुवर्ण समूह शिवजी को दिया गया इस बात के विज्ञापन से अनुकूल धन्यवाद के भागी राजा हुए थे ।। 13

जो यह प्रतिमा शिव की है वह सुवर्ण की शिविका पर स्थित सुवर्ण से बनी है, वह आज भी जैसी-की-तैसी, उन्हीं के निमित्त मानी गयी थी ।। 14

पीछे श्री यशोवर्मन द्वारा फिर अपने आश्रम पर अधिकार किया गया था जो आचार्य के आधिपत्य से श्रेष्ठ आसन लोभ कर चुके थे।।15

जिनका यश हार माला के समान सफेद कमल के समान, बर्फ के समान सफेद था कलंकहीन यश कलंकवाले चन्द्र को मानो हँसने वाला था ।। 16

प्राणियों के प्राणों के सभी प्रकारों से रक्षण प्रधान परिमाण से करनेवाले जो रागी विरक्त होकर भी एक शिव ही है विश्व में दूसरा नहीं ऐसा समझनेवाला था ।। 17

संन्यासियों के श्रेष्ठ गुणों से युक्त जो ही अमरभाव नाम से विख्यात था दक्षिण घाटी के समीप सभी देवों को फतिंगों के समान आकृष्ट करनेवाले हुए थे ।। 18

55

अंगकोर थोम अभिलेख

Angkor Thom Inscription

गकोर थोम के दक्षिणी–पश्चिमी किनारे में बसे एक ऊँचे स्थान पर पत्थर के टुकड़े पर यह अभिलेख खुदा हुआ है । राजा इन्द्रवर्मन की प्रशंसा, उनके राजगद्दी पर बैठने की तिथि और उनकी धार्मिक नींव इस अभिलेख में वर्णित है । यशोवर्मन की प्रशंसा तथा उनके द्वारा की गयी नींवों का विवरण भी इसमें शामिल है । यह अभिलेख यशोधर तटाक की खुदाई की ओर इंगित करता है ।

इस अभिलेख में पद्यों की संख्या 14 है । पद्य–संख्या 3 के अतिरिक्त सभी अस्पष्ट हैं ।

इस अभिलेख का सम्पादन जॉर्ज सोदेस ने किया था ।[1]

1. *BEFEO*, Vol. XXV, p.304

... ...।

गुरुभार्गव वाल्मीकि .... ॥ 1

आसीदशेषभूाल ....तरो वरः ।

श्रीन्द्रवर्म्मेति मेदिन्याः पुरा नृपतिविक्रमः ॥ 2

नवरन्ध्राद्रिराज्योपि नीरन्ध्रो यो वसुन्धराम् ।

विद्धे स्थापितैर्द्दे(वै) र्विभ्रतीन् त्रिदिवश्रियम् ॥ 3

समरे समवीर्य्येण ....इह ।

विप्रा मानैर्वुद्या वाग्भि ......विनोदैतव्रताः ॥ 4

तस्य सूनुरनूनर्द्धि ....।

श्रीयशोवर्म्मदेवाख्यः ....॥ 5

व्यक्तं राजेन्द्रचन्द्रोपि चन्द्र ....।

प्रतापैः ....॥ 6

उद्युक्तं यं समुद्वीक्ष्य ....।

(अभ्यव) हरतीवेन्द्रः शरान् ....॥ 7

.....................यो नित्य(म्) रण...।

वृद्धक्षीणबलञ्चन्द्रम् ....यः ॥ 8

अङ्गेन(त्व)ङ्ग सौन्दर्य्यमैश्वर्य्य...यः ।

विरुद्धमपि विभ्रागो यो वभावविरोधिनाम् ॥ 9

सकलां यः कुला ....पुरः कृतयु...यम् ।

प्रदर्शयन् धर्म्मपरः ....प्रजापतिरभूत् परः ॥ 10

धरनी धरनीनाथं ......न्नधिमवाप्य यम् ।

धर्म्मकामार्थ सम्पूर्ण सप्रजा ....॥ 11

जगाम् निर्गमे यस्य ....।

ददौ दिक्पाल मौलि ....॥ 12

यशोधर तटाकाख्यं ....यः ।

यत्रन्यभूभुजां कीर्त्ति ....॥ 13

स्वर्गादागत्य गाङ्गोमां ....।

ब्रह्मविष्णवीश्वरादीनां ....॥ 14

अर्थ–

.....................................।

गुरु बृहस्पति भार्गव शुक्राचार्य, वाल्मीकि जी ।। 1

जो था, सभी राजाओं..........................अतिशय श्रेष्ठ ।

श्री इन्द्रवर्मन इस नाम से प्रसिद्ध पृथ्वी का पहले राजा के विक्रमवाला ।। 2

श्री इन्द्रवर्मन नाम से प्रसिद्ध, विक्रमशाली राजा जो पृथ्वी पूर्व दिशा में 799 शकाब्द में राज्य करते हुए भी, स्वर्गीय सौन्दर्य को धारण करने वाली देवमूर्तियों की स्थापना से पृथ्वी को निर्दोष बनाया ।। 3

युद्ध में समान बल वाले से ....यहाँ इस लोक में। सम्मानों से ब्राह्मण लोग, वाणियों से पण्डित लोग......... विनोदों से विषयों में रत रहने वाले (सन्तुष्ट हुए) ।। 4

उनके पुत्र बहुत धनवाले...। श्री यशोवर्मनदेव इस नाम से प्रसिद्ध ...।। 5

स्पष्ट रूप से सभी राजाओं के श्रेष्ठ चन्द्र के समान चन्द्र ...... प्रतापों से .. .... ।। 6

उद्योग में लगे जिनको भली-भाँति देखकर...। मानों इन्द्र बाणों का व्यवहार करते हों...।। 7

.........जो प्रतिदिन युद्ध ....। बढ़ने और घटनेवाले बलशाली चन्द्र को...... जो ।। 8

अंग से अंग के सौन्दर्य को, ऐश्वर्य ......जो । विरुद्ध धारण करनेवाले भी जो अविरोधियों के बीच सोहते थे ।। 9

सभी को जो कुला ...पुर= आगे सत्ययुग ...जिसको प्रदर्शित करते हुए धर्म में लीन ... दूसरे प्रजापति हुए थे ।। 10

जिस पृथिवीनाथ को पृथिवी ने पाकर ... पाकर ...जिसे । धर्म, काम, अर्थ से सम्पूर्ण प्रजा सहित ...।। 11

जिसके निकलने पर ... गया था... । दिया, दिशाओं के रक्षकों के मस्तक ......।। 12

यशोधर तड़ाग नाम से प्रसिद्ध को ... जो । जहाँ दूसरे राजाओं की कीर्ति ....।। 13

स्वर्ग से आकर के गंगा-संबंधी उमा को । ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि के ....।। 14

56

अंगकोर थोम अभिलेख
Angkor Thom Inscription

गकोर थोम के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में अवस्थित एक मन्दिर के पत्थर के एक टुकड़े पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है। इस अभिलेख में संस्कृत एवं ख्मेर– दोनों भाषाओं का प्रयोग किया गया है ।

संस्कृत के मूल लेख में विष्णु की मूर्ति की स्थापना तथा समरविक्रम नामक यशोवर्मन के मामा के द्वारा मन्दिर को दिये गये दानों का वर्णन है ।

इस अभिलेख में पाँच पद्य हैं । केवल पद्य-संख्या 1 ही स्पष्ट एवं शुद्ध है, शेष टूट जाने के कारण अपठनीय हैं ।[1]

विक्रमान्तं दधन्नाम् समरादिश्रियोज्जलम् ।

---
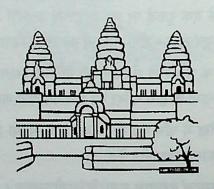
1. विस्तृत विवरण के लिए लेखक की पुस्तक *Studies in Sanskrit Inscriptions of Ancient Cambodia*, New Delhi, 1974, पृ. 100 देखें।

मातुलो यस्य भव्यश् श्रीयशोवर्म्ममहीपतेः ॥ 1

तेनेयं प्रतिमा विष्णोः प्रभविष्णोर्महर्द्धिना ।

.....ता स्थापिता शान्तयशश् शुद्धेन्दुमूर्त्तिना ॥ 2

.....जगतां नाथं तं ग्रावमहाह्रदस्थिते विष्णौ ।

.....तण्डुलमद्धढिकं तस्मै ॥ 3

....विष्णोर्व्वितीर्ण्णन्तेन यः...............।

....यथा तन्नो विनाशितम् ॥ 4

....न्तश्चिरविभवविभुत्वं भूतले लिप्समाना ।

...तेषु रिपुधनवा..........म् मा कुरुध्वंचिरेणा ॥ 5

अर्थ–

जिस श्री यशोवर्मन महाराज के प्रकाशमान यशवाले सुन्दर, समर विक्रम नामवाले मामा हैं ॥ 1

उस विपुल धनवाले पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान रूपवाले स्थिर यश ने ही प्रभु विष्णु की इस मूर्ति को स्थापित किया ॥ 2

57

वट थिपेदी अभिलेख
Vat Thipedi Inscription

सियम रियप ज़िले में अवस्थित वट थिपेदी नामक एक छोटे मन्दिर में इस अभिलेख का पता चला ।

इस अभिलेख के प्रारम्भ में शिव, विष्णु, ब्रह्मा तथा उमा की प्रार्थना के पश्चात् राजा यशोवर्मन तथा उनके दो पुत्रों, हर्षवर्मन प्रथम तथा ईशानवर्मन द्वितीय की प्रशस्ति है । इसमें विद्वान् ऋषि शिखा शिव और उनके दानों की चर्चा है । इस विशेष मन्दिर की बनावट तथा भद्रगिरि पर्वत पर भगवान् शिव के तीन लिंगों की स्थापना तथा यशोधर तटाक के निकट भी तीन लिंगों की स्थापना की चर्चा है ।

संस्कृत के मूल लेख में एक विशेष शैली की चर्चा है जो लम्बे-लम्बे मिश्रित अत्युक्ति तथा अनुप्रास का प्रयोग है । संस्कृत के अलंकारशास्त्री इसे गौड़ शैली का चिह्न मानते हैं ।

जॉर्ज सोदेस के विचारानुसार यह इस तथ्य को सिद्ध करता है कि इस अभिलेख के लेखक ने गौड़ देश में प्रशिक्षण प्राप्त किया था । यह इस बात का प्रमाण है कि भारत एवं कम्बोडिया के बीच सम्बन्ध कायम था ।

इस अभिलेख में कुल 19 पद्य हैं जो सभी शुद्ध हैं ।

जॉर्ज सोदेस[1] एवं आयमोनियर[2] के द्वारा इस अभिलेख का सम्पादन किया गया ।

नमोऽनङ्गाङ्गनिर्भङ्गसङ्गिने पि विरागिणे ।
अङ्गनापधनालिङ्गलीनार्द्धाङ्गाय शम्भवे ॥ 1
पातु वः पुण्डरीकाक्षवक्षो विक्षिप्तकौस्तुभम् ।
लक्ष्मीस्तनमुखाक्लिष्टकषण क्षामचान्दनम् ॥ 2
बोधध्वद्ध्वान्तसंरोधविनिर्धूत प्रजाधिये ।
ध्वान्तध्वद्वेदनादर्द्धिमेधसे वेधसे नमः ॥ 3
वन्दे देहार्द्धतानीतामुमां मदनविद्विषा ।
समक्षमदन प्लोषदोष प्रक्षालनादिव ॥ 4
सिद्धिं सरस्वतीसूतां या शुभ्रां विभ्रती तनुम् ।
उदिता पूर्व्वमन्यस्मिन्नपि देवे विवक्षिते ॥ 5
शशिशीतांशु मूर्त्तिश्रीदृतारिश्रीः कलाश्रयः ।
राजेन्द्रश् श्रीयशोवर्म्मा भासिताशो रूचाभवत् ॥ 6
तेजस्सौन्दर्य्यगाम्भीर्य्यधैर्य्याभिजृम्भितः ।
सूर्य्येन्दूदधि शौरीरास् सम्भूयेव वभूव यः ॥ 7
दानदाक्षिण्यचारित्र माधुर्य्यादि गुणैर्नयन् ।
वशी विश्वान्यपि वशं यस्तेजो न जहौनिजम् ॥ 8
श्रीहर्षवर्म्मा तनयस् सत्पदं प्राप्त शविना ।
तेजोनुरागनम्रेन्द्र भौलिलीढ़ाङ्घ्रि पङ्कजः ॥ 9
यस्याविखण्डदोर्द्दण्ड वीर्य्याग्र्गसितदिङ्मुखे ।
कान्ताकीर्त्तिरदृष्टान्यै रेमे भुवनमन्दिरे ॥ 10

1-2. लेखक की पुस्तक *Studies in Sanskrit Inscriptions of Ancient Cambodia*, New Delhi, 1974 का पृ० 101 देखें ।

तमन्वपि कनीयांसं सोदर्य्यन्तिग्मतेजसम् ।
श्रीशान्वर्म्माणमिता लक्ष्मीरर्क्कमिवोडुपम् ।। 11
त्याग श्रद्धाकलाकान्ति शौटीर्य्य प्रमुखाश्रये: ।
गुणानां समुदायोऽपि यो ध्येयः परमः पुमान् ।। 12
तेभ्यस् स्तुतापदानेभ्यो यो ऽर्हो ऽवाप महार्हगोम् ।
सस्वर्ण्णदोलारशनाकरङ्का तपः वारणाम् ।। 13
व्याख्यातानेक शास्त्रत्वात् सिद्धान्ताचार शासनात् ।
आचार्य्याणां य आचार्य्यो ग्रामणीर्य्योगिनामपि ।। 14
विशुद्धासांख्यतर्कोऽपि शब्दविद्यादिवाङ्मये ।
षट्तर्क्काभ्यासरागं यो न तत्याज कदा च न ।। 15
प्रज्ञा श्रद्धा क्षमा लज्जा करुणा सत्यवादिता ।
स्त्रीष्वासु नित्यसक्तोऽपि यो गुणाख्याशु संयमी ।। 16
शिखाशिवेन तेनास्मिन्नाचार्य्येनाफलार्थिना ।
द्विरामाष्टराके भक्तया कृतेयं देवतास्थितिः ।। 17
तेनापि लिङ्गत्रितयं शम्भोर्भद्रगिरौ गिरौ ।
स्थेयसे स्थितये स्थाणौ भक्तेस् स्थापितमुज्ज्वलम् ।। 18
यशोधरतटाकस्य दक्षिणेनापि सन्निधौ ।
तेनापि लिङ्गत्रितयं स्थापितं गुरुशासनात् ।। 19

अर्थ–

उन शिवजी को नमस्कार है जिन्होंने कामदेव के अंगों का नाश किया और फिर भी वे संगी होकर विरागी हैं । आधे अंग से श्रीगौरी को अपने साथ रखते हैं और शम्भु कहे जाते हैं ।। 1

तुम लोगों की रक्षा विष्णु जी का वक्षस्थल जहाँ कौस्तुभ मणि है । श्री लक्ष्मी जी के स्तनों के मुखों से घिसे जाने पर चन्दन लगा हुआ है ।। 2

श्री ब्रह्मा जी को नमस्कार है जो अन्धकार दूरकर बोध देते हैं, प्रजापति हैं । वेदों के स्वर के उच्चारण से धारणावाली बुद्धिवाले हैं ।। 3

कामदेव के शत्रु शिव द्वारा जिस उमा को अपनी देह का आधा स्थान दिया गया है उन श्री उमा जी को नमस्कार है मानों सामने कामदेव की हरकत रूप

दोष के धोने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया हो ऐसा मालूम पड़ता है ।। 4

श्वेतसिद्धि-रूपी सरस्वती को नमस्कार है । पहले दूसरे देव में भी बोलने की इच्छा से उग गयी ।। 5

श्री यशोवर्मन चन्द्र के शीतल किरण के समान मूर्तिवाला, शत्रु की लक्ष्मी और शोभा को लेनेवाला, कलाओं का आश्रय, राजाओं का स्वामी, सभी दिशाओं को प्रकाशित करनेवाला अपनी शोभा से सम्पन्न था ।। 6

जो तेज, सुन्दरता, गम्भीरता, धीरता से युक्त है; सूर्य, चन्द्र, समुद्र, शनि– सबके मिले-जुले तेजों से पैदा हुआ था ।। 7

दान, निपुणता, सच्चरित्रता, मधुरता आदि गुणों के साथ इन्द्रियों को वश में रखनेवाला, विश्व को वश में करनेवाला जिसने अपने तेज को नहीं त्यागा ।। 8

श्री हर्षवर्मन पुत्र ने इन्द्र की बाँह के समान अच्छा पद पाया, तेज, अनुराग, नम्रता से युक्त इन्द्र के मस्तक से स्पर्श किये गये जिसके पैरोंरूपी कमल ।। 9

जिसके पूर्ण दोनों बाँहें रूप दण्डों के बल से किवाड़ लगाने का काम सभी दिशाओं के मुखों में हुआ था । सुन्दर स्त्री के समान जिसकी कीर्ति समस्त विश्व में रमण करनेवाली थी ।। 10

उसके बाद छोटे भाई श्री ईशानवर्मन द्वारा लायी हुई लक्ष्मी सूर्य के समान चन्द्र के समान थे ।। 11

जो त्याग, श्रद्धा, कला, कान्ति, सौन्दर्य के मुख्य आश्रय थे । गुणों के समूह होने पर भी जो परम पुरुष के समान ध्यान करने योग्य हैं ।। 12

उनसे प्रशंसा किये जाने पर भी जो महान् पूजा के योग्य पदार्थों सुवर्ण का डोला, चँवर और छत्र आदि पाये थे ।। 13

अनेक शास्त्रों के ज्ञाता, सिद्धान्त और आचार के शासन से आचार्यों के भी आचार्य हुए योगियों के भी अग्रगण्य थे ।। 14

विशुद्ध सांख्य और तर्क ज्ञाता होकर भी व्याकरणादि शास्त्रों में छः प्रकार के दर्शनों, तर्कों के अभ्यास के प्रेम को कभी जिसने न त्याग किया

था ।। 15

बुद्धि, श्रद्धा, क्षमा, लज्जा, दया, सत्यवादिता स्त्रियों में शीघ्र नित्य सक्त होकर भी जो गुणों में संयमी थे ।। 16

उनके द्वारा फल न चाहनेवाले आचार्य के द्वारा 832 शक में भक्ति से देव-प्रतिष्ठा की गयी ।। 17

शिव के तीन लिंग स्थापित किये गये भद्रगिरि नामक पहाड़ पर अतिशय स्थिति के लिए तथा शिव में भक्ति उज्ज्वल हो इसके लिए ।। 18

यशोधर तड़ाग के दक्षिण की ओर निकट में गुरु के शासन से उनके द्वारा भी तीन लिंग स्थापित किये गये ।। 19

58

वट चक्रेत मन्दिर अभिलेख

Vat Chakret Temple Inscription

बा नोम के इलाके में यह अभिलेख पाया गया है। खड़े पत्थर के दोनों ओर संस्कृत तथा ख्मेर-भाषाओं में इस अभिलेख को उत्कीर्ण कराया गया है। यशोवर्मन के पुत्र हर्षवर्मन के द्वारा अद्रिव्याधपुरेश नामक शिव के मन्दिर को महिला दासों को दान देने की चर्चा इस अभिलेख में है।

इस अभिलेख में पद्यों की संख्या 4 है जिनमें पद्य-संख्या 2 अस्पष्ट है, शेष सभी स्पष्ट एवं शुद्ध हैं। बर्गेगने ने इसका सम्पादन किया है।[1]

1. *ISC*, p.551

(नम्) द्वो (न्) धूर्ज्जटेः रङ्ङ्घ्र पङ्कजस्य रजोलवः ।

नम्रासुरेन्द्रदेवेन्द्र मौलिरत्नाङ्शुदीपितम् ॥ 1

आसीद्राजाधिराजो यस्तेजोवन्दित ...... ।

भूभृतामुत्तमाङ्गेषु.......................पाद ॥ 2

नाम्ना श्रीहर्षवर्म्मा सश् श्रीयशोवर्म्मपुत्रकः ।

श्रियाभिनवया जुष्टश् श्रीनिवास इवावभौ ॥ 3

कम्बुजेन्द्राधिराजोऽसौ जगद्गीतगुणाम्बुधिः ।

अद्रिव्याधपुरेशेऽदात् षट् कान्ताः प्रतिपक्षम् ॥ 4

अर्थ–

वह श्री यशोवर्मन का पुत्र, अभिनव सम्पदा से युक्त भगवान् श्री निवास के समान ही हुआ ।। 3

437 शकाब्द में कम्बुज देश के सिंहासनारूढ़ होनेवाले एकच्छत्र शासक ने अद्रिव्याधपुरेश महाकाल शिव को छः सुन्दरियाँ प्रदान किया ।। 4

59

प्रसत थोम अभिलेख
Prasat Thom Inscription

ह केर में प्रसत थोम नाम से एक मन्दिर है । राजा जयवर्मन चतुर्थ के द्वारा त्रिभुवनेश्वर नामक भगवान् को दिए गये दान की चर्चा इस अभिलेख में है । इन्हीं देवता की कृपा से वे राजाओं के राजा बने । जयवर्मन के द्वारा अपनी राजधानी को कोह केर में ले जाने का भी वर्णन इस अभिलेख में है ।

इस अभिलेख में पद्यों की संख्या 3 है जो सभी नष्ट हो चुके हैं ।[1]

श्री सिद्धि स्वस्ति जय ।
योऽनादिरादिरखिलस्य चतुर्म्मुखादे
र्व्विस्ट - तनुरष्ट तनूस्तनोति ।

1. *ISC*, p.555; BEFEO, Vol. XXXIII, p.12

- -.-. -. -.- -

--. - स्त्रिभुवनेश्वर नाम धामे ॥ 1

शाकेन्द्रो हुतभुक् समुद्रवसवः पोष्यौष्टमाहःसितः

सूर्य्यः सैन्दव - -.-. -. -.- -।

...कलशं कविः समुदयो मानं दध्यात्क्कर्जः

कालाः कार्य्यकराः क्रमेण..---. -.- ॥ 2

कृत्वा साकमशेषभूपतिपतिं यं हेतुमात्रं हस्

सिद्धिं यः सदसि श्रिया- -.-. -. -

तेन श्रीजयवर्म्मणा नृपतिना विजयिना राज्यस्य

भक्त्या सर्व्वमदीयत त्रि- -.-. --.- ॥ 3

अर्थ–

जो सभी ब्रह्मा आदि देवताओं अनादि पुरुष और आदि पुरुष हैं ....शरीरवाले, आठ शरीरों को विस्तारित करते हैं.............त्रिभुवनेश्वर नाम से प्रसिद्ध धाम हैं ।। 1

जो 841 शाके में पौष शुक्ल पक्ष में, सूर्य, चन्द्र के साथ ....कलश को शुक्र के उदय मान को धारण कर शनि समय पर कार्य करने वाले नौकर क्रमशः.. ....।। 2

करके साथ-साथ, सभी राजाओं के राजा जिसको हेतुमात्र को, सभा में लक्ष्मी से सिद्धि को जो पाता है, उस श्री जयवर्मन राजा के द्वारा, विजयी के द्वारा, राज्य के आश्चर्यकारी श्रेष्ठभाग को भक्ति से सब कुछ दिये गये त्रि...........।। 3

60

प्रसत डैमरे अभिलेख
Prasat Damrei Inscription

यह स्थान कोह कोर में है । इस अभिलेख में राजा जयवर्मन की प्रशस्ति तथा उनके बड़े भाई राजेन्द्रवर्मन की धार्मिक योग्यता के लिए शिवलिंग की स्थापना की चर्चा हम पाते हैं ।

अभिलेख में पद्यों की कुल संख्या 20 है ।

इस अभिलेख का सम्पादन जॉर्ज सोदेस ने किया था ।[1]

1-4 are illegible.

यस्योज्ज्व ....-.... मपाय

महीभुजां वज्र -.... य-.... य ।

धनायत ....- पयं - तत्

---

1. *IC*, p.56

सुमण्डितक्र र् - शोपयञ्च ॥ 5
विभ्रद्धन् (उस् स्व) न्धृतसर्व्ववर्ण्णम्
उद्दष्टवद्धत्रवलार्द्दनो यः ।
उच्चैः पद् - ण्यकृतां वरिष्ठस्
साक्षात् सहस्त्राक्ष इवाबभासे ॥ 6
सृष्टयाम् त सत्व हिते प्रधाने
˘ - अयानामपकारके पि ।
यस्मिन्˘ सा (˙) ख्या विरजस्तमस्काः
केनापि षाड्गुण्ययुता गुणौधा (:) ॥ 7
सं (ब)र्द्धमानै˘˘ कर्म्म - - स्
संयोगवद्भिस् समवायकाले ।
द्रव्यस्य सर् ऐ˘˘ -˘ वैः प्राक्
प्रायेण यस्यानशनी बभूवे ॥ 8
हीनोप --˘˘ -----
सप्रत्यया यस्य ससाधुशब्दा ।
अङ्गोय - -˘˘ -----
प्रकाशयामास मुखे पदार्थान् ॥ 9
तेजो र - -˘˘ -----˘ -
रगे षु राज्ञां पटुकोटिपातैः ।
चूड़ामज्य - -˘˘ -----˘ - -
˘आदिपदिं सहसा रूषेव ॥ 10
त्रिशक्तिश - -˘˘ --˘ - -
- - यकस् संहृतकलकूटः ।
उपक्रमा -˘ -˘ - - - -
- - राद्यस्य नयाब्धिमन्थः ॥ 11
यत्र प्रय -˘˘ -˘ -
- - -˘ माद्यद्द्विपदान वर्षैः ।
धामाग्नि दग्धान्य अ˘˘ - -
- - -˘ - नम्रदलान्यभूवन् ॥ 12

खड्गस्त्रुवो द्विड्रुधिर˘ -
- - -˘ - वे कृशानौ ।
मन्त्री गलन्मौक्तिकला˘ - -
-˘ -˘ - या भृशमाजिलक्ष्मी (म्) ॥ 13
भास्वत्कलावद्युतयो म ग ग धू
- यस् सदेव्यस्य तदात्मकव्वात् ।
तासां स्थितिं पर्य्यबसन्दि दृक्षु(र्)
ब्बंभ्रम्यते दिक्ष्विव यस्य कीर्त्तिः ॥ 14
विचित्रयञ्चित्तवतान्नु चेतस्
सञ्चूर्ण्णयन् मानहृताञ्च मानम् ।
उग्रस्य लिङ्गन्नवद्या गरिष्ठम्
अतिष्ठिपद्यो नवहस्तनिष्ठम् ॥ 15
महान्धकारोऽध्वरधूम धूत्याः
प्रचण्डतेजोमिरवग्नाहोभूत् ।
वृष्टिः प्रकृष्टा वसुदन्तिदानैर्
य्यस्मिन् क्षितिं रक्षति विष्टपानाम् ॥ 16
कालेषु कालेय कलङ्कपङ्कैर
द्दिग्धाङ्कितान् लोकगणांश्चिराय ।
त्रिलोचन स्त्राणतया विलोच्य
भूमौ ध्रुवं स्वांशमतारयद्यम् ॥ 17
यस्याद्भुतान्वाक् पतयोऽप्यभूवन्
पदं पदं प्रत्यखिलं गुणौद्यान् ।
नालन्नु संख्यातुमतीवदिव्य-
कालेन धीरा इव शब्दराशीन् ॥ 18
तेन श्रीजयवर्म्मणा विजयिना ज्येष्ठस्य धर्मस्थिति-
प्राप्त्यै लिङ्गमिदं शिवस्य परतस् संकल्पितं स्थापितम् ।
सौंदर्य्यस्य धृतश्रियार्थयुतया राजेन्द्रवर्म्माख्यया
ख्यातस्याग्रसरस्य कीर्त्तिगुणधीवीर्य्याप्यताशालिनाम् ॥ 19
अदित वस्तुतसमस्तं भक्तितोऽस्मिन् शिवेऽसा-

वकृत च शिखराभं सौधवेश्मोद्निराजः ।
अनियतगति मीशञ्चैकवृद्धोक्षमीक्ष्यं
धनिसखमिव कुर्व्वन्नेकवासं धनाद्यम् ॥ 20

अर्थ–

जिसका श्वेत ....मघाय राजाओं का वज्र .... जो .....य जो धन के अधीन ....जल दूध ....वह सुशोभित..........।। 5

धनुष धारण किये हुए धारण किया है सभी वर्णों को दुष्ट वृत्रासुर के बल को पीड़ित करनेवाला .... जो ऊँचे पुण्यवानों में श्रेष्ठ, साक्षात् इन्द्र के समान शोभता था ।। 6

सृष्टि में सत्त्व बल, हित, प्रधान, अपकार करने वाले पर भी जिसमें .... वह धूलरहित अन्धकारपूर्ण किसी से छः गुणों से युक्त गुणों के समूह ....।। 7

भली-भाँति बढ़ते हुए .....काम ....स् संयोग वालों के साथ मिलने के समय ।

द्रव्य का ......पहले .... शायद जिसका ....हुआ था ।। 8

हीन ....

विश्वास से युक्त जिसके ठीक शब्द हैं ।

अंग .....

प्रकाशित किया मुँह में पदार्थों को ।। 9

तेज .... युद्धों में .... राजाओं के चतुर करोड़ हथियारों के पतनों से सिर की मणि=मस्तकालंकार

पहली पीढ़ी यकायक मानो क्रोध से ।। 10

तीन शक्तियाँ .... कालकूट नामक विष का संहार करनेवाला उपक्रम .... पहले के .... नीतिरूप समुद्र का मथना ।। 11

जहाँ ....मतवाले हाथी के मद की वर्षा से ..... धाम की आग ...... जले हुए दूसरे ....लते-पत्तोंवाले हुए........।। 12

तलवार से चूनेवाले शत्रु के शोणित ....मन्त्री गिरते हुए मोती .... जो बहुत संग्राम की लक्ष्मी ।। 13

प्रकाशित कलावाली छवियाँ ....हमेशा इसका उसकी आत्मा, या वह है आत्मा उनकी स्थिति ठहराव को अन्त देखने की इच्छावाला ....पुनः अतिशय भ्रमण किया जाता है मानो सभी दिशाओं में जिसकी कीर्ति ।। 14

चित्तवालों के चित्र को विचित्र बनाता हुआ । मान के हरण करनेवालों के मान को भली-भाँति चूर्ण करता हुआ उग्र के लिंग को नवरूपों से विशाल रूप में प्रतिष्ठित किया था ।। 15

यज्ञ के धुएँ से महा अन्धकार प्रचण्ड तेजों से प्रकाशित हुआ । अच्छी वर्षा, धन और हाथी के मद जलों से जिसकी हुकूमत में देवों का ।। 16

समयों में कलि के कलंक रूप पंकों से बहुत कालों तक लोगों के समूहों को त्रिनेत्र रक्षा करनेवाले हैं ऐसा सोच करके जिसे पृथिवी पर निश्चित रूप से अपने अंश को तारा ।। 17

जिसने आश्चर्यकारी वचनों को वाणी के स्वामियों ने भी प्रत्येक पद में गुणों के समूहों को देखा था । देवताओं के समय से भी गिनने में आसक्त हुए समय से धैर्यशाली के समान शब्दों के समूहों को ।। 18

उस श्रीजयवर्मन विजयी राजा के द्वारा धर्म की स्थिति की प्राप्ति के लिए यह शिवलिंग संकल्पपूर्वक स्थापित किया गया । सहोदर राजेन्द्रवर्मन नाम के द्वारा जिसने लक्ष्मी का धारण किया, जो धन से युक्त है, प्रसिद्ध है, अग्रगण्य है उसकी कीर्ति, गुण वीर्य की अधिकता से शोभित है उसके द्वारा संकल्प कराकर शिवलिंग की स्थापना कराई गई थी ।। 19

इस शिव में उसने समस्त धनों के साथ भक्तिपूर्वक पहाड़ की चोटी-सी ऊँचाईवाला बड़ा मकान, मन्दिर, राजसदन, मानो पर्वतराज हो ऐसा या पर्वत पर राज्य करनेवाला अनिश्चित गतिवाले ईश्वर को एक वृद्ध जो धनी के सखा के समान है, ऐसा पुजारी रख करके एक वास धनों से भरा-पूरा बनाया था ।। 20

61

प्रसत अन्डोन अभिलेख

Prasat Andon Inscription

ह केर के एक मन्दिर पर यह अभिलेख पाया गया है । इस अभिलेख में निम्नांकित देवी-देवताओं की प्रार्थना की गयी है– शिव (पद्य-संख्या 1 और 2), गंगा (पद्य-संख्या 3), विष्णु (पद्य-संख्या 4), ब्रह्मा (पद्य-संख्या 5), उमा (पद्य-संख्या 6), भारती (पद्य-संख्या 7), कम्बु (पद्य-संख्या 8), कम्बोडिया के राजा (पद्य-संख्या 9)।

इस अभिलेख से राजा यशोवर्मन, हर्षवर्मन प्रथम, ईशानवर्मन द्वितीय तथा जयवर्मन चतुर्थ की प्रशस्ति की चर्चा हमें मिलती है । इन राजाओं के एक शिक्षक की भी चर्चा इस अभिलेख में है जिसके नाम के अन्त में शर्मन लिखा हुआ है । नाम का प्रथम भाग नष्ट हो चुका है । इसी शिक्षक ने ईश्वर के लिंग की

1. *IC*, p.61

स्थापना की थी। पद्य 28 में जयवर्मन के द्वारा बनाये गये लिंग की चर्चा है जो 81 हाथ की ऊँचाई पर रखा गया था।

अभिलेख में पद्यों की कुल संख्या 41 है।

जॉर्ज सोदेस ने इस अभिलेख का सम्पादन किया था।[1]

नमश् शिवाय यज्ज्योतिर्ज्ज्यायः (प)रे तमोज्वलत् ।
व्यापि व्योमेव भूतेषु सत्त्वमर्थेषु सत्स्विव ॥ 1
नमो नम्रनभश्चारिचक्रलग्रानङ्घ्रि रोचिषे ।
द्विसप्त जगदालम्बध्रु वायार्द्धेन्दुधारिणे ॥ 2
जयन्ति गङ्गाजिह्नाङ्गा स्तरङ्गा हरमूर्द्धनि ।
वदन्योदन्वता दत्ता बालचन्द्राब्र्बुदा इव॥ 3
विभन्ति बाहवो विष्णोर्म्मण्डितत्रिगच्छ्रियः ।
सुनया इव चत्वारम् स्वमूर्च्यशा इवोदिताः ॥ 4
चतुर्म्मुखमुखोद्गीर्ण्णवदेध्वनाः पुनन्तु वः ।
योगनिद्रा (या नि) द्राया द्रोहादिव रिपोर्व्वधे ॥ 5
नमाम्युमां मुखं यस्या वीक्ष्य पूर्ण्णविधुप्रियम् ।
धूर्ज्जटेर ......येवार्द्धविद्युर्व्विष्टो जटानले ॥ 6
भारती (भा)ति गौराङ्गयष्टिरापाण्डुरस्तनी ।
गङ्गेव कञ्जकिञ्जल्कपिञ्जरोद्रत सैकता ॥ 7
कम्बुमीडे समग्रान् यो विद्यते कम्बुजाधिपान् ।
सूर्य्येन्दुवंशकीर्त्त्याधः कुर्व्वन् सृष्टीः ग्रजासृजाम् ॥ 8
श्री कम्बुभूभृतो भान्ति विक्रमाक्रान्त विष्टपाः ।
वृषकण्टकजेतारो दोर्द्दण्डा इव चक्रिणः ॥ 9
श्रीमतां कम्बुजेन्द्राणामधीशोऽभूद्यशस्विनाम् ।
श्रीयशोवर्म्मराजेन्द्रो महेन्द्रो मरुतामिव ॥ 10
अच्युतारूढ़ पद्माढयस् ....दिमुखरञ्जितः ।
वर्ण्णस्थिति विद्याता यः (प्र)जापतिरिवाभवत् ॥ 11
अन्वयव्यतिरेकाभ्या(म् भा)विनां गुणराशयः ।
यस्मिन्प्रयोक्तरीशाने (स) मवेता इवाणवः ॥ 12

सुकृतामपि दुष्प्राप्य (वि)स्तीर्ण्णाशासु पावनी ।
कीर्तिर्ग्गगणः..............यस्याब्धिधायिनी ॥ 13
तस्याजनि जग ....नुरनूनधीः ।
श्रीहर्षवर्म्मा ....दितविष्टपः ॥ 14
अकृष्टपच्यस ....ता नीतिदृश्वनि ।
विश्वम्भरा यथाव ....र्य्यत्र शासति ॥ 15
धृतभोगसहस्रे ....तिकुलोदितः ।
अनन्तगुणसंप्तक्तो..........आप्यद्विजिह्वकः ॥ 16
तस्यानुजोऽभूत् सोदर्य्य ....न्तमोषिता ।
कान्त्या श्रीशानवर्म्मेति श्री.......क्रमै रणे ॥ 17
पारम्पर्य्योत्सवोद्धामा दानदाक्षिण्यसङ्गता ।
साधुसाधारणा यस्य लक्ष्मील्लीलेव यज्वनाम् ॥ 18
भीष्मो येन जि(तो) नीत्वा सगुणगाण्डिवन्धनुः ।
भ्राजिष्णुकर्म्मयोगेन जिष्णुनेव (यश)स्विना ॥ 19
ततपितुः स्व् ....यः कत्तत्रि ....ते ।
(रा)जा श्रीज(यवर्म्मे)ति विरेजे ज......रः ॥ 20
कलाभि ....नेत्रानन्दकरश्च यः ।
......................तिरिवोदितः ॥ 21
शौर्य्य शौटौर्य्यगाम्भीर्य्य वीर्ध्या धैर्य्यो विदिधुते ।
गुणैर्धौते र्विधूताग्रैः कैस (रैरि) व केसरी ॥ 22
कामङ्कामोऽनले रौद्रे बुद्धपूर्व्वमविष्टवान् ।
यदीक्षेत विलक्षो यमधिकान्तमद्योमुखः ॥ 23
यो जिगाय प्रभालोलैर्न्नम्नराजकमौलिभिः ।
त्वङ्गत्तरङ्गामाकीर्ण्ण विद्रुमाम्बुधिश्रियम् ॥ 24
सुरूपा बुद्यसंभान्या शिवस्थितिकरोन्नता ।
आशाप्रसारित रुचिर्य्यत्कीर्त्तीन्दुकला बभौ ॥ 25
सत्यन्तत्सर्व्वभावानां शक्तेर्न्नान्यविपर्य्ययः ।
यदज्वालीत् प्रतापाग्निर्य्यस्याह्लादि यशोनदे ॥ 26
चन्द्रहासः प्रियो यस्य प्रकाशो भुवनेष्वधे ।

तथा हि हस्ते हृदये कीर्त्त्या सन्निहितो मुखे ।। 27
शम्योर्य्यो लीलया लिङ्गः दुस्साध्यं पूर्व(भू)भुजाम् ।
नवद्या नवहस्तान्तं प्रतिमाभि (रति)ष्ठिपत् ।। 28
तेषां बहुमतो वण्गमी शास्तार्य्यो ....जन्मनाम् ।
नैरन्तर्य्योगत शुचिद्विजे ....वंशभूः ।। 29
तेजांस्युत्तेजयामास ....भूभुजाम् ।
यो धौम्य इव पाण्डूनां ....वारुणिः ।। 30
मूर्द्धाभिषेकमापन्नम् ....वाध्वरे ।
पशूनभिसुखान् मुक्तौ ....यद्गुण ।। 31
वाह्यैरवाह्यैर्न्निय ....मतोन्वहम् ।
तनूनपातोष्ठत ....(पु)पोषयः ।। 32
मुखोपपीड़म्...............ले बभौ ।
दामोदर...........................आन्तके ।। 34

Verses 30 - 40 are mostly illegible.

...........तेन धीमता .... शर्म्मणा ।
.........ना स्थ् (आपित लि)ङ्गमैश्वर(म्) ।। 41

Verse 42 is mostly illegible.

अर्थ–

उस शिव को नमस्कार है जिनकी ज्योति बड़ी है, जल रही है, आकाश के समान व्यापी है । सभी प्राणियों में अच्छे अर्थों में सत्त्व के समान हैं ।। 1

उस शिव को नमस्कार है जो लबे हुए आकाश पर चलनेवाले चक्र में लगे पैरों को धारण करनेवाले प्रकाश से पूर्ण हैं, जो चौदहों भुवनों का आलम्बन हैं, ध्रुव अटल हैं, आधे चन्द्र को धारण करनेवाला चन्द्रार्धशेखर हैं ।। 2

जिस शिव के मस्तक पर गंगा के टेढ़े-मेढ़े अंगोंवाली लहरें सोहती हैं । दाता के गुण उन वदान्य गुणों से युक्त समुद्र द्वारा अर्बुद के समान बालचन्द्र मानो शिव को दिया गया हो ।। 3

विष्णु की बाहें सोहती हैं, तीनों लोकों की लक्ष्मी और शोभा से सुशोभित हैं । सुन्दर नीति के समान चार बाहें जो अपनी मूर्ति के अंशों के समान

उगे हुए हैं ।। 4

चतुर्मुख ब्रह्मा के मुखों से निकले वेदों के स्वर तुम्हें पवित्र करें । जो शत्रुओं के वध में योगनिद्रा के द्रोह के समान हैं ।। 5

उमा को नमस्कार करता हूँ जिसके मुख को देख करके, जो मुख पूर्णचन्द्र सा प्रिय है शिव के ....समान........अर्द्धचन्द्र प्रविष्ट है जटारूप अग्नि में ।। 6

सरस्वती, जो सफेद अंगरूपी छड़ी के समान सोहती है, उज्ज्वल स्तनोंवाली हैं, जो गंगा के समान कमल के केसर के पिंजड़े से निकले बालुओंवाली गंगा के समान सोहती हैं ।। 7

उस शंख को नमस्कार है जो सभी कम्बुज नरेशों का विधान करनेवाला है। सूर्य और चन्द्र के वंश कीर्ति से जो नीचा दिखाता हुआ प्रजाओं की सृष्टि करनेवाले प्रजापतियों की सृष्टि को नीचा दिखानेवाला है ।। 8

श्री कम्बुज के राजा लोग सोहते हैं जो अपने पराक्रमों के आक्रमण रूपवृक्षों वाले हैं। जो विष्णु के वृष नामक शत्रु वृषासुर के जीतनेवाले बाहुदण्डों के समान सोहते हैं ।। 9

श्रीमान् सभी कम्बुज राजाओं के अधीश्वर सभी यशस्वियों में श्रेष्ठ श्री यशोवर्मन राजाओं के राजा सभी वायुओं में महेन्द्र-सा है ।। 10

विष्णु के नाभिकमल पर बैठनेवाले ....समान मुखों से सोहनेवाले वर्णों की स्थिति के विधान करनेवाले जो ब्रह्मा के समान हुए ।। 11

जिसके रहने पर जो रहे- अन्वय, जिसके न रहने पर जो न रहे-व्यतिरेक, इन अन्वय और व्यतिरेकों से होनेवालों के गुणों के ढेर, जिस प्रयोग करनेवाले ईश्वर में अणुओं के समान समवेत रहनेवाले हैं ।। 12

धर्मात्माओं द्वारा न पाने योग्य सभी दिशाओं में फैली हुई पवित्र करनेवाली कीर्ति आकाश ....जिसकी कीर्ति समुद्र को जीनेवाली है ।। 13

जिसका पैदा हुआ ....पुत्र पूर्ण बुद्धिवाला । श्री हर्षवर्मन नामक........ ...।। 14

बिना जोते ही उपज देनेवाली भूमि ....नीति के द्रष्टा के शासनकाल में ..... विश्व के भरण-पोषण करनेवाली भूमि ....जिसकी हुकूमत में ।। 15

हज़ार भोगों के धारण करने पर .... वंश में उगा हुआ अनन्त गुणों से संयुक्त ......दो जीभों वाला ।। 16

उसका भाई (छोटा) सहोदर ....कान्ति से श्री ईशानवर्मन.. यह भी.... .पराक्रमों से युद्ध में ।। 17

परम्परागत उत्तम कोटि के उत्सवोंवाले दान और निपुणता से युक्त जिसकी लक्ष्मी यज्ञ करनेवालों की लीला के समान सभी सज्जनों की ही हो ऐसा ज्ञात होता है।।18

डोरी सहित सगुण गाण्डीव धनुष लेकर भीष्म पितामह जिससे हार गये। प्रत्यञ्चा सहित कर्मयोग से प्रकाशित कीर्तिमान विजयी के समान अर्जुन के समान था ।। 19

उसके पिता का स्व...जो....करने वाला...यहाँ....ने । राजा श्री जयवर्मन यह.... विशेषतया शोभित था ।। 20

कलाओं से.........और जो आँखों को आनन्द करनेवाला........के समान उगा हुआ था ।। 21

शूरता, वीरता, गम्भीरता, वीर्यबल आदि से जो विशेष प्रकाशित तथा विशेष रूप से धोये हुए अग्र भागवाले धोये हुए गुणों से युक्त केसर (सिंह) की गर्दन के ऊपरवाले केश को केसर कहते हैं उनसे केसरी-सिंह के समान शोभित था ।। 22

यथेच्छ तेज आग में मानो कामदेव ने प्रवेश किया हो जागने से पूर्व यह जिसे देखे विशेष रूप से ताकि अधिक समय तक नीचे मुँह करनेवाला था ।। 23

जिसने अपने चंचल प्रकाशों से नम्र राजा समूहों के मस्तकों से जीत लिया ऊँची लहरोंवाली फैली हुई, मूँगों के समुद्र-सी लक्ष्मी को जिसने जीत लिया था ।। 24

सुन्दर रूपवाली पण्डितों को सम्मान देनेवाली शिव=कल्याण, शिव=महादेव की स्थिति से कर=हाथ, कर=किरण से ऊँची आशा=दिशा, आशा=अभिलाषा दिशाओं में फैली हुई छविवाली जिसकी कीर्ति रूपी चन्द्रमा की कला शोभती थी।। 25 (यह दो अर्थोंवाला ᵖ है) ।

सच उस जिसके आनन्दप्रद कीर्ति रूप झील में सभी भावों की शक्ति का दूसरा मिथ्या ज्ञान हुआ– वह सच है। प्रताप रूप अग्नि को जो जला सका था प्रदीप्त किया था ।। 26

चन्द्रहास (तलवार) जिसे प्रिय है, सभी भुवनों में आश्चर्यकारी प्रकाश जिस चन्द्रहास का है क्योंकि वैसे ही हाथ में हृदय में कीर्ति में और मुख में समीपस्थ है ।। 27

जिसने लीला से पूर्ववाले राजाओं के दुख से साधने लायक नौ बार नौ हाथों की प्रतिमावाले लिंग की स्थापना की थी ।। 28

उनके बहुमतों से सम्मत परिमित सार बोलनेवाला वाग्मी, शासन करनेवाला जो....जन्मों का निरन्तर शुद्ध ब्राह्मण में........वंश में उत्पन्न हुआ ।। 29

राजाओं के तेजों को उत्तेजित करनेवाला था जो धौम्य ऋषि के तुल्य पाण्डु वंशोद्भवों का.....वरुण की सन्तान ।। 30

मस्तक पर अभिषेक..यज्ञ में । पशुओं को सभी ओर से सुखों को मुक्ति में.....जो गुण..।। 31

बाहरी और अन्दरूनी निय.........मत..........प्रतिदिन । शरीरों को......... पोसा-पाला था ।। 32

मुख को पीड़ा.....शोभित हुआ था....दामोदर=दाम=माला है उदर पर जिसके विष्णु.....।। 34

उस बुद्धिमान के द्वारा.......शर्मा के द्वारा.....ईश्वर-सम्बन्धी लिंग की स्थापना की थी ।। 41

62

नोम बयांग अभिलेख
Phnom Bayang Inscription

यह अभिलेख उत्पन्नकेश्वर की प्रार्थना से प्रारम्भ होता है। उसके बाद राजा जयवर्मन चतुर्थ की प्रशस्ति हम पाते हैं । पद्य-संख्या 2 से यह प्रतीत होता है कि उसने राजगद्दी उत्तराधिकार के रूप में नहीं वरन् अपने पौरुष के बल से प्राप्त की थी । अभिलेख से गिरिन्द्राश्रम नामक एक मठ की स्थापना की भी जानकारी मिलती है जिसे राजा के एक छोटे भाई नित्यव्यापी के द्वारा एक पहाड़ी पर बनवाया गया था ।

अभिलेख में 32 पद्य हैं जिनमें बहुत-सी अशुद्धियाँ हैं । जॉर्ज सोदेस ने इस अभिलेख का सम्पादन किया है ।[1]

सिद्धि ।

वन्दे शिवाय देवेशं श्रीमदुत्पन्नकेश(श्व)रम् ।

---

1. *IC*, p.61

यस्यागे संस्थिता नित्यं न्.....रानाक....निरात्...र्...॥ 1
शौर्य्याद्राजाधिराजोऽभूद् राजा राजीवलोचनः ।
जन्येऽनन्यश्रयः श्रीद्धो योऽरिक्षयकरोऽक्षयः ॥ 2
शतक्रतुवतो यस्य क्रतून् वीक्ष्य शतक्रतुः ।
किन्नयहञ्च्यावितस्तेनेतीव चिन्तापरोऽपरः ॥ 3
यस्य त्रिभुवनस्थाने स्थाने स्थितवतान्नृनां ।
ब्रह्मे शोपेन्द्र देवेन्द्र लोका लोकन शैथिलः ॥ 4
राजा श्री जयवर्म्माख्यो वर्म्मा वर्म्मरिभञ्जकृत् ।
रणरङ्गेषु भोगीन्द्रः (भो)गाभेद्ध कुशेशयात् ॥ 5
तेन सम्मान्य भूभर्त्राधिकृतो यो यनीश्वरः ।
जाराङ्ग विष(य).........अन्नाधिपतिराद्रोत् ॥ 6
जाराङ्ग विषयान्तैर्य्यो निंगृहीत्वा न गृह्यते ।
स्वञ्चित्तन्दर्शयन्नूनं शब्दादिविषयाग्रहं ॥ 7
यो योग्याधिकृतस्तेनाहूतः स्वामि गुरुर्गुरुः ।
धैर्य्याच्छिवपुरे शैलाधिपतिः सर्व्ववर्णिर्णणां ॥ 8
पुण्येप्सौ तस्य दाक्ष्यत्वात् सर्व्वशैल्याधिपाधिपः ।
शैलाधिपमिति.........हिमवन्तमिवाहसत् ॥ 9
श्री हर्षवर्म्मनामा यो राजा श्री जयवर्म्मणः ।
सूनुः स्वबाहुयुग्मेन लब्ध राज्यो सबन्धुना ॥ 10
राजलक्ष्म्या गुणत्याग सौन्दर्य्यैः पितृतुल्यना ।
प्रजानन्द करे शौर्य्ये पितुर्य्यस्य विशिष्टता ॥ 11
यस्याद्भुतं रणे शौर्य्यं चिन्तयित्वारयोऽनिशं ।
दिवा निशं............न निद्रां लेमिरे क्वचित् ॥ 12
तेन सन्मान्यो यो भूयोरिणामे हेम दोलय.... ।
........ताक्ष श्वेतैः पुर्मिः समृद्धिभिः ॥ 13
करङ्कामत्रभृङ्गार क्षोमचीनांशुकाः ....।
............व्यधाच्छ्री..................॥ 14
विक्षोभ्य यो गृहीत्वारान् पुरामिन्द्रपुराद्वयन ।
धन्यान्य...........व्यधाच्छ्रि..........॥ 15

स एव परमाचार्य आर्य्य आचार्य्य.......।
द्विजविद्ध.............तया र्...........॥ 16
युवापि युवतीं लक्ष्मीं यो विहायेन का...।
(वि)द्यां वृद्धा(ं)................न च ॥ 17
लक्ष्मी सरस्वतीभ्यां यं यशो वीक्ष्योय गूढ़ितं ।
व्यचरद दि.................................॥ 18
एक ब्रह्मनिधानं यद विष्णुनाभि सरोरुहम् ।
यद्वक्त्.....................................॥ 19
यवीयानापि तद्भ्राता ज्येष्ठेन प्रतिरूपकः ।
विभूति त्याग गाम्भीर्य्य..............॥ 20
नित्य व्याप्याह्वयो योगी नित्यानित्य विशारदः ।
तेनैव..॥ 21
चक्राराद्रितटे रम्ये गिरीन्द्राश्रमाश्रमं ।
....॥ 22
तयोस्तु पोषणार्थन्तु गृ..................।
....॥ 23

Verses 24-27 are mostly illegible.

प्रदाय सर्व्वाणि विचिन्त्य के ना-
भूत प्ल वात् कीर्त्तिमिमं वदान्ति ।
प्राकारम्...........................।
...............................इवह ॥ 28
समर्त्तुवसु शाकेन रक्तपाषाण रञ्जितं ।
चकार...............................॥ 29
द्विनय महाश्रमाधिपे कुलपतावधितापसोत्तमे ।
.....................................॥ 30
ये लङ्घयन्ति परिकल्पितभाश्रमे ते
लुम्पन्ति दत्तमिह भूतपतौ हरन्ति ।
छिन्नाङ्घ्रि कर्ण्ण कर नासिका शिश्न.....॥ 31
यो पालयन्ति च यथा परिकल्पितानि

संवर्द्धयन्ति न हरन्ति यथा स्वपुण्यं
ते चार्ध्यपाद्य फल पुष्प धरैः प्र...
....।। 32

अर्थ–

श्रीमान् उत्पन्नकेश्वर को प्रणाम करता हूँ। कल्याण के लिए जिसके अंग में नित्य सम्यक् रूप से स्थित है.. ।। 1

शूरता से राजाओं का भी अधिराज हुआ जो राजा जिसकी आँखें कमल के समान हैं। जो क्षीण होनेवाला नहीं है, जो शत्रु का नाशक है। जो श्रीशोभा से प्रकाशित है। अन्य का आश्रय न लेनेवाला है उसने जन्म दिया ।। 2

इन्द्र जिसे एक सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला देखकर क्या इन्द्र को भी नीचे गिरानेवाला है ? उसने अपना नाम फैलाया, यह देखकर इन्द्र ने चिन्ता की कि दूसरा इन्द्र है क्या ? ऐसा राजा है ।। 3

जिसके तीनों भुवनों के स्थान पर मनुष्यों के स्थान पर रहने से ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र के लोकों के देखने में शिथिलता है ।। 4

राजा श्री जयवर्मन नामक, कवच धारण करनेवाले शत्रु के नाशक हैं, वे सौ पत्तों का कमल, युद्धों में सर्पराज की फण की छवि से प्रकाशित हैं ।। 5

उस राजा से सम्मानित और अधिकृत जो संन्यासियों का अधीश्वर है, आदरणीय है और वह यहाँ का स्वामी है ।। 6

विषयों के नियन्त्रण से जो फिर विषय से दूर है निश्चित रूप से शब्द आदि के आग्रह से अलग अपने चित्त को दिखाने वाला है ।। 7

जो उस राजा से अधिकृत होकर योग्य है, स्वामियों के गुरुओं का गुरु है, धीरता से शिवपुर में सभी वर्णों का शैलाधिपति (पर्वतराज) है ।। 8

पुण्य में वह उसकी निपुणता से शैलों का राजा है जो उसका भी राजा है। शैलराज हिमालय के समान हँसा ।। 9

जो श्री हर्षवर्मन नामक राजा श्री जयवर्मन का पुत्र है अपनी दोनों बाँहों से बन्धु सहित राज्य पाने वाला है ।। 10

राजलक्ष्मी से, गुणों से, त्यागों से, सुन्दरताओं से, पिता से समानता है जिसके पिता की विशिष्टता है प्रजा के आनन्द करने और शूरता में ।। 11

रण में जिसकी अद्‌भुत शूरता है शत्रुओं ने ऐसा सोचकर दिन-रात कभी नींद से नहीं सो पाते हैं ।। 12

उससे सम्यक् रूप से मान्य जो है शत्रु के आगे सुवर्ण की दोलावाला है...समृद्धियों से युक्त है ।। 13

करंक और भृंगार एवं रेशम के वस्त्रोंवाला...... विधान किया......श्री..... ....।। 14

.........जिसने इन्द्रपुर को स्वर्ग को विशेष रूप से क्षुब्ध कर डाला । धन्य अन्य.....विधान किया ।। 15

वही परम आचार्य श्रेष्ठ.......ब्राह्मण..........।। 16

जवान भी युवती लक्ष्मी को छोड़कर मानो..........वृद्धा विद्या को....... और न.........।। 17

लक्ष्मी और सरस्वती दोनों में जिस कीर्ति को देखकर जो कीर्ति छिपी हुई है विचरण किया.......।। 18

....एक ब्रह्म के विधान को जो विष्णु की नाभि के कमल को जिसका मुख.........।। 19

उसका छोटा भाई भी ज्येष्ठ भाई का दूसरा रूप्है । ऐश्वर्य, त्याग और गम्भीरता...।। 20

नित्य और अनित्य के ज्ञान में विशारद है । ब्रह्म सत्य है । जगत् झूठ है... ..उसी के द्वारा।। 21

रमणीय चक्रार नामक पर्वत के तट पर गिरीन्द्र के आश्रम पर आश्रम को ।। 22

उन दोनों के पोषण के लिए गृ...............।। 23

Verses 24-27 are mostly illegible.

सबों का विचार करके प्रदान करके......इस कीर्ति को कहते हैं । मन्दिर को.........बँधे हुए को..........।। 28

863 शाके लाल पत्थर से रंगे हुए..........किया ।। 29

दूसरे महाआश्रम के स्वामी कुलपति उत्तम तपस्वी के आधिपत्य में.........।। 30

जो आश्रम के नियमों का उल्लंघन करनेवाले शिवजी को दिये गये धनों का हरण करनेवाले (लुप्त करनेवाले) हों उनके पैर, कान, हाथ, नाक, लिंग.............।। 31

जो यथोचित रूप से परिकल्पित धनादि का सम्यक् रूप से वर्धन करते नहीं, नहीं हरण करते, यथावत् रूप से अपना पुण्य बनाते हैं, वे अर्घ्य, फल, फूल धारण करके....।। 32

63

प्रह पुट लो के चट्टान-अभिलेख

Prah Put Lo Rock Inscription

लेन पर्वत, जिसका नाम महेन्द्रगिरि है, पर 'प्रह पुट लो' नामक एक गुफा है जहाँ संस्कृत एवं ख्मेर भाषा में एक अभिलेख पाया गया है । संस्कृत मूल लेख से बुद्ध, ब्रह्मा, विष्णु एवं परमेश्वर की मूर्तियों की स्थापना गुफा में रहनेवाले साधुओं द्वारा होने का वर्णन है ।

अभिलेख की पद्य-संख्या केवल 1 ही स्पष्ट एवं शुद्ध है ।

जर्नल एशियाटिक में सर्वप्रथम इस अभिलेख का सम्पादन किया गया था ।[1]

आचार्य्य कीर्त्तिवर साध्यत भक्तिस्तोत्रं
संपात्र-जन्म गुन भक्ति तथागत-चर्य्या

---

1. *JA*, Vol. XIII(6), p.17

माहेश्वरस्य पितृवंश प्रसंग भक्तः
बुद्धिः स्कुटस्य वरसाध्य गुहास्य वर्द्धेत ॥ 1

अर्थ–

हे आचार्य, हे कीर्तिवर, भक्ति के स्तोत्र को साधित करें । अच्छे पात्र के जन्म, गुण और भक्तियुक्त बुद्ध की चर्चावाले पिता के वंश के प्रसंग के भक्त महेश्वर–सम्बन्धी स्कुट के वर साध्य बुद्ध देव बढ़ें ।

64

प्रसत प्रम अभिलेख

Prasat Pram Inscription

म्पो स्वे प्रान्त में बसे प्रसत प्रम मन्दिर में यह अभिलेख पाया गया है । अभिलेख के प्रारम्भ में त्रिदेवों की प्रार्थना की गयी है । इसमें जयवर्मन चतुर्थ, हर्षवर्मन द्वितीय तथा राजेन्द्रवर्मन की प्रशस्ति भी है । इस अभिलेख से यह पता लगता है कि राजेन्द्रवर्मन के गुरु रुद्राचार्य शिव सोम के विद्यार्थी थे । ये रुद्राचार्य ही थे जिन्हें श्री नृपतीन्द्रयुद्ध की उपाधि दी गयी थी । उन्होंने दो मूर्तियों एवं एक देवी की मूर्ति की स्थापना की तथा भद्रोदयेश्वर नामक भूमि से प्राप्त आय को दानस्वरूप दिया था । इस अभिलेख की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें बहुत से देवी-देवताओं की चर्चा है तथा उनके लिए प्राप्त दानों का भी विशेष वर्णन है । यह विस्तृत वर्णन संस्कृत-भाषा में किया गया है । यद्यपि ऐसा विस्तृत विवरण प्रायः ख्मेर-भाषा में ही पाया जाता है।[1]

---

1. *BEFEO*, Vol. XXV, p.309

इस अभिलेख में पद्यों की कुल संख्या 58 है ।

नमश् शिवाय येन ... ...।
... ...॥ 1
अजितेन जितं शेते यो धृताङ्घ्रयम्बुजश् श्रिया ।
त्रैलोक्याक्र ... ...निधौ ॥ 2
वन्दामहे विधातारमादरादिव यश् श्रियः ।
चक्रि नायम्बुजावाप्तः ....यः .... ध्रुवम् ॥ 3
आसीद्राजाधिराजः श्रीजयवर्म्मेति विश्रुतः ।
य श्चक्रे चक्रकदनं द्विषाज्यक्रिपराक्रमः ॥ 4
दिदर्शयिषतेव स्वं कीर्त्तिद्रविणमुत्तमम् ।
येन त्रिभुवनस्थानं प्रकृतं स्वर्गसन्निभम् ॥ 5
भौतिकन्देहिनान्देहन्ध्रुवधीरध्रुवं भुवि ।
ज्ञात्वानुविदधे धर्म्मं यो ध्रुवं देहमात्मनः ॥ 6
कान्त्यानुजितकामो यः श्रुत्या जितबृहस्पतिः ।
जितधर्म्मपतिर्धर्म्मैरितीव निरतश् श्रिया ॥ 7
श्रियं शैवपदीं योगान्निर्व्विन्न इन कृत्रिमाम् ।
स्थितां राज्यश्रियं भुञ्जन्नपि सम्यक् नृपाधिपः ॥ 8
तस्यापि राजा सूनुश् श्रीहर्षवर्म्मेति विश्रुतः ।
ब्राह्मणादि चतुर्व्वर्ण हर्ष संवर्द्धयन् गुणैः ॥ 9
सहर्द्धिराज्यं बुभुजे स्वभुजार्ज्जितमाहवे ।
जित्वारि कुञ्जरौधान् यो राजसिंहपराक्रमः ॥ 10
नूनं विष्णुं विना पूर्व्वमयं मे पतिरिष्यते ।
इत्युवाच त्रिलोकी श्रीर्य्यं प्राप्य हितकारिणम् ॥ 11
यश् श्रीराजेन्द्रवर्म्मेति पूर्व्वजस्तस्य मानवम् ।
राजधर्म्ममनूनर्द्धिं वर्द्धयन् क्ष्मामपालयत् ॥ 12
सुदमो धर्म्मनीतिभ्यान्द्वादशार्द्धारिदुर्द्धमः ।
अमोघशक्तिर्जन्येषु शरजन्मेव योऽपरः ॥ 13
कमला वक्तृकमले वक्त्रान्तर्भारती स्थिता ।

सेर्ष्येव यस्य कीर्त्तिन दूरगा दिग्दिगन्तरे ॥ 14
राज्यमावसता येन सर्व्वोपाक्रियत् प्रजाः ।
समस्तगुणरत्नेन वसुधायामिवाब्धिना ॥ 15
यो दयार्द्रोऽपि सर्व्वत्र निर्धृणो हप्तवैरिणि ।
सिंहो हि नीधतिर्य्यज्यं विनेभ्रेन्द्रन्नवाद्यते ॥ 16
यो निहत्यापदानेन वैरिवृन्दारकान् रणे ।
स्वान्तः स्थानपि तत्स्त्रीनामदहत्तेजसा पुनः ॥ 17
क्षेमी बभूव वसुधा येन रक्षानये कृते ।
मनुनेवा परेजेयं प्रजासस्यहलोदिता ॥ 18
अयम् ममांशो भूमीशः कान्त्यास्तु दुरतिक्रमः ।
इतीव यस्मै न्वन्येनै श्चन्द्रकान्तिमदाद्धरः ॥ 19
आचार्य्यस्तस्य मतिमान् गुणबद्भयोऽधिकोगुणैः ।
रुद्रार्च्यनरतो नित्यं रुद्राचार्य्य इतीरितः ॥ 20
यमी यमवतामार्य्यो धनिनामधिको धनैः ।
बर्द्धयन य कुलश्रेयः कुलैरग्रेसरीकृतः ॥ 21
ज्ञानतीर्थार्थ शुद्धाम्बुधौतदेहेन लौकिकी ।
येनाप्यनेन सा सर्व्वातीर्थयात्रा तु गण्यते ॥ 22
योऽधीत सर्व्व विद्याब्धिः सर्व्वविद्याब्धिपारगात् ।
भगवच्छिवसोमाख्यात् गुरोर्द्धेव गुरोरिव ॥ 23
स्वेषी माहेश्वराणां यः कुलानां पतिराश्रमे ।
माहेश्वराश्रमाभिख्ये राज्ञां कुलपतिर्म्मतः ॥ 24
नृपतीन्द्रारिजेतृत्वादायुधेनासिना युधि ।
नृपतीन्द्रायुधाभिख्यां श्रीपूर्व्वां पुनराप यः ॥ 25
शम्बे शैवे इमे लिङ्गे सदेवी प्रतिमे समम् ।
तेनैवात्र स्थिरधिया स्थापिते कीर्त्तिकीर्त्तने ॥ 26
गां सनागां समहिषां सदासीदान्तहासकाम् ।
रैरूप्य रत्न ताम्राढयां सक्षेत्रामेषु सोऽदिशत् ॥ 27
एषु दत्तमिदं द्रव्यमाशीविषविषोपमं ।
परत्र सुखमिच्छन्तो मा हरन्त्वात्ममृत्युकं ॥ 28

स्वस्ति वो वान्धवेभ्योऽस्तु मदीयेम्योऽधिकं पुनः ।
वाङ्मनः करणैः पुण्यमिदं रक्षन्ति येऽक्षतम् ॥ 29
सिंह शक्रगुरौ ससूर्य्यतनये...............न्दौग
........माकरन् द्य(रनि) जे कुम्भं सशुक्रे बुधे ।
मनिं तिग्मरुचौ धनेशदिवसे तापस्य शुक्ले हरि (?)
.........लिङ्गमत्र वीलाषण् मूर्त्तौ शकेऽतिष्ठिपत् ॥ 30
कल्पितं शासनाद्राज्ञः श्रीभद्राजेन्द्रवर्म्मणः ।
..............................मम लिङ्गपुरेश्वरे ॥ 31
सदाप्सरपदाद् रुद्रे चतुष्क प्रस्थतण्डुलम् ।
पिण्डं प्रकल्पितं दत्तं त्रिंशद्भिः किङ्करैर्म्मम् ॥ 32
शिवेन्द्रिय पुराच्छर्व्वे कल्पितञ्चरुत्तण्डुलम् ।
दत्तं दासैध दशभिर्म्मम देवदिने सदा ॥ 33
सीतानद्याश्च तीरस्थदेव्यै चाढ़कतण्डुलम् ।
दत्तं तुङ्गतटाकाद् मे दासैस्त्रिंशान्तपञ्चभिः ॥ 34
शिवपादपुर शर्व्वे शुभं द्वि प्रस्थतण्डुलम् ।
प्रदत्तं दशभिर्दा सैर्म्मम पिण्डार्थकल्पितम् ॥ 35
मोक्ग्रामेस्मिन् समग्रे च पिण्डं द्विप्रस्थतण्डुलम् ।
दासाभ्यां मे प्रतिदिनं दत्तं तत्र महेश्वरे ॥ 36
दन्देन् शिवपुराह्वाने शिवे द्वि प्रस्थतण्डुलम् ।
दत्तं दासैश्च दर्शभिर्म्मम नैवेद्यकल्पितम् ॥ 37
यदागते लिङ्गपुरेश्वरस्य भोगेऽत्र सङ्कल्पिततण्डुलं यत् ।
तत्पञ्चखारिप्रमितं फलाद्यं दास्यन्तु मे वन्धुजन प्रधानाः ॥ 38
परम्पराभूपतिशासनान्मे नायत्तमत्रापि कुलप्रधाने ।
पुण्यं यदि प्राप्तयदिप्रयत्नः सबन्धुरेषां परिपालयीग्यः ॥ 39
सलिलामलक श्रीशेऽक्षतद्विप्रस्थ तण्डुलम् ।
दत्तं मे पञ्चभिर्दासैः कुशपुष्पैश्च कल्पितम् ॥ 40
केतकीनिलये देवे पुण्ये राजगुरोर्गुरोः ।
मे दासैः पञ्चर्भिर्द्दतं द्विप्रस्थं तत्र तण्डुलम् ॥ 41
मरूक् तलपुरे देव्यां लिङ्गे शिवपुरालये ।

अमरेन्द्रपुरे पि श्रीद्यने सद्भक्तिवत्सले ॥ 42
दशद्वयमिमं दासविभागं समकल्पयत् ।
त्रिषु देवेषु पुष्पादिकुशदानाय भक्तितः ॥ 43
होत्रा वेदविदामुरेण सुमहन्मन्त्रप्रभावाग्निना
शप्रा येऽत्र महेश्वरार्थहरणाः पूर्व्वापरैर्व्वान्धवैः ।
यद्येते मरणं गतास्तु नरके ते नारकाः किङ्करै-
रर्यामैर्यार्वादनेन्दुदीपितभुवं पच्यन्त एवानिशम् ॥ 44
भूम्याकरक्षेत्रयुतं सदासग्रामाद्यहं यद् व्यतरन्तदस्मिन् ।
भद्रोदयेशे प्रहरन्ति ये तु ते रौरवं यान्तु कुलेनसद्धिम् ॥ 45
ये बर्द्धयन्ति पुण्यं मे वान्धवाश्च परेजनाः ।
सशिष्याः सुसहायाश्च तत्फलार्द्धि लभन्तु ते ॥ 46
स्वभृत्या अपि वाक्यं मेऽनुकुर्य्युर्भक्ति भागिनः ।
भद्रोदय महेशेऽस्मिन् मत्समायान्तु ते दिवम् ॥ 47
एतां वाणीमवदत् साधुजने धार्म्मिकेऽत्र मे पुण्यम् ।
रक्ष्यं स्वपुण्यमिति स श्रीनृपतीन्द्रायुद्यो धर्म्मी ॥ 48
यः श्रीजयेन्द्रवर्म्मेति राजमन्त्री महायशाः ।
तस्यान्वयः स सन्नीत्यानूनर्द्धिगुणविक्रमः ॥ 49
सौजन्यार्ज्जित पुण्य धर्म्मनिरतो योगी धनाढ्योऽग्रधीः
शैवव्याकरणार्थवित् स नृपतौ भक्त्योन्नतिस् सर्व्वदा ।
नाम श्रीपतीन्द्र पूर्व्वमद्यिकं तत्सायुद्यान्तं दद्यत्
सैनापत्यमवाप यो युद्धि जयीवीर्य्यैरभाद भाग्यवान् ॥ 50
भद्रोदयग्राम इति प्रतीते विबुधालयै ।
भद्रोदयेश्वरं लिङ्गं मया संस्थापितं मुदा ॥ 51
पूर्व्वस्यान्दिशि भूभागे भाति भास्करपर्व्वतः ।
सद्भास्कररतीतीर्थपुण्यनीर विरज्जितः ॥ 52
स पिनाकिरतीतीर्थस्त्रोत सस्वच्छाम्बुसीकरः ।
गङ्गामूल प्रपातेन सिक्तो भद्रोदयेश्वरः ॥ 53
आस्तूपदेशात् सीमापि दक्षिणस्यान्दिशि स्थिता ।
भूमि क्षेत्रोदयो लब्धाः सिद्धाः नृपति शासनात् ॥ 54

दोलास्पदगिरौ यत्र पश्चिमे दिशि संस्थिते ।
तत्र नद्यम्बुतीर्थेन स्नापितं लिङ्गमैश्वरम् ॥ 55
उत्तरस्यापि दिग्भागे विरालास्पदपर्व्वते ।
प्रातिष्ठिपदिमं यज्वा त्रयम्बकेश्वरमुज्ज्वलम् ॥ 56
आ दंरिङ्ख्लुप्रदेशान्ताद् भूमित्रसीमावधीकृता ।
नृपतीन्द्रायुद्याख्येन श्रीमता भूमिभागिना ॥ 57
तत्र स्वायम्भुवं लिङ्गं भद्रोदयमहेश्वरम् ।
सीमाप्रधानभूतन्तु प्रथितन्तम्निरत्ययम् ॥ 58

अर्थ–

शिवजी को नमस्कार है जिनके द्वारा..॥ 1

जो शिवजी के चरण कमल को छूता है वह लक्ष्मी से युक्त होता है जिससे नहीं जीतने योग्य है उससे भी जीत करके सुख की नींद सोता है.......... तीनों लोकों के आक्र.........॥ 2

हम विधाता (ब्रह्मा) की वन्दना करते हैं जो मानो लक्ष्मी के आदर से विष्णु की नाभि के कमलों को पाने वाले हैं.........निश्चित ॥ 3

श्री जयवर्मन नाम से विशेष ख्यात् राजाओं के अधिराज हैं (थे) जिन्होंने शत्रु के चक्र को नष्ट कर डाला और जो विष्णु के पराक्रम के समान पराक्रम वाले हैं ॥ 4

मानो दिखलाने की इच्छा से अपने यश रूप धन जो उत्तम धन है, जिसके द्वारा स्वर्ग के समान त्रिभुवन स्थान बनाया था ॥ 5

देहधारियों की भौतिक देह पृथिवी पर निश्चित, धीर, रूप से निश्चित जान करके आत्मा की देह जो निश्चित है उस धर्म को धर्म रूप अपनी देह को निश्चित किया ॥ 6

कान्ति से जिसने कामदेव को जीत लिया गुरुमुख से शिक्षा सुनकर बृहस्पति-देवताओं के गुरु को जीत लिया तथा धर्म के स्वामी धर्मराज को धर्मों से जीत लिया यह समझकर ही मानो वह श्रीशोभा से परायण था ॥ 7

शिव के पद (चरण-सम्बन्धी) श्री लक्ष्मी और शोभा के योग से

निर्विण्ण, बनावटी राज्यलक्ष्मी जो स्थित है उसका भोग करता हुआ भी भली-भाँति सभी राजाओं का राजा था। । 8

उसका भी पुत्र श्री हर्षवर्मन नाम से विशेष सुना हुआ प्रसिद्ध राजा अपने गुणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र– चारों वर्णों के हर्ष को भली-भाँति बढ़ाता हुआ था ।। 9

संग्राम में अपनी भुजा से अर्जित धन सहित राज्य को भोगा था और शत्रुओं के हाथियों के झुण्डों को जीतकर जो राजाओं में सिंह के समान पराक्रमवाला था ।। 10

निश्चित रूप से विष्णु के बिना पहले यह मेरा पति इष्ट है– यह वाक्य तीनों लोकों की लक्ष्मी बोली जिस राजा का पाकर जो राजा हितकारी था ।।11

जो श्री राजेन्द्रवर्मन इस नाम से विख्यात् उसके पूर्वज मानव को, राजधर्म को अधिक धन को बढ़ाता हुआ पृथिवीपालक हुआ था ।। 12

सुन्दर रीति से इन्द्रियों का दमन करनेवाला 'सुदम' धर्म और नीति के द्वारा बारह के आधे छः शत्रुओं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य= अन्य शुभ द्वेषरूप शत्रुओं को दुख से दमन करने योग्य शत्रुओं को स्वयं दुर्दम बनकर अचूक शक्तिवाला दूसरे कार्तिकेय के समान संसार में हुआ था ।। 13

जिसके मुखकमल में लक्ष्मी, मुख के अन्दर सरस्वती निवास करती है जिसकी कीर्ति मानो डाह से दिशाओं और दिशाओं के अन्त में दूर चली गयी थीं ।। 14

जिसके द्वारा समुद्र के समान पृथिवी पर गुणों के रत्न रूप से राज्य शासक रूप से प्रजाओं के सभी उपकार किये गये ।। 15

जो दया से भीगा हुआ भी सर्वत्र अभिमानी शत्रु पर घृणा ही न है क्योंकि सिंह नीच पशु-पक्षियों को एवं इन्द्र को बाधा नहीं पहुँचाता है ।। 16

जो वैरियों के देवों को युद्ध में मारकर अपने अन्दर स्थित उनकी स्त्रियों को अपने तेज से फिर जलानेवाला हुआ ।। 17

जिसके द्वारा नीति से रक्षा करने पर वसुधा कुशल-मंगलवाली हुई ।

मानो दूसरे मनु के समान प्रजा रूप धान्य को हल से उगाया ।। 18

'यह मेरा अंश है' राजा कान्ति से न जीतने योग्य है इस अर्थ से मानो जिसके लिए दूसरे चन्द्रों से चन्द्र की कान्ति के मद से शिव समान मालूम पड़ता था ।। 19

उसके आचार्य बुद्धिमान गुणवालों से अधिक गुणों से गुणशाली हैं। शिव की पूजा में नित्य रत रहनेवाले अतएव 'रुद्राचार्य' इस नाम से प्रख्यात हैं ।। 20

इन्द्रियों के संयम करनेवालों में श्रेष्ठ, धनियों में धनों से अधिक धनवान् जो कुल के कल्याण को बढ़ाता हुआ, वंशों से अग्रेसर किये गये ।। 21

ज्ञान सबसे बड़ा तीर्थ है– इस अर्थरूप शुद्ध जल से धोये शरीर से लौकिक तीर्थयात्रा को दूसरी ही तरह की गिनते हैं ।। 22

जिसने पढ़ ली है सभी विद्याएँ अतएव विद्या के समुद्र के अध्ययन करनेवाले जिनके अध्यापक सभी विद्याओं के समुद्र के समान हैं, उनसे सभी विद्या रूप समुद्र का अध्ययन कर चुके हैं ऐसे हैं देवों के गुरु बृहस्पति के समान उनका नाम है 'भगवान् शिव सोम' ।। 23

अपने सभी शिव भक्तों के कुलों के जो आश्रम में स्वामी हैं । माहेश्वर आश्रम नामक स्थान पर राजाओं के पूज्य कुलपति हैं ।। 24

जिसने 'श्री नृपतीन्द्रायुध' नाम पाया क्योंकि नृपतियों के इन्द्र रूप शत्रु के जीतनेवाले हुए और युद्ध में तलवार रूप हथियार से जीता ।। 25

शम्ब में शैव में ये दोनों लिंग साथ ही देवी की प्रतिमा उन्हीं के द्वारा यहाँ स्थिर बुद्धि से कीर्ति के कीर्तन में स्थापित किये गये ।। 26

गाय, हाथी सहित भैंस, दासी, इन्द्रियों के दमन करनेवाले दास, धन, रुपये, रत्न, तांबे, इनसे धनी साथ ही खेत इनमें उन्होंने दिये ।। 27

इनमें दिये ये द्रव्य साँप के विष के समान हैं । दूसरे जन्म में सुख चाहनेवाले अपनी मृत्यु से डर कर नहीं कुछ हरण करें ।। 28

तुम बन्धुओं का कल्याण हो फिर जो लोग हमारे अधिक प्रिय बन्धु हों

वे वाणी, मन और कार्यों से इस पुण्य को जो अविनाशी है रक्षा करें ।। 29

शनि सहित शुक्र, गुरु, बृहस्पति में सिंह राशि रहने पर.........चन्द्र में.....
..शुक्र सहित बुध में कुम्भ रहने पर, सूर्य में मीन रहने पर कुबेर के दिन में फाल्गुन के शुक्ल पक्ष की द्वादशी में यहाँ लिंग 861 शाके में स्थापित हुआ ।। 30

श्रीमान् राजेन्द्रवर्मन के शासन से कल्पित..........मेरे लिंग पुरेश्वर में......
.....।। 31

सदा अप्सर पद से रुद्र में चार प्रस्थ चावल पिण्ड प्रकल्पित दिया जाय मेरे तीस दासों के द्वारा ।। 32

शिवेन्द्रियपुर से सब कल्पित कच्चा चावल दस दासों के द्वारा सदा मेरे देव दिन में.....दिया जाये ।। 33

और सीता नदी के तीर पर स्थित देवी के लिए एक आढ़क चावल दिया जाय । मेरे तुंगत डाग से मेरे पैंतीस दासों के द्वारा ।। 34

शिवपादपुर में शिव में शुभ दो प्रस्थ चावल प्रदत्त हो दस दासों के द्वारा मेरे पिण्ड के लिए कल्पित हो ।। 35

और इस मेरे समग्र 'मोक' ग्राम में दो प्रस्थ चावल पिण्ड हो । वहाँ महेश्वर में प्रतिदिन मेरे दो दासों द्वारा दिये जायें ।। 36

'छन्देन' शिवपुर नामक शिव में दो प्रस्थ चावल मेरे दस दासों द्वारा नैवेद्य रूप में कल्पित दिये जायें ।। 37

जब लिंग पुरेश्वर के भोग के यहाँ आने पर जो संकल्पित चावल है– वह पाँच खारी प्रमाण से फल से आढ्य मेरे प्रधान बन्धुजन दासता करें ।। 38

परम्परा से राजा के शासन से मेरे न अधीन यहाँ भी कुल के प्रधान में यदि पुण्य से प्राप्त संन्यासी का प्रयत्न बन्धु सहित इनका परिपालन करने योग्य है ।। 39

सलिलामलक श्रीश में न टूटे दो प्रस्थ चावल मेरे दिये पाँच दासों द्वारा कुश और फूलों से परिकल्पित हों ।। 40

केतकी निलय देव में जो पुण्य देनेवाला है राजगुरु के गुरु के मेरे पाँच

दासों द्वारा दिया गया वहाँ दो प्रस्थ चावल हो ।। 41

मरुक्तलपुर में देवी के लिंग में शिवपुरालय में अमरेन्द्रपुर में भी श्री धन में जो अच्छी भक्ति पर वात्सल्य से व्यवहार करनेवाला है ।। 42

बीस दासों का विभाग यह संकल्पित है तीन देवों में पुण्य आदि कुश देने के लिए भक्ति से ।। 43

हवन करनेवाले, वेद जाननेवाले गुरु के द्वारा जो महान् मन्त्र के प्रभाव से अग्निवाले हैं । उनको शाप दिया गया कि जो यहाँ महेश्वर के धन का हरण पूर्व और दूसरे अपर बान्धवों द्वारा यदि हो तो ये भर जायें नरक में वे नरकभोगी यम के दासों द्वारा जब तक सूर्य चन्द्र से प्रदीप्त पृथिवी रहे तब तक हमेशा पकते रहें ।। 44

भूमि, कोष, खेत से युक्त दास, ग्राम सहित आदि मैंने जो वितरित किये, इसमें भद्रोदयेश में जो हरण करें वे रौरव नरक में अपने वंश के साथ जायें ।। 45

जो मेरे पुण्य को बढ़ावें, वे बान्धव हों या दूसरे लोग हों शिष्य सहित सहायक सहित उस पुण्य के आधे फल को लाभ करें ।। 46

मेरे अपने दास भी मेरे वाक्य का अनुकरण करें तो वे भक्ति के भागी बनें । इस भद्रोदय महेश में वे मेरी सभा में और स्वर्ग में भक्ति पावें ।। 47

उस 'नृपतीन्द्रायुध' धर्मी ने साधु जन में धार्मिक में यहाँ पुण्य की रक्षा करें यही उनका अपना पुण्य है, यह वाणी है ।। 48

जो श्री जयेन्द्रवर्मन इस नाम से ख्यात् राजमन्त्री महायशस्वी हैं उनके वंशज वे अच्छी नीति से अधिक धन, अधिक गुण, अधिक पराक्रम से युक्त हैं ।। 49

सुजनता से अर्जित पुण्य धर्म में निरत योगी धनाढ्य बुद्धि, शिवभक्त व्याकरण के अर्थ का ज्ञाता वह राजा में भक्ति से सर्वदा उन्नतिवाला है ।। 50

भद्रोदय ग्राम इस नाम से ख्यात् विद्वानों के मन्दिर में देवता का आलय विबुधालय=देवालय, देवमन्दिर में भद्रोदयेश्वर लिंग की स्थापना मेरे द्वारा हर्ष से की गयी ।। 51

पूर्व दिशा की ओर भूभाग में भास्कर पर्वत सोहता है । पुण्य जल से विशेष रंगा हुआ विशेष रम्य सद्भास्कर तीर्थ है ।। 52

वह शिव की रीति का तीर्थ है उस सोते के निर्मल जल कण है गंगा के मौलिक झरने से सिक्त भद्रोदयेश्वर हैं ।। 53

स्तूप देश से लेकर सीमा भी दक्षिण दिशा में स्थित है । राजा के आदेश से सिद्ध लोगों ने भूमि, खेत आदि पाये ।। 54

जहाँ दोलास्पद गिरि पश्चिम दिशा में स्थित है । वहाँ नदी के तीर्थ जल से ईश्वर का लिंग नहलाया गया ।। 55

उत्तर दिशा के भाग में विरालास्पद पर्वत पर उज्ज्वल त्र्यम्बकेश्वर यज्ञ करनेवाले के द्वारा प्रतिष्ठापित किये गये ।। 56

'दं रिं ख्लु' प्रदेश के अन्त तक भूमि की सीमा की अवधि का निर्धारण किया गया । श्रीमान् नृपतीन्द्रायुध पृथिवीभागी राजा के द्वारा लिंग स्थापित हुआ ।। 57

वहाँ स्वयम्भू भगवान् के लिंग को भद्रोदयमहेश्वर को प्रधान सीमा के रूप से स्थापित किया जो प्रसिद्ध है– वे अविनाशी हैं ।। 58

65

बकसी चमक्रौंग अभिलेख
Baksei Chamkrong Inscription

बकसी चमक्रौंग का मन्दिर अंगकोर थोम के थोड़े दक्षिण बखेंग पर्वत पर है। यहाँ के अभिलेख में भगवान् शिव, विष्णु, ब्रह्मा, शिव-विष्णु, शिव-देवी, वागेश्वरी तथा पौराणिक दम्पति कम्बु-स्वयम्भु और उनकी पत्नी मेरा, जिससे कम्बुज का वंशज प्रारम्भ होता है, की प्रार्थना की गयी है। उसके बाद श्रुतवर्मन से प्रारम्भ होकर राजा राजेन्द्रवर्मन की वंशावली दी गयी है। इन्द्रवर्मन, यशोवर्मन, हर्षवर्मन प्रथम, जयवर्मन चतुर्थ एवं राजेन्द्रवर्मन के द्वारा दिये गये दानों तथा बहुत से राजाओं के शासनकाल से हुई महत्त्वपूर्ण घटनाओं की चर्चा है।

इस अभिलेख में पद्यों की संख्या 48 है।[1]

1. *Journal Asiatic* (1909), pt. I, p.467

एकोप्यनेक हृदये........................

....।

भास्वत्तनौ सकल इन्दुरिवान्धकारे

....॥ 1

चन्द्रार्द्धमौलिचरणाम्बुजरा................

.................त भुवनमष्टत..........ति ।

प्रख्यापयन् प्रकृति शक्तिमन..........

... ... याञ्जलिन्ददादिवे... ...कारणेषु ॥ 2

साक्षी भवन् व्यवहृतौ परिणा..........

......................वोवुधीति..............।

यः प्राडविवाक् इव सभ्यतमः पटिष्ट..

................................नमताच्युतन्तं ॥ 3

वन्देऽरविन्दजं (अकी)र्ण्णदलैः प्रफुल्लम्

................................श्रयतोऽरविन्दं ।

वीर्य्यमद................रवे तमयोर्ज्जहास

....................स.........कसरदन्तराज्या ॥ 4

सिद्धिन्दधातु परमेश्वर शार्ङ्गिमूर्त्तिश्

श्ल.........प्रभापरिसरेण विशेषयन्ती ।

गङ्गेव यत्र यमुना सहिता सयत्न्याः

भाग्यापकर्ष विधिना मिलिताम्बिकायाः ॥ 5

वन्दे भवौ भुवनकारणमेक देहा-

वत्यक्त बुद्धिवदनेकगति प्रभिन्नौ ।

स्वर्ग्गापवर्ग्ग जन काविव धर्म्ममार्ग्गौ

हृधौ हिमाद्रिकनकाद्रि समागमामौ ॥ 6

गोरी गृणामि भयमीलित लोचना या

स्वेदोद्गम प्रचुर कण्टक मण्डिताङ्गी ।

रोषात् पिनाक धनुषो मदने पि दग्धे

बिद्धेव मार्ग्गणशतेन पुनर्व्विरेजे ॥ 7

वागीश्वरीचरण पङ्कयुग्म मीड़े

विद्वन्मसूसरसि रूढ़ मुपात्तरागम् ।
नम्रामरेन्द्र गणशेखर पद्मराग
संक्रान्तराग परिस्कृमिवोन्नरवार्च्चिः ॥ 8
गङ्गाच्छटा विजयते स्फुरिताच्छ विन्दु-
रिन्द्वर्द्धकोटि विषमान् नभसः पतन्ती ।
ताराकुलाकुलितजिह्नतरङ्गभङ्ग
विच्छिन्न तारमणि हार विजृम्भितेव ॥ 9
लक्ष्यापि वो दुरितमाधिषु धानिपीष्ट
लक्ष्मीपतेरिव तनोर्द्दिशि विश्वमूर्त्तेः ।
व्याप्ते जगत्यखिलमेक गुणेन यस्याश्
शोभामयेन परिशेषगुणेषु का वाक् ॥ 10
स्वायम्भुवन्नमत कम्बुमुदीर्ण्ण कीर्तिं
यस्यार्क्क सोमकुल सङ्गति माप्नुवन्ती ।
सत्सन्ततिः सकल शास्त्रत मोपहन्त्री
तेजस्विनी मृदुकरा कलयाभि पूर्ण्णा ॥ 11
मेरा मुदारयशसं सुरसुन्दरीणां-
मीड़े त्रिलोकगुरुणा पि हरेण नीता ।
या दक्षसृष्टयतिशयैषणया महर्षे
रक्षित्रयादरवता महीषीत्वमुच्चैः ॥ 12
श्री कम्बुभूभरभृतश् श्रुतवर्म्ममूला-
मौलादपास्तवलिबन्ध कृताभिमानाः ।
सन्नन्दकाः स्फुट सुदर्शनदृष्टवीर्य्या
मूर्त्ताश्चिकासति हरेरिव बाहुदण्डाः ॥ 13
यान् द्रिमिव रूढ़ विदूरभूमि-
मासाद्य सद्गुणमणिं मणिकारकल्पाः ।
कीर्त्यम्बुद्ध प्रतिरवाङ्करितन्नरेन्द्रास्
सञ्चस्क्रिरे निजरभारमणीभृजार्थम् ॥ 14
येषां प्रतापविसरं भुवनेषु कीर्ण्णम्
अन्यौज सां प्रशमनोद्यतमिद्धवीर्य्यम् ।

वीक्ष्यौर्व्ववह्निरिव जातभयो अगाध
अम्भोधि मध्यमगभत् प्रनिलेतुकामः।।15
श्रीरुद्रवर्म्मनृपतिप्रभुरवास्ततश् श्री-
कौण्डिण्य सोमदुहितृप्रभवाः क्षितीन्द्राः।
जाता जगन्त्रयविकीर्ण्णयशः प्रकाशा
दक्षाः प्रजाविरचने श्रुतशालिनो ये।।16
ब्रह्माण्डमण्डल विलीनभियेव येषा-
न्तीव्र प्रताप विसराक्कं सहस्र दीप्त्या।
आह्लादयन्ति परितो नु दिगम्बराणि
शश्वद्यशश्शुभनिशाकरमण्डलानि।।17
कान्त्या न केवलमकेलिनि पञ्चवाण
इत्यक्षिल क्षगतया जगतां पदे ये।
संमोहनोन्मदनमादन शोषदी पै-
रव्यूर्ज्जितैर्द्दशिरे युधिकर्ममिश्च।।18
तत्सन्ततावजनि यो जयवर्म्मनामा
श्रीमान्महेन्द्रशिखरे पदमादधानः।
कोटयाध्वरस्य शतयज्वजयी वशिष्ठो
राजन्यमौलिनिकषीकृत पादपीठः।।19
श्रीकम्बुभूभृदिनवङ्शल लाभ गोप्ता
गोवर्द्धनोद्धतिकरो नरकाहितो यः।
जिष्णुर्भुजङ्गदमनो वृषकण्टकारि
........कान्ति निधिरम्बुज लोचनामः।।20
कीर्तिन्दिवं शतमरवस्य च धूम्रिताभां
..........असंख्यमरव जैर्द्विषताज्य लक्ष्मीम्।
रक्तां रणेष्वसिलतां रुधिरैर्व्विभूत्या
शुभ्रा दिशश्च सुहृदो विदधे समं यः।।21
तस्यात्मजो जय्यजयश्रियो यो
रिपुञ्जयश् श्रीजयवर्म्मनामा।
वृद्ध प्रियत्वादिव वृद्धविद्या-

रागी युवा श्रीतरूणीविरक्तः॥ 22
बुद्धिं गुणं यो गुणवृद्धिहीनां
विकल्पयामास नयन्नयाढ्यः ।
युक्तयानुशास्ता प्रकृतिं परिष्ठो
मृजिं विधित्सन्निव संक्रमज्ञः ॥ 23
तन्मातुलस्येन्द्रनिभस्य भूत्या
यश् श्रीन्द्रवर्म्मेति बभूव पुत्रः ।
नरेन्द्रशब्देन भुवि स्थितोऽपि
लेभे सुखानीन्द्र पदे चिराय ॥ 24
सिंहासनं रत्नमयूख जालै-
राक्रामतो यस्य चितं नृपाणाम् ।
मूर्द्धाभिपादं मुकुटानि पेतु-
र्भानीव भानोरुदयन्नमस्तः ॥ 25
श्रीन्द्रेश्वरं लिङ्गमुमापतेश् श्री-
धराम्बिकादेः प्रतिमाश्च भूमौ ।
योऽतिष्ठिपत् दिक्षु च कीर्त्तिमिद्धा-
ञ्चखान वीर्य्यञ्च रिपस्तियक ॥ 26
तत्सूनुरासीदसमो यशस्वी
यश् श्रीयशोवर्म्म पदन्यधानः ।
आसूक्ष्म काम्रातपयोधिचीन-
चम्पादिदेशाद्धरणेरधीशः ॥ 27
अम्भोजनामस्य सुनाभिपद्मं
पद्मासनो नित्य मलङ्करिष्णुः ।
इतीव शम्नुः पुरुषोत्तमस्य
हृत्पद्ममध्यास्त चिराय यस्य ॥ 28
पञ्चाद्रिकूटेष्विव पञ्चमेरू-
कूटेषु च द्वीपतले महाब्धेः ।
शताधिकन्देवमतिष्ठिपद्यो
यशोधरं स्थानमपाञ्चखान ॥ 29

तस्याभवद् विष्टपहर्षकारी
श्रीहर्षवर्म्मातनुज प्रतीतः ।
चतुर्द्दिगीश क्षितिपाल मौलि-
माणिक्य मालाधुतिरञ्जिताङ्घ्रिः ॥ 30
शस्त्रे लघुर्य्यो यशसि प्रकाशः
स्तम्भः समाधौ प्रचलः परार्थे।
वीर्य्ये गुरुः संवरणश्च दोषे
सत्त्वस्थितोपि द्विगुणातिरेकी ॥ 31
स धर्म्मवृद्धैय विधिना पितृणा-
ज्यामी करीरीश्वर योरि हार्य्याः ।
इमाः प्रतिष्ठापितवान् मुरारे-
रिन्द्रादिपादे प्रतिमाश्च देव्योः ॥ 32
अथानुजस्तस्य जयी यशिष्ठः
सोदर्य्यजन्मा जितकाम कान्तिः ।
श्रीशानवर्म्मा तमसान्निहन्ता
कलाभिपूर्ण्णो नृपतीन्दुरासीत् ॥ 33
युक्त्यागमोदाहरणैः प्रसिद्धं
साध्यं प्रतिष्ठाय च धर्म्ममेकम्।
वादीव यः काममनेकमर्थं
नैयायिको निर्ण्णयमुन्निनाय॥ 34
पितृष्व सुस्तस्य पतिः पटिष्ठः
श्रियोज्ज्वलश् श्रीजयवर्म्मनामा ।
श्रियां विभूत्या भुवनत्रयस्य
स्थानं पुरी येन कृता महिम्ना ॥ 35
चिराय नाभ्यम्बुजधातृधारी
खिन्नो भवेदेष इतीव जिष्णुः ।
चतुर्भुजं भारवहो भुजस्यं
सन्दर्शयामास पराक्रमे यः ॥ 36
शर्व्वस्य लिङ्गं नवधा निमाभि-

श्चतुर्म्मुखादेर्न्नव हस्तनिष्ठं।
स्थानेऽधिके स्थापि महायदानं
सुदुष्करं लिङ्गपुरे च येन ॥ 37
श्रीहर्षवर्म्मातनयस्तदीयो
यो हर्षदायी जगतां विजेता।
तेजिष्ठवीर्य्यो यशसा वरिष्ठः
प्राज्ञः प्रभावाद विखण्डिताज्ञः ॥ 38
कौक्षेयको यस्य भुजप्रतिष्ठो
रणेऽरिपक्षक्षतजेन दिग्धः।
अधोक्षजेन क्षुभितस्य साग्ने-
र्ल्लक्ष्मी भुवाहाम्बुनिद्यौ महाद्रेः ॥ 39
भ्राता तदीयो वयसा गुणौधं-
र्ज्ज्यष्ठो जगद्गीत गुणोदयोऽभूत्।
यो राज्यलक्ष्म्या जितराजकश् श्री-
राजेन्द्रवर्म्मा जगती पतीन्द्रः ॥ 40
येन प्रयुक्ता खलु दण्डनीति-
र्व्विश्लेषकृत् कृष्णगतेः शुभश्रीः।
कल्याणवर्ण्णं स्थिति मादधाना
विडम्वयामास रसेन्द्र लक्ष्मीम् ॥ 41
कान्तिर्यदीया ललिता निसर्ग्गात्
सहस्रनेत्राण्यपि नन्दयन्ती।
कान्तिं त्रिनेत्रोरूरूषां विधात्रीं
स्मरस्य दूरादधरीयकार ॥ 42
अनेकपानेक धनप्रयुक्तै-
र्द्दानाम्बुभिः पुष्करपुष्कलाद्रैः।
सिक्ता स्रवद्भिर्भुवन द्रुमालीं
वे वेष्य्यते कीर्त्तिलता यदीया ॥ 43
शैवे पुरे सिद्धमजस्य लिङ्गं
सिद्धेश्वरं सिद्धविभूतिशुभ्रम्।

द्वीये तटाकस्य यशोधरस्य
निवेशितं येन च लिङ्गमर्च्चाः ॥ 44
स दिव्यदृश्वा परमेश्वरस्य
हिरण्मयीम प्रतिमां विधानैः ।
उपास्कृतेमां प्रतिमां प्रवीणः
प्रासाद शोभाञ्च सुधाविचित्राम् ॥ 45
जीवस् सौरयुतो मृगाधिपगति भौमस् सुमार्ग्गो बुधः
काव्येनाप्रघटाधियो दिनकरो मीनेश्वरश्चन्द्रमाः ।
पुष्येशोऽपि वृषोदतितो नवरसाङ्गैः क्रीड़मानश्शको
धन्या होत्रपदस्थिता ग्रहगणास् स्वस्थे यशस्स्वामिनि ॥ 46
धार्म्मिको भरति धर्म्ममधर्म्मो
बाधते यमनयोः सुबलीयान् ।
पूर्व्व इत्यमितधीर्न्न ययाचे
भाविनः सुकृतिनो नरदेवान् ॥ 47
देवद्रव्य विनाशे
सति धर्म्माचार विप्लुताचरिते ।
निर्द्दोषाः साधुजना
बहुकृत्वो ज्ञापनै राज्ञां ॥ 48
ओम् नमः शिवाय -॥

अर्थ–

एक भी अनेक हृदयों में.........सभी प्रकाशमान शरीरों में सभी अन्धकारों में चन्द्रमा के समान हैं ॥ 1

आधे चन्द्र मस्तक पर रखनेवाले शिव के चरणकमल.......उनको भुवन को........प्रकृति शक्ति को प्रख्यात करता हुआ.....अंजलि सोहने लगी.......कारणों में ॥ 2

व्यवहार में साक्षी=गवाह होता हुआ..........पुनः-पुनः अतिशय रूप से समझा बूझा जो वक़ील की तरह अतिशय सभ्य.......उन अच्युत भगवान् को नमस्कार करो ॥ 3

कमल से उत्पन्न बिना छिटके हुए पत्तोंवाले कमलों से सुविकसित कमल की सेवा करते हुए.....वीर्य बल........मद.........आकाश में हँसा........वह........अन्त राज्य वाली ।। 4

जो परमेश्वर है शारंग नामक धनुषवाले विष्णु की मूर्ति.......प्रकाश बिखेरने से विशेष आनन्दप्रदा गंगा के समान जहाँ यमुना सहित सौत के भाग्य की अवनति की विधि से मिली हुई अम्बिका महाराज्ञी के दोनों ईश्वरों की वन्दना करता हूँ। एक देहवाले दोनों सभी विश्व के कारण हैं ।। 5

बुद्धि द्वारा अस्पष्ट की भाँति अनेक गतियों से भिन्न स्वर्ग और मोक्ष के देनेवाले की नाईं दोनों धर्म के मार्ग हैं । मनोहर हैं हिमालय और सुमेरु पहाड़ स्वर्गीय सोने का है उन दोनों के समान प्रकाशमान हैं । इसमें एक साथ वस्तुतः एक किन्तु दो देहवाले दो देवों ।। 6

ब्रह्मा, विष्णु, महेश की वन्दना है । एक विष्णु एक शिव । एको देवः केशवो वा शिवो वा एक देव है केशव या शिव । श्री गौरीजी को प्रणाम करता हूँ कथन करता हूँ वर्णन करता हूँ । जो डर से आँख मूँदनेवाली हैं। पसीने से उत्पन्न होने से बहुत खड़े रोंगटे रूप काँटों से सोहते हैं अंग जिसके वह पिनाक धनुष जो शिव का है उसके क्रोध से कामदेव के जल जाने पर भी सैकड़ों बाणों से बिंधी हुई सी फिर विशेष रूप से शोभने लगी ।। 7

वाणी की ईश्वरी सरस्वती देवी के चरणारविन्द दोनों की स्तुति करता हूँ । विद्वानों के मन रूप सरोवर में प्रेम सोहनेवाली, उत्पन्न होनेवाली, बढ़ने वाली है। विनीत देवराज, गणेश, चन्द्रशेखर, नम्र देवराज इन्द्र और उनके देवगण सभी के सिरों के ऊपर स्थित पद्मराग मणि से भली-भाँति चढ़े हुए रंगों से सभी प्रकारों से रँगी हुई सी ऊँचे नखोंवाली लपट है जिसकी वह श्री सरस्वती जी हैं ।। 8

श्री गंगा जी की छवि की विजय है जो फड़कती छटाओं की बूँदों से युक्त सोहती है । करोड़ों अर्धचन्द्रों को बड़ों और छोटों को आकाश से गिरती हुई बरसाती हुई । ताराओं के समूहों से आकुलित टेढ़ी लहरों के भंग टेढ़ाई विशेष रूप से टूटे तारोंवाली मणि की माला-सी जम्हाई लेती हुई सोहती है ।। 9

लक्ष्य, ध्येय, उद्देश्य, तुम लोगों की मानसी व्यथाओं में पाप को नष्ट

किया। विश्वमूर्ति लक्ष्मीपति विष्णु के शरीर के समान दिशा में व्याप्त समूचे संसार में सभी लोगों के गुणों में वाणी क्या कह सकती है? ।। 10

स्वयम्भू ब्रह्मा, ब्रह्मा सम्बन्धी, ब्रह्मा द्वारा रचित कम्बु जिसकी कीर्ति प्रसिद्ध है, जिस सूर्य और चन्द्र के कुल की संगति पानेवाली अच्छी सन्तान सभी शास्त्रों के अन्धकार को दूर करनेवाली तेजवाली कोमल हाथों या किरणोंवाली पूर्णरूपा धारण योग्य है ।। 11

उदार यशवाली मेरा सभी देव सुन्दरियों में श्रेष्ठ हैं जिन्हें नमन करता हूँ, त्रिलोक के गुरु शिव द्वारा ले जायी गयी जो दक्ष प्रजापति की सृष्टि की अतिशय इच्छा से महर्षि के तीन नेत्रों के आदरवाले के द्वारा तू ही ऊँची पटरानी है ।। 12

श्री कम्बु की पृथिवी के अतिशय भार को धारण करनेवाले प्रसिद्ध वर्म वर्मा प्रसिद्ध पदवी=कवच मूलवाली बलि=उपहार, बन्ध से अभिमानी अच्छे आनन्दप्रद स्पष्ट रूप से सुदर्शन द्वारा देखा गया है वीर्यबल जिसका ऐसी विष्णु की बाँह रूप दण्डों के समान मूर्त रूप से शोभायमान है ।। 13

रोहण नामक पहाड़ के समान बहुत दूर तक भूमि में जमे हुए जिन्हें पाकर जो अच्छे गुण रूप मणि के रूप हैं मणिकार से थोड़े कम, कीर्ति रूप मेघ की प्रतिध्वनि से अंकुरित राजा लोग अपनी लक्ष्मी रूप रमणी के अर्थ का संस्कार करने वाले हुए ।। 14

जिन राजाओं के प्रताप का विस्तार सारे भुवनों में बिखरा हुआ है, दूसरे बलों के प्रशमन में उद्यत प्रदीप्त वीर्य बलशाली को देखकर पृथिवी के अन्दर की आग=ज्वालामुखी के समान उत्पन्न हैं डर जिससे अगाध रूप से बड़वानल-सा समुद्र के बीच गया छिपने की कामना से। अन्य राजा लोग डरकर समुद्र में छिप से गये ।। 15

श्री रुद्रवर्मन राजा हैं प्रमुख जिनमें ऐसे लोग इसके बाद श्री कौण्डिन्य सोमा की पुत्री से उत्पन्न राजा लोग हुए जो तीनों लोकों में अपनी कीर्ति के प्रकाश को फैलानेवाले हैं और दस हैं, प्रजा के रक्षण में और जो अखिल ज्ञानों के सुन चुकने वाले हैं ।। 16

मानो समस्त ब्रह्माण्डों के विलीन होने के डर से जिन राजाओं के तेज

प्रताप के फैलाव हजारों सूर्यों के प्रकाश से दिशाओं और आकाशों को सभी ओर से आनन्दित करते हैं । सदा यश रूप कल्याणकारी चन्द्रों के गोले से मालूम पड़ने वाले हैं ।। 17

जो राजा कान्ति से न केवल सुन्दर हैं साक्षात् कामदेव हैं ऐसा लक्षित होता है लाख आँखों से सभी भुवनों के पद पर जो हैं । सम्यक् रूप से मोहित करने, मतवाला बनाने, मद बढ़ानेवाले, प्रकाशों से भी अतिशय बल और प्राणों से युक्त लड़ाई में अपने कामों से देखे गये ।। 18

उनकी सन्तानों में पैदा हुआ जो जयवर्मन नाम का वह श्रीमान् महेन्द्र शिखर पर पैर रखनेवाला, करोड़ों यज्ञों के करने से सौ अश्वमेधों के करनेवाले इन्द्र को जीतनेवाला वसिष्ठ-सा राजाओं के समूह के मस्तकों की कसौटी है जिसके पैर रखनेवाला पीठा- ऐसा जयवर्मन राजा है ।। 19

श्री कम्बु के राजा चन्द्र के वंश का जो वंश सुन्दर है उसका रक्षक है । गोवर्द्धन का उद्धार करनेवाला हाथ या किरणवाला नरक का जो शत्रु है जीतनेवाला है, कालिनाग को नाथनेवाला वृषासुर नामक राक्षस को मारनेवाला कान्ति का ख़ज़ाना, कमलनयन विष्णु के तेज के समान तेजवाला है- ये सभी गुण कृष्ण के हैं जो जयवर्मन में दिखलाये गये हैं- गोवर्द्धनधारी, नरकासुर को मारनेवाला, नाग नाथनेवाला (वृषासुर को मारनेवाला, कान्ति समुद्र कमलनयन- ये सभी कृष्ण के गुण हैं- चन्द्र वंश में उत्पन्न भी कृष्ण हैं- सभी गुण इस राजा में है)।। 20

जिसकी कीर्ति को देखकर स्वर्ग में इन्द्र की ज्योति धूमिल पड़ गयी, असंख्य यज्ञों के करने से उत्पन्न कीर्ति है जिससे शत्रुओं की लक्ष्मी को लाल तलवार रूप लता को रुधिरों से लाल तलवार को ऐश्वर्य से उजला बनानेवाला साथ ही दिशाओं को और मित्रों को जिसने स्वच्छ किया ।। 21

उसका पुत्र यज्ञ से लक्ष्मी जीतनेवाला, शत्रु जीतनेवाला, श्री जयवर्मन नाम का वृद्ध है प्रिय जिसको, विजय की जड़ है, वृद्ध के समीप जा उसकी सेवा करना यह गुण उसमें है । अतएव वृद्ध प्रिय होने से मानो युवक होकर भी श्री तरुणी से विरक्त रहनेवाला है ।। 22

नीति में अधिक ज्ञाता होने से यह करने वाला है । युक्ति द्वारा अनुशासन करनेवाला, प्रकृति को प्रसन्न करने अतिशय चतुर सम्यक् क्रान्ति का ज्ञाता प्रजापालन करनेवाला है ।। 23

उसके मामा जो इन्द्र समान हैं अपने ऐश्वर्य से उसका पुत्र जो श्री इन्द्रवर्मन है नरेन्द्र राज शब्द से व्यवहृत होनेवाला पृथिवी पर स्थित है भी वह बहुत काल के लिए इन्द्र पद पर सुखों को पानेवाला हुआ ।। 24

रत्नों की किरणों के समूहों से चमकनेवाला सिंहासन है आक्रमण से राजाओं के समूह के मस्तकों के मुकुट गिर गये । आकाश से मानो सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान होनेवाले मुकुट गिरे ।। 25

उमापति महादेव के श्री इन्द्रेश्वर नामक लिंग को श्रीधर विष्णु की प्रतिमा को पृथिवी पर श्री अम्बिका दुर्गा जी की प्रतिमा को प्रतिष्ठित किया जिसने सभी दिशाओं में प्रकाशमान कृति को बिखेरा और तड़ाग खुदवाया ।। 26

उसका पुत्र था विषम यशस्वी जो श्री यशोवर्मन पद का धारण करनेवाला था। वह काम्रात समुद्र से लेकर चीन, चम्पा आदि देशों की पृथिवी का स्वामी था ।। 27

विष्णु की नाभि के कमल को नित्य ब्रह्मा सुशोभित करनेवाले हैं, यही मानो समझ करके महादेव जी जिस विष्णु के हृदयकमल पर निवास करनेवाले हुए ।। 28

मानो पाँच पर्वत समूहों में पाँच सुमेरु पर्वत के समूहों के समान जो स्वर्ग में हैं और महासागर के द्वीप के तल में सौ से अधिक देवों की स्थापना की जिसने और यशोधर तड़ाग खुदवाया ।। 29

उसका पुत्र श्री हर्षवर्मन जो दोनों के हर्ष को बढ़ानेवाला था, चारों दिशाओं के स्वामी राजाओं के मस्तकों के माणिक्य की मालाओं के प्रकाश से रंगे हुए पैरोंवाला राजा था ।। 30

शस्त्र में जो लघु है, यश में प्रकाश है, समाधि में खूँटे के समान है स्थिर है । दूसरे के उपकार में चलनेवाला है । वीर्य बल में भारी, विशाल है। दोष में छिपानेवाला है । एक सत्त्व गुण जो विष्णु=पालक का गुण है उस सत्त्व गुण से

युक्त होकर भी रजोगुण और तमोगुण के अतिरेक वाला है ।। 31

वह धर्म की बढ़ती के लिए विधि से पितरों के कल्याण करनेवाले दोनों देवों शिव विष्णु रूपों की पूजा करनेवाला है। इन देवों की प्रतिष्ठा करनेवाला था, विष्णु इन्द्र आदि एवं देवियों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करनेवाला था ।। 32

इसके बाद उसका छोटा भाई जय करनेवाला, यशस्वी सहोदर जन्म लेनेवाला, कामदेव की सुन्दरता को जीतनेवाला श्री ईशानवर्मन अन्धकारों का प्रकाशक कलाओं से पूर्ण राजाओं में चन्द्रमा के समान था ।। 33

युक्ति से शास्त्रों के उदाहरणों से प्रसिद्ध साध्य एक धर्म की प्रतिष्ठा करके जो यथेच्छ रूप से अनेक अर्थवाले वादी के समान न्याय का ज्ञाता होकर निर्णय की उन्नति जिसने की थी ।। 34

जिसकी फुआ के पति चतुरतम लक्ष्मी से उज्ज्वल, श्री जयवर्मन नामक तीनों भुवनों की लक्ष्मी की विभूति ऐश्वर्य से, महिमा से जिसके द्वारा पुरी स्थान बनाया गया ।। 35

बहुत काल तक नाभिकमल पर ब्रह्मा को धारण करनेवाला विष्णु दु:खी न हों मानो यह सोच कर जीतनेवाला राजा अपनी बाँहों पर स्थित विष्णु के भार को ढोनेवाला बनकर पराक्रम के विषय में जो दिखलानेवाला था ।। 36

शिव के लिंग को नौ प्रकारों से नौ रूपों से निमाओं से चतुर्मुख ब्रह्मा आदि देवों के नौ हाथों के मूर्त रूपों को अधिक स्थान पर स्थापित किया जो बहुत दुष्कर कार्य था, जिसके द्वारा लिंगपुर में स्थापनाएँ की गयी थीं ।। 37

उसका पुत्र श्री हर्षवर्मन जो भुवनों का विजयी और हर्ष देनेवाला, अतिशय तेजोंवाले वीर्यबल से युक्त, यश से अतिशय श्रेष्ठ पण्डित अपने प्रभाव से आज्ञा चलानेवाला जिसकी आज्ञा का विशेष रूप से खण्डन करनेवालों का अभाव था ।। 38

जिसकी भुजाओं की प्रतिष्ठा माता के उदर से ही थी, युद्ध में शत्रु पक्ष के द्वारा कटने के घावों से बढ़ा हुआ बलवान् विष्णु के द्वारा क्षोभ को प्राप्त अग्नि सहित लक्ष्मी का निर्वाह महापर्वत के समुद्र में किया था ।। 39

उसका भाई उम्र से गुणों का समूह, ज्येष्ठ संसार द्वारा गाये गये गुणों का उदय हुआ था जो राजलक्ष्मी से सभी राजाओं को जीतने वाला श्री राजेन्द्रवर्मन जगतीपतियों का स्वामी था ।। 40

जिसके द्वारा दण्डनीति का प्रयोग किया गया, कृष्ण की गति का वियोग करनेवाला था, शुभ लक्ष्मीवाला, कल्याणकारी वर्णों की स्थिति को धारण करनेवाला, रसेन्द्रलक्ष्मी की विडम्बना करनेवाला था ।। 41

स्वभावत: जिसकी कान्ति सुन्दर थी, जो हज़ारों आँखों को खुश करनेवाली थी, जिसकी कान्ति त्रिनेत्र शिव के हृदय के क्रोध को पैदा करनेवाली जैसे कामदेव पर क्रुद्ध हुए थे । दूर से ही जिसकी कान्ति कामदेव को नीचा दिखानेवाली थी ।। 42

जिसकी कीर्तियों की लता अनेक दो दो से पीनेवाला हाथी, अनेक धनों के प्रयोगों से, मतवाले हाथियों के मद जलों से पुष्कर और पूर्ण जलों से सिक्त भुवनों के पेड़ों की पाँती से चूनेवाले जलों से पुन:-पुन: अतिशय रूप से घेरी हुई कीर्ति रूपी लत्ती है जिसकी ऐसा राजा था ।। 43

शैवपुर में न उत्पन्न होने वाले शिव के सिद्ध लिंग को सिद्धेश्वर को जो सिद्धों के ऐश्वर्यों से उज्ज्वल हैं, यशोधर तड़ाग के द्वीप में लिंग को बैठाया, पूजा की ।। 44
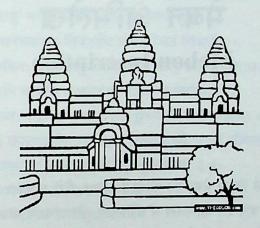
वह दिव्य दृष्टिवाला था, विधानों से परमेश्वर की सुवर्णमयी प्रतिमा को छिटकती शोभावाली प्रतिमा को प्रवीण राजा ने देवमन्दिर और राजमन्दिर– दोनों का नाम प्रासाद है, उस प्रासाद की शोभा को जो अमृत के समान विचित्र शोभा है, ऐसा प्रासाद राजा ने बनवाया था ।। 45

बृहस्पति शनि से युक्त, सिंह मंगल से युक्त सुपथ का पथिक बुध शुक्र से कुम्भ राशि के स्वामी रवि, मीन के स्वामी चन्द्र पुष्प के स्वामी वृष राशि के उदय में 961 शाके में सभी ग्रहों का समूह होता के पद पर स्थित थे, धन्य समय में यश के स्वामी के स्वस्थ रहने पर देव मन्दिर का निर्माण किया गया था ।। 46

धार्मिक धर्म का भरण-पोषण करता है अधर्मी धर्म को बाधा देता है, जो इन दोनों में अतिशय सुन्दर बली है । पहले इस बड़ी बुद्धिवाले ने न याचना की

जो धर्मी राजा हैं भविष्य में होनेवाले हैं, वे धर्मी हों तो रक्षा करें अधर्मी तो बाधा पहुँचानेवाले हैं। ऐसी याचना की थी ।। 47

देव-सम्बन्धी द्रव्य के विनाश होने पर धार्मिक आचार नष्ट होने से विप्लव के आचरण सज्जन लोग निर्दोष हैं ऐसा बहुत बार राजाओं के मध्य ज्ञापन किया ।। 48

शिव जी को नमस्कार है ।

66

मेबन अभिलेख
Mebon Inscription

अंगकोर थोम के निकट मेबन का मन्दिर है । शिव, गौरी, नारायण, ब्रह्मा और गंगा की प्रार्थना के बाद इस अभिलेख में कौण्डिन्य और सोमा से प्रारम्भ होकर राजा राजेन्द्रवर्मन की वंशावली है । इसमें राजा की विस्तृत प्रशस्ति हम पाते हैं । धार्मिक कार्यों की सिद्धि हेतु विभिन्न स्थानों पर राजा द्वारा निर्माण के लिए नींव डाली गयी थी जिनमें सिद्ध शिवपुर नामक स्थान में 'लिंग सिद्धेश्वर', इसी स्थान पर एक लिंग एवं पार्वती जी की दो मूर्तियाँ एवं पार्वती, विष्णु एवं ब्रह्मा की शिवलिंग के साथ मूर्तियाँ, जिन्हें 'श्री राजेन्द्रेश्वर' कहकर पुकारा जाता है, का भी वर्णन हम पाते हैं ।

इस अभिलेख में चम्पा शहर के जलने तथा बौद्ध सिद्धान्तों की भी विस्तृत चर्चा हमें मिलती है । राजेन्द्रवर्मन के इस अभिलेख में पद्यों की कुल संख्या 218 है ।

फिनौट द्वारा इस अभिलेख का सम्पादन किया गया था।[1]

त्रैगुण्याद्यशिरवीन्दु भास्कर कर प्रद्योतनोद्नीथजै-
रग्रैयः पद्मजकञ्जदृकत्रिनयनैरध्यासितैः शक्तिभिः ।
संरौधस्थिति सम्भवात्भरतये भिन्न स्त्रिधैकोऽपियः
तस्मै नित्य चिते शिवाय विभवे राज्ञोऽर्थ-सिद्ध्यै नमः ॥ 1
रूपं यस्यनवेन्दुमण्डितशिखं त्रय्यां प्रतीतं परं
बीजं ब्रह्महरीश्वरोदयकरं भिन्नं कलाभिस्त्रिधा ।
साक्षादक्षर मामनन्ति मुनयो योगाधिगम्यन्नमः
संसिद्ध्यै प्रणवात्मने भगवते तस्मै शिवायास्तुवः ॥ 2
एका...प्राक् कलहंस विभ्रमगतिः कान्तोन्मदायासती
भित्त्वाङ्ग गगनोदतात्मरते या तानवत्वं पुनः ।
पद्मं मानससंभृतं निजरुचि प्रोज्जृम्भितं विभ्रती
सा शक्तिः शिव सङ्गजोदयरकरी गौरी परा पातुवः ॥ 3
येनैतानि जगन्ति यज्वहुतभुग्भास्वन्नमस्वन्नमः
क्षित्यम्मः - क्षण दाकरैः स्वतनुभिर्व्यातन्वतै वाष्टभिः ।
उच्चैः कारणशक्तिरप्रतिहता व्याख्यायते न क्षरं जीयात् ।
कारणकारणं स भगवानर्द्धेन्दु चूड़ामणिः ॥ 4
नारायणन्मत यो विभुतां वितन्वन्
लोकत्रयन् त्रिपदलङ्घितमात्रमेव ।
द्रष्टा तुरीयपदमाप्तुमिवाधुनापि
निद्राच्छलेन विदद्याति समाधिमब्धौ ॥ 5
अम्भोजभर्ज्जयति यो वदनैश्चतुर्भि-
रोङ्कारवारिदरवं समभुज्जगार ।
क्षेत्राहितन् त्रिभुवनोदय पूरणार्थ-
उच्छूनता मिव नयन्निजवीजमाद्यम् ॥ 6
मन्दांशुमण्डलविनिर्गत वारिधारा

---

1. *BEFEO*, Vol. XXV, p.309. विस्तृत विवरण के लिए लेखक का *Select Cambodian Inscriptions*, Delhi-7, 1981 देखें।

मन्दाकिनी जयति धूर्ज्जटिना धृता या ।
मूर्द्धा नगेन्द्रतनयार्द्ध शरीर सन्धेः
प्रमानुबन्धमिव दर्शयितुं प्रकृष्टम् ॥ 7
आसीदानीर राशेर वनिपतिशिरोरत्नमालार्च्चिताङ्घ्रि-
र्वाला दिव्याभिधानोऽप्यरिकुलक मलोपप्लावाखण्डचन्द्रः ।
खोभा कौण्डिन्य वंशाम्बरतल तिलको भूपतिर्भूरिकीर्त्ति-
र्दोर्द्धण्डोद्योतिता निन्दित पुरभरितनं राज्य लक्ष्मीं वहन् यः ॥ 8
प्रोद्दृप्तद्विषतान्दद्यद् युधिबधूवैधव्यदीक्षाविधिं
बद्व्वन् यश् शिशिरांशुरश्मि विशदां सत्कीर्त्तिमालां गुणैः ।
स्वर्गद्वारपुरे पुरन्दर प्रस्पर्द्धिसंवर्द्धने
सार्थश् शार्व्वमतिष्ठिपत् सविभवं लिङ्गं विधानान्वितम् ॥ 9
ब्रह्मक्षत्र परम्परोदयकरी तद्भागिनेयी सती
पुण्यन्नाम सरस्वतीति दधती ख्याता जगत्पावनी ।
नानाम्नायगिरां गम्भीरमधिकं पात्रं द्विजानां वरं
सिन्धूनामिव सिन्धुराजमगमद् या विश्वरूपं प्रियम् ॥ 10
सोमाद्य सारभूते निजकुलनिवहे भूरिद्याम्नि व्यातीते
रुद्रोपेन्द्रामरेन्द्र प्रभृति सुरवैरस् सङ्गते नन्दनार्थम् ।
तद्वङ्शक्षीरसिन्धोः प्रविकलित यश पारिजाताभिजाता
लेभे जन्मावदाता भुवनहितकरी या द्वितीयेव लक्ष्मीः ॥ 11
या नाम्नापि महेन्द्रदेव्यभिहिता भूभृत्सुतैवेश्वरी
देवी दिव्यविलासिनी भिरसकृत्सङ्गीयमान स्तुतिः ।
भा स्वद्वङ्श-.-.-.- पुराधीशावनीशात्मजो
यां संप्राप्य महेन्द्रवर्म्मनृपति स सार्थामधादीश ताम् ॥ 12
लक्ष्मीन्तीक्ष्णेत रांशोरधिकमधरयेन् ध्वस्तदोषान्धकारो
वद्ध्रन् पद्मानुवन्धं प्रकटिततपसा तेन पत्या प्रजानाम् ।
देव्यान्तस्यामदित्यान्दि वसकर इवोत्पादितः कश्यपेन
श्रीमद्राजेन्द्रवर्म्मावनिपति रभवत्तेज सामा करो यः ॥ 13
दुग्धाम्बुराशेरिव पूर्णचन्द्र-
श्चण्डोशुरत्नादिव चित्रभानुः ।

शुद्धान्वयाद् यो नितरां विशुद्धः
प्रादुर्व भूवोखिल भूपबन्धः॥ 14
तेजः प्रकाशस्तमसो विनाशो
दिशां प्रसादः स्फुटता कलानाम् ।
यत्तिग्मतेजस्तुहिनांशु कृत्यं
येनोदये तन्निखिलं वितेने ॥ 15
रम्योऽपि सम्यक् प्रसवेन सौम्यः
सन्तानकस् सन्ततमुद्रतेन।
महाफलं यं समवाप्य भूयः
रूरोह कोटिं रमणीयतायाः ॥ 16
विबर्द्धमानोऽन्वहमिद्धकान्ति-
र्वपुर्विशेषेण मनोहरेण ।
यस् सर्व्वपक्षोदयमादधान-
स्तिरश्च कारैव हिमांशु लक्ष्मीम् ॥ 17
यः शैशवे ऽप्याशुं तया कलाभिः
पूर्ण्णोऽन्वहं शब्दगुणेऽति दीप्तः ।
यथा कला वत्त्वम पीन्दुलब्ध-
ज्जाड्यान्विदूरमधश्चकार ॥ 18
निरस्य दोषान् प्रसरं स्फुरन्ती
प्रकाशितार्था भुवनेऽश्नुवाना ।
विद्यानवद्येन मुखेन यस्य
प्राक् संगतैनीव दिनस्य दीप्तिः ॥ 19
आसाद्य शक्तिं विबुधोपनीताम्
माहेश्वरीं ज्ञानभयीम मोद्याम् ।
कुमारभावे विजितानिवर्ग्गो
यो दीपयामास महेन्द्रलक्ष्मीम् ॥ 20
पृथुप्रतीत प्रथितं गुणौद्येः
सद्वंशजातं प्रद्यने प्रद्यानम् ।
धनुर्महत् क्षत्रकुलञ्च तुल्यं

यश् शिक्षया नामयतिस्म् तुङ्गम् ॥ 21
शिष्टोपदिष्टं प्रतिपद्य सद्यः
क्षेत्रं यमुत्कृष्टमकृष्टपच्यम् ।
श्रद्धाम्भसा सिक्तमरक्षदुच्चैः ।
शास्त्रस्य चास्त्रस्य च बीजमग्रयम् ॥ 22
यः सर्व्वतस् सर्व्वगुणान् परिम्ना
रूचेस् सदाधारविशेष मुञ्झन् ।
उपाददे लोकहिताय भास्वान्
रसानिव प्रत्यहमस्ततन्द्रिः ॥ 23
उद्यानभागस्य वसन्त संय-
दिवाभृतांशोरिव पौर्णमासी ।
आभुष्णती यस्य विशेषशोभां
समुज्जजृम्भे नवयौवनश्रीः ॥ 24
यत्रापि पुंसो महतः प्रकृत्या
निरूपितं लक्षणमस्तशेषम् ।
केनाप्य सांख्यागमवद्विभाव्यं
प्रकाशयामास महेशभावम् ॥ 25
बाल्यात् प्रबृद्धं प्रभृतिप्रभूतं
यद् यस्य सौन्दर्य्यमनन्यलब्धं ।
ध्रुवं विधातावय वीचकार
तद्रञ्जयन यौवनकान्तिमृद्धाम् ॥ 26
निरुध्यमानः सततं मनोभू-
र्य्यस्य स्फुटे नूतन यौवने पि ।
सौन्दर्य्य सन्दर्शनजात लज्ज
इवान्ति कन्नोपससर्प दर्प्यात् ॥ 27
यस्याङ्ग लावण्य मनन्य रूढं
दृष्टा रतिः प्रेमनि मीलिताक्षी ।
मन्ये न मेने पतिमात्मनीनं
पिनाकिनेत्राग्नि शिखावलीढ़म् ॥ 28

धनुर्व्विकर्ष प्रततोरुशक्ति-
र्युव प्रवीरो युवराज लक्ष्मीम् ।
अयोनिजां यो जनकोपनीतां
सीतां सतीं राम इवोदुवाह ॥ 29

यदार्क्क बिम्बादिव हेमकुम्भा-
दम्भोभृते नागत्पताभिषेकः ।
ततः प्रभृत्येव विवृद्धिभाजा
भूतं हिमांशोरिव यस्य लक्ष्म्या ॥ 30

स्नानाम्बुभिस्तीव्रममन्त्र बन्धै-
स्तेजोनलो यस्य समेधतेस्म ।
तत्स्पर्द्ध येवाश्रुजलैः पतद्भि-
र्द्विषां समं शोक हुताशनोऽपि ॥ 31

अलङ्कृतेनाकृतकैश् श्रुताद्यै-
र्द्धद्यैर्न्निजाङ्गैश्च निसर्गकान्तैः ।
अग्राम्यभूषो पचयेन येन
विभूषणं मङ्गलमित्युपात्तम् ॥ 32

नवां नवां ध्यानमहाभिषेके
यो भुक्त रत्नाभरणा बभार ।
पीताम्भसः कुम्भभवेन लक्ष्मी-
मम्भोनिद्येरूदुत रत्न राशेः ॥ 33

उच्चावचेरूच्च पदाधिरूढै-
ग्रहैर्भियेवा कृत विग्रहोऽपि ।
आरोपितो यः स्वयमप्यकाङ्क्षः
सिंहासने हाटकशैलतुङ्गे ॥ 34

यस्याङ्गकान्तेः क्व तथानवद्यं
विद्येत मन्ये प्युपमान मन्यत् ।
संक्रांत मादर्शतले पि बिम्बम्
अनर्घ माधारवशान्निजं यत् ॥ 35

यत्राभिषिक्ते पततामीसार्द्रा

वसुन्धरा वारिधिचारुकाञ्ची ।
ऊर्द्ध्वीचकारै कमिवात पत्रं
यशस्स्फुरच्यन्द्र कलावदातम् ॥ 36
स्वलक्षणा लक्षित सर्व्वसम्पत्
फलं समाख्याति पुरो विपाकम् ।
यस्याशिषो विपग्रप्रयुक्ताः
कृतानुवादा इव सम्बभूवुः ॥ 37
द्विरेफमाला इव पारिजात-
न्धियो मुनीनाभिव चात्मयोगम् ।
व्यापार मन्यज्जगतां विहाय
दशो द्वितीयं प्रतिपेदिरे यम् ॥ 38
इतस्ततो विद्युदिवाद्युतत् श्री-
स्तावन्नृणाणां प्रचला प्रकृत्या ।
रम्या शरत् प्रादुरभून्न यावत्
यदीय यात्रा समयो निरभ्रा ॥ 39
तीबास्त्रनीराजन राजितश्री-
र्द्दीप्तो महामण्डल दीक्षया यः ।
विधाङ्गमन्त्रैश्च कृतात्म गुप्ति-
रासा (धय)त् सिद्धिमुदारभूतिम् ॥ 40
यस्मिन् विभज्य प्रचलत् पताकाम्
पताकिनीं दिग्विजयाय याति ।
द्विड्राजलक्ष्मीः प्रचचाल पूर्व्वं
उर्व्वी तु पश्चात् बलभारगुर्व्वी ॥ 41
निशम्य सौमित्रिमिवाभियाने-
ऽभिगर्ज्जितन्निर्ज्जितमेघनादम् ।
तूर्य्यध्वनिं यस्य दशास्यतुल्यै-
दूर्राद् द्विषद्भिर्विभयाम्बभूवे ॥ 42
प्रतापवह्लेरिव धूमजालं
बलोद्धतं यस्य रजः प्रयाणे ।

अपयस्पृशद् वैरिविलासिनीना-
मुदश्रयामास विलोचनानि ॥ 43
क्षमान्निपीड्य प्रथमं प्रवृत्तः
स्त्रोतांसि कालुष्यमथो रजोभिः ।
याने नयन् यस्य समुत्पपात
संघश्चमूनामिव बद्धरोषः ॥ 44
कीर्ण्णः क्वचिद् भज्जितभूमिभृद्भि-
रूवास्य मानः परवाहिनीभिः ।
क्वचिच्य यस्य प्रततः प्रयातुः
स्ववहिनीमार्ग्ग इवास मार्ग्गः ॥ 45
वियत् . -. - - वरणञ्जनाना-
ञ्चेष्यस्वशक्तिं विहतं प्रकाशम् ।
यद् यत् प्रदोषस्तनुते तमोभि-
स्तत्तच्च कारारिषु बलैर्य्यः ॥ 46
वितव्य पक्षद्वयमात्तनादं
यस्मिन् रयात् तक्ष्य इव प्रपन्ने ।
द्विण नागवृन्दं हतवीर्य्य सम्पत्
गन्तव्यता मूढ़तयावतस्थे ॥ 47
V. 48 illegible
बाणासनं विभ्रति यत्र युद्धे
शुद्धे शरत्काल इवाभिदृष्टे ।
इतस्ततो लीन तयाशु मोद्या
मेधा इवासन् लघवो नरेन्द्राः ॥ 49
V. 50 illegible
सत्ये विमूढ़स्य पतङ्गसाम्यं
समेत्य सानन्द इवारिवर्ग्गः ।
यद्वा हुदण्डारणिजञ्चलन्त-
न्तेजोऽनलं यद्विपदेऽभिषेदे ॥ 51
V. 52 illegible

निजासन प्राप्य रिपून्निरस्य
रुद्धा मरूद्वर्त्म मनोरयञ्च ।
विजित्य यस्याभ्यसतोऽवतस्थे-
प्यतन्द्र..........................।। 53
टण 54 पससमहपइसम
शिलामुखा मूर्द्धनि चापमुक्ता
झाङ्काररम्या द्विषतां निपेतुः ।
स्वस् सुन्दरी हस्तलताविमुक्त-
मन्दारगन्धानुगतास्तु यस्य ।। 55

....

....

....

चकर्त भूभृन्निवहोत्त्माङ्गम् ।। 56
शस्त्रब्रणास्त्रस्त्रुतिधार याद्रौ
रुद्धोप्यरीन्द्रर्युधि यो दिदीपे ।
द्वित् छाययाच्छादित एव भानु-
र्बिभ्रतनुत्रन्त्यजति स्वद्वीप्तिम् ।। 57

....

....

..........दुर्व्वार्य्य विकीर्ण्ण कीर्त्ति-
र्दशाननन्दुहृदमुन्निनाय ।। 58
न स्वीचिकीर्षुर्युधि चक्रिचक्रं
बज्रज्य नो बज्रभृतोऽपि जिष्णुः ।
यश् शक्तियुक्तो नु महेश्वरास्त्रं
सुदुस्सह्यं प्राप्य जितारिवर्ग्गः ।। 59

....

....

.........तन् त्वस्य विलासिनीनाम्
अभिद्यताराद्धृदयं स्वयञ्च ।। 60

योे मथ्यमानस् समरेऽरिवीरै-
र्गाम्भीर्य्ययोगान्न जहौ प्रसादम् ।
ह्रदो हि कालुष्यमुपैति भोगात्
स्तम्बेरमैरम्बुनिधिर्न्न जातु ॥ 61

....

....

विदिद्युते विद्युदिव स्फुरन्त्य-
जिह्वापि जिह्वेव भुजोरगस्य ॥ 62
स्निग्धासिपात प्रतिघातहाने
मुष्टेर्ल्लद्युत्वात् स्मृति विभ्रमाद्वा ।
पुनः प्रहारेण कृतेऽरिपाते
भुजापवादं बुभुजे भृशं यः ॥ 63

....

....

दिव्याङ्गनानामवतारणार्थं
सौपान सम्पत्तिमिवाकरोद् यः ॥ 64
रन्ध्रेऽभियोगं निजपक्षरक्षां
विभज्य यो दूषणसाधनाभ्याम् ।
हृतोत्तर प्राक्रममाततान
कुर्व्वन् पटुन्निष्प्रतिभ विपक्षम् ॥ 65

....

.................ततया फलत्वम् ।
विधेर्विद्येये विपरीत वृत्ते-
र्वृत्तं कृती योऽनुचकार युद्धे ॥ 66
संख्यानुनीतापि सदाभिमुख्ये
प्रागल्भ्यमिच्छत्यपि शत्रुसेना ।
पराङ्मुखी वीक्ष्य बभूव दूरा-
द्वधूर्न्नवोदेव समिद्रतौ यम् ॥ 67

....

शिलष्टे महाजौ विजयक्रियाञ्च ।
नापार्थको विक्रमसम्पदेति
यो युक्तमुक्तः खलु युक्ति विद्भिः ॥ 68
दुर्गाभिसंपर्क विवर्णदेहो
गुहान नालोचन लोल दृष्टिः ।
यस्यारिसंधो मृगकृत्तिवासा
वने स्थितः स्थाणुसमोऽत्यनीशः ॥ 69
...........................वरस्य
मनोरथो यस्य वृथा बभूव ।
नोर्व्वी यदुर्व्वीविजिगीषुतायां
वदन्यतायामपि नालमर्ची ॥ 70
प्रेङ्खत् प्ररूढ़स्फुट विद्रुमौधो
हरेस् समाक्रान्तिनिमग्न नागः ।
अन्तर्व्वनदुर्ग्गतयाब्धि तुल्यो
यस्यारिदेशोऽपि जहाति लक्ष्मीम् ॥ 71
.....................र्थसिद्धि -
मुद्योग युक्त स्त्रिगणस्य वृद्धैय ।
दिशश्चतस्त्रो विदितप्रयामा
जग्राह विद्या इव वालभावे ॥ 72
कृतावकाशं भुवने विभुत्वा-
दस्पृष्टमन्यैर्गुणिभिर्महीयः ।
संव्यश्नुते शब्द गुणानुबंधम्
यशो यदीयं खमिवाकलङ्कम् ॥ 73
..................क्षय कर्शिताङ्गी
प्राक् सुश्रुताचार विचारणाभिः ।
निः शेष दोष क्षपणेऽति दक्षा
यष् षड्रसाङ्गैर्धरणीं पुपोष ॥ 74
तदेव तेजो विजितान्यतेजः
पूर्व्वं महन्मण्डलमेव तच्च ।

भृशन्दिदीपे महदाधिपत्यं
यः प्राप्य भास्वानिव मध्यमह्नः ॥ 75
.........नाद्रीन्द्र मुदीर्ण्णसिंहं
यत्राधिरूढ़े सति तीव्रधाम्नि ।
न तारकाः केवल मस्तभासो
पतन्नृपाणां मणिमौलयोऽपि ॥ 76
एकत्र शुभ्रेऽपि शशाङ्कशोभे
समुद्धृते यस्य महातपत्रे ।
महीमशेषां प्रविहाय तापस्
समाससाद द्विषतां मनांसि ॥ 77
चिराय यद्रूपनिरूपणेच्छा
सञ्चोदिता नूनमशेष लोकाः ।
मत्स्यैरसंख्यैर निमेषभूयं
भूयोऽभ्यवाञ्छन् निजवाञ्छिताप्त्यै ॥ 78
लक्ष्मीन्दिदृक्षुः सहजां सुदृत्सु
यथाक्रमं स क्रमयाञ्चकार ।
सदर्प्पणां यो मणिदर्प्पणेषु
च्छायामिव स्वां परिभुक्तमूषः ॥ 79
यस्यातितेजिष्ठ तयास नीति-
र्न्नितान्तमृज्वी न यथा परेषाम् ।
मुक्तवाक्र्कचन्द्रौ न गतिर्ग्रहाणां
प्रतीपवक्रान्यतमस्य कस्य ॥ 80
सन्मन्त्र मूलैश्च तुरश्चतुर्मिस्
सामादिभिर्य्यो विविध प्रयोगैः ।
अपाय संरोधिभिरभ्युपायै
र्वेदैश्च संसाधयतिस्म सिद्धिम् ॥ 81
सदापि मूल प्रकृतिः प्रतीत-
श्चित्रं महत् कर्म्म च दर्शयन् यः
षाड्गुण्ययोगात् त्रिगुणं प्रधाने-

मतुल्यमाचष्ट विनापि वाचा ॥ 82
प्रायेण जिह्वोऽपि विधिर्व्विधेये
मन्त्र प्रभूत्सारु विशेषशक्तीः ।
अपाय दृष्टेः प्रतिकूलपक्षे-
ऽनुकूलयामास भियेव यस्य ॥ 83
त्रिवर्ग्ग संसर्ग्ग सुहृद्भिरारा-
द्राष्ट्रे गुणौधैरव भर्त्स्यमानाः ।
दोषा रूषेवाशु विपक्ष पक्ष-
मशिश्रियन् यस्य गुणाश्रयस्य ॥ 84
निर्म्मिद्य सद्यः स्वमवद्यनुद्यन्
यो न्यायिनोऽन्यान् विनिनाय युक्तया ।
तभांस्यापि घ्नन् सकलं कलङ्क-
मुपेक्षते स्वं क्षणदाकरो हि ॥ 85
सुशासनादव्यसनाच्च यस्य
प्रजासु जाता न विपत्तिशङ्का ।
अजातशत्रोरपि राजपुत्री
दुश्शासनात् प्राप परां पुरार्त्तिम् ॥ 86
छिदप्रतीक्षा प्रशभात्तशीलास्
सुदुर्द्धराः खण्डितधाममिश्च ।
यं पार्थिवं पात्रमवाप्य लक्ष्म्यस्
स्थेष्ठा इवापस् सुविदग्धमासन् ॥ 87
यश् शक्तिसिंहीं परितश्चरन्तीं
विद्राण्यहिंस्त्रामरिवर्ग्गमार्गे ।
वृषेण योगादुदित प्रजां तां
पुपोष लक्ष्मीं महिषीमवाप्य ॥ 88
अजीगणत् सूरिगणोऽतिराज्ञां
सहस्त्रदोषं धुरि कार्त्तवीर्य्यम् ।
यदा तदा सर्व्वगुणैरनूने
नूनं कथा का पुनरेव यस्मिन् ॥ 89

दिवः पृथिव्योरपि गीयमान-
ञ्जिष्वोर्य शोप्यर्ज्जित वीर्य्यसम्पत् ।
कर्ण्णासुखं श्रोतसुखस्य शङ्के
यस्योपमार्हं यशसो न जातम् ॥ 90
आक्रान्त दिग्व्योम्नि पयोमुचीव
प्रगर्ज्जिते यस्य यशस्यनात्तम् ।
न केवलं रत्नमुपायनन्द्राक
प्रादाद्र गजौधञ्च विदूरभूमिः ॥ 91
लक्षाद्धरोत्थैः स्थगयद्भिराशा
धूमैर्निरूद्धवार्क कराकरैर्य्यः ।
दिवञ्च शातक्रतवीञ्च कीर्त्ति
मलीमसत्वं युगपन्निनाय ॥ 92
यद्धर्मसन्दर्शनतोऽनुमान-
मग्नैस्त देवाव्यभिचारभुक्तम् ।
नवन्तु तद् यन्मखधूमदृष्टौ
बृष्टेर्ष सूनामनुमानमेव ॥ 93
स्वयं प्रपन्नाभिरयाचमानं
पूर्णं सुसम्पद्भिरिवाद्भिरब्धिम् ।
रिक्तोऽपि यं प्राप्य यथेष्ट पूर्ण्णः
पुनर्व्ववर्षाभ्र इवार्थिसार्थः ॥ 94
चक्षुर्मनोहार्य्यपि दर्शयच्च
कराग्र शोभाभापि सद्रसार्द्रम् ।
यस्येन्दुबिम्बं शुभरङ्गवृते-
नृत्तोपमार्हन्न कुरङ्गदुष्टम् ॥ 95
छायाश्रितोऽप्यन्यनृपो विजेतुं
दृप्तद्विषोऽलं किमुत स्वयं यः ।
आस्तां रविः संक्रमितोरूतेजा-
श्चन्द्रो न किं सन्तमसान्युदस्येत् ॥ 96
सन्दर्शयामास तथान्यभूषा

न भूरिशोभां मणिदर्पणञ्च ।
राज्ञां यथाज्ञा निजकर्ण्णपूरी
कृता यदीया नखदर्पण श्रीः ॥ 97
अन्योपि सन् केनचिदेव तुल्यो
गुणेन नो यन्महिमानमाप ।
नृत्तव्रतो याति हि नीलकण्ठो
न तावतैवेश्वरतां मयूरः ॥ 98
सदागतिः स्नेहकरी विभुत्वं
बिभ्रत्यदभं दधती प्रकाशम् ।
पृथ्वी यदीया रचनाञ्जगत्सु
धत्ते महाभूतमयीव कीर्त्तिः ॥ 99
वदन्यताशौर्य्यवपुर्व्विलास-
गाम्भीर्य्य माधुर्य्यदयादयो ये ।
तेषामिवैको निलयः प्रयत्न-
धियाधिको यो विदधे विधात्रा ॥ 100
प्रतीतवीर्य्यो भुवि कार्त्तवीर्य्यो
वीर्य्यं यदीयं द्विभुजोर्ज्जितं प्राक् ।
वीक्षेत चेदात्मभराय जन्ये
मन्येत मन्ये स्वसहस्रहस्तान् ॥ 101
दूरात् प्रतापैर्द्विषतां विजेतु-
र्यस्य स्वयुद्धन्नित रान्दुरापम् ।
गन्धद्विपस्येव मदोत्कटस्य
वित्रासितान्यद्विरदस्य गन्धैः ॥ 102
विहाय सङ्गं परदेवतासु
श्रद्धा च भक्तिश्च परा यदीया ।
श्रीकण्ठमुत्कण्ठतया प्रपन्ने
गङ्गाभवान्याविव देवदेवम् ॥ 103
सौन्दर्य्यसर्ग्ग..........विधाता.... ।
जातरूपमयस्तम्भं यमेकं भुव... ॥ 104

इत्थं कृत्तो मया कामो दग्धः किल पिनाकिना ।
इतीवेश्वरतान् नीतो विद्यान्ना षोडति सुन्दरः ॥ 105
............विद्या.......................।
..................चतुरास्य प्रजापतिम् ॥ 106
लक्ष्मीं वक्षस्स्थले क्षिप्त्वा कीर्त्तिम्पारेपयोनिधेः ।
विद्यया कामतो रेभे वृद्धयैव युवापि यः ॥ 107
जुगोप गां वशिष्ठस्य दिलीपः प्राक् प्रजेच्छया ।
लब्ध्वा प्रजास् स्ववीर्य्येण भार्गवीयस्......॥ 108
भुवनाप्लावनोद्वेले यत्कीर्त्ति क्षीरसागरे ।
छायाव्याजेन भूर्भीत्या नूनमिन्दु मुपाश्रिता ॥ 109
सहस्रभोग भरितो व ....भवोऽपि यः ।
अनन्त गुणयुक्तोऽपि विनतार्त्तिहितो भृशम् ॥ 110
उर्व्वीमावृण्व ताम्भोद्यिमेखलाभोग मण्डिताम् ।
एकच्छत्रेण महता मेरूर्येन वृथाकृतः ॥ 111
कलिकण्टक सम्पर्कादास्खलन् पादहानितः।
धर्म्मः कृतार्थतारस्तु यं समागम्य सुस्थितः ॥ 112
यस्या वीर्य्यानिलोद्धतो धामधूम ध्वजो युधि ।
द्विड्बधूनां विधूमोऽपि वास्पद्यारमवर्द्धयत् ॥ 113
अचिरमानिमारिश्रीः स्थेयस्या......द्यमाश्रिता ।
गुणानुबन्धबद्धापि कीर्ति..........प्रदिगद्गुता ॥ 114
रूढ़ः श्रीनन्दने यस्य रणे रक्तासिपल्लवः ।
बाहुकल्पद्रुमो दिक्षु यशः पुष्पमवाकिरत् ॥ 115
यद्याने दृप्त दन्तीन्द्र दन्तनिर्घात ताड़िता ।
रूषेवोर्व्वी महासत्वान् रजसातन्द्रमावृणोत् ॥ 116
समदिद्धे कृपाणाग्नौ मन्त्रसाधनबृंहितः ।
हत्वारिवक्त्र पद्मानि यस् साम्राज्यमजीजनत् ॥ 117
दृढ़ोऽप्यद्यृष्यसत्वोऽपि तुङ्गोऽप्युन्मूलिते....।
मथनेऽनन्तवीर्य्येण यो न भूभृत्कुलोद्रतः ॥ 118
तृषितेव द्विषां लक्ष्मीः प्लुष्टा तेजोग्निनाभृशम् ।

यस्य पुष्करजां धारां प्राप्य चिक्षेप न तत् क्षणम् ॥ 119
पादाम्बुज रजो यस्य चरितानुकृतेरिव ।
.......भूमृद्वराङ्गेषु पदं दत्वा श्रियन्दद्यौ ॥ 120
निद्राविद्राणदक् स्त्रीवज्जढरेणावहत् प्रजाः ।
हरिर्य्यस्तु हृदैवेशः सुवोधस्फुट पौरुषः ॥ 121
हप्तारीन्द्रं विजित्याजौ योऽनुजग्राह तत्कुलम् ।
.......................र्भिन्नेभेन्द्रो मृगाधिपः ॥ 122
निस्त्रिंशबल्लभं बद्धा गुणयुक्तैस्तु मार्ग्गणैः ।
ऋजुभिर्य्यो विजित्यारीन् भेजेऽर्थान् सद्गुणैरिव ॥ 123
निपीतन्नीलकण्ठेन कण्ठालङ्कृतये विषम् ।
विबुधानां.........र्थन्तु..........द्वान्तं वचोमृतम् ॥ 124
सान्द्रैर्य्यस्याध्वरे द्यूमैरूद्ध्वंगैरूद्धदृष्टिभिः ।
वृद्धोऽद्युनापि दिग्भ्रान्तैस् स्वद्युर्य्यैर्भ्राम्यति ध्रुवम् ॥ 125
सः य......धाम यो द्विट्समिद्भिस् समिन्मखे ।
अक्षीणान्दक्षिणां कीर्त्तिं दिग्द्विजेभ्यस् समादिशत् ॥ 126
द्विषताभ्यस्तशस्त्राणां प्रणामशिथिली कृते ।
चापस्यैव गुणे यस्य विरतिर्न तु धन्विनाम् ॥ 127
सुवृत्तोऽपि सुहृद्धद्यो भुजो यस्य महीभुजः ।
दुर्हृदाम् सुहृ(दाञ्चैव) प्रतीत सर्व्वदा रणे ॥ 128
एकद्रव्याश्रितं भावं ज्ञात्वा द्विङ्जातिभावितं ।
कर्म्मुकेषूचितङ्कर्म्म सविशेषं व्यधत्त यः ॥ 129
शूलिनाध्यासितां भक्तिगम्भीरां यस्य दद् गुहाम् ।
तन्नेत्रानलभीत्येव विविशुर्नान्य देवताः ॥ 130
रामाणां हृदयारामे तिष्ठन्तं कामतस्करम् ।
प्रजिहीर्षुरिवाश्रान्तो यो विवेश मुहुर्मुहुः ॥ 131
योगोद्यतोपि यः शान्तौ नाम्नैव द्विङ्भयङ्करः ।
दूराद्धिराजसिंहस्य गन्धं घ्रात्वा द्विपा द्रुताः ॥ 132
मन्त्रवीर्य्य प्रयोगाद्यं प्रप्यानन्यवरेव यम् ।
कृतार्था कामदा पृथ्वी करजामर्द्दमार्द्दवात् ॥ 133

युक्तिरेतावता व्यक्ता कान्तिरत्नेऽपि दर्शिते ।
यज्जगच्चित्तसर्व्वस्वमाहृतं येन सर्व्वदा ॥ 134
न्यस्तशस्त्रो वने सुप्तो हरिर्य्योगपरोऽप्यजः ।
कान्तार्द्धशद्यरो रुद्रो यज्जिगीषुं स्मरन्निव ॥ 135
स्फुटसीन्दीवरस्त्रस्त रक्तमद्ध्वासवेच्छया।
द्विट्छ्रीर्भृङ्गवि बभ्राम यस्य द्रोभ्रदिसन्निधौ ॥ 136
नक्षत्र कुलसम्पन्नं भूतानामवकाशकृत् ।
व्योमेवारिपुरं यस्य शब्दमात्रेण लक्षितम् ॥ 137
शरकर्मकुलो यस्य वाहिनीदुर्ग्गसङ्गतः ।
वने खड्सहायोऽरिः संयत्संस्थइवद्गुतः ॥ 138
वैरिणो ध्यानानिरता वीतरागा गुहाशयाः ।
यस्येशस्यांघ्रियोगेन विना नालं विभुक्त्ये ॥ 139
क्वाहंभर्त्ता परित्यक्ता श्वापदैः स्थातुमुत्सहे ।
इतीवारिपुरी यस्य प्राविशद् दाव पावकम् ॥ 140
यस्य सत्ववतो वीर्य्यं रणे दृष्ट्वा द्विषद्गणः ।
सत्वेत्सयेव सिंहादियुक्तमन्ववसद्वनम् ॥ 141
मन्दोन्मत्तोऽपि तुङ्गोऽपि नियोज्यो धर्म्मसाधने ।
इतीमेन्द्रगणो येन द्विगेमीयोऽदायि भूरिशः ॥ 142
विभक्ति प्रकृतीनां यः सप्रधा विदद्यत् पदे ।
तद्धितार्थ परश्चासीदागमाख्यातकृत्यषित् ॥ 143
प्रतापानलसन्तप्ता शङ्के दाहाभिशङ्कया ।
आप्लाविता सकृद्धात्रीयेन दानाम्बुवृष्टिभिः ॥ 144
सुमनोहारिणी यस्य गुणैर्बद्धा विकासिनी ।
लोकत्रयश्रियाद्यापि कीर्त्तिमाला द्यृताधिकम् ॥ 145
यस्य सागरगम्भीरपरिखा भस्मसात्कृता ।
चम्पाधिराजनगरी वीरैराज्ञानुकारिभिः ॥ 146
विवर्ण्णौ चरणौ यस्य नृपमौलिमणित्विषा ।
सर्व्ववर्ण्णनुरक्तातु निर्म्मलोर्व्वी भुजोद्धृता ॥ 147
कलिरेकान्तवामोऽपि दक्षिणो यस्य शासने ।

द्रुतारीननुदुद्राव तेजोनल भयादिव ॥ 148
तथा नीरनिद्येर्य्येन क्षोणी निष्कण्टकीकृता ।
नाद्यापि स्खलिता कीर्त्तिर्यथैका सर्व्वतोगता ॥ 149
गुणेषु मुख्यया वृत्त्या गौप्या द्रव्येष्ववर्त्तत ।
गणनापि मतं यस्य काश्यपीयमनुज्झतः ॥ 150
यथाकामन् द्विषद्कामः क्व निलील्यो नु निर्भयम् ।
यद् यस्य याने धूलिभिः सान्धकारीकृता दिशः ॥ 151
प्राध्वं कृता सदा प्रेम्णा विदज्धधियमुत्सुका ।
न निरास्थत यज्जातु राजविद्या कुलाङ्गना ॥ 152
साक्षात् प्रजापतिर्दक्षो दक्षिणक्षणमक्षिणोत् ।
सकलं सकलङ्कं यः कलिदोषाकरं कृती ॥ 153
सदा कृते मखशते यस्तैर्द्धूमनीरदैः ।
शरद्यपि नभश्चक्रे प्रावृषीव मलीमसम् ॥ 154
परस्त्रीविमुखो योऽपि सदाचार विदक्षणः ।
केनाप्याजौ परश्रीणां पाणिग्रहविधिं व्यधात् ॥ 155
यस्येनस्यान्यतेजांसि तेजसा जयतोदये ।
नून मौर्व्वानलोऽधापि लीनो स्पर्द्धितयाम्बुधौ ॥ 156
बद्धा विद्यात्राहीन्द्रेण रिक्ता नूनमियन्धरा।
येन स्वकीर्त्तिरत्नेन पूरयित्वा वृषाङ्किता ॥ 157
भिन्नेभकुम्भनिर्म्मुक्ता मुक्ता येन रणाङ्गने ।
रेजिरे विद्यवारिश्रीवाष्पानामिव विन्दवः ॥ 158
कीर्त्ति नादाम्बुदध्वान........................।
.....न् त्रिभुवन क्षेत्रे धर्म्मबीजमबर्द्धयन् ॥ 159
सिंहेन नोपमानार्हो यस्य शौर्य्येण संयुगे ।
तथा हि यद्भियारातिरध्यशेत गुहां हरेः ॥ 160
वानी राजीव राजांश.......................।
......सरोजानि निर्य्यान्ति मुखमण्डलात् ॥ 161
............................तेजोनल सङ्गता ।
कलिं न्यक्कुर्व्वती यस्य राज्यश्रीर्दभयन्त्यमृत् ॥ 162

यशोविस्तार संक्षिप्ता क्षितिर्यस्य..........।
....॥ 163
........................यमेक मति तेजसम् ।
नूनमुल्लेखितस्त्वष्ट्रा भ्रमि मारोप्यभास्करः ॥ 164
योग्यं वरं यमासाध मर्त्त्यलोके...........।
....॥ 165
तारयित्री तितीर्पूणी गम्भीरापन्महानदीम् ।
वेदव्यासन्न सुषुवे यस्य वाक् सत्यवत्यपि ॥ 166
ऋजवो गुणसम्पर्क्कादापदां प्रतिद्या(तकाः) ।
....॥ 167
जीर्ण्णाहीन्द्रेण विद्यृता साचलेयञ्चलोदिति ।
यूनि नूनं न्यद्याद् वेद्या यत्राहीने वसुन्धराम् ॥ 168
विभूतिर्भूतपूर्व्वापि राज्ञाञ्च गुणसंहतिः ।
....॥ 169
संभृताः क्ष्माभृतां लक्ष्मीरावाल्यात् कन्यका इव ।
यथाकालमुपायैर्यो निरुपायैरूपायत ॥ 170
शब्दशास्त्रेऽप्यधीनी यो विना द्विर्व्वचनंगुरोः ।
....॥ 171
यस्योपमानं सञ्जातन्न किञ्चिद् गुणविस्तरैः ।
बुद्ध्वा बौद्धं मतं मनेऽन्यतीर्थैरपि नान्यथा ॥ 172
कालदोषाम्बुद्यौ मग्ना दुर्गे गम्भीरभीषणे ।
....॥ 173
शुभं शुभंयुना यूना मनुवर्त्यानुवर्त्तिना ।
रसायनं विना भावि येन वर्षीयसाजरम् ॥ 174
विष्वग् विकीर्ण्णैर्य्युगपद् यस्य तेजोभिरुज्ज्वलैः ।
....॥ 175
राज्ञां कृत्यमिति ज्ञात्वा यस्य दुर्ग्गसमाश्रयः ।
न दानवभयादब्धिमद्यि शेते रिपुर्म्मद्योः॥ 176
अपि कामादयो दोषाः स्थाने येन नियोजिताः ।

गु..॥ 177
मनीषिभिर्म्भनोहव्य पिबद्भिश्चरितामृतम् ।
अतिपानादिवोद्गीर्ण्णं यस्य काव्यैर्न्निजैः सह ॥ 178
दोषान्धकार बहुलञ्जगज्जातं यथा यथा ।
मस्य...॥ 179
धर्म्मेण संस्तुतानां यो निषिद्ध्यजगतामपि ।
विनाशहेतुन्नातस्थे क्षणभङ्गप्रसङ्गिताम् ॥ 180
अनेकक्रतुरप्युच्चैः पदो गोचतिरप्यगात् ।
अक्रोधनस्य...॥ 181
भृगुमात्रमपि प्राप्य वह्नेः प्रतिहतं पुरा ।
तेजस्त्वधाक्षदि यस्यापि महान्तं वाहिनीपतिम् ॥ 182
वदन्य स्वश्रियञ्चक्रे सुहृत् साधारणीं हरिम् ।
वक्षोनिक्षिप्तलक्ष्मी...................................॥ 183
तर्षो हर्षेण संप्राप्य व्यनीयत वनीयकः ।
यं महान्तं हृदमिव प्रसन्नं स्फुट पुष्टरम् ॥ 184
असूर्य्यम्पश्यम सुहृत्स्त्रीव क्त्र कुमुदाकरम् ।
उच्चैः सङ्कोचयामास...................................॥ 185
पतच्छिली मुखच्छायच्छन्नद्विङ्वदनाम्बुजे ।
रराज राजहंसो यश्चरन् रणमहाहृदे॥ 186
सम्मुखीनो रणमुखे यस्य नासीदसीदतः ।
प्रेङ्खत्स्व खड्गसंक्रान्तं प्र................॥ 187
धनुर्द्दर्शनमात्रेण तीर्थध्वङ्क्षा द्विवो द्रुताः ।
कामं पुरो न यस्याजौ भुजङ्गारिरपि स्थितः ॥ 188
साल काननरम्यां यः स्फुट पुष्पशिलीमुखाम् ।
दुतेभ्यः पटवीं द्विङ्भ्यो योद्धृद्भ्यो.........॥ 189
प्रोल्लसत्कीचकशता कङ्कादिभिरूपाश्रिता ।
शून्याप्यरिपुरी येन विराटनगरी कृता ॥ 190
केवलं राजनागानां वीर्य्यं मंत्र इवाहरत् ।
यो नाद्यूनतया प्राणान् क्षिपन् ताक्ष्यं इव...॥ 191

दृष्ट्वा यस्याध्वरं शक्रयशोविभ्रंशशङ्कया ।
धूमस्पर्शच्छलान् नूनमुदश्रुनयना शची ॥ 192
रूद्धान्यतेजसो यस्य पादच्छायामशिश्रियन् ।
मेरोरिवेलापतयः सितच्छात्रत्यजोऽनिशम् ॥ 193
सृष्टौ चन्द्राक्कर्योर्ध्यानाताना दरादिव भिन्नयोः ।
यमेकं तपनाह्लादसमर्थमसमं व्यद्यात् ॥ 194
उपान्तसेवां वाञ्छन्त्यो यत्पादन्तीव्रतेजसम् ।
मौलिरत्नप्रभाम्भोभिरसिञ्चन् भूपपंक्तयः ॥ 195
नवं प्रियमहो लोके यद्विहाय धनुस् स्मरः ।
उन्ममाथाङ्गनाचित्तं यत्कान्त्यानुपमानया ॥ 196
स्फुटाष्टदिक् प्रान्तदले हेमशैलोरूकीर्ण्णके ।
यशो गन्धायते यस्य भुवनैकसरोरुहे ॥ 197
उद्वान्तरागः स्फुरितायस्याङ्घ्रि नखरश्मयः ।
अस्पर्द्धन्त नतोर्व्वीन्द्रमौलीरत्नमरीचिभिः ॥ 198
अन्वरूद्ध्यत यस्याज्ञां फलंप्रसव सम्पदे ।
आजन्म बन्ध्यश्चतोपि वशिष्ठस्य दिलीपवत् ॥ 199
सहस्रमुख संकीर्त्त्यें गम्भीरं गुणविस्तरं ।
यस्य भाष्यमिव प्राप्य व्याख्याखिन्नापिधीमताम् ॥ 200
श्रीमत् सिद्धेश्वरं लिङ्गं शिवपुरे गिरौ ।
वर्द्धयामास यो भोगैरपूर्व्वैः शिबिका दिभिः ॥ 201
तत्रापि लिङ्गं शर्व्वस्य शर्व्वाणी प्रतिमे शुभे ।
यः सम्यक् स्थापयामास पितृणां धर्म्मवृद्धये ॥ 202
यदुपक्रममासेव श्रीभद्रेश्वर शूलिनः ।
भोगोऽन्यत्रापि देवान् यः पूजाभिरूद्रमीमिलत् ॥ 203
विबृद्धिं धर्म्मसिन्धूनां श्रीन्द्रवर्म्मादिभूभृताम् ।
स्वमण्डलस्य च समं यश्चक्रे नृपचन्द्रमाः ॥ 204
यशोधरतटाकस्य दक्षिणेनापि दक्षिणः ।
यः शौरिगौरीशनिभाः शम्भोर्ल्लिङ्गमतिष्ठिपत् ॥ 205
स सोमवंशाम्बर भास्करश् श्री-

राजेन्द्रवर्म्मा तदिदं नृपेन्द्रः ।
स्वर्ग्गापवर्ग्गाद्यिगमस्य लिङ्गं
लिङ्गं प्रतिष्ठापितवान् स्मरारेः ॥ 206
संप्राप्तयोः प्राप्तयशास् स्वपित्रो-
र्भुवः पतिस् सोऽपि भवोद्भवेन ।
संस्थानतां स्थापितवान् स्थितिज्ञो
निभे इमे द्वे शिवयोश् शिवाय ॥ 207
महाभुजस् सोऽपि चतुर्भुजस्य
निमामिमाम्बुज जन्मनश्च ।
अतिष्ठिपन्निष्ठित राजकृत्यो
लिङ्गान्यथाष्यवपि चाष्टमूर्त्तेः ॥ 208
रत्नोल्लसद्भोग सहस्रदीप्तं
स चाप्यहीनं द्रविणस्य राशिम् ।
अशेषमप्येष्वदितेव शेषम्
देवेषु देवेन्द्र समान वीर्य्यः ॥ 209
स कल्पयामास महेन्द्रकल्पस्
सदा सदाचारविधिं विधेयम् ।
शैवश्रुतिस्मृत्युदितां सपर्य्यां
पर्य्याप्त मासा मिह देवातानाम् ॥ 210
स चापि बाचस्पति धीस् सुधीर-
न्धर्म्मानुगं धर्म्मभृतां पुरोगः ।
तान् भाविनो भावितराजधर्म्मा-
निदं वचोऽवोचत् कम्बुजेन्द्रान् ॥ 211
रक्ष्यस्य संरक्षणं..........यत्
स क्षत्रधर्म्मो विदितो यदा वः ।
पुण्यन्तदेदत् परिरक्षतेति
विज्ञापना साधयतीव सिद्धम् ॥ 212
धर्म्मो युगेऽस्मिन् स्थिरमेकपात् स
कथं समस्थास्यत सुस्थितोऽयं ।

भवादृशां शास्त्रदृशां स नो चेन्
महाभुजस्तन्नमुयाश्रयिष्यत् ।। 213
धर्म्मापदस् साधु..............कापि
लज्जेत कर्त्ता किमुत्त स्वयज्ज ।
रक्षाधिकारी नृपतिर्व्विशेषाद्
इति प्रतीतं भवतामिदन्तत् ।। 214
सन्तो यशोधर्म्मधना न बाह्यं
धनं धनायेयुरिहात्मनोऽपि ।
प्रागेव देवादिधनं सतां वो
विनिश्चयो यं ननु बद्धमूलः ।। 215
तथापि भूय..........यामि युष्मां
स्तदक्षतं रक्षत पुण्यमेमत् ।
मा हार्ष्ट देव स्वमिति प्रकाशं
न धर्म्महेतोः पुनरुक्तदोषः ।। 216
अभ्यर्थितोऽसूनपि संप्रयच्छेन्
महान्महिम्ना किमुत स्वकृत्यम् ।
अतश्च विश्रम्मबल प्रगल्भा
वाक् प्रार्थनाभङ्गभयोज्झितैषा ।। 217
शाकाब्दे गणयमाने कृतनगवसुभिर्माघमासस्य पुण्ये
शुक्लस्यैकादशाहे निमिषमपि भवे याति वर्षार्द्धमिन्दौ ।
अर्च्चाभिश् शौरिगौरीगिरिशकजभुवां सार्द्धमर्द्धेन्दुमौलेश्
श्रीराजेन्द्रश्वराख्यं स्थितिमकृत परां लिङ्गमत्रेदमाभिः ।। 218

अर्थ–

सत्त्व, रज, तम– इन तीनों गुणों के स्वामी, अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य की किरणों को प्रकाश प्रदान करनेवाले, वेदों से वंदित, सृष्टि स्थिति विनाश रूप अपने खेल के लिए सृष्ट्यादि काल में ब्रह्मा, विष्णु, महेश– इन तीन भिन्न शक्तिवान् रूपों में भासने पर भी जो सदा एक रूप में रहते हैं, उन नित्य चेतन श्री शिव जी को राजा के वैभव प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ।। 1

जिसका रूप नये चन्द्रमा के समान शुभ्र है, वेदों द्वारा जो सर्वश्रेष्ठ रूप में वर्णित है, संसार जिससे व्यक्त होता है, तीनों गुणों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, शिव– इन तीन भिन्न रूपों में जो अवतार ग्रहण करते हैं, जिन्हें मुनिगण साक्षात् अविनाशी बतलाते हैं, उन योग गम्य ॐकारस्वरूप भगवान् शिव जी को कार्यसिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ। वे हमलोगों पर कृपा करें ।। 2

जो हंसगामिनी, उन्मादक सौन्दर्यवाली पहले सती रूप में थीं, जो अपने शरीर को छोड़कर चली गयीं तथा पुनः शिवजी के प्रेम को पाने के लिए नवीन जन्म धारण की थीं। वह मानसरोवर में उत्पन्न कमलों को स्वेच्छा से उखाड़कर धारण करनेवाली तथा शिवजी के शरीर से सुख पानेवाली पराशक्ति गौरी हमारी रक्षा करें ।। 3

जगत् के जिस सर्वोच्च कारण के द्वारा अपने यज्ञ, अग्नि, सूर्य, वायु, आकाश, पृथिवी, जल और चन्द्रमा– इन आठ रूपों से जगत् में विस्तार लाया जाता है, जो जगत् के कारणरूप अप्रतिहत शक्तिवाले हैं तथा जो वेदों के द्वारा अविनाशी बताये जाते हैं, उन कारणों के भी कारण भगवान् अर्द्धचन्द्र चूड़ामणि शिवजी की जयकार हो ।। 4

श्री नारायण को नमस्कार करें जो विभुत्व प्रदर्शन मात्र के लिए केवल तीन ही पगों से तीनों लोकों को लाँघ गये हैं और अब मानो चतुर्थ पद (अन्तिम पद या वैकुण्ठ) को पाने की इच्छा से सोने का बहाना बनाकर क्षीरसागर में समाधि लगाये बैठे हैं ।। 5

उन ब्रह्माजी की जय हो जिन्होंने चारों मुखों से मेघगर्जन के समान गम्भीर नाद से ॐकार का उच्चारण किया है तथा तीनों लोकों की सृष्टि की पूर्णता के लिए किसान की तरह फूली (ऊपर निकली) हुई पृथिवी में अपने आद्य बीज को बोया है ।। 6

चन्द्रमण्डल से निकली हुई जलधारा रूप गंगाजी की जय है जिन्हें घनी जटाओंवाले शिवजी के द्वारा उत्तम प्रेम सम्बन्ध प्रदर्शन के लिए पार्वती जिनके आधे भाग में है– ऐसे शरीर के मस्तक पर धारण किये हैं ।। 7

आसमुद्र पृथिवी के राजाओं के मुकुटमणियों की मालाओं से पूजित

चरणवाला, शत्रु कुल कमल के सुखनाशक चन्द्रमा के समान जो था वह कौण्डिन्य-सोमा वंश गगनतल का तिलक अनिन्दितपुर के शासन दण्ड एवं पूर्ण लक्ष्मी का वाहक बालादित्य नामक राजा था ।। 8

रण में गर्वीले शत्रुओं की वधुओं को वैधव्य दीक्षा ग्रहण करवाता हुआ जिसने शिशिर चन्द्र की फैली हुई चन्द्रिका के समान अपने गुणों की कीर्ति की माला गुँथवाया, उसी राजा ने सम्पत्ति में स्वर्ग से होड़ लेनेवाले स्वर्गद्वार पुर में विभव और विधान के साथ शिवलिंग की स्थापना की ।। 9

ब्राह्मण, क्षत्रिय सम्मिलित कुल को अभिवृद्धि देनेवाली उसकी विख्यात जगत् पावनी, सती भगिनी पुत्री जो 'सरस्वती'– इस पवित्र नाम को धारण करती थी, वह अनेक गम्भीर वेदवाणी को धारण करनेवाले विश्वरूप नामक पति को ठीक वैसे ही प्राप्त हुई जैसे नदियाँ समुद्र को प्राप्त होती हैं ।। 10

विष्णु, शिव और रुद्र-जैसे श्रेष्ठ देवताओं की प्रसन्नता के लिए स्वर्ग में बहुत काल व्यतीत करने के बाद सोम जिसका आदिपुरुष है तथा यश रूप पारिजात जिसमें निस्सृत है, उस वंशरूपी क्षीरसागर की जगत् कल्याणकारिणी दूसरी लक्ष्मी की तरह ही जिसने पवित्र जन्म को प्राप्त किया है ।। 11

जो नाम से भी महेन्द्र देवी नाम की राजा की बेटी ईश्वरी ही देवी सुन्दरी विलासिनी जनों से बहुधा जिसकी स्तुति के ज्ञान होते रहे, तेजस्वी वंश की.......... पुर के अधीश राजा के पुत्र ने जिसे प्राप्त कर महेन्द्रवर्मन राजा ने ईशत्व को सार्थक किया था (जिसकी अर्द्धांगिनी लक्ष्मी-सी हुई उसका ईश्वरत्व सार्थक था)।। 12

तीक्ष्णतर किरणोंवाले सूर्य से भी अधिक तेज को धारण करते हुए, रात्रि के अन्धकार को नष्ट करनेवाले सूर्य को, दोष अन्धकार को नष्ट कर नीचा दिखाते हुए जिसने उग्र तप के द्वारा पद्मानुबन्ध प्रकट किया था– उस प्रजानाथ सम्राट् (महेन्द्रवर्मन) के द्वारा देवी (महेन्द्र देवी) में तेजों की खान राजेन्द्रवर्मन उत्पन्न हुआ ठीक वैसे ही जैसे कश्यप के द्वारा अदिति से तेजों की खान सूर्य उत्पन्न हुआ था ।। 13

पृथिवी के सारे राजाओं को पराजितकर बाँध लेनेवाले (राजेन्द्रवर्मन)

का क्षीरसागर से चन्द्रमा की तरह तथा सूर्य से चित्रभानु की तरह अत्यन्त शुद्ध वंश परम्परा में पवित्र जन्म हुआ ।। 14

तेज का प्रकाशन, अन्धकार का विनाश, दिशाओं की प्रसन्नता तथा किरणों का प्रसारण– ये सारे कार्य जो सूर्य और चन्द्रमा के हैं, वे उसके जन्म के कारण सम्पादित हो गये । अर्थात् उसके जन्म के कारण अन्धकार दूर हो गया था, प्रकाशक किरणें (आशा की लहर) फैल गई थीं तथा दिशाएँ प्रसन्नता से भर उठी थीं ।। 15

यथोचित सुन्दर होते हुए भी दिशाएँ सोमवंशी के जन्म के कारण निरन्तर प्रतीक्षा के महाफल रूप में उसे पाकर रमणीयता के करोड़ गुणा को पायें ।। 16

विशिष्ट सुन्दरता से जिसके शरीर का सौन्दर्य बढ़ रहा था सभी पक्षों में विकास पाते हुए उसने केवल एक ही पक्ष में विकास पानेवाले चन्द्रमा के सौन्दर्य का तिरस्कार किया (नीचा दिखाया) ।। 17

जो बचपन में ही अत्यन्त शीघ्रता से कलाओं से पूर्ण हो (कलाओं में दक्ष हो) दिन-रात सभी समय में स्तुतियों में या आकाश में चमक रहा था, उस सचेतन चन्द्र ने अचेतन चन्द्र को उसकी जड़ता के कारण नीचा दिखाया ।। 18

दोषों को दूरकर ज्ञान विस्तार करती हुई, विषयों को स्पष्ट करती हुई लोक में विविध उपभोगवाली सद्विद्या जिसके मुखाग्र में संगति पायी थी (वह) मानो अन्धकार को दूरकर प्रकाश को फैलानेवाली जगत् पदार्थों को प्रकाशित करनेवाली, संसार को ढँक लेनेवाली दिन के सूर्यप्रभा की तरह ही थी ।। 19

देवताओं द्वारा उपदिष्ट, ज्ञानमयी अमोघ् माहेश्वरी शक्ति को धारण कर कुमारावस्था में ही सारे शत्रु समूहों को जीतकर जिसने महेन्द्र (इन्द्र) की शोभा (सम्पत्ति) पायी थी ।। 20

महाराजा पृथु के समान विस्तृत गुण समूहों से तथा उत्तम क्षत्रिय कुलोत्पन्न के लिए उपयुक्त, युद्ध के लिए प्रधान (महत्त्वपूर्ण) महनीय धनुर्विद्या की शिक्षा के द्वारा जिसने ऊँचा नाम पाया था ।। 21

शिष्टजनों द्वारा उपदिष्ट (उपदेश किये गये) शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्या

के बीजरूप ज्ञान को, आसानी से ग्रहण करनेवाली जिसकी उत्कृष्ट बुद्धि ने तुरन्त ग्रहणकर श्रद्धारूपी जल से सींचकर उत्तम रूप से संरक्षित किया था ।। 22

जो शोभा का सदा आधार था विशेष को छोड़ते हुए निरालस्य हो दक्षतापूर्वक चारों ओर से सभी गुणों को उसी प्रकार प्राप्त किया जैसे सूर्य जगत् के कल्याण के लिए रसों को चारों ओर से प्रतिदिन ग्रहण करता है ।। 23

इसके उद्यान के भाग की वसन्त सम्पत्ति के समान अमृत किरण चन्द्र की पूर्णमासी के समान आयुष्मती जिसकी विशेष शोभा को नयी जवानी की शोभा सम्यकतया अंगड़ाई (जँभाई) लेती थी ।। 24

जहाँ प्रकृति से भी श्रेष्ठ रूप में पुरुष के अशेष लक्षण निरूपित हैं, उस सांख्यविरोधी तन्त्रागमों में निरूपित महेश स्वरूप को किसी ने (जिसने) स्वयं में प्रकट किया है । (अर्थात् वह कुमार प्रकृति=नागरिकों की श्रेणी या अमात्य आदि शासन अंगों से श्रेष्ठ था वैसे ही जैसे तन्त्रागमों में पुरुष ब्रह्म प्रकृति अर्थात् माया से श्रेष्ठ निरूपित है) ।। 25

बचपन से ही जिसके अतुलनीय सौन्दर्य को अतिशय समृद्ध पाकर विधाता ने जिसे यौवन की कान्ति से सजाकर मानो दग्ध काम को पुनः सशरीरी बनाया ।। 26

जिसके नवयौवन के प्रस्फुटित होने पर भी कामभावना निरन्तर अवरुद्ध है मानो उसके सौन्दर्य को देखकर लज्जित हुआ काम अहंकारवश उसके पास नहीं आया ।। 27

जिसका रूप-लावण्य अद्वितीय रूप में उत्पन्न हुआ था उसे देखकर कामप्रिया रति प्रेम से आँखें मूँद लेती थी मानो वह यह न मान सकी कि उसके पति के रूप सौन्दर्य रुद्र नेत्राग्नि शिखाएँ चाट चुकी हैं (अथवा वह यह न मान सकी कि यह उसका पति ही है क्योंकि उसके रूप को तो रुद्र नेत्राग्नि शिखाएँ चाट चुकी थीं) ।। 28

धनु संचालन की अतिशय श्रेष्ठ शक्ति-सम्पन्न वीरोत्तम उस युवक ने अयोनिजा युवराज लक्ष्मी (युवराज पद) को अपने जनक पिता से उसी प्रकार पाया जिस प्रकार अयोनिजा सती सीता जनक के द्वारा राम को ब्याही गयी

थी ।। 29

जब से सूर्य बिम्ब के समान सुवर्ण कलश के अमृत जल से यौवराज्याभिषेक हुआ तबसे जिसकी लक्ष्मी निरन्तर विशेष वृद्धि को प्राप्त कर रही थी, उस लक्ष्मी के कारण जो शुक्ल पक्ष में निरन्तर सौन्दर्य की अभिवृद्धि को प्राप्त होते हुए चन्द्रमा की तरह हुआ ।। 30

यौवराज्याभिषेक जल से तथा मन्त्रबन्धन की मुक्ति से (अथवा मन्त्रणा बन्धन की मुक्ति से) तीव्र हुई जिसके पराक्रम की आग सम्यक् रूप में बढ़ रही थी वह मानो शत्रु आँखों के बढ़ते हुए आँसुओं से भीगे शोकाग्नि की वृद्धि से होड़ लेती हो ।। 31

अपने अंगों के सहज सौन्दर्य के कारण जो पहले से ही प्रसिद्ध था वह स्वाभाविक अलंकारों और शिष्ट वस्त्रों के धारण के कारण मनोहर या मंगलकारक सौन्दर्य वाला कहा गया ।। 32

महाभिषेक के समय जो रत्नाभूषणों को धारण किये हुए था, वह नयी-नयी शोभा को उसी प्रकार धारण किया था जैसे अगस्त्य के द्वारा समस्त जल को पान किये जाने पर बाहर निकले हुए रत्नों वाले समुद्र ने धारण किया था ।। 33

अनेक प्रकार से प्रभूत शक्तिशाली हुए शत्रुओं के द्वारा भी भय से जिसका विरोध नहीं किया गया है ऐसा जो स्वर्ण पर्वत समान उच्च सिंहासन पर निर्लिप्त होकर आसीन हुआ था ।। 34

जिसके अंगों के तुल्य निर्दोष दूसरा कोई उपमान नहीं माना गया क्योंकि आइने में प्रतिबिम्बित स्वयं उसका बिम्ब भी क्षुद्र (उल्टा चित्र देनेवाला) तथा आइने के तल के वशीभूत होने के कारण उतना निर्दोष नहीं हो सका ।। 35

जिसके अभिषेक में गिरे जल से भीगी पृथिवी समुद्र मेखला बन गयी थी तथा पृथिवी के ऊपर आवृत्तकर फैलती हुई चाँदनी की तरह जिसकी यशकान्ति एकच्छत्र सम्राट् का रजत-छत्र बन गया था ।। 36

जिसके अपने सामर्थ्य से प्राप्त सभी सम्पत्ति उसके आनेवाले दिनों की भोग की कथा कहते थे मानो श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा दिये गये उसके आशीर्वाद यथार्थ

(कार्य रूप) में अनुदित हुए थे ।। 37

आत्मदृष्टि प्राप्त जो सारे सांसारिक व्यापारों को छोड़कर पारिजात वृक्ष में रत हुए भ्रमर समूह की तरह तथा मुनियों की बुद्धि की तरह आत्मयोग में रत हुआ था ।। 38

जब तक निर्मेघ शरद ऋतु प्रकट नहीं होता तब तक स्वभाव से चंचला इधर-उधर भटकनेवाली (चमकनेवाली) बरसात की बिजली की तरह जब तक इसकी रणयात्रा आरम्भ नहीं हुई थी तब तक शत्रुओं की चंचला राजलक्ष्मी इधर-उधर चमक रही थी ।। 39

तेज हथियारों की आरती से प्रकाशित शोभावाले तथा सांग विद्याओं एवं मन्त्रों से रक्षितात्मा जो महामण्डल (एकच्छत्र सम्राट्) की दीक्षा पाकर (दीक्षा के द्वारा) प्रभूत ऐश्वर्यवाली सिद्धि की साधना की ।। 40

दिग्विजय के लिए जाती हुई जिसकी सेना के बीच पताका चल रही थी, देखकर शत्रु राजलक्ष्मी तो पहले ही चल पड़ी परन्तु सेना के भार से चँपी शत्रु की पृथिवी बाद में चली आयी ।। 41

युद्ध में मेघनाद-विजय के बाद लक्ष्मण की गर्जना को सुनकर रावण को हुए भय की तरह ही युद्ध में जिसके सिंहों की आवाज दूर से ही सुनकर शत्रु भयभीत हो गया था ।। 42

जिसकी युद्ध-यात्रा के समय सेना के पैरों से उड़ी धूल प्रचण्ड ज्वाला की धूम की तरह शत्रु स्त्रियों की आँखों में बैठकर आँसुओं से भर दिया (जलपूर्ण कर दिया) ।। 43

जिसकी रणयात्रा में ले जाया जाता हुआ सेना समूह बद्ध क्रोध की तरह ऊपर उठकर नीचे गिरते हुए धूल, पहले ही पृथिवी को सताकर उठी थी बाद में जलस्रोतों को गन्दा किया ।। 44

कहीं जिसके मारे गये राजाओं से पटा हुआ, कहीं भागती हुई जिसकी शत्रु-सेनाओं से भरा हुआ और कहीं आगे बढ़ती हुई अपनी सेना से भरा हुआ वह मार्ग कहीं गिरे हुए पाण्डव-राजाओं से पटा हुआ, कहीं स्वर्गगंगा से भरा हुआ, कहीं ऊर्ध्वगामियों से भरा हुआ स्वर्ग मार्ग का हुआ ।। 45

आकाश........आवरण (ढक्कन) जनों की चेष्टाओं में अशाक्ति प्रकाश विनष्ट जो सायंकाल के अन्धकारों से निस्तारित होता है वे सैनिकों द्वारा जो राजा शत्रुओं में किया करता था ।। 46

दोनों पक्षों में आर्त्तनाद फैलाकर रण में जो अपने वेग के कारण चीते के समान हो रहा था उस युद्ध में शत्रुओं के हाथी जिससे भयभीत हो शक्तिहीन हुए कहाँ भागे यह नहीं समझ पाने के कारण हतबुद्ध हुए खड़े-के-खड़े रह गये ।। 47

Verse 48 illegible.

शुभ्र शरत् काल को सामने आते देखकर शुष्क बेकार मेघ शीघ्र इधर-उधर समाप्त हुए से (डर या छिप) हो जाते हैं उसी प्रकार वह युद्ध में जब धनुष धारण करता है तब छोटे-छोटे राजा उस मेघ की तरह इधर-उधर छिप जाते हैं।।49

Verse 50 illegible.

सचमुच मूर्खता के कारण ही पतंगों का साम्य पाकर आनन्दित हुए थे जिसके शत्रु वर्ग क्योंकि वे बाद में उसके बाहुदण्डरूपी अरणी से प्रज्वलित अग्नि के समान पराक्रम को पाकर विपद में पड़ गये थे ।। 51

Verse 52 illegible.

अपने आसन को पाकर शत्रुओं को परास्त कर हवा के रास्ते को रोककर और मन के वेग को रोककर विजय पाकर जिस अभ्यास करनेवाले के अवस्थित रहा, आलस्य से हीन भी.......।। 53

Verse 54 illegible.

जिसके से छूटे बाण सुन्दर झंकार के साथ शत्रुओं के सिर पर गिरे थे उसके पीछे ही देव-सुन्दरियों के हाथ रूपी लता से उसके ऊपर मंदार पुष्प गिरे थे ।। 55

Verse 56 illegible.

केतु की छाया से ग्रस्त सूर्य जैसे अपने प्रकाश को नहीं छोड़ता है, वैसे ही घातक तीक्ष्ण प्रहारों से व्रणित होने पर भी तथा शत्रुओं के द्वारा युद्ध में घेर लिये जाने पर भी जिस कवचधारी ने अपना प्रकाश (शौर्य) नहीं छोड़ा ।। 57

..........बाहर निकालकर बिखरी कीर्तिवाले रावण जो दुष्ट था उसे ऊपर लाया ।। 58

....जो युद्ध में चक्रधारी भगवान् विष्णु का चक्र पाने की इच्छा न की थी न इन्द्र के वज्र पाने की भी इच्छा की थी शायद जो (वह) न झेले जाने योग्य शक्तियुक्त पाशुपतास्त्र ही पाकर शत्रुसमूह को जीत लिया था ।। 59

...........उसे तो इसकी विलासिनी नायिकाओं का कहते हुए द्वारा आराधना की गयी यह और स्वयं...........।। 60

जो शत्रु वीरों के द्वारा युद्ध में पीड़ित किये जाने पर भी गम्भीरता के कारण प्रसन्नता को न छोड़ा क्योंकि हाथियों के स्नान से झील गन्दा हो सकता है गम्भीर सागर नहीं ।। 61

........बिजली के समान फड़कती हुई साँप की जीभ के समान जीभ भी (भुजा).....।। 62

तेज तलवारों के घात-प्रतिघात से हुई हानि के कारण मुट्ठी के छोटे हो जाने से अथवा इसी भ्रम के कारण अनेक बार प्रहार करके शत्रु को गिराकर जिसने अपनी भुजाओं की बार-बार निन्दा सही ।। 63

.................सुन्दरी दिव्यांगनाओं के उतारने के लिए सीढ़ी रूप सम्पत्ति के समान जिसने किया था ।। 64

अपने पक्ष (के घेरेबन्दी) में किसी प्रकार की कमी को दूर कर जिसने अपने पक्ष की रक्षा की है तथा दूसरों के व्यूह में रहे कमी को ही सहारा बनाकर अपने पराक्रम को आगे तक बढ़ाया है उसने प्रतिभाशाली (चतुर) शत्रुओं को भी प्रतिभाहीन कर दिया है ।। 65

.............व्याप्त होने से फलत्व । विधि के विधान के योग्य विपरीत वृत्त में जो प्रयत्नवान् युद्ध में बरतता था तथा अनुकरण किया था ।। 66

आमने-सामने भिड़ने के लिए सदा उकसायी गयी शत्रु सेना ढिठाई चाहती हुई भी दूर से ही जिसे देखकर पीछे मुँह घुमा लेती है ठीक वैसे ही जैसे कोई नवेली सखियों द्वारा समझा-बुझाकर सामने ले जाने पर भी तथा ढिठाई

चाहकर भी रति काल में लज्जावश मुँह घुमा लेती है । सम्मुख रति में नहीं टिक पाती है ।। 67

.........मिले-जुले महायुद्ध में और विजय की क्रिया को नहीं व्यर्थ विक्रम रूप सम्पत्ति को प्राप्त करता है । जो युक्तियों के जानकारों द्वारा निश्चित रूप से युक्त से मुक्त है ।। 68

जिसके द्वारा शत्रु संघ के दुर्ग पर अधिकार कर लिये जाने के कारण भय से पीले पड़े देहवाले, पर्वतों में गुफाओं को भी न पाकर भय से चंचल (आकुल) दृष्टि हुए, वनों में मृग और हाथी के चर्म पहनकर रह रहे जिसके शत्रु समुदाय, निरन्तर दुर्गा के सम्पर्क में रहने के कारण पीले रंग के हुए तथा कार्तिकेय को देख आनन्द से चंचल दृष्टि हुए तथा गजासुर का चर्म धारणकर वन में रहनेवाले शिवजी के समान हुआ था परन्तु उनके समान पूज्य नहीं हो सका था ।। 69

.....वरस्य श्रेष्ठ के, जिसका मनोरथ व्यर्थ हुआ, जो पृथिवी की विजय की इच्छुकता में दाता के गुण में भी नहीं पर्याप्त रूप से, या व्यर्थ याचक नहीं होता ।। 70

प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश में डूबे हुए पर्वत के समान मूँगा जटित झूले पर झूलते हुए जिसके, क्षीरसागर समान शत्रु देश को भी घनघोर वन में मारे फिरने की दुर्गति के कारण लक्ष्मी छोड़ रही है ।। 71

अर्थसिद्धि प्रयोजन की सिद्धि........उद्योग से युक्त तीन गण की वृद्धि के लिए (धर्म, अर्थ, काम) की वृद्धि के लिए चारों दिशाओं में प्रणाम कर चुकनेवाले ने बचपन में विद्या के समान ग्रहण किया ।। 72

जिसका महान् यश, सभी भुवनों में फैले होने के कारण, दूसरे गुणियों के द्वारा अछूता होने के कारण तथा स्तुतियों के शब्द रूप गुण को धारण करनेवाला होने के कारण विभु, भुवनों में व्याप्त ऊँचा होने के कारण अछूता शब्द गुण को धारण करनेवाला निष्कलंक आकाश की तरह था ।। 73

.....क्षय से दुबले अंगोंवाली.........पहले सुश्रुत नामक आयुर्वेद के आचार्य के आचार-विचारों से सभी (कफ, पित्त और वात)– इन त्रिदोषों को

नाश करने में अतिशय निपुण जिसने छः प्रकार के रसों के अंगों से पृथिवी पाली थी। अच्छी तरह सुने हुए आचार और विचार से प्राकारान्तर से यह अर्थ है ।। 74

दूसरे सारे पराक्रमियों के पराक्रम को जिसने जीता था तथा जो पहले ही महामाण्डलिक था, बाद में और भी विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार पाकर, सारे तेजों को जीतनेवाला तथा प्रकाशपूर्ण होते हुए भी दोपहर में अधिक प्रकाशपूर्ण हो जानेवाले दोपहर के सूर्य की तरह अतिशय प्रतापी हुआ ।। 75

पर्वतों के राजा को जिसने सिंह को अपने अन्दर से निकाला, तेज धामवाले जिस पर चढ़ने पर नहीं तारागण केवल अस्त होने के समान प्रकाशवाले हों गिरते राजाओं के मस्तक की मणियाँ भी वैसे ही ज्ञात हुई थीं ।। 76

बिल्कुल उजला, चन्द्रमा की तरह सुशोभित, जिस एक छत्र के महान् (बड़ा) रजत छत्र के ऊपर उठने पर ताप अशेष पृथिवी को छोड़कर शत्रु मन में समा गया ।। 77

चिर काल से जिसके रूप दर्शन की इच्छा से संसार के लोग व्याकुल थे उसे देखकर (पाकर) भी पलक गिराये बिना देखती हुई उनकी आँखें संसार की असंख्य मछलियों की आँखों की तरह हुई थी क्योंकि इच्छा बार-बार होती है, उसे पाकर भी असन्तोष बना रहता है ।। 78

सहज शोभा देखने की (रूप दर्शन की) इच्छा रखनेवाले मित्रों के बीच सुसज्जित वह, मणि दर्पणों में प्रतिबिम्बित अपनी ही छायाओं के बीच सुशोभित सा जो था ।। 79

जिसकी अत्यन्त प्रभावशाली होती हुई भी स्पष्ट (सीधी) नीति थी । परन्तु शत्रुओं की वैसी नहीं थी । हो भी कैसे टेढ़े-उल्टे चलनेवाले ग्रहों में सूर्य, चन्द्र को छोड़कर सीधी गति किसकी होती है ? ।। 80

साधन करने में उस चतुर ने प्रभावशाली मन्त्रों के मूल साम, यजुः आदि चारों वेदों में बताए गए विनाश रोकनेवाले उपायोंवाले विविध प्रयोगों के द्वारा सिद्धि का साधन किया था अथवा कार्यसाधन करने में चतुर वह दक्ष मन्त्रियों की मन्त्रणा जिसके मूल में था ऐसे, विनाशरोधी उपायोंवाले साम, दाम, दण्डादि चारों नीति के विविध प्रयोगों के द्वारा जिसने अभीष्ट साधन किया था ।। 81

जैसे मूल प्रकृति महत्तत्त्व के आश्चर्यकारक कामों का प्रदर्शन करती है तथा जगत् सृष्टि आदि कार्यों के लिए उपयोगी छः गुणों के योग से बिना वाणी के ही प्रधान प्रकृति (जगत् का अव्यक्त कारण) सत्त्वादि त्रिगुणों तथा पुरुष से अतुल्य आचरण करती है, उसी प्रकार सदा ही जिसने मूल प्रकृति अर्थात् सम्राट् की तरह आश्चर्यकारक महान् कार्यों का प्रदर्शन करते हुए, सन्धि, विग्रह, अभियान, आसन, संश्रय और द्वैधी भाव– इन षड्गुणों के योग से बिना किसी आदेश के ही प्रधान प्रकृति महामन्त्री से बहुत अधिक काम किया ।। 82

नीति-निर्धारण में सामान्यतया कुटिल मन्त्र, प्रभु उत्साह और विशेष शक्ति से सम्पन्न होने पर भी विपक्ष के लोग विनाश की बात सोचकर भय से ही जिसके अनुकूल हो गये थे ।। 83

जिस गुणवान् के धर्मार्थ काम साधक (सम्बन्धित) उत्तम गुणसमूहों द्वारा (मित्रों की तरह) भर्त्सना किये जाने पर मानो क्रोधवश दोषों ने विपक्ष के शत्रु राष्ट्रों का आश्रय ले लिया ।। 84

चन्द्रमा रात्रि के अन्धकार की सारी कालिमा को दूर कर देता है परन्तु अपने ऊपर की ही कालिमा को भूल जाता है । परन्तु यह न्यायप्रेमी अपने दोषों की कालिमा मिटाकर तुरन्त ही दूसरे के दोषों को उपायपूर्वक मिटा देता है ।। 85

जिसके निर्व्यसन होने के कारण तथा जिसके सुशासन से प्रजा विपत्ति की शंका से मुक्त हो गयी थी जबकि प्राचीन काल में अजातशत्रु के दुःशासन के कारण राजपुत्री अपार कष्ट पाई थी अथवा युधिष्ठिर के व्यसन के कारण दुःशासन के द्वारा राजपुत्री द्रोपदी अपार कष्ट पायी थी ।। 86

विनाश की परवाह न करनेवाली प्रशभशालिनी तथा कठिनाई से प्राप्त किये जाने योग्य, शत्रुओं के आधिपत्य से बाहर निकली हुई राजलक्ष्मी सुन्दर, रसज्ञ (पण्डित) जिस राजा रूप गम्भीर पात्र को पाकर जल की तरह स्थिर हो गयी थी ।। 87

जिसने शत्रुओं की ओर से आनेवाले मार्ग में चारों ओर घूमती हुई हिंसा करनेवाली उस शत्रु शक्तिरूपी सिंहनी को नष्ट कर, धर्म के योग से विकसित हुई प्रजा को लक्ष्मीरूपी पटरानी को पाकर पालन किया ।। 88

जब विद्वानों ने राजाओं को अतिक्रमण करनेवाले में अग्रगण्य कार्त्तवीर्य अर्जुन के हज़ार दोषों की गणना की (कर ही दी) तब इस सर्वगुण सम्पन्न की कथा कहने में क्या विशेष है ? (गुणों की चर्चा सहज है परन्तु दोषों की गणना कठिन है) अथवा तब यह कहना कि सारे गुण निश्चित रूप से इसमें स्थित हुए हैं कहना ही व्यर्थ है अर्थात् प्रसिद्ध ही है कि वह गुणपूर्ण है ।। 89

पृथिवी और स्वर्ग में गाये जाने पर भी कर्ण को दु:ख देनेवाले अथवा कान को कटु लगनेवाले इन्द्र के यश भी जिस प्राप्त शक्ति और संवत् वाले के कर्ण मधुर के यश के उपमायोग्य शायद न हुआ ।। 90

आकाश और दिशाओं को घेरकर गरजते हुए बादल की तरह चारों ओर फैले हुए जिसके यश की ध्वनि (गर्जना) को सुनकर दूर देशों में रहनेवाले भी न केवल रत्नों का नजराना ही दिया अपितु अतिशीघ्र ही हाथियों का समूह भी दिया ।। 91

दिशाओं को ढँक देनेवाले, एक लाख यज्ञ से उठे धुएँ से जिसने सूर्य के प्रकाश को ढककर स्वर्ग और सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र की कीर्ति– दोनों एक साथ ही मानो कालिख पोत दिया था ।। 92

आनुमानिकों (नैयायिकों) के द्वारा आज तक साहचर्य व्याप्ति के आधार पर वही पुराना अव्यभिचरित अनुमान (जहाँ-जहाँ धुआँ है, वहाँ आग है- यह प्रदेश धूमवान् है अत: वहाँ आग है जैसे पाकशाला में) किया जाता रहा है परन्तु जिसके यज्ञ से उठते धुएँ को देखकर उसके धर्माचरण के आधार पर नया ही अनुमान होता है– जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ बरसात है, यह प्रदेश धूमवान् है, अत: यहाँ भी कामनाओं की बरसात है यथा अन्य यज्ञस्थलों में ।। 93

बिना माँगे ही रहनेवाले समुद्र जैसे पानी से भरा रहता है वैसे ही स्वयं ही सम्पदाओं से भरे रहनेवाले जिसको धनहानि हुए याचक समूह उसी प्रकार पाकर पर्याप्त पूर्ण हुए जिस प्रकार जल से रिक्त हुए बादल पुन: वर्षा के लिए समुद्र को पाकर पूर्ण हो जाते हैं ।। 94

आँखों द्वारा मनोहारी भावों को प्रदर्शित करते हुए तथा उंगलियों की शोभा के द्वारा रस से भिगाते हुए जिसके रासमण्डल नृत्य की उपमा के योग्य

हिरण के आकार के दाग से लाञ्छित चन्द्रमण्डल न हो सका ।। 95

जिसने स्वयं ही गर्वीले शत्रुओं को समाप्त कर दिया था फिर भी जिसकी छत्रच्छाया में राजा लोग दूसरे राजाओं को जीतने में लगे थे क्योंकि सूर्य के द्वारा प्रखर प्रकाश बिखेर दिये जाने पर भी क्या चन्द्रमा अन्धकार को दूर नहीं करता रहता है? ।। 96

उस प्रकार की महनीय शोभा न तो मणि दर्पण ने प्रदर्शित की थी और न उसके दूसरे ही कोई आभूषण जैसी कि राजा की आज्ञा को 'जैसी आज्ञा' कहकर अपने कानों के आभूषण बनाये, उसके आगे झुके राजाओं से प्रतिबिम्बित उसके चरण नख रूपी दर्पण ने प्रदर्शित की थी ।। 97

कला गुणों के अर्जन के द्वारा उसने जो महानता अर्जित की थी उसकी बराबरी कोई दूसरा गुणी नहीं कर सका था क्योंकि केवल नाचकर ही नृत्यव्रती नीलकण्ठ शिवजी के प्रभु सामर्थ्य को मोर नहीं पा सकता ।। 98

सारी पृथिवी जिसके शासन में थी तथा वायु की तरह सदा गतिशील, जलवत् स्निग्ध आकाश की तरह सर्वत्र व्याप्त तेज की तरह प्रचुर प्रकाश को धारण करनेवाली महाभूतमयी रूपवाली कीर्ति उसकी थी, भुवनों में सारी पृथिवी जिसकी थी अथवा (रूप उसकी कीर्ति धारण करती थी), लोकों में सारी पृथिवी जिसकी थी ।। 99

जो प्रयत्न और बुद्धि में सर्वाधिक था; दानशीलता, शौर्य, शरीर शोभा, गाम्भीर्य, माधुर्य आदि गुणों का एक ही आश्रय था, जो ब्रह्मा के द्वारा निर्मित हुआ था ।। 100

संसार में विख्यात शक्तिवाले कार्तवीर्य अर्जुन (सहस्रार्जुन) ने यदि पहले इस दो भुजाओंवाले की शक्ति को देखा होता तो अपनी रक्षा के लिए उत्पन्न हज़ार हाथों को उचित मान लेता (व्यर्थ मान लेता) ।। 101

दूर से केवल प्रताप से ही शत्रुओं को जीतनेवाले के युद्ध करते हुए कठिनाई से पकड़ में आनेवाले जिसके शत्रु, मदमत्त हुए मदगन्ध छोड़नेवाले हाथी के गन्ध से ही भयाकुल हुए दूसरे हाथी की तरह हुए ।। 102

इतर देवताओं की संगति छोड़कर जिसकी श्रेष्ठ श्रद्धा और भक्ति उत्कट

अभिलाषा से देवाधिदेव महादेव जी को गंगा और पार्वती की तरह प्राप्त हुई थी ।। 103

सुन्दरता की सृष्टि.......ब्रह्म उत्पन्न रूप ही रूपवाले जिस एक खम्भे को पृथिवी......।। 104

इस प्रकार बनाये हुए कामदेव को तो शिवजी ने जला दिया मानो इसी विचार से प्रभु सामर्थ्य के साथ ब्रह्मा ने जिसे अति सुन्दर बनाया था ।। 105

.................विद्या.............चार मुखोंवाले ब्रह्मा को ।। 106

दोनों पत्नियों में से लक्ष्मी हृदय में छिपाकर तथा कीर्ति को बहुत दूर समुद्र पार भेजकर युवा होते हुए भी जिसने वृद्ध विद्या के साथ रमण किया ।। 107

पहले दिलीप ने वसिष्ठ की नन्दिनी (कामधेनु की पुत्री) गाय की रक्षा की थी । पुत्र की (प्रजा, सन्तान) की इच्छा से और महाराज अपने बल-वीर्य से प्रजा को प्राप्त करके भृगु सम्बन्धी..............।। 108

जिसकी कीर्ति की क्षीरसागर में भुवनों को डुबा देनेवाले ज्वार के भय से ही मानो पृथिवी छाया के बहाने चन्द्रमा में आश्रय लिया है ।। 109

हजार भोगों से अतिशय युक्त..........एवं भव भी जो अनन्त गुणों से युक्त भी विशेष रूप से नम्रता की तकलीफ के हितकारी अतिशय रूप से था ।। 110

समुद्र की घेरारूपी मेखला (को धारण करनेवाली पृथिवी) से सुशोभित पृथिवी को अधिकृत करनेवाले जिस महान् एकच्छत्र सम्राट् के द्वारा भूधर-सम्राट् सुमेरु (हिमालय) भी व्यर्थ किया गया ।। 111

कलिकाल के दुराचरणरूपी काँटों से लड़खड़ाते हुए पैर तोड़ा गया धर्म जिसे पाकर सुस्थिर और कृतार्थ हुआ ।। 112

जिस राजा के वीर्य-बल रूपी अग्नि से उठे हुए धाम रूप धुएँ रूप ध्वज से युद्ध में शत्रु की स्त्रियों का रुका हुआ भी आँसुओं का प्रवाह बढ़ गया था ।। 113

युद्ध में शक्तिरूपी वायु उद्धत हुआ, जगत् में आग के समान तेजस्वी जिस सम्राट् ने बिना धुआँ के ही शत्रुओं की स्त्रियों की आँखों में आँसू के धार को बढ़ाया ।। 114

रणभूमिरूपी नन्दन वन में फैले रक्त लिप्त तलवार के पत्ते से जिसकी भुजारूपी कल्पवृक्ष ने दिशाओं में कीर्ति पुष्प बिखेरे ।। 115

जिसके रणाभियान में चमकते हुए विशाल दाँतोंवाले हाथियों में श्रेष्ठ हाथी के दाँतों से चोट खायी पृथिवी ने मानो क्रोध से उड़े हुए धूल से उन विशाल प्राणियों को धूल धुसरित की ।। 116

मन्त्र साधन से पूरा हुआ (मन्त्रणा से पूरा हुआ) रण यज्ञ में तलवाररूपी अग्नि में शत्रु मुख कमलों का होमकर जिसने साम्राज्य उत्पन्न किया ।। 117

मज़बूत भी निडर जीव (द्रव्य भी) ऊँचा भी उखाड़ने पर............जो अनन्त वीर्य-बलवाले के द्वारा मथने पर भी जो राजाओं के समूह से नहीं नष्ट हो सका था ।। 118

जिसकी तेजाग्नि से बार-बार व्याकुल हुई प्यासी शत्रु राजलक्ष्मी जिसके सरोवर से उत्पन्न धारा को पाकर (जिसकी तलवार की धार से उत्पन्न धारा को पाकर) तुरन्त ही नहीं अपने को उसमें गिरा दिया था ।। 119

जिसके चरण रूप कमल की धूल चरित की नकल के समान....... राजाओं के मस्तकों पर चरण देकर के श्रीलक्ष्मी को जिसने धारण किया था ।। 120

परास्त करनेवाली उड़ती नज़रों से स्त्री की नाईं पेट की आग से प्रजाजनों को पाया था । और जो हरि भगवान् हैं वे हृदय से ही ईश हैं, सुन्दर बोधवाले के द्वारा स्पष्ट रूप से उनका पुरुषार्थ ज्ञात है ऐसा ही वह राजा हृदय से ही राजा के पद पर रहकर प्रजा का स्वामी था ।। 121

गर्वीले प्रधान शत्रु को समर में जीतकर जिसने कृपा की थी उस शत्रु के समूह पर........सिंह से जैसे फोड़े गये गजमस्तक रूप कुम्भवाले हाथी पर जैसे सिंह कृपा करता है ।। 122

तीस से अधिक प्रिय को गुणों से युक्त बाणों से बाँध करके कोमल बाणों से जिसने शत्रुओं को जीतकर के सद्गुणों के समान अर्थों को भोगा था ।। 123

नीलकण्ठ शिव ने अपने कण्ठ के गहने के लिए विष पी लिया था । देवों के या विशिष्ट कोटि के विद्वानों...........के लिए तो...........उद्गार निकाला था वचन रूप अमृत को ।। 124

जिसके निरन्तर यज्ञों से ऊपर उठते धुएँ से रुद्ध दृष्टि हुआ सूर्य आज भी मानो दिशाओं के सम्यक् भ्रान्त हुआ सा अपने को मानकर अपनी लीक से ही बँधा चल रहा है ।। 125

वह....जो.........धाम.........तेज.........जो शत्रु रूप लकड़ियों में लकड़ी रूप यज्ञ में पूरी दक्षिणा जो क्षीण नहीं है ऐसी पूरी कीर्ति को रूप दक्षिण दिशा रूप ब्राह्मणों को दी थी ।। 126

अस्त्रों को छोड़कर प्रणाम करनेवाले शत्रुओं के लिये ही जिसने धनुष की डोरी शिथिल की थी न कि धनुष धारण करनेवालों से विरति हुई थी ।। 127

जिसकी भुजा सुडौल और मित्रों का उपकारक भी था रण में सदा ही शत्रुओं और मित्रों को समझा था ।। 128

शत्रु जाति की एक ही द्रव्य को आश्रय कर रहने की इच्छा को जानकर धनुर्धारियों के लिए योग्य कर्म को जिसने विशेष प्रकार से किया ।। 129

शिवजी के प्रति दृढ़ भक्ति-भावना जिसकी हृदयगुहा में बैठी थी मानो उन्हीं शिवजी के तीसरे नेत्र की अग्नि के भय से ही वहाँ दूसरे देवता प्रवेश नहीं किये ।। 130

सुन्दरियों के हृदयरूपी उद्यान में घुसे चोर कामदेव को सजा देने की इच्छा से (मारने की इच्छा से) जिसने बार-बार प्रवेश किया ।। 131

योग धारण कर शान्त हुए जिसके नाम से ही शत्रु राजाओं को भय होता था क्योंकि सिंहश्रेष्ठ का गन्ध दूर से भी पाकर हाथियों की गति में तेजी आ जाती है ।। 132

मन्त्रणा और शक्ति के प्रयोग से समृद्ध हुए उसको एकमात्र पति के रूप में पाकर कामनाओं को पूरा करनेवाली (रति देनेवाली) पृथिवी जिसके हाथों से मृदु एवं पीड़ा को पाकर कृतार्थ हो गयी थी ।। 133

यह रहस्य आज प्रकट हुआ कि यह सौन्दर्य वह मणि है जिसने जगत् मात्र के चित्त के सर्वस्व को सदा ही अपनी ओर आकर्षित किये रहा ।। 134

जिस विजय की इच्छा रखनेवाले को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तरह स्मरण करता हुआ शत्रु वन में जा सोया ।। 135

जिसके खिले कमल के समान तलवार से टपकते रक्तरूपी मधु की इच्छा से भौंरी की तरह शत्रु राजलक्ष्मी जिसके भुजाओं के चारों ओर घूमती रही ।। 136

आकाश तारागणों से भरा होता है तथा सारे प्राणी उसका आश्रय लेते हैं फिर भी वह शून्य ही होता है और शब्द ही उसका गुण होता है अर्थात् शब्द ही उसकी पहचान है; ठीक इसी प्रकार जिसका जनसंकुल शत्रु नगर शून्य (उजाड़) और शब्द से जानने योग्य अर्थात् नामशेष बनकर रह गया था ।। 137

शर कर्म (बाण चलाना) ही जिसका कुल कर्म है, सेना और दुर्ग जिसके संगी हैं तथा तलवार जिसकी सहायक है और जिसके शत्रु जल्दी से वन में पहुँचकर ही शान्त स्थिर हुए थे ।। 138

शत्रु यद्यपि वीतरागी, गुफावासी बन ध्यान में लीन हो मुक्ति साधन में लगे हैं परन्तु जिस (उस) प्रभु के चरणों की शरण में आये उनका मुक्ति प्रयत्न पूरा नहीं है ।। 139

स्वामी से परित्यक्ता मैं हिंस्र जीवों के बीच वियोग दुःख के साथ कैसे रह सकती मानो यह सोचकर ही शत्रु नगरी दावाग्नि में प्रवेश कर गयी । अर्थात् शत्रु राजाओं के नगर छोड़कर भाग जाने के बाद जिसने शत्रु नगरी में आग लगा दी ।। 140

रण में जिस शक्तिशाली की शक्ति शत्रुगण देखकर मानो शक्ति पाने की इच्छा से ही शक्तिशाली जीव सिंह आदि से युक्त वन में जा बसे हैं ।। 141

मन्दोन्मत्त और ऊँचे को भी धर्म साधन में लगाया जाना चाहिए मानो धर्मशास्त्र के इसी आदेश का पालन करने के लिए ही जिसके द्वारा बहुत-से हाथी ब्राह्मणों के लिए दिये गये ।। 142

अपने शासन में कार्य दायित्वों को स्वामी, अमात्य, पुर, कोष, दण्ड, राष्ट्र और सुहृत- इन सात प्रकृति कहे जानेवाले पदों में सम्यक् विभाग कर, क्रियाओं (कार्यों) के पर और आगम (पीछे आनेवाले और आगे आनेवाले) को जाननेवाला तथा तद्धितज्ञ अर्थात् आनेवाले के हित को जाननेवाले उस राजा का शासन-कार्य, पदों अर्थात् शब्दों को विभक्तियों अर्थात् कारकों में विभक्त करनेवाले, क्रियाओं के आगे और पीछे किये जानेवाले कार्यों को जाननेवाले तथा सुप पदों के पीछे जुड़नेवाले प्रत्ययों को जाननेवाले वैयाकरणों की तरह है ।। 143

अपने प्रतापरूपी अग्नि से पृथिवी जल न जाये मानो इसी से जिसके द्वारा दान संकल्प के जल से पृथिवी पर बाढ़ ला दिया है ।। 144

सुमनोहर गुणों से बँधी हुई, नित्य विकसनशील जिसकी धारण की हुई कीर्तिमाला आज भी तीनों लोकों की सुन्दरता से अधिक है ।। 145

जिसके वीर आज्ञाकारियों के द्वारा समुद्र की तरह गहरी रक्षा खाई से युक्त चम्पा नरेश की नगरी भस्मसात् की गयी ।। 146

निर्मल पृथिवी को भुजाओं से जिस उद्धार करनेवाले के दो चरण रंगहीन थे, परन्तु चरणों में झुके राजाओं की मुकुटमणियों के प्रकाश से सब रंग में रँग गये थे ।। 147

सदा दुराचरण करनेवाला कलि भी जिसके शासन के अनुकूल बन गया था तथा जिसके प्रतापाग्नि के भय से भागते हुए शत्रुओं के पीछे-पीछे भाग गया ।। 148

समुद्ररूप सीमा तक सारी पृथिवी को जिसने शत्रुहीन बना दिया, उस एक के पास ही सारी कीर्तियाँ जो गयीं सो आज तक उसी के साथ बनी हुई हैं, कभी स्खलित नहीं हुईं ।। 149

पृथिवी पर अखण्ड अधिकारवाले जिसकी गणना गुणियों में मुख्य रूप से तथा धनियों में व्यञ्जना-वृत्ति से हुई वह गणना ठीक ही थी ।। 150

जिसके रणाभियान में उड़ी धूल से दिशाएँ अन्धकारपूर्ण कर दी गयी थीं, उस निर्भय शत्रु विनाश की इच्छा से पूर्ण (परितृप्त) को अब शत्रु की इच्छा कहाँ रही ? ।। 151

जिसने निरन्तर प्रेम से उत्कण्ठित काव्य विद्या को अनुकूल बनाया है, उसे उसकी राजविद्या कुलांगणा की तरह न छोड़ सकी ।। 152

कलंकित, दोषों की खान सम्पूर्ण कलिकाल को जिस चतुर ने नाश कर दिया था, वह साक्षात् दक्षिण क्षण दक्ष प्रजापति के समान हो रहा था ।। 153

जिस अनेक (शत) यज्ञ करनेवाले के द्वारा सदा किये जानेवाले यज्ञों के धुएँ के बादल से शरद काल में भी वर्षा ऋतु की तरह आकाश काला हुआ था ।। 154

परस्त्री से सदा विमुख रहने पर भी तथा सदाचार के नियमों के अच्छा ज्ञाता होने पर भी जिसने युद्ध में शत्रुलक्ष्मी से ब्याह रचाया था ।। 155

जिस सूर्य के उदय होने पर प्रकाश के द्वारा दूसरे सारे तेज जीत लिये गये थे मानो उसी से व्यर्थ की स्पर्धा में आज भी बड़वानल समुद्र में छिपा हुआ है ।। 156

रत्नों से खाली पाकर व्यर्थ ही विधाता ने शेषनाग से पृथिवी को बाँध दिया था क्योंकि उसने अपने कीर्ति-रत्नों से पृथिवी को भर ही दिया था ।। 157

जिसने रणांगन में हाथियों के मस्तक चीरकर मोतियों को फैलाया था वे मोती विधवा शत्रु नारियों के आँसुओं की बूँदों की तरह सुशोभित हुए ।। 158

रण में प्रदर्शित उस शौर्यवाले की उपमा सिंह से भी नहीं दी जा सकती क्योंकि उसके शत्रु तो उसके भय से वन-कन्दराओं में जा बसे थे (जबकि सिंह के शत्रु वन से भागते हैं) ।। 159

जिसके युद्ध में वीरता शूरता की उपमा सिंह से देने योग्य नहीं क्योंकि वैसे ही जिसके भय से शत्रु विष्णु की गुफा में सोते थे ।। 160

जल के युद्ध के समान राजा के अंश.........कमल मुखमण्डल से निकलते हैं....... ।। 161

.........तेज रूप आग से मिली-जुली........। न धारण की हुई जिसकी राज्यलक्ष्मी दमन करती हुई......कवि को नीचा दिखाती हुई धिक्कारती है ।। 162

जिसके यश के विस्तार से पृथिवी सँकरी हो चली है।...............।। 163

..........एक अतिशय तेजवाले को.........निश्चित ही सूर्य भँवर का आरोपण करके उसके द्वारा उल्लेख किया गया था ।। 164

मर्त्यलोक में जिस योग्य वर को पा करके......।। 165

गहरे आकाश रूप नदी (भवसागर) को पार करने की इच्छावालों को तारनेवाली (पार करनेवाली) उसकी वाणी सत्ययुक्त थी फिर भी सत्यवती सुत मुमुक्षुओं के उद्धारार्थ शास्त्ररचना करनेवाले व्यासदेव को जन्म न दे सकी ।। 166

आपत्तियों के दूर करनेवाले गुण के संसर्ग से......कोमल........।। 167

वृद्ध सर्पराज द्वारा धारण की गई वह अथवा पृथिवी कहीं चल न जाये, यही सोचकर विधाता ने इस समर्थ बलशाली युवा रक्षक राजा के हाथों सौंप दिया है ।। 168

और पहले वाले ऐश्वर्य भी राजाओं के........गुणों के समूह....... ।। 169

राजाओं के द्वारा समय-समय पर प्रयत्नपूर्वक प्रारम्भ से सँभालकर रखी गयी राजलक्ष्मी बाल्यकाल से यत्नपूर्वक सँभालकर रखी गयी कन्या की तरह उपयुक्त काल आने पर जिसे बिना उपाय के ही प्राप्त हो गयी थी ।। 170

गुरु के बिना दो बार वचन कहे ही जिसे राजा ने व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था ।। 171

गुणबहुलता के कारण जिसका कोई उपमान नहीं था शायद इसे जानकर अन्य मतों के द्वारा बौद्ध धर्म को (जिसमें असंख्य गुण बताये गये हैं) गलत नहीं माना गया ।। 172

..........काल के दोषरूप समुद्र में डूबी हुई गहरे भयानक किले में......।। 173

कल्याणप्रद मनु मार्ग का अनुवर्तन करने के द्वारा बिना कल्याणकारी रसायन के द्वारा ही यौवन बनाये रखा गया अथवा बिना कल्याणकारी शक्ति प्रयोग

के शासन की दृढ़ता बनाई रखी गयी ।। 174

........एक बार जिसके उज्ज्वल बिखरे हुए तेजों से सर्वत्र..........।। 175

राजाओं का यह कर्तव्य है कि दुर्ग में रहें केवल इस कर्तव्य निर्वाह के लिए ही जो दुर्ग में रह रहा था न कि जैसे विष्णु शत्रु दानवों के भय से समुद्र में सोते हैं ।। 176

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य अन्य शुभ द्वेष आदि दोषों को जिसने स्थान पर नियोजित किया था ।। 177

विद्वानों के द्वारा मन को एकाग्र करके जिसके चरितामृत का पान किया जा रहा था मानो अतिपान के कारण काव्यरचना रूप में उसी का नमन कर दिया गया। अथवा काव्य-रचनाओं के साथ ही उसका भी वमन कर दिया गया ।। 178

जैसे-जैसे रात का अन्धकार बहुत-बहुत मात्रा में संसार में उत्पन्न हुआ था ।। 179

जो धर्म के द्वारा संसार के प्रियों को (सांसारिक सुख भोगों को) छोड़कर क्षण भंग प्रदाय से सभी वस्तुओं के क्षण मात्र स्थायी बताए जाने पर भी विनाश योग्य नहीं हुआ ।। 180

अनेक यज्ञों को करनेवाला भी उच्च पद गोपति (गोस्वामी) हुआ । न क्रोध करनेवालों का..........।। 181

प्राचीन काल में अग्नि के तेज ने भृगुओं को पराभूत करा दिया था उसी प्रकार जिसके तेज ने बड़ी-बड़ी सेवा रखनेवाले नरपतियों को भी पाकर नाश कर दिया था ।। 182

दाता का गुण वदान्य गुण है उससे युक्त अपनी साधारण-सी लक्ष्मी का .... विष्णु को मित्र बनाया था ।। 183

धन के प्यासे भिक्षु याचकों द्वारा जो खिले कमलोंवाले विशाल झील के रूप में बड़े हर्ष से प्राप्त किया गया ।। 184

जो किले में रहने से सूर्य को नहीं देख पाती ऐसे शत्रुओं को स्त्रियों के मुखरूप कमलों की खान को उच्च रूप से संकुचित किया था ।। 185

गिरते हुए बाणों की छाया में छिपे शत्रुमुख रूपी कमलोंवाले रणरूपी विशाल झील में चलते हुए जो राजहंस की तरह सुशोभित हुआ ।। 186

बिना दुखी हुए जिसके युद्ध के आमने-सामने खड़े होनेवाले शत्रु चलती, अपनी तलवार से टकराए..........।। 187

पहले भी जिसके साथ युद्ध में गरुड़ भी पूरी तरह नहीं ठहर पाये थे उसके धनुष को देखते ही शत्रु कौए की तरह शीघ्र भाग खड़े हुए ।। 188

जिसने भागे हुए योद्धा शत्रुओं को केशपाश से युक्त मुख से रमणीय खिले पुष्प के समान बाणोंवाली घूँघट.........।। 189

जिसके द्वारा उजाड़े गये जिस शत्रु नगरी में सैकड़ों प्रेत राक्षस सुख से रहते थे (विचरते थे) तथा गिद्धों ने आश्रय ले रखा था उस जनशून्य नगरी को जिसने पुन: विराट् नगरी बनाया ।। 190

केवल राजा रूप साँपों के बल वीर्य को मन्त्र के समान जिसने हरा था जिसने प्राणों को गरुड़ के समान फेंकता हुआ ।। 191

जिसके यज्ञों को देखकर इन्द्र के यश के समाप्त होने की शंका से इन्द्रपत्नी शची धुआँ भर जाने का बहाना बताकर अश्रुपूर्ण आँखोंवाली हो रही थी ।। 192

कुबेर के गणों (यक्षों) ने जिस प्रकार मेरु पर्वत का आश्रय लिया था, उसी प्रकार सारे तेजों को मन्द कर देनेवाले जिसके चरणों की छाया का आश्रय राजा लोग अपने चाँदी के छत्र को छोड़-छोड़कर ले रहे थे ।। 193

सृष्टि में तापकारी सूर्य और आह्लादकारी चन्द्रमा- दोनों को अलग-अलग देखकर (अथवा आह्लादन और तपन- दोनों को सूर्य और चन्द्र-जैसे भिन्न स्थलों में पाकर) उनके अनादर के लिए ही मानो दोनों विरोधी शक्तियों को जिस एक ही राजा में विशेष रूप से स्थापित किया ।। 194

निकट से सेवा करने की इच्छा रखनेवाले राजाओं की पंक्ति जिसके तीव्र तेजयुक्त चरणों को अपने मुकुटों की रत्नप्रभा रूपी जल से अभिषेक किया ।। 195

संसार में यह पहली बार ही लेकिन प्रियकर ही हुआ कि कामदेव ने अपने धनुष-बाण को छोड़कर जिसके सौन्दर्य के द्वारा स्त्रियों के चित्त को मथ डाला था ।। 196

भुवन ही एक कमल है तथा आठों दिशाएँ ही जिसके अष्टदल हैं एवं सुमेरु जिसका मध्यस्थ कर्णिका है वह कमल सुगन्ध के रूप में जिसका यश बिखेरता है (फैलाता है) ।। 197

जिसके चरणों से फैलती हुई नस किरणों के द्वारा प्रकाशित वर्ण चरणों में झुके बड़े-बड़े राजाओं के मुकुटों में जड़े रत्नों की किरणों के वर्णों से होड़ लेती है ।। 198

जिसकी आज्ञा अनुबन्ध्य है यह मानकर ही आजन्म निष्फल रहनेवाला आम्रवृक्ष भी फलवान् हो उठा था ठीक वैसे ही जैसे आजन्म पुत्रहीन रहने के लिए शापित दिलीप वसिष्ठ के आशीर्वाद से पुत्रवान् हो गया था ।। 199

जिसके गुणों को गम्भीर और विस्तृत होने के कारण व्याख्यान करने में बुद्धिमान लोग उसी प्रकार खिन्न हो रहे थे जिस प्रकार शेषावतार पतञ्जलि द्वारा रचे महाभाष्य को पाकर व्याख्यान करने में असमर्थ हो खिन्न हो रहे थे ।। 200

जिसने शिविका (पालकी) आदि अपूर्व उपचारों के द्वारा सिद्धशिवपुर में पर्वत पर श्रीमान् सिद्धेश्वर महादेव की सेवा में वृद्धि की थी ।। 201

इसके बाद भी जिसने अपने पितरों की पुण्य-वृद्धि के लिए श्री शिवजी का लिंग तथा पार्वती की शुभदा मूर्ति की स्थापना की थी ।। 202

जिसने उपक्रम के साथ भद्रेश्वर, शूलपाणि शिवजी की सेवा की तथा जो यहीं पर अन्य देवताओं को भी आदरपूर्वक भोग प्रदान किया था ।। 203

जो चन्द्रमारूपी राजा धर्मसिन्धु में ज्वार ला देनेवाला था अपने कुल के श्रीन्द्रवर्मन आदि राजाओं की समानता को प्राप्त किया था ।। 204

जिसने यशोधर तालाब के दक्षिण में दक्षिण सम्प्रदाय मार्ग से (दक्षिणादानादि द्वारा) शिवजी की हरिहर प्रतिमा की स्थापना की ।। 205

सोमवंश रूपी आकाश का सूर्य, राजाओं का भी राजा उस राजेन्द्रवर्मन

ने उसके बाद स्वर्ग और मुक्ति के दाता श्री शिवजी की लिंग मूर्ति की स्थापना की ।। 206

मृत्यु को प्राप्त हुए अपने माता-पिता के पुण्य के लिए (मंगल के लिए) उस जगत्पति ने भक्तिपूर्वक शिवजी के ही समरूप ये दो मूर्तियाँ स्थापित कीं ।। 207

उसी विशाल बाहुवाले, राजकाज में निरत राजा ने चतुर्भुज भगवान् विष्णु की तथा ब्रह्माजी की ये मूर्तियाँ स्थापित कीं एवं आठ रूपवाले शिवजी की आठों मूर्तियों की स्थापना की ।। 208

रत्नों से सुशोभित हज़ार फणों से युक्त शेषनाग को जैसे विष्णु को दिया गया था, वैसे ही देवराज इन्द्र के समान शक्तिशाली उस राजा ने भी अशेष उत्तम स्वर्ण राशि इन देवों की सेवा में दिया ।। 209

देवेन्द्र के समान उस राजा ने शैवागम और स्मृतियों में उल्लिखित करणीय सदाचार विधि का आचरण किया तथा इन देवताओं की सदा ही पर्याप्त रूप में पूजा की ।। 210

और भी, बृहस्पति के समान बुद्धिवाले धर्माचारियों में सदा आगे रहनेवाले उसी राजा ने धर्मानुयायी भावी कम्बुज-शासकों को धर्मानुरूप और धैर्ययुक्त बात कही ।। 211

रक्षा करने योग्य की रक्षा (किया जाना चाहिए) क्योंकि आप क्षात्र धर्म. .....जब तुम्हें पुण्य वह यह रक्षा करनेवाले से यह विज्ञापन सिद्धि को साधता सा है ।। 212

इस युग में धर्म एक ही चरण से स्थित है, अत: यदि आप जैसे शास्त्रज्ञों के विशाल बाहुओं का स्तम्भ रूप में आश्रय न पावेगा तब यह कैसे समरूप से खड़ा रहेगा सुस्थिर होगा ।। 213

धर्म की रक्षा आपत्ति से साधु.........कोई भी लजाए करनेवाला या क्या स्वयं भी और रक्षा का अधिकारी राजा विशेष रूप से यह विश्वस्त है आपलोगों का यह वह धर्म है रक्षा के योग्य धर्म है ।। 214

सत्य, यश और धर्म ही धन है जिनका ऐसे आपलोग इस धन को न तोड़ें और न ले जाने दें और न स्वयं लें क्योंकि यह देवादि धन है– यह पहले से ही आप सज्जनों का भी दृढ़ निश्चय है ।। 215

तो भी फिर.........कहता हूँ तुम्हें वह नष्ट न हो इस प्रकार उसकी रक्षा करोगे यह पुण्य है, इसे रखना....मत हरण करोगे देवों के धन का यह प्रकाश धर्म के हेतु पुनरुक्त दोष नहीं लगेगा ।। 216

अपनी महिमा से महान् लोग माँगे जाने पर (अनुरोध किये जाने पर) प्राण भी दे देते हैं (छोड़ देते हैं) तब अपने आचरण को छोड़ने की बात क्या ? अतः इस विश्वास के बल से ढीठ हुई मेरी वाणी अनुरोध भंग होने के भय से मुक्त है ।। 217

शक वर्ष से गिने जाने पर 851वें वर्ष में माघ मास के पुण्य शुक्ल पक्ष की एकादशी को चन्द्रमा के आधा वर्ष व्यतीत हो जाने पर जिसका एक-एक क्षण शिवजी की सेवा में बीत रहा है वह श्री राजेन्द्रवर्मन नामवाले ने पूजापूर्वक कृष्ण, गौरी, शंकर, ब्रह्मा और अर्द्धनारीश्वर की इस पवित्र भूमि की यहाँ स्थापना की ।। 218

67

बट चम अभिलेख
Bat Chum Inscription

गकोर थोम के निकट श्रा श्रंग नामक तालाब के दक्षिण ओर बना बट चम का मन्दिर है। तीन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखे गये तीन मूल लेखों में यह एक अभिलेख है । प्रथम मूल लेख मर्ताज्ञ श्री इन्द्र पण्डित का है। द्वितीय वाप रामभागवत का तथा तृतीय अन्तिम सम्भवत: शिवाचार्य का है । इन संस्कृत मूल लेखों के इन सभी लेखकों के विषय में हम उसके बाद के ख्मेर-भाषा में लिखे संक्षिप्त अभिलेख से जान पाते हैं । भिन्न-भिन्न शैलियों में एक ही विषय पर ये तीन मूल लेख पाये गये हैं । उनमें बौद्ध देवताओं की प्रार्थना तथा राजा राजेन्द्रवर्मन की प्रशस्ति है । यशोधरपुर एवं यशोधर तटाक में उनके द्वारा दिये दानों की भी चर्चा हम इस अभिलेख में पाते हैं।

इस इस अभिलेख का ऐतिहासिक महत्त्व इस बात में पाया जाता है कि इसमें राजा की राजगद्दी तथा उनकी चम्पा पर विजय की तिथियाँ दी गई हैं । इसके अतिरिक्त इस अभिलेख में कवीन्द्रारिमथन की प्रशस्ति तथा उनके धार्मिक

स्थापनाओं की चर्चा है । इसमें स्नान तथा स्थानीय तीर्थों के कुछ नियमों का भी वर्णन है ।[1]

अभिलेख में कुल 107 पद्य हैं ।

I

जेजीयता व्रज..................................
..................................परार्थवृत्ति ।
आत्मप्रदानकृतसर्व्व.........................
सर्व्वज्ञतां स्वमुद्माप नितान्तशान्ताम् ॥ 1
लोकेश्वरो जयति लोकहितार्थरूढ़स्
सन्दर्शयन्निव चतुष्टयमार्य्यसत्यम् ।
धर्म्मस्थिति स्थिरपदाभ्यधिकान्दधानो
धत्ते चतुर्भुजविभां भुवनर्द्धये यः ॥ 2
श्रीवज्रपाणिरजितो जितजग्भवैरी
वज्रज्ज्वलज्ज्लनदीप्रिनिभं विभर्त्ति ।
उद्दामदृप्तकलिदानवदोषखण्ड
निष्यन्दसक्षुभितविघ्नविधाटदक्षः ॥ 3
आसीत् समस्त भुवनाकर रत्नसार
तारास्फुरत् किरणरञ्जित पाद पीठः ।
सोमान्वयोऽरिरसमङ्गलभूधरश् श्री-
राजेन्द्रवर्म्मनृपतिर्व्विततङ्गदीप्तिः ॥ 4
यस्याङ्घ्रि युग्मकमलङ्कमलालिलीढ़ं
सिंहासनोज्ज्वलितरत्नकराम्बुरूढ़म् ।
प्रोज्जृम्भितं प्रणतभूपति मौलिमाला-
माणिक्यकोटिकिरणाभिनवारूपेण ॥ 5
लक्ष्मीस्त्रिलोकललना ललिताग्रजन्ये-
जस्र सुरासुरगणै परिपीडिताङ्गी ।
निर्व्वेदभागिव यदीयवराङ्गरङ्गे

1. *जर्नल एशियाटिक* (1908), pt. II, p.213 में इसका विस्तृत विवरण मिलता है ।

शोभासुधां समाभिपातुमिवामिलीना ॥ 6
त्रैलोक्यरक्षणविधौ चतुरे यदीये
पाणौ निधाय कजजाम्बुजदृक्त्रिनेत्राः ।
दिव्यम्बुजाऽम्बुज महोज्ज्वल चक्रशूल-
जयान्ताः समाधि सुखसंयमिनो रमन्ते ॥ 7
यस्याज्ञयाभ्यधिकयानविलंध्ययान्य-
पृथ्वीभृतां समधरीकृतधैर्य्यधाम्नाम् ।
आत्मोन्नति प्रतिकृतानुचिकीर्षयेव
लीढं किरीट किरणैर्न्नखरत्नमङ्घ्रयोः ॥ 8
लक्षाध्वरादिदहनोद्धतधूमधूति-
मुद्धूपीताम्बर धरोद्धुरदिग्विभागाम् ।
यः कालमेघनिवद्धामिव विप्रकीर्ण्णान्
दृप्रारिसंदृतिहतौ सतत व्यतानीत् ॥ 9
निर्म्मध्य युद्धजलधि भुजमन्दरेण
कीर्ण्ण यशोमृतमहार्घ्यभरातिवर्ग्गैः ।
आयीयमानमापि यस्य जगत्रयेण
केनापि न क्षयगतं नितरां विवृद्धम् ॥ 10
भानुप्रभावनिवद्धैरिव दुर्न्निरीक्षै-
भस्वित्सुवर्ण्णकवचारूणरोचिराढचैः ।
अस्त्रव्रजैर्य्यधि विभिन्नमहारिरक्तैः
कालान्तकानलशिखामिव यस्ततान ॥ 11
पुण्योदधेस् समुदिता नु यदीयकीर्त्ति-
र्म्मा मत्समानमिति साङ्कलङ्ककमिन्दुम् ।
संदर्शयन्त्यधिककान्तिकलां स्वकीया-
न्नित्यञ्चचार चतुरा सकलान् त्रिलोकीम् ॥ 12
श्रीमद्यशोधर पुरीञ्चिरकाल शून्यं
भास्वत्सुवर्ण्णगृहरत्नविभानरम्याम् ।
भूयोऽधिकां भुवि महेन्द्रगृहोपमां यो
ऽयोध्यापुरीमिव कुशोऽभिनवाञ्चकार ॥ 13

श्रीमद्यशोधरतटाक पयोधिमध्ये
मेरोस् समानशिखरे स्वकृते महाद्रौ ।
प्रासाद सौध गृहरत्नचिते विरिञ्च-
देवीशशार्ङ्गिशिवलिङ्गमतिष्ठिपद् यः ॥ 14
तस्यापभृत्यो मतिमान् भक्तिभाग्योऽतिवल्लभः ।
श्रीकवीन्द्रारिमथनं नामान्वर्थमवाप यः ॥ 15
काञ्चीदोलाकरङ्काङ्ककर्ण्णभूषादि भूषणैः ।
राज्ञा कृतस्मयो योऽपि न स्मयो नीतिसम्पदा ॥ 16
अग्रेसरः प्रथितपुण्यवतां स्वपुण्यैश्
शिल्प प्रयोगकरणेन च शिल्पभाजाम् ।
यो वित्त भाजनतयापि धनापिपाना-
ञ्चित्तज्ञताधिकतयाधिक बुद्धिभाजाम् ॥ 17
सद्भूतसत्त्वगुणरागितया नितान्तं
त्राणीय सत्त्वनिचयस्य परायणो यः ।
नित्यं स्वकीयहृदयार्प्पितधर्म्ममार्ग्ग-
न्नित्यान्वगाद्गुणकलापकलानिवासः ॥ 18
सोऽस्थापयत् सुमहतीज्जिनमूर्त्तिमेक
श्रीवज्रपाणि सहितामपि दिव्यदेवीम् ।
प्रासादहर्म्म्यनिवहे स्वहृदीव दिव्ये
बौद्धोऽग्रधीश् शरणगाष्टमिस्र भक्त्या ॥ 19
जयन्तदेशे जिनरूपमेकं
सोऽस्थापयन् मूर्त्तिरसाष्ठशाके ।
कुटीश्वरे सोऽपि च लोकनाथ-
न्देवीद्वयं नेत्रनगाष्ठशाके ॥ 20
श्रीमन्महेन्द्रगिरिमूर्द्धजतीर्थजाते
स्वच्छे विशुद्धपरिखाम्भसि मङ्गलार्हे ।
अल्पेऽप्यनल्पफलदायिनि तेऽत्र सर्व्वे
मा स्नासिषुर्द्विजवरेण विनैव होत्रा ॥ 21
विस्तारित द्विशतयुक्तचतुःशताग्रा

यामेपि सत्त्व निवहस्य हितार्थनीरे ।
तीरामिधातकरणं द्विपवृन्दमेव
मा रोपयन्तु नियतं सततन्तटाके ॥ 22
यद् यज्वना दत्तमिदं स्वपुण्ये
तदत्रदेशे विबुधे न हार्य्यम् ।
द्रव्यं सरैराजतकिङ्कराद्यं
सुखार्थिमिर्य्यैरूभयत्र लोके ॥ 23
इति वदति स वाणी सत्यधर्म्मानुवृत्तां
सकलजनगणांस्तान् धर्म्मसद्वृत्तिभाजः ।
यदिह तु निजपुण्यं स्वान्मना रक्षणीयं
तदपि च परपुण्यं यत्नतः पालयन्तु ॥ 24

II

बुद्धो बोधीं विदध्याद्वो येन नैरात्म्यदर्शनम् ।
विरुद्धस्यापि साधूक्तं साधनं परमात्मनः ॥ 25
श्रीवज्रपाणिख्याद् वश् श्रीमद्वाहुर्ब्बिभर्त्ति यः ।
श्रीपालननित्रजगतश् श्रीवज्रं वज्रिवज्रवत्॥ 26
प्रज्ञापारमिता पातु पातकाद्वो वरीयसः ।
बुद्धसर्व्वज्ञमावेन्दीः पौर्णमासीव पूरणीः ॥ 27
आसीद्राजेन्द्रवर्म्मेति राजेन्द्ररजनीश्वरः ।
श्रीमान् रसर्त्तुवसुमिर्मूषितात्मीय मण्डलः ॥ 28
वाल्ये विजित्य कन्दर्प्प दर्पं सौन्दर्य्यसम्पदा ।
यौवने तु जिगीषन्तं यो जिगाय पुनर्धिया ॥ 29
विधाराकानुरक्तं यं भेजिरे सकलाः कलाः ।
कम्बुविश्वम्भराजवंशाम्बर निशाकरम् ॥ 30
विसर्प्पिषड्गुणरसेस् सकीर्त्तीन्दुजयामृतैः ।
भूषितो यश् शुभारम्भैरूदन्वानिव वारिभिः ॥ 31
जयामृतरसाद्रङ्गि यशः कौस्तुमभासुरम् ।
प्रत्यक्षमरविन्दाक्षं लक्ष्मीर्य्यं शिश्रियेऽनिशम् ॥ 32
रजसा जृम्भितेनापि सान्द्रे तमसि दर्शिते ।

विवृद्धं यस्य यात्रायां सत्त्वन्न प्रकृतेरिव ॥ 33
विहिते वेधसा शङ्के यस्य वक्त्रेन्दुमण्डले ।
जातं प्रत्यक्षमभ्रान्तञ्चन्द्रद्वितय दर्शनम् ॥ 34
राजसिंहोऽपि वैरीन्द्रकरीन्द्र कदनादरी ।
सिंहावलोकितन्यायन्नाद्याद् युद्धाद्रिभूर्द्धिन यः ॥ 35
सन्यापसण्यदोम्मुक्तिमार्ग्गणार्व्वुद्मर्ज्जुनम् ।
द्रुतन्द्विषद्रबं वीक्ष्य यं कौरवविवर्द्धितम् ॥ 36
यस्यारिर्मण्डलाग्रेण कृत्तमूर्द्धापि संयुगे ।
केनापि मण्डलान् मुक्तो भास्वन्मण्डलभन्वगात् ॥ 37
यस्तकीर्त्तिर्द्दिगन्नाय गन्त्री गीत गुणोदया ।
दिगीन्द्रलक्ष्मीहरिणीं लालयन्तीय लिप्सया ॥ 38
साधुशब्दप्रयोगार्ध्ये यस्य राष्ट्रे न गीरियं ।
देहीति मध्यमे प्यासीत् पुंसि किं पुनरुत्तमे ॥ 39
यस्योर्व्वी बिभ्रतस् सर्व्वां सर्व्वोभूमृन्नु मूर्द्धभिः ।
बभार भूमृद्भावप्त्यै केवलाङ्घ्रि रजोमयीम् ॥ 40
त्रिलोकीं कीर्त्तिवीथीं यस् समीकर्त्तुमना इव ।
बाहुवीर्य्येण विदधे भूमृदर्व्वुदमर्द्दनम् ॥ 41
श्रुतिमण्डितमाधुर्य्यो धुर्य्यो धर्म्मानुशासने ।
यस्याभ्युदयकृन्नृणां निदेशोऽर्घ्यो मनोरवि ॥ 42
खण्डेन्दुदीपितं शम्भोर्भिन्नमैश्वर्य्यमष्टधा ।
यस्याभिन्नन्तु सर्व्वत्र कीर्त्त्यखण्डेन्दुदीपितम् ॥ 43
यशोधरतटाकस्य मध्येऽतिष्ठिपदैश्वरम् ।
यो लिङ्ग शार्ङ्गिगौरीश कुशेशयभवैस् सह ॥ 44
चम्पादि परराष्ट्राणां दग्धा कालानलाकृतिः ।
तेजसां विसरो यस्य जाज्वलीति ककुम्मुखे ॥ 45
त्रैलोक्यमन्दिरे हेमशैलाग्रशयनोज्ज्वले ।
लक्ष्म्यास्तनोति सुरतं यत्कीर्त्तिर्म्मणिदीपिका ॥ 46
येनोत्तरायनार्द्धेऽपि यज्ञे दत्ताः धनाधनाः ।
मधोनेवर्त्विजाज्जाताः दक्षिणा दक्षिणायने ॥ 47

सप्रत्ययाः प्रकृतयो योग्यास् स्वार्थपरार्थयोः ।
प्रकाशने कृता यस्य वचसा पाणिनेरिव ॥ 48
संक्रान्तयोगनिद्रेव संश्रिताब्धौ चिरं हरिम् ।
श्रीरशेतानिशं यस्य वक्षस् स्फटिकमन्दिरे ॥ 49
तदीयोऽनुचरश्चारूचरिताचाररञ्जितः ।
श्चकवीन्द्रारिमथनो मथितारातिराहवे ॥ 50
काञ्चीकरङ्ककलश प्रमुखैर्भोग विस्तरैः ।
सत्कृतः कम्बुजेन्द्रेण भर्त्त्रायो गुणगौरवम् ॥ 51
पाणिस्पर्शेन यो मूर्द्धि राज्ञा दत्तवरस् स्वयम् ।
सिद्धिं लेभेऽरिमर्द्दादिराजकार्य्ये नियोजितः ॥ 52
प्रविसंवादिबुद्धस्य स्वार्थ विज्ञान पूर्व्वकम् ।
वाक्यं येनानुराशिष्टं स्वान् परेभ्यान् प्रयच्छति ॥ 53
बुद्धिदिव्यस्वभावेन बद्ध्वा तादात्म्य लक्षणम् ।
सम्बन्ध यस् स्वमनसो योगिज्ञानभवाप्तवान् ॥ 54
जयन्तदेशे विजयी जिनमेकमतिष्ठिपत् ।
देवीद्वितयसंयुक्तं धो बुद्धञ्च कुटीश्वरे ॥ 55
धर्म्ममार्ग्ग प्रमाणेन मानिनामग्रयायिना ।
तेनात्र स्थापिता देवीबुद्धश्रीवज्रपाणयः ॥ 56
प्रादात् प्रासादसद्नानि निजहृत्पद्मतःप्रति ।
स स्थित्यै स्थापित सुरे कृत्येमान्यपराण्यपि ॥ 57
अत्रेदमनुकर्त्तव्यं सतान्तेन मनस्विना ।
राज्ञो विज्ञापिस्येति शासनं सुरमन्दिरे ॥ 58
वसूनि खानिदेवानि नैव हार्य्याणि साधुभिः ।
असाधवश्च निग्राध्या भूपैस्तानि जिहीर्षवः ॥ 59
तरूरेकोऽपि रूदोऽस्मिन्नोच्छेद्यश्छाययान्वितः ।
किं पुनगृहदारूणि सुखदानि सुखार्थिनाम् ॥ 60
शीलगोपायनपराः परार्थस्थिरबुद्धयः।
वास्तण्यास्तदृशाश् शान्ता भिक्षवोऽस्मिन् समाधिना ॥ 61
महात्यां विधिश्वातायां परिखायां शुभाम्भसि ।

विप्राहते वेदविदस् स्नातव्यन्नात्र कैश्चन ॥ 62
तटाकेऽस्मिन् तटरूहैस्तरूमिश शीतलाम्भसि ।
गजानां मञ्जनं माभूत स्याच्चेद्रवार्य्यन्दयालुभिः ॥ 63
इति नृपतिवचांसि तेन मूर्द्धि
प्राणिहितानि हितानि सज्जनानाम् ।
ललित विरचिताक्षरैरिहैभिः
प्रविलिखितान्य विलङ्घयतां भजन्ताम् ॥ 64

III

बुद्धो विराजति समग्धिसभित्समृद्ध-
वैराग्यहेतिनिहतारिपमारवीर्य्यः ।
योऽवाप्य बोधिमविनश्वरराज्यलक्ष्मी-
न्निर्व्वाण मन्दिरवरे रमतेऽधिराजः ॥ 65
श्रीवज्रपाणिखतान्महतां विभूतिं
यो द्विग्मदापकृतिकल्यमकुन्ठिताग्रम् ।
वज्रं वहन् प्रहसतीव सहस्रनेत्रं
संग्रामवैरिमदकुण्ठितबन्ध्यवज्रम् ॥ 66
प्रज्ञापारमिता विभाति भुवनाम्भोजोदयश्रीकरी
कलाकार महान्धकारमथनी भूतार्थ सम्बोधिनी ।
या लीलामपि मण्डलस्य दधती निर्व्वाणबीथीरवे-
रभ्रान्ता रुचिमातनोत्यपिहितान्नकृन्दिवं भास्वतीम् ॥ 67
आसीत् सषड्रसैश्वर्य्यान्धिर्म्मादयां वसुधान्दधत् ।
श्रीमद्राजेन्द्रवर्म्मेशः पृथुवत् पृथुविक्रमः ॥ 68
दग्धे स्मरे निरास्थानशोकानलशमादिव ।
निमग्नानङ्गकान्तिर्य्यत् तनुकान्तिसुधाम्बुधौ ॥ 69
त्रैलोक्यलक्ष्मीमालोक्य सेर्ष्या यस्याङ्गसङ्गिनीम् ।
इन्द्रादीन बोधयन्तीव कीर्त्तिस् स्त्री हशदिगद्रुता ॥ 70
इनमण्डलसन्तापपटुना यस्य तेजसा ।
सन्तापित इवाद्यापि पिबत्यर्क्कः करैश्यः ॥ 71
पटुप्रतापतप्तान् यः पद्मारूढः प्रजापतिः ।

कीर्त्तिदुग्धाम्बुधौ नम्रान्राजहंसान्यमज्जयत् ॥ 72
विक्रमाकान्तभुवने श्रीधरे सर्व्वदेवताः ।
मुदिता बलितः क्षीणाद् विवृद्धादेव यत्र तु ॥ 73
श्रीराजसिंहमहिषी श्रिता शून्याप्यरेः पुरी ।
सराज्यलीलेव भिया यतो न्वन्तर्द्दधे वने ॥ 74
तेजोभिर्भास्वता येन कर्त्रापि भुवनद्युतिम् ।
याने केनापि सर्व्वाशा बलधूल्यान्धकारिता ॥ 75
रत्नसिंहासनगिरिं राजसिंहेऽधिरोहति ।
यास्मिन् वीर्य्येण संत्रस्ताः प्रणेमू राजकुञ्जराः ॥ 76
ज्यायां सन्द्विषतीव श्रीःकृष्णं निद्रानुरागिणम् ।
नित्यबोधिनी शुभाङ्गे यूनि यत्रानुरागिणी ॥ 77
षाणारि विजयश्रीद्धमनिरुद्धबलोद्धुरम् ।
मुरारिमिव दिग्राजा यमजय्यं युधीडिरे ॥ 78
भुवनोदयसंवर्द्धसामादिविधिशालिनी ।
दिगिन्द्रमूर्द्धविधृता यस्याज्ञेन्द्र गुरोरिव ॥ 79
यस्य चक्री गदी शङ्खी धरणीवर सन्निधिः ।
युधि द्विट्श्रीकचग्राही विष्णोरिवभुजौवभौ ॥ 80
योऽङ्गः सौन्दर्य्यदुग्धाब्धौ धौतं पूर्णेन्दुमण्डलम् ।
व्यङ्कपङ्कन्...रम् लक्ष्मीभास्वरं वदनन्द्यौ ॥ 81
राजानां द्यु...वेन्द्रा जिताद्राजं विभीषणे ।
प्रे.......थ् नी योऽदाद्राम इवापरः ॥ 82
मखानलो............महामहिषमण्डले ।
यस्य...........कीर्ण्णे कल्यश्वःक्वापि विद्रुतः ॥ 83
एकेन सकलं क्रान्त्वा भुवनं विक्रमेण यः ।
श्रमग्दिवाङ्घ्रि सान्निध्यं भूभृतां मूर्द्धनि व्यधात् ॥ 84
....ङ्घ्र नीरजम् ।
....ण्डलश्रियः ॥ 85
....दिलीपवत् ।
....निर्ज्जितात् ॥ 86

....मभृद् ध्रुवम् ।
मेरु...येन सिज्यति ॥ 87
राजेन्दु.........................(यशोधर) पुराम्बुजम् ।
श्रीभिः.....................................षडुदयं पुनः ॥ 88
यशो(धरतटाकस्यमध्ये) श्रीद्धेधराधरे ।
मेराविव......................न् समतिष्ठिपत् ॥ 89
श्रीरम्भोधि चि............पशमादिव ।
आश्रयद् यामिन...............कोज्ज्वलमण्डलम् ॥ 90
धर्म्मादिवाश्रिता यास्मिन्नधर्म्मेण विरोधिनः ।
निःश्रेयसाम्युदययोस् सिद्धिं लोकाः प्रपेदिरे ॥ 91
युद्धे द्वाभ्यां द्वयोर्य्योगे वल्लभे द्वे द्रुते इयम् ।
पद्मया यस्य कीर्त्तिस् स्वर्व्विपत्यारेर्व्वधूर्व्वनम् ॥ 92
हिरण्यक शियुश्रीभिर्व्वियुक्तः भुवनं व्यधात् ।
नृसिंहो यस्तु विपुलं विचित्रञ्चरितं सताम् ॥ 93
अब्धिन्देवैर्म्मधित्वैका स्वार्थाश्रीश् शौरिणा हृता ।
युद्धाब्धिं सुहृदर्थापि समस्तैकेन येन तु ॥ 94
चारश्चन्दौजसस्तस्य भक्त्याङ्घ्रौ बद्धयाबभौ ।
श्रीकवीन्द्रारिमथनश् श्रियारूण इवाम्बुजे ॥ 95
चतुर्भिश्चतुरोपायैर्यशस्कर विवेकिनी ।
धर्म्यर्थिसिद्धिकर्त्री यद्बुद्धिर्नीतिरिवाबभौ ॥ 96
बौद्धधर्म्मैकतानो यो बौद्धानामग्रणीरपि ।
केनापि भूपतौ भक्तिर्न्नद्धास्मिन् परमेश्वरे ॥ 97
यशोधरपुरे रम्यं मन्दिरं विबुधप्रियः ।
शिल्पविद् विश्वकर्म्मेव योऽनेनेन्द्रेणकारितः ॥ 98
प्रेरणे सर्व्वलोकस्य यश् शैलादिकृतौकृती ।
यशोधरतटाकस्य मध्ये राज्ञा नियोजितः ॥ 99
संसाराण्णवमोचनं प्रणयिनान्निर्व्वाणसौख्यं यशः ।
शुभ्रन्दीपितदिङ्मुखं सुगमनं बन्धोश्चलोकद्वयम् ।
प्रज्ञापारमितात्र तेन विदधात्येतान्यधिष्ठापिता

कम्येकं हि सतान्तनोति वहलं सर्व्वं फलं बन्धुरम् ॥ 100
नित्य बद्ध निवासेन वीतरागेण बन्धुरम् ।
प्रासादमण्डलं योगी स ह्नीरजवद्र व्यधात्॥101
स्वच्छेन पावनेनाप्तां पयसा परिखामिमाम् ।
यथा निर्व्वाणसंप्राप्तिं ज्ञानेन स विनिर्म्ममे ॥ 102
सर्वसत्वाभिनन्दार्थन्तटाकं महतां मतम् ।
स यथा चरितं बौद्धं विदधौ धर्म्मवर्द्धनम् ॥ 103
राजहंसावगाहार्हे पुण्ये राजपुरोहितः ।
स्नायकाः परिखानीरे विप्रा एवेतितन्मातिः ॥ 104
तटाकवनतस्तस्य मातङ्गास्तटभङ्गिनः ।
साधुसिंहैर्न्निरूध्यन्तान्धर्म्मकेसर भासुरैः ॥ 105
अनवरतविनाशानीत पायान्धकार-
श्चतुरद..................शेष लोकं ।
रविमिव विदधानं पुण्यपद्मोदयर्द्धि-
न्नम्........जनं.........नु भावीं ॥ 106
शिवाच्युताभिधानेन.................।
प्रासादे......................प्रद्मनबन्ध... ॥ 107

अर्थ–

पुनः-पुनः अतिशयता से जीतें (जय होवे) दूसरों का कार्य करना है जीविका जिसकी.. । निःस्वार्थ आत्म त्याग से किया है सब सर्वज्ञता को, अपने हर्ष को अतिशय शान्त रूप में प्राप्त किया ।। 1

लोकेश्वर जीतते हैं, उनकी जय होती है । सभी उत्कर्षों के समान विद्यमान हैं । लोकों के हित के लिए जन्म लिया । चार आर्यसत्य सम्यक् दिखाते हुए धर्म की स्थिति को अत्यधिक स्थिर चरण होकर धारण किये हुए सारे विश्व की समृद्धि के लिए जो चतुर्भुज की प्रदीप्ति को जो राजा या श्री विष्णु भगवान् (दोनों पर सभी विशेषण हैं)– यहाँ राजा के विष्णुवत् राजा का भी वर्णन है । द्वयर्थक श्लोक श्लेष अलंकार है ।। 2

श्री इन्द्र जो किसी से हारनेवाले नहीं अतएव 'अजित' हैं जिन्होंने जम्भ

नामक असुर को मारा था । अतएव उसके वैरी हैं । जलते हुए वज्र की जलन समान प्रकाश धारण करते हैं । उद्दण्ड गर्वी कलियुग दानव के दोषों के खण्डों से चूने से सम्यक् क्षुभित विघ्नों के नाश करने में निपुण श्री इन्द्र जी हैं ।। 3

समस्त विश्वरूप समुद्र के सार रत्न, या रत्नों के सार ताराओं की फड़कती किरणों से रंगी हुई (रमणीय) पीढ़ी जिस पर राजा पैर रखता है जिसे पादपीठ कहते हैं– ऐसा राजा था चन्द्रवंशोत्पन्न शत्रु के रस रूप मंगल पृथिवी के राजा श्री राजेन्द्रवर्मन अपने अंगों के प्रकाश बिखरनेवाले जिनके अंगों के प्रकाश विश्व में बिखरे थे– ऐसे श्री राजेन्द्रवर्मन हैं ।। 4

जिसके दोनों चरणकमल लक्ष्मी से पुनः-पुनः अतिशय रूप से स्पर्श किये गये हैं, सिंहासन प्रकाशित रत्नों की किरणों रूप जल में चरणकमल जँभाई ली है- पैरों पर प्रणाम करनेवाले राजा के मस्तकों की मालाओं के माणिक्य जो करोड़ों की संख्या में हैं उनकी किरणें माणिक्यों की किरणों से नयी लालिमा से युक्त है ।। 5

लक्ष्मी जी त्रिलोकी स्त्रियों में सुन्दरी स्त्रियों की सबसे ज्येष्ठ बहन हैं । बहुत बार देवों और दानवों के समूहों से सब ओर से पीड़ित अंगोंवाली दुखिनी विन्ना सी जिस सुन्दर अंगों रूप रंगों में शोभा रूप अमृत को सम्यक् सब ओर से मानो पीने के लिए ही सब ओर से डूबी हुई हैं, मग्न हैं ।। 6

त्रिलोकी की रक्षा की विधि में चतुर जिसके हाथ में रख करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये त्रिदेव हैं एक ही पर गुण भेद से रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण– इन तीनों से युक्त हैं। 'एकोदेव त्रयीमूर्ति ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः' एक देव हैं तीन मूर्तियाँ हैं– आकाश में, स्वर्ग में कमल या अम्बुजा लक्ष्मी के कमल से महान् उज्ज्वल चक्र और शूल– सभी समाधि के सुख के लिए संयमी होकर रमण करते हैं ।। 7

जिसकी आज्ञा से अत्यधिक रूप से उल्लंघनीय नहीं है दूसरे राजाओं से बल्कि दूसरे राजा लोगों के धैर्य और धाम इस राजा से नीचे ही हैं । आत्मा की उन्नति की प्रतिमा के अनुकरण की इच्छा से मानो छुआ हुआ, स्पृष्ट किरीट की किरणों से नख रूप रत्न दोनों पैरों में है ।। 8

लाख यज्ञ आदि की आग से उठे धुएँ के कारण सभी दिशाएँ पीली पड़ी हैं जो काल मेघों के समूहों से युक्त सी फैली हुई गर्वी शत्रु समूहों के संहार की चोट में सतत विशेष रूप से विस्तार किया ।। 9

भुजाओं रूप मन्दार पर्वत से लड़ाई रूप समुद्र को मथ करके बिखेर दिया गया यश रूप अमृत जो नहीं हरण करने योग्य है किसी शत्रु दल से । समन्तात् भाव से सब ओर से पीये जाने पर भी तीनों लोकों द्वारा जिसका जल किसी से भी नष्ट नहीं किया जा सका प्रत्युत् बढ़ता ही रहा विशेष रूप सर्वदा बढ़ा दिखा ।। 10

सूर्य किरण समूह के समान कठिनाई से देखे जाने योग्य अर्थात् चाकचिक्य युक्त, चमकते सोने के लाल कवच से चमकीला बना तथा अस्त्र के आघात से बने घावों से बहते रक्त से एवं बड़े-बड़े शत्रुओं के काटे गये शरीर से पड़े रक्त से सनकर जो प्रलयकालीन महाज्वाला की लपट की तरह लाल हो रहा था ।। 11

उसके पुण्यकृत्यरूपी महासमुद्र से निकला उसका यशचन्द्र, कलंकयुक्त अंगोंवाले प्रसिद्ध चन्द्रमा को मानो यह बताने के लिए कि तुम मेरे समान नहीं हो अधिक प्रकाशयुक्त और निष्कलंक कान्ति को फैलाया । कृष्ण-शुक्ल पक्ष के व्यवधान के बिना, बिना क्षय हुए, एक ही सर्वत्र उदित रहने में समर्थ यह यश चन्द्र तीनों लोकों को प्रकाशित करता रहा ।। 12

बहुत दिनों से उजाड़ पड़े महान् यशोधरपुरी को सोने की चमकवाले घरों, कंगूरों (विमानों) तथा बहुत से सोने-रत्नों से सम्पन्न कर धरती का इन्द्रलोक जिसने बनाया या कुश ने जैसे अयोध्या को पुनः सजाया था उसी प्रकार यशोधरपुरी को जिसने फिर से आबाद कराया ।। 13

महान् यशोधर तड़ाग नामक सरोवर के बीच में सुमेरु पर्वत के समान उच्च शिखरवाले पर्वत पर अपने बनाये राजमहल के रत्नजटित कक्ष में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की मूर्तियाँ जिसने स्थापित कीं ।। 14

उसी का एक अत्यन्त स्वामीभक्त छोटा सेवक जो श्री कवीन्द्रारिमथन का उचित नाम पाया था ।। 15

सोने का झूला, मंजूषा, पीठ (आसन), मुकुट, कुण्डल आदि आभूषणों से वह राजा को भी चकित कर देनेवाला था ।। 16

जीतिमान अहंकार ही न वह शिल्प-दक्षता के कारण शिल्पियों में धन के कारण धनियों में तथा आत्मज्ञान के कारण ज्ञानियों में सबसे आगे था ।। 17

महान् कुल में उत्पन्न वह सत्त्व गुणानुराग के कारण सदैव जीवदया में परायण तथा अपने हृदय को धर्ममार्ग में नित्य अर्पित कर रखा था । वह गुणों और कलाओं का अक्षय निवास था ।। 18

उसी ने सुन्दर और बहुत बड़ी जिन भगवान् की मूर्ति, वज्रपाणि भगवान् की मूर्ति तथा दिव्य देवी की मूर्तियों को अपने हृदय के साथ ही अपने दिव्य राजभवनों में स्थापित किया । देवताओं में अग्रपूजित भगवान् बुद्ध की मूर्ति शक संवत् 875 में स्थापित की ।। 19

इस जयन्त देश (जीते गये देश) में जैन भगवान् की एक मूर्ति उसी ने शकाब्द 868 में स्थापित की थी साथ ही कुटीश्वर में उसी ने लोकनाथ भगवान् तथा दोनों दिव्य देवी मूर्तियों की स्थापना शक संवत् 872 में की थी ।। 20

श्रीमान् महेन्द्र पर्वत की चोटी के तीर्थसमूह में जो स्वच्छ है चारों ओर खाई है उसके जल में जो मंगल योग्य है छोटी रहने पर भी बहुत फल देनेवाली है, वे यहाँ सभी नहीं स्नान करें । बिना हवन करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों के दूसरे भी स्नान करने की इच्छा न करें ।। 21

दो सौ से युक्त चार सौ दूरीवाले अग्रभाग हैं जिसके इतने विस्तारित प्रहर में भी प्राणियों के हित के लिए जो जल है उसमें तीर तोड़नेवाले हाथियों के झुण्डों को ही न यहाँ रखे निश्चित रूप से सर्वदा तड़ाग पर इससे किनारे टूट जाएँगे ।। 22

जो यज्ञ करनेवाले से दिया गया है उसने अपने पुण्य के विषय में दाता है सो इस स्थान पर देव के विषय में दिया गया है इसका हरण नहीं करना चाहिए । जो द्रव्य धनसहित चाँदी दासों से आढ्य, दासों से युक्त है इसका हरण वे न करें जो इस लोक का और पारलौकिक (परलोक का) सुख चाहते हों ।। 23

इस वाणी को बोलनेवाला जो वाणी सत्य और धर्म के अनुवर्तक है सभी

लोगों से जो धर्म और अच्छी वृत्ति के भागी हैं यदि अपने पुण्य की अपनी आत्मा से रक्षा करनी है तो भी दूसरे के पुण्य को कोशिश करके पालें– रखें ।। 24

II

बुद्ध भगवान् तुम्हारे बोध का विधान करें तुम्हें बोध दें जिससे निरात्मता का दर्शन हो । विरुद्ध का भी अच्छी तरह अच्छे के द्वारा कहा हुआ साधन परमात्मा का है ।। 25

श्री वज्रपाणि तुम्हारी रक्षा करें जो श्रीमान् बाहु को धारण करता है । तीनों लोकों की लक्ष्मी और शोभा का जो पालन करनेवाला है श्री वज्र को इन्द्र के वज्र के समान ।। 26

प्रज्ञापारमिता तुम्हें श्रेष्ठ पापों से बचावें । बुद्ध के सर्वज्ञ भाव रूप चन्द्रमा की पूर्ण करनेवाली पूर्णिमा की भाँति ।। 27

'राजेन्द्रवर्मन'– इस नाम से ख्यात् राजेन्द्र रजनी का स्वामी । श्रीमान् 869 से विभूषित शोभित आत्मीय मण्डल वाला ।। 28

बचपन में जिसने कामदेव को जीता जो कामदेव सुन्दरतारूपी सम्पत्ति से गर्वित है– जवानी में तो जीतने की इच्छा करनेवाले को जिसने फिर बुद्धि से जीत लिया ।। 29

विद्यारूपी पूर्णिमा की रात्रि में अनुरक्त जिस राजा के सभी कलाओं ने सेवित किया था जो कम्बुज की भूमि के राजवंश रूप आकाश का चन्द्र है उसकी सेवा की थी ।। 30

विशेष रूप से बिखरनेवाले षड्गुणरूप रसों से कीर्ति रूप चन्द्र की जय से अमृत से जो शुभ आरम्भों से शोभित है जल से समुद्र शोभित है ।। 31

जय की सुधा के रस से भीगे अंगोंवाला। यशरूप कौस्तुभ मणि से प्रकाशित प्रत्यक्ष कमलनयन जिसकी सेवा सर्वदा लक्ष्मी करती हैं ।। 32

रजोगुण से जँभाई लेता हुआ भी घने अन्धकार दिखाने पर जिसकी यात्रा में विशेष रूप से सत्त्वगुण न बढ़ा मानो प्रकृति के समान ।। 33

जिसके मुख चन्द्रमण्डल में ब्रह्मा ने ऐसा विधान किया ऐसी शंका

लेखक को है कि प्रत्यक्ष बिना भ्रम के दो चन्द्रों के दर्शन हुए ।। 34

राजाओं में सिंह के समान भी वैरीन्द्र रूप करीन्द्र भी सिंहावलोकन न्याय को लड़ाई रूप पर्वत की चोटी पर जो न खाये ।। 35

दाएँ-बाएँ दोनों हाथ से छोड़े अर्ब बाण उसने ऐसे अर्जुन को शीघ्र शत्रु के बल को देखकर जिसको कौरव से विवर्द्धित जाना गया था ।। 36

लड़ाई में सिरकटे शत्रु भी जिसके शत्रु समूह के आगे से किसी के द्वारा मण्डल से मुक्त होकर छूटकर सूर्य के मण्डल का अनुगामी बनाया गया ।। 37

जिसकी कीर्ति दिशाओं के अन्त तक जानेवाली है जिसकी कीर्ति के गुण के उदय के गाये जा चुके हैं, दिशाओं के राजा की लक्ष्मीरूपी हरिणी को प्यार करती हुई सी लोभ से मानो दिशाओं के अन्त तक जाने का काम करती है कीर्ति ।। 38

शुद्ध शब्दों के प्रयोगों से भरे पूरे धनी जिस राष्ट्र में यह वाणी 'न' थी। उत्तम पुरुष की बात ही ऊँची है, मध्यम पुरुष भी 'देहि'-दो यह वाणी मध्यम श्रेणी के लोग बोलते हैं ।। 39

सभी भूमि को प्राप्त करनेवाले जिस राजा के केवल चरण की धूलिमयी भूमि के धारण करने राजा होने भूभृत् भाव की प्राप्ति के लिए सभी राजा मस्तकों से चरणरज को धारण करते हैं ।। 40

तीनों लोकों को अपनी कीर्ति की गली के समान बनाने की इच्छावाले राजा मानो अपनी बाँहों के वीर्यबल से अर्व राजाओं का मर्दन-नाश कर डाला था ।। 41

वेदों और शास्त्रों के श्रवण से उसी से मिठासवाला; धर्म के अनुशासन में अग्रगण्य राजा जो अभ्युदयकारी निदेश देता है उसके आदेश के लिए प्रजाजन मनु की आज्ञा के समान याचना करनेवाले हैं । जैसे मनु की आज्ञा सबके सिर-आँखों पर रहती है, वैसे ही अपनी पढ़ाई से मधुर व्यवहार करनेवाले धर्मपालन से अग्रगण्य, ऐसे राजा के अभ्युदयकारी आदेश की याचना प्रजाजन मनु के आदेश के समान करते हैं अर्थात् पालते हैं ।। 42

खण्ड चन्द्र धारण करनेवाले शिव के आधे चन्द्र से प्रकाशित ऐश्वर्य आठ प्रकार के विभक्त हैं और राजा की कीर्ति अभिन्न है पूर्ण है– अखण्ड कीर्ति रूप चन्द्र से प्रकाशित होने से राजा का ऐश्वर्य अखण्ड है– पूर्ण है ।। 43

यशोधर तड़ाग के बीच में शिवलिंग की स्थापना की गयी साथ ही विष्णु, गौरी, शंकर, ब्रह्मा– इन देवों की मूर्तियाँ भी स्थापित की गयीं ।। 44

चम्पा आदि पर राष्ट्रों की जली आकृति कालाग्नि के समान है जिस राजा के तेजों का विस्तार दिशाओं के मुख में पुनः-पुनः अतिशय रूप से प्रकाशमान है ।। 45

जिसकी कीर्तिरूपी मणि दीपिका त्रैलोक्यरूप मन्दिर हिमालय की चोटी रूप उज्ज्वल शय्या पर लक्ष्मी की रति क्रीड़ा का विस्तार करती है- बिखेरती है ।। 46

जिसके द्वारा उत्तरायण के आधे समय में भी यज्ञ में दिये जल इन्द्र के द्वारा यज्ञ करनेवालों के समान दक्षिणायण में दक्षिणा हुई ।। 47

पाणिनि व्याकरण के नियमानुसार मानो प्रत्यय=विश्वास, प्रत्यय-जो किसी प्रकृति में अन्त में लगता है । प्रकृति=जिसमें प्रत्यय लगता है । प्रत्यय सहित प्रकृतियाँ योग्य हैं अपने अर्थ और दूसरे के अर्थ के प्रकाशन में जिसके वचन द्वारा पाणिनि के समान किया जाता है ।। 48

योगनिद्रा के संक्रान्त होने पर जैसे चिरकाल तक समुद्र में सोनेवाले विष्णु के हृदय पर सर्वदा जिस स्फटिक मन्दिर में लक्ष्मी सोती है ।। 49

उसका अनुचर सुन्दर पवित्र चरित्रवाला अच्छे आचरणवाला श्री कवीन्द्र, लड़ाई में शत्रु को मथ चुका है ।। 50

काञ्ची, करंक, कलश हैं प्रमुख जिनके ऐसे भोगों के विस्तारों से कम्बुजराज स्वामी के द्वारा सत्कार पानेवाला गुणगौरव से पूर्ण है ।। 51

जो राजकार्य में नियोजित होकर स्वयं राजा से सिर पर हाथ रखकर वरदान पानेवाला है उसने शत्रु के नाश आदि में सफलता पायी ।। 52

जो बुद्ध के स्वार्थ और विज्ञानपूर्वक विरुद्ध वचन वाक्य को अनुशासन

मानकर अपने आत्मीयों को दूसरे तीरन्दाजों को भी प्रदान करता था। (इस पद्य की दूसरी पंक्ति अभिलेख में अस्पष्ट है । बरहट्ट प्रविसंवादि के लिए अविसंवादि पढ़ते हैं । साथ ही येनानुराशीष्टं की व्याख्या करते समय अनुराशि के लिए 'अनुनिष्ठायम्' शब्द का प्रयोग करते हैं ।)।। 53

बुद्धि के सुन्दर स्वभाव से तादात्म्य लक्षण को बाँध करके जिसने समझा है कि एक व्यक्ति की आत्मा से सभी की आत्मा में एकता है । इस तादात्म्य से अपने मन का सम्बन्ध स्थापित करके योगी के ज्ञान को जिसने पाया है ।। 54

विजयी ने जयन्त देश में एक 'जिन' को स्थापित किया दो देवियों से युक्त और बुद्ध को भी कुटीश्वर में स्थापित किया ।। 55

धर्ममार्ग के प्रमाण से मानियों के अग्रेसर ने देवी, बुद्ध और श्री वज्रपाणि सबकी स्थापना की ।। 56

राजभवन, राजसदन, देवसदन जिसने प्रासाद भवनों को अपने हृदय-कमल से उसने पालन के लिए स्थापित देवलोक में इन कृत्यों और अन्य कार्यों को भी किया ।। 57

यहाँ यह अनुकरण करने योग्य है उस मनस्वी के द्वारा देवमन्दिरों में राजा के विज्ञापन और शासन को माना जाये ।। 58

सज्जनों के द्वारा धन नहीं चुराया जाये । हरनेवाले राजा से दण्डित हों ।। 59

इसमें एक वृक्ष भी जो पैदा हुआ है वह काटने योग्य नहीं है जो छाया देनेवाला है । ये तो जंगली वृक्ष हुए । जो घरैये वृक्ष लगाये गये हैं– सुख देनेवाले हैं– सुख चाहनेवालों के द्वारा उन्हें क्यों काटा जाये ? उनकी रक्षा की जाये ।।.60

शील के रक्षण में रत रहनेवाले दूसरों के लिए स्थिर बुद्धिवाले यहाँ बसें । वैसे शान्त भिक्षु लोग इसमें समाधि से रहें ।। 61

बड़े विधिपूर्वक रखे कल्याणकारी जलवाले तड़ागों में वेद जाननेवाले ब्राह्मण स्नान करें अन्य लोग कोई भी यहाँ न स्नान करें ।। 62

इस तड़ाग में वृक्षों की शीतल छाया में हाथियों का स्नान न हो यदि हो

तो दयालु लोगों द्वारा रोका जाये ।। 63

ये राजा के सभी वचन उसके द्वारा सिरआँखों पर रखे गये जो हितकर वचन हैं सज्जनों के । सुन्दर विशिष्ट रचना से युक्त अक्षरों से यहाँ इन श्लोकों से विशेष रूप से लिखे गये हैं– इनका पालन हो उल्लंघन न किये जायें ।। 64

III

समाधि रूप लकड़ी से बढ़े वैराग्य की चोट से मारे हुए शत्रु के वीर्य बलवाले बुद्ध जिसने अविनाशी राज्य की लक्ष्मी और बोधि को पाकर श्रेष्ठ मन्दिर में अधिराज होकर रमण करता है ।। 65

महानों की विभूति की रक्षा श्री वज्रपाणि इन्द्र करें जो शत्रु के मद के नाश में रुकनेवाले अग्रभागवाला वज्र है वैसे वज्र को हाथ में रखनेवाला मानो हज़ार आँखों वाले इन्द्र को हँसता है ।। 66

प्रज्ञापारमिता भुवनरूप कमल के उदय से शोभा और लक्ष्मी बढ़ानेवाला, प्रलय काल में कल्प के आकारवाले बड़े अन्धकार को मथनेवाली भूतों के अर्थ को सम्यक् बोध करानेवाली जो मण्डल की लीला को भी धारण करनेवाली निर्वाणरूप गली के शब्द में भ्रमरहित है वह रुचि कान्ति को विस्तार करती है– खुली हुई को दिन-रात प्रकाश देनेवाली है ।। 67

छः रसों के ऐश्वर्यवाली धर्म से भरी-पूरी पृथिवी को धारण करता हुआ श्रीमान् राजेन्द्रवर्मन राजा पृथु के समान विक्रमवाला नृपति है ।। 68

कामदेव के जल जाने पर शोक रूप अग्नि की शान्ति के समान निरास्थान, अपनी देह की कान्तिवाला डूबा है ।। 69

त्रैलोक्य की लक्ष्मी को देखकर ईर्ष्या सहित जिसके अंगों की साथिन कीर्ति-रूप स्त्री दस दिशाओं में द्रुत गति से चलनेवाली इन्द्रादि देवों को बोध कराती सी मालूम पड़ती है ।। 70

चन्द्रमण्डल को सन्ताप देने के चतुर जिसके तेज से सन्तापित सा आज भी सूर्य अपनी किरणों से जल को पीता है ।। 71

चतुर प्रताप से तप्तों को जो कमल पर चढ़ा हुआ प्रजापति कीर्ति रूप

दूध के समुद्र में विनीत राजहंसों को डुबा सका ।। 72

लक्ष्मी के स्वामी विष्णु के विक्रम से आक्रान्त भुवन में सभी देव लोग प्रसन्न होकर बली से जहाँ दुर्बल से बली प्रसन्न होता है ऐसे ज्ञात हुए ।। 73

श्रीराजा रूप सिंह की पटरानी से सेवित शून्य भी शत्रु की पुरी राज्य की लीला की नाईं भय से जिस कारण वन में छिप गयी ।। 74

जिस चमकते हुए तेज से भुवन की छवि को किसी कर्ता के द्वारा भी चढ़ाई में सभी दिशाएँ बल रूप धूल से अन्धकार युक्त हुईं ।। 75

रत्न सिंहासन पहाड़ पर राजा रूप सिंह के चढ़ने पर वीर्य बल से डरकर राजा रूप हाथी लोग प्रणाम करने लगे ।। 76

निद्रा से प्रेम करनेवाले श्रीकृष्ण को देखकर बड़ी प्रेयसी निद्रा से जलती हुई सी लक्ष्मी नित्य बोध से युक्त उज्ज्वल अंगोंवाले युवक पर जहाँ अनुराग करनेवाली हुई ।। 77

बाणासुर रूप शत्रु के विजय से जो लक्ष्मी उससे प्रदीप्त उद्दण्ड बली अनिरुद्ध (श्रीकृष्ण का पौत्र) था उसको दिशाओं का राजा जैसे विष्णु की स्तुति करता है उसी प्रकार युद्ध में विजयी की स्तुति सभी राजा करने लगे ।। 78

भुवन के उदय से सम्यक् बढ़नेवाली साम, दाम, दण्ड, विभेद की विधि से सोहनेवाली दिशाओं के राजा के सिर आँखों पर रहनेवाली जिसकी आज्ञा इन्द्र गुरु के समान माननीय हुई । जैसे इन्द्र गुरु बृहस्पति की आज्ञा देवराज भी मानते हैं ।। 79

जिसके चक्र, गदा, शंखधारी विष्णु नजदीक हैं या अच्छी निधि हैं । युद्ध में शत्रु की लक्ष्मी के केश पकड़नेवाले विष्णु के समान दोनों बाहुदण्ड शोभते थे ।। 80

जो अंगों की सुन्दरता रूप दूध के समुद्र में धोया पूर्ण चन्द्रमण्डलवाले... ...पंक से हन........लक्ष्मी से प्रकाशमान मुख को धारण किया था........।। 81

राजा लोग.........जीते............राज को विभीषण के विषय में ।....... जिसने दिया दूसरे राम के समान ।। 82

यज्ञ की आग............महामहिष मण्डल में.........जिसके ....फैलने पर...........कल और सबेरा कहीं भी विशेष शीघ्रगामी हैं ।। 83

जिसने एक विक्रम=पराक्रम से समस्त भुवन को आक्रमण करके मानो परिश्रम से पैरों की समीपता राजाओं के मस्तक पर विधान किया गया ।। 84

.....चरणकमल को............मण्डल की लक्ष्मी का............ ।। 85

...........दिलीप के समान.........जीते हुए से....................... ।। 86

.................निश्चित ।.............मेरु.............जिससे सींचता है ।। 87

राजारूपी चन्द्र............(यशोधर)पुररूप कमल को । लक्ष्मी से शोभाओं से........छ: के उदय फिर ।। 88

यशोधर तड़ाग के बीच में लक्ष्मी और शोभा से प्रकाशमान राजा के । मेरु पर्वत जो सुवर्ण का पर्वत जो स्वर्ग में है.........उसके समान............सम्यक् भली-भाँति स्थापना की थी ।। 89

लक्ष्मी समुद्र चि.........उपशम=शान्ति से जैसे । आश्रित हुआ........ श्वेतसमूह को ।। 90

धर्म से आश्रित के समान जिसमें अधर्म से विरोध करनेवाले कल्याण और अभ्युदय– दोनों की सिद्धि लोग पाने लगे ।। 91

युद्ध में दोनों से दोनों के योग में दो प्रिय शीघ्रगामी दो हुए। लक्ष्मी से जिसकी कीर्ति शत्रु की बहुओं को वन में शत्रुओं को स्वर्ग भेज दिया ।। 92

हिरण्यकशिपु की लक्ष्मी से विरहित संसार को कर दिया जो नरसिंह भगवान् सज्जनों के विशाल विचित्र चरित्र करने लगे थे ।। 93

जैसे देवों ने समुद्र को मथकर एक स्वार्थ से विष्णु ने लक्ष्मी का हरण किया था, वैसे ही युद्धरूप समुद्र मित्रों के लिए भी समस्त संसार को एक राजा ने हर लिया था ।। 94

प्रचण्ड बलवाले उसके गुप्तचर भक्ति से पैरों में बँधने से शोभित थे । श्री कवीन्द्र रूप शत्रु के मथनेवाले लक्ष्मी से लाल सदृश कमल पर सोहते थे ।। 95

चार चतुर उपायों से यश पैदा करनेवाली विशिष्ट विवेचना करनेवाली धर्म से युक्त अर्थ धन की सिद्धि करनेवाली जो बुद्धि नीति के समान सोहती थी ।। 96

बौद्ध धर्मावलम्बी होकर भी जो बौद्ध धर्म में एक तान से रमनेवाला किसी के द्वारा इस राजा में भक्ति बँधी थी जो राजा परमेश्वर के समान था ।। 97

यशोधरपुर में रमणीय मन्दिर देवों का प्रिय था । शिल्प को जाननेवाला विश्वकर्मा के समान जो इस राजा से बनाया गया था ।। 98

सभी लोगों की प्रेरणा में जो शैल आदि की कृति में कुशल हैं । यशोधर तड़ाग के बीच में राजा से नियोजित था ।। 99

संसाररूप समुद्र से छुड़ानेवाला, प्रेमियों को निर्वाण का सुख देनेवाला यश उज्ज्वल जिससे सभी दिशाओं के मुख उज्ज्वल दीखें । सुखपूर्वक जाने योग्य बन्धु के दोनों लोकों में सुन्दर गमन योग्य, बुद्धि की पारंगतता यहाँ उससे विधान होता है इन स्थापनाओं से अतएव स्थापना की गयी । सज्जनों के समीप फल सुन्दर बिखेरे गये हैं ।। 100

नित्य बँधे निवास से वैराग्य से प्रासाद मण्डल को उस योगी ने हृदयकमल की भाँति बनाया था ।। 101

स्वच्छ पवित्र जल से इस तड़ाग को जैसे ज्ञान से निर्वाण प्राप्ति होती है, वैसे ही इसका निर्माण किया था ।। 102

सभी प्राणियों के आनन्द के लिए महानों का तड़ाग कहा गया, माना गया है । उसने वह जैसा आचरण किया उससे बौद्ध धर्म की वृद्धि होनेवाली है ।। 103

राजहंस के स्नान योग्य पुण्य देनेवाले पोखर में राजपुरोहित ब्राह्मण ही स्नान करें– यह उस राजा की मति है ।। 104

उस तड़ाग के वन से हाथी जो तड़ाग के तट को तोड़नेवाले हैं सज्जनरूप सिंहों के द्वारा रोके जायें, जिनकी गर्दन पर धर्मरूप के सिंह की गर्दन के ऊपर के केश सोहते हैं चमकते रहते हैं ।। 105

सर्वदा विनाश से आनेवाला अन्धकार.........चार देनेवाले........बचे लोगों को.........पुण्यरूप कमल के खिलानेवाले सूर्य के समान.........जन को निश्चित.........भावी ।। 106

शिवाच्युत नामवाले के द्वारा...........प्रासाद में.........देवसदन में या राजसदन में...........कमल बन्धन...........।। 107

68

प्रे रूप अभिलेख

Pre Rup Inscription

अंगकोर क्षेत्र में प्रे रूप का मन्दिर है । मन्दिर के खड़े पत्थर पर दोनों ओर अभिलेख उत्कीर्ण कराये गये हैं । शिव, त्रिमूर्ति में अनुभूत ब्राह्मण, वासुदेव तथा नारायण की प्रशंसा से इस अभिलेख का प्रारम्भ होता है । राजकीय वंशावली की भी चर्चा इसमें है । ऐतिहासिक रूप से इसका ज्यादा महत्त्व है क्योंकि यह अन्तिम रूप से हर्षवर्मन द्वितीय तथा राजेन्द्रवर्मन के सम्बन्ध में कुछ विवाद के पश्चात् राजेन्द्रवर्मन की राजगद्दी, उसकी यशोधरपुर में वापसी, राजधानी की पुनर्स्थापना तथा चम्पा पर विजय इत्यादि प्रश्नों का समाधान कर देता है ।

इस अभिलेख का उत्कीर्णक संस्कृत का पण्डित अवश्य रहा होगा । 'मनोहर' नाम के एक नये काव्य की चर्चा है । योगाचार प्रणाली का भी वर्णन है । महाकाव्य और पौराणिक कथाओं, अथर्ववेद, रामायण, महाभारत, अष्टाध्यायी एवं रघुवंश से भिन्न-भिन्न रूप से उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं । राजा की धार्मिक

स्थापनाओं में मेबन के मन्दिर एवं यशोधर तटाक की खुदाई के अतिरिक्त भद्रेश्वर, चौपेश्वर और गंगा को दिये गये उनके दानों का भी वर्णन इस लेख में है । राजा के द्वारा प्रे रूप का मन्दिर बनाया गया और इसे लिंग राजेन्द्र भद्रेश्वर को समर्पित कर दिया गया । शिव की (राजेन्द्रवर्मेश्वर राजेन्द्र विश्वरूप नामक दो) उमा और विष्णु की मूर्तियाँ इस चौकोन के चारों कोने पर पाये गये छोटे-छोटे मन्दिरों में स्थापित की गयी हैं । प्रधान मन्दिर केन्द्रीय स्थान पर है । छोटे-छोटे उपमन्दिर भी जोड़ दिये गये हैं जिनमें शिव के आठ रूपों की मूर्तियाँ हैं ।

इस अभिलेख में 298 पद्य हैं। कम्बोडिया से प्राप्त अबतक के सभी अभिलेखों में यह विशालतम अभिलेख है ।

इस अभिलेख का सम्पादन जॉर्ज सेदेस ने किया है ।[1]

ऋग्भिर्व्वह्निशिखाकलापविसख्य क्ताभिरैन्द्रीन्दिशं
प्रोधद्वायुसमीरितेन यजुषा यो दीपयन्द क्षिणाम् ।
साम्ना चन्द्रमरीचिरश्मिनिकर प्रद्योतितेनापरा-
ङ्कौवेरीञ्च विभाति तैस् समुदितैस्तस्मै नमश् शम्भवे ।। 1
ओङ्कारादतनुस्तनोति जगतामेकोऽपि जन्मोस्थिति-
ध्वस्तिर्व्यक्तसमस्तशक्ति निलयो यो योगियोगात्मकः ।
भूयो नीरजजन्मकञ्जननयन श्रीकण्ठमूर्त्तिर्व्वशी
शब्दान्तस्थितये शिवाय विभवे शान्ताय तस्मै नमः ।। 2
ब्राह्मीमिन्दौ सवित्रीं सवितरि विततां वैष्णवीं पालनीं यद्
शैद्री संहार हेतुं हुतभुजि च कलामर्प्ययत् त्रिप्रकाराम् ।
दृष्टन्दृक्शक्तिदृग्भिस्तिषु रचितवपुस् सूक्ष्ममप्येषु तस्मै
तत्त्वज्ञानां परस्मै परिदृतरजसे ब्रह्मणे स्तान् नमो वः ।। 3
पारे सत्त्वरजस्तमस्कमपि यो नित्यन्निविष्टः पदे
त्रेगुण्येन चतुर्व्विधेन विविधाभिव्यक्तिराविर्भवन् ।
विश्वाकारधरो निरस्तसकलाकारोऽपि देदीप्यते
वन्दन्तां भगवन्तमादिपुरुषन्तं वासुदेवं विभुम् ।। 4

---

1. *IC*, p.73

षड्गर्भ प्रभवाय बुद्धिजननीं विद्यो विनिर्म्माय या
गर्भे सप्तमगर्भकर्षणकरी हंसस्य सूतेऽष्टमे ।
मूर्त्ता कंसवधोद्धुरं विदधती नादन् नमस्योद्धगा
साद्या शक्तिरकृत्रिमा भगवतो नारायनी नम्यताम् ॥ 5
आसीदासिन्धुसीमस्फुरितसितयशोराशिसञ्चारराजद्
राज्यश्रीमण्डितनिन्दितपुर विकसन्मातृवंशाधिपत्यः ।
सोमाकौण्डिन्यवंश्यो दधदनतनृपाद्वादशादित्य दीप्तिश्
श्रीबालादित्यभूपो वलयमिव भुवो मण्डलं लीलयायः ॥ 6
यां विश्वरूपभट्टो यो लेभे ददागिनीसुताम् ।
पत्नीं सरस्वतीं विप्रो वासिष्ठोऽरुन्धतीसिव ॥ 7
ब्रह्मक्षत्रिययोर्व्वंशे पारंपर्य्योदिते तयोः ।
जाया द्विवेदभट्टस्य ज्ञाता वेदवतीति या ॥ 8
यस्याः पुण्यगुणस्य मातृजननीभ्रातुस्तनूजो जिता-
रातेश् श्रीनृपतीन्द्रवर्म्मन्तपतेश् शौर्य्येण शौरेरिव ।
शृङ्गे श्रीजयवर्म्मणः कृतवतो माहेन्द्रशैले पुरीं
मातुम्मतिलमातुलो तुलकलश श्रीपुष्कराक्षोनृपः ॥ 9
स्वर्ग्गद्वारे पुरे या पुरि पुरि च पुरा स्थापितं भूमिभर्त्रा
श्रीबालादित्यनाम्ना निजकुलतिलकेनैश्वरं लिङ्गमिद्धम् ।
भर्त्रा तेनैव वेदद्वितयमदृशा पूजयित्वा समस्तै-
र्भोगैस् स्वर्गप्रतिष्ठमलमत विलसत्कीर्त्तिसन्दीपितश ॥ 10
या तत् कुलीनावनिपालवंश-
परंपरायामुदिता महत्याम् ।
महेन्द्रदेवीति महीव गुर्व्वी
देवीसुरस्रीव दिवोऽवतीर्ण्णा ॥ 11
महीपतेर्व्वेदवती पितुर्य्यः
कलां कुलीनस् सकलान्दधानः ।
राजन्यवंशाब्धिनिशाकरश श्री-
महेन्द्रवर्म्मा महनीय कीर्त्तिः ॥ 12
तेनोर्व्वीभृद्वराङ्गे विदलिततमसा पादविन्यासलीला-

मातन्वानेन तस्यान्नरपतिवनिता मूर्द्धधूताङ्घ्रि धूल्याम् ।
देव्यां वैवस्वताख्यो मनुरिव रविणा राजधर्म्मानुरक्तो
यश् श्रीराजेन्द्रवर्म्मेत्यजनि दुहितरि त्वष्टुरुर्व्वीपतीन्द्रः ॥ 13
प्राग्वेदाभ्यसनन्द्विजेन जनितं श्रीविश्वरूपेण यत्
तप्तं यत् त्रिविधन्तपस् सह तया पतन्या द्विवेदेनयत्
भुमृद्भिश्च तदन्वये समुदितैर्य्यत्तेन तेनांशुमद्-
वंश्यानां दृरिरादिदेव इव यो वंशे तदीयेऽभवत् ॥ 14
सञ्जातो विजयी निजेन जयिना तेजः प्रकर्षेण यो
नीचीभावितवानशेषमपि सन्तेजस्विवृन्दारकम् ।
केनापि प्रतिपादिताखिलमही साम्राज्यसंपद्गुणान्
अर्क्कादीन सादिष्ट भूरिमहसामुच्चाश्रयानाश्रयान् ॥ 15
मातुः क्षत्रियवंशदुग्धजलधेर्ल्लब्धोदयायाश् श्रियश्
श्रीभर्त्तुः पुरुषोत्तमस्य च पितुभस्वित्कुले भास्वतः ।
कान्त्या काम इवाधिकोऽपि निरवद्याङ्गो निरुद्धस् सुतो
यो गर्भेश्वरशब्दमर्थ्यमभृतानीतं गुणैरैश्वरैः ॥ 16
सोमाख्यात् सर्ग्गसाराद् भवपुररुचिराल्लिङ्गमाह्लादनत्वं
बालादित्यात् प्रभुत्वन्त्रिभुवनकमलोन्मीलनायाददानः ।
वह्नेर्द्दीप्तिं पितुस् स्वान्महति भवपुरे पीश्वरादीश्वरत्व-
देवीयुक्तात् कुमारो दिशिदिशिविदतस्सर्व्वतेजोमयो यः ॥ 17
दुर्गाभियोगाद्विफली कृतारि-
काक्षं यशोदाभ्युदयाय दक्षम् ।
महेन्द्रतो लब्धमहाभिषेकं
रराज शौरिरिव यस्य बाल्यम् ॥ 18
सत्वं गुणं कर्म्मदधानभिद्धं
सामान्यमन्येषु विशेषमिच्छन् ।
व्यधत्तधाता समवायवृत्त्या
यस्याखिलं लक्षणमग्रयमङ्गे ॥ 19
कामस् स्वकान्तिदिनकृत किरणैविकीर्ण्णैः
पीतान्यकान्तिजयशोलवपल्लवलाम्भाः ।

यत्कान्तिसागरमपारमुपेत्य मग्नो
मन्ये करोति मकरन्निजवाहनं यत् ॥ 20
व्याख्यामयीमुपगम्य हतान्धकारां
राकामिनः पटिमदीप्तयनुसं वशात् ।
विद्येन्दुमण्डल मुदीण्णरिसामृतार्द्र
सव्वनिपाययत यो विबुधानूसज्ञः ॥ 21
यस्यास्त्रशिक्षाञ्चरतः प्रशंसा
लोकेऽकरोत्कर्ण्णमनः प्रसादम् ।
कर्ण्णप्रणीता महती तु निन्दा-,
नु श्रूयतेऽद्यापि धनञ्जयस्य ॥ 22
दण्डन्त्रिखण्डं पृथुलं सलीलं
लुलाव लोहं कदलीदलाभम् ।
सकृत्कृपाणं लघुपातयन् यः
किमुच्यते मांससमयेऽरिदेह ॥ 23
नीलोत्पलस्यापि दलेऽयसीव
नासिश्छिद्दाशक्तिमगात् परेषाम् ।
यस्यैव मन्त्रौषधिवीर्य्य योगाद्
वज्रोपमायां किमुतांसयष्टौ ॥ 24
धनुर्धनुर्व्वेदबिदां वरोऽपि
विधूय मौर्व्वीरवपूरिताशः ।
प्रयोगतोऽभिस्खलितं विपश्चिद्
यश्चापशब्दन्न चकार काञ्चित् ॥ 25
यस्याकलङ्कास् सकलाः कलाली-
रलङ्करिष्णोः किल बालभावे ।
चन्द्रस्तुलार्थीव तुलामलब्धवा-
धुनापि वृद्धौ पुनरेति बाल्यम् ॥ 26
मूर्द्धाभिषिक्तस् सुकुमारभावो
दृप्तद्विषत्तारकदारिशक्तिः ।
निनाय कीर्ण्णान्दिशि कम्बुसेनां

यो देवसेनाभिव कार्त्तिकेयः ॥ 27
सदानवारीकृत दिक्प्रयातो
नागेन्द्रभीमो भगवानिवेशः ।
ब्राह्मैर्व्विधानैः परिरक्षितो यो
भस्मीचकाराऽरिपुराणि रोषात् ॥ 28
शरान्तरीकृत्य शरीरयष्टी-
रुत्कृत्य कृत्स्नानि शिरास्यरीणाम् ।
खङ्गीगदामृत करीकुम्भपेषी
प्रादुश्चकारास्रममानुषं यः ॥ 29
जित्वैकवीरो दिशमिन्द्रगुप्तां
यो दक्षिणान्देह भृतान्दिदीपे ।
प्रचितसीञ्चतेसि सोत्तराञ्च
न राजसूयाय तु जिष्णुरेकाम् ॥ 30
प्रत्यन्तपृथ्वीं सकलां विजित्य
बालोऽपि यूनो नृपतीन् प्रताप्य ।
प्रतीतया कम्बुपुरीं यशस्वी
संयोजयामास जयश्रिया यः ॥ 31
रणार्ण्णवाधस्य जयामृतेन
जातं यशः कोस्तुभरत्नमार्द्रम् ।
त्रैलोक्यमाह्लादयति त्रिधैकं
मूर्त्त मुरारेर्हृदयं मुदेव ॥ 32
कलाभिराह्लादयितुं समस्त-
लोकं विवृद्धाभिरनुक्रमेण ।
विमुक्तबाल्योऽपि शशीव साक्षात्
कलाक्षयं यो न बमार भूयः ॥ 33
अवस्थितिं शैशवजां विलुप्य
राजश्रिया सङ्गमकांक्षयेव ।
स्थेयोऽत्र तिष्ठेति कृताज्ञया यो
नीतो नवं यौवनमादरिण्या ॥ 34

या कान्तिरत्यन्यनरेन्द्रसर्ग्ग-
शोभा शिशुत्वे ददृशे नु यस्य ।
तां यौवने कर्त्तुमनाः प्रकृष्टां
यत्नं विरिञ्चो नितराञ्चकार ॥ 35
विलोक्य दिक्पालजये जयाख्य
ञ्जयश्रियालिङ्गितमीर्ष्ययेव ।
यमालिलिङ्गे गुरुवाङ्नियुक्ता
कुलोचिता कम्बुजराज्यलक्ष्मीः ॥ 36
यामिर्य्यतो झटिति भूमिभृतोऽन्यराष्ट्रे
सम्रंसिरे समररङ्गगता गृहीताः ।
राज्यश्रियं षडरिमूर्त्तिभिरेव ताभि-
र्य्यस्तामधारयदतत्पुरुष प्रयोगात् ॥ 37
यस्याङ्गलग्नं विहितेऽभिषेके
तीर्थाम्बु यावन्न जगाम शोषम् ।
तेजोजवलत्तावदशोषयत् द्विड्-
बधूजनानामधरे मधूनि ॥ 38
जातं वराङ्गाभरणं भवस्य
नवेन्दु मुद्वीक्ष्य नवार्क्कबिम्बम् ।
चूड़ामणीभूय नु यस्य सेर्ष्य
भासा शिरोऽरञ्जयदीश्वरस्य ॥ 39
ध्रुवन्धराभारधरस्य यस्या-
हीन्द्रो मणीन् भोगसहस्रदीप्तान् ।
आहृत्य हर्षादिव बीतमारो
भूषासु हैमीषु बवन्ध सर्व्वान् ॥ 40
स्रीणान्दिदृक्षाक्षुभिता यदीयं
ग्रस्यकृत्ते सवि कान्तिचन्द्रम् ।
निमेषचंद्र द्विषि चक्रियचक्र-
क्रुधेव रक्ता ददृशुर्दशोयोङ्शम् ॥ 41
राज्यास्थितौ त्रिभुवनाभ्युदयाय यस्य

या काश्यपी रतिरभूददितिप्रभूता ।
मन्वन्तरे सुरपतेरिव गोप्तुरस्मिन्
पूर्व्वेन्द्रसंपदि न सा कृतसन्निधाना ॥ 42
सिंहासनस्थमवलोक्य महीभृतं यं
दृष्टा मही सुमहती श्रियमानिनाय ।
सिंहासने स्थितवती स्वयमेव रामात्
सीतां श्रियन्तपजहार महीभृतोऽपि ॥ 43
विस्तीर्ण्णरत्नरुचिरञ्जित हेमदण्डं
यस्यैकमेव शुशुभे सितमातपत्रम् ।
मेरोरिवोपरिगतं सकलेन्दुबिम्बं
सद्भक्तिवारिषु तु तत्प्रतिबिम्बमन्यत् ॥ 44
निर्व्विक्रियायां प्रकृतौ कृताया-
मप्येष यस्याविरभूद्विकारः ।
हैमीव यद्रत्नमयीय चासी
द्रे मौलिरत्नैर्नतभूभूजां भूः ॥ 45
क्षोणीभृतान्दीप्तवती वराङ्गे
ष्वाह्लादनी वाग्दहनी च यस्य ।
तेजोमयी सूर्य्यशशाङ्कवह्नि-
सङ्घातुल्याकृतलोकयात्राम् ॥ 46
माद्यन्ति यैरन्यमहीभृतस्वैश्
शशाम यो राज्यसुखोपभोगः ।
प्रावृट् प्रवृद्धैजलिदाम्बुबर्षैः
सिन्धोर्व्विप्य्यर्यति पयो हि नाब्धेः ॥ 47
राजन्वीत्य नृपोऽन्वशात् प्राङ्
निपातनाल्लक्षण मन्तरेण ।
यो लक्षणैय् संस्कृतवर्णवर्द्धि-
पदैस्तु साधुत्वधरान्धरित्रीम् ॥ 48
कुलक्रमैस् स्वैरपिः राजविधान्
दीप्तामतीतैर्भुवि भाविभिश्च ।

योऽदीपयत् प्राप्य विशेषता स्यन्
तमांसि मध्याह्न हवार्क्कभासम् ॥ 49
न भूभृतोऽभूत परिणीय कन्याम्
एकान्नु नाके परमेश्वरः प्राक् ।
भूत्वा तु भूपो भुवि योऽधिक श्रीः
कन्याशतं भूरधिकेति नाकात् ॥ 50
भ्रान्तावरुग्नमृदुकार्म्मुकमेत्य रामं
राज्यदपेतमरिणापदृता पुरा श्रीः ।
यञ्जानकी किल दृढ़ाक्षतकार्म्मुकन्तु
राज्यस्थिर स्थितम् शवयत नापहर्त्तुम् ॥ 51
न्यक्कर्त्तुमिच्छन्निलिखिलानिवान्यान्
यूनो नवं यौवनमादधानः ।
दत्वा मदं यः प्रमदामनस्सु
शान्तिं स्वकीये मनसि व्वतारीत् ॥ 52
यथा यथाबर्द्धत यौवनश्रीः
कालेन्दुना यस्य विवृद्धिभाजा ।
समुद्रवेलेव तथा तथोच्चै-
रुद्धयोतिदृष्टङ्गुणरत्नमृद्धम् ॥ 53
महेन्द्रसंपत्परिबृहितश्री-
रापूर्य्यमाना विबुधैरनेकैः ।
धम्मर्या सुधर्म्मेव दिवोऽवतीर्ण्णा
बभौ सभा यस्य भुवि प्रगल्भा ॥ 54
धर्म्मानुकूलौ कविरर्थकामौ
धर्म्मञ्च कामार्थकृतार्थयोगम् ।
त्रिवर्गमेकान्तभिवैक वर्ग्ग
यो सेवतोदार फलानुबन्धम् ॥ 55
त्रैकाल्यविज्ञानवतोऽपि यस्य
साक्षादिवेशस्य नरेन्द्रमूर्त्तेः ।
नेत्रीकृतस्तत्त्वविचारदक्षः

पूषेव दिक्षु प्रचचार चारः ॥ 56
इतस्ततस् स्वाश्रयतस् समन्ता
दागुर्गणा यं स्वयमन्यदीयाः ।
गाम्भीर्य्य रत्नाकरमेक पात्रं
सत्वाभिपूर्ण्णत्रिखिला इवायः ॥ 57
य श्चाप्त वाचोपमयानुमाना-
र्थापत्ति संविद्भिर भावयुग्मिः ।
कार्य्याव्यकार्षीत् सदसच्च सर्व्वं
षडभिः प्रमाणैरधिगम्य गम्यम् ॥ 58
स्वच्छाम्बुवापी करीविलासा
विकासिपद्मोत्पलपुञ्जनेत्रा ।
मूर्त्तेव पूर्ण्णेन्दुमुखी दिशश् श्री-
र्य्यं सेवमाना शरदाससाद् ॥ 59
धर्म्म्यान्दद्यानो विबुधार्थ सिद्धि-
न्द्विट् कामविध्वंसन विद्ययाढ्यः ।
रुद्राद्रिजासङ्गमवधदीयो-
द्दयोगो जजृम्भे विजयाभिजुष्टः ॥ 60
पद्मोदये दत्तगुणोऽपि युक्त्या
पूषेव दोषावसरम्निरस्य ।
यतेन्द्रियाश्वस्य भुवो विभूत्यै
संमन्त्रणं मन्त्रिभिरग्रहीद्यः ॥ 61
चत्वारोपि महागभीर गतयोऽप्या शास्वपि स्थास्नवो
भूभृद्भङ्ग कृतोऽपि वर्द्धिततमैस् स्वैर्व्वाहिनी विस्तरैः ।
श्रीजन्मावनयोऽपि कर्त्तुमपि गां रत्नैरलं पूरितान्
नोपायैर्जल शशयोऽति पटुभिर्य्य स्योपमेया जड़ा ॥ 62
अम्मोधरध्वानगभीरया यद्-
वाण्या ककुभ्यस्त्वरितास् समन्तात् ।
समाययुर्नद्य इव ध्वजिन्यो
द्राक् प्रावृषा केदितयात्रयाप्तैः ॥ 63

व्यतीतवत्यां शरदि क्रमेण
दिश्चक्रवालात तवाप्यलक्ष्या ।
हेमन्तलक्ष्मीरभिषेक्तुमाराद्
यं योग्यमाधर्व्वनिकीव सिद्धिः ॥ 64
सुवर्ण्णवर्ण्णस् सुखो वितीर्ण्णं
पुरोधसा हव्यमुपाददानः ।
प्रदक्षिणावर्त्त शिखश् शिखीच
दिदेश यस्मै जयशब्दमुच्चैः ॥ 65
आमृत्याधारया यश् श्रियमनुपगतक्षीणभावां विवृद्धां
प्रापत् कृत्स्नार्क्कविम्बादिव कलशशतात् कालधौतात् पतन्त्या
पुष्ये पुष्येऽभिषिक्तो विधुरुपगतवान् वृद्धिमेकार्क्क विम्बाद्
एव क्षीणस्त्वभाग्य प्रबिरहिमहो भत्य एवास्ति भाग्यम् ॥ 66
स्वभावतः प्रागपि कान्तिमग्र्यां
यस्य व्यतानीदपभूषमङ्गम् ।
संबद्धसर्व्वाभरणन्तु भूयः
कामप्यभिख्यायपुषत् प्रकामम् ॥ 67
सत्योपमा नूनमनान्तशक्ति-
र्य्यस्याङ्ग कान्तेर्भवितुं बभूव ।
मिथ्योपमादर्शतलं प्रविष्टा
कन्दर्प्पकान्तिः प्रतिविम्बलेशा ॥ 68
निश्शेषभूमण्डललङ्घनाय
यो विष्णुवद्धीक्षित विक्रमोऽपि ।
नाक्रान्तवानुल्लिखितं पृथिव्या-
माचारचारुः परिधं प्रायास्यन् ॥ 69
कक्ष्याभिरश्वैरिव सप्तभिर्य्यो
निर्य्याय यात्रानिलयोदयाद्रेः ।
भास्वान् नवीनोदितवान् वभासे
भीतिन्नयन् वैरितमांसि दिक्षु ॥ 70
द्विजाधिराजामल मण्डलेन

स्फुटामिराशीर्भिरुदीरिताभिः।
ज्योत्सनाभिरिद्धाभिरिवाभियाना-
रम्भे जजुम्भे कुमुदाकरो यः।।71
संघातमेकत्र दिदृक्षुणेव
पुञ्जीकृतैर्दैवबलेन सैन्यैः।
अनुप्रयातो गजवाजिवृन्द-
सान्द्रैः प्रतस्थेऽरिजिगीषया यः।।72
याने पृथोर्ब्रह्मपदं श्रियेऽहन्
द्रुतेति भूर्य्यस्य मुदेव याने।
भूत्वा रजोऽसंख्य पदातिमर्द्दा-
च्छ्रीसंपदे विष्णु पदं प्रपेदै।।73
व्यूढैपि तुल्यं परकीयसैन्ये
यस्यैव सेना ददृशे ससारा।
उपाधिनद्धे स्फटिकेपिगाढ़-
रागेऽस्ति दीप्तिर्न्न हि पाद्मरागी।।74
मन्द्रध्वनौ गर्ज्जति यस्य चापे
मुक्तेषुवृष्टावभवज्जिगीषोः।
आरादिवारादपि रत्नसूर्भू-
र्व्विदूरभूरेव तु मेधमारे।।75
क्षात्रीं भुजाज्जातिमजस्य जातां
यस्र् साधयामास परैर्न्निषिद्धाम्।
दृष्टश्रुतानन्यज बाहुवीर्य्याद्
युद्धेऽन्यथैवानुपयद्यमानात्।।76
शौर्य्योन्नतिर्य्यस्य हताहितासृग्-
बाल प्रवालोद्ग मलाञ्छितानौ।
पुपोष पुष्टा कुसुमास्रशक्तिं
वसन्त संप्राप्तिरिवास्रशिक्षाम्।।77
सिन्दूरदिग्धादरिदन्ति कुम्भात्
सन्ध्यापिशङ्गाद्विगणादिवाजौ

तेजस्विनो यस्य करासिभिन्नात्
पपात मुक्ताफलतार काली ॥ 78
कीलाललाक्षारुविता विकीर्ण्ण-
वानावतंसा द्रुतभौक्तिकस्रक् ।
यं प्राप्तवत्याः प्रहरन्तुमाशु
रेने रणोर्व्वी पटधीव लक्ष्म्याः ॥ 79
प्रोतां प्रवीरारिशरीरस्यष्टिम्
आन्दोलयित्वा दिशि नर्त्तयन्ती ।
शक्तिर्य्यादीया द्भूततारकाङ्गी
गौडीव दृष्टा न सुरैस् सरागम् ॥ 80
भिन्नारिरक्तैररुणा विरेजे
भुजोज्ज्वला यस्य रणेऽसिधारा ।
कीर्त्तिः प्रकीर्ण्णेव शिखा समस्त-
द्वीपेकदीपीभवितुज्जलन्त्याः ॥ 81
गदाभिपिष्टारिकरीन्द्रदन्त-
क्षोदं बलक्षं क्षुभितं समीके ।
केशेषु लक्ष्म्यास सुरतक्षमाया
यः केटकीकेसरवद् वितेने ॥ 82
तीव्रार्जुनास्रहत भीष्म विपक्ष युद्धो
योद्धा युधिष्ठिर इवार्क्कजदीप्तिरोधी ।
योऽजातशत्रुरिति भीमगदावरुग्न-
दुर्य्योधनोरुविनिपात रणावसानः ॥ 83
प्रत्यस्तपाटपतले ररिसंप्रयुक्ता-
न्यास्त्रान्य मेघतनुरूप्यखिलानि रोद्धा ।
खड्गांस्तु सद्वयजनवद्भूभितान्मरुद्भि-
रुष्मच्छिदोऽसहत यो रणरङ्गतप्तः ॥ 84
कृपाणपाणिः कृपणे कृपालुः
कृपां व्यद्याद्यो जितवैरिवीरः ।
गङ्गाम्बुलीने तु न धार्त्तराष्ट्रे

चक्रुः कृपां व्यूहमपास्य पार्थाः ॥ 85

गोमण्डलस्योपकृतिञ्चिकीर्षु-
रुन्मूलयन्मुभिभृतं भुजेन ।
गोवर्द्धनं कृष्ण इवास्पदेयो
भूयस् स्वकीये कृतवान कम्प्यम् ॥ 86

स्निग्धासिपातनकरेण यथावकाशं
येन स्थितां विदलितां स्वतनुं प्रपश्यन् ।
शङ्के निवर्त्तनभिया द्विषतोऽन्तरात्मा
प्रेतस्य संपरिवृतो भृशमप्सरोभिः ॥ 87

अहो युवैव स्वमुरः स्थिरोऽय-
मप्येकदादान्न पराङ्गनाम्यः ।
इतीव यस्य प्रतिकूलभावा
वक्षोऽरिलक्ष्मीर विशद्रणेषु ॥ 88

तीक्ष्णासिधारमपि यञ्जयिनञ्जयश्री-
रालिङ्गय वक्षसि बृहत्यकरोत्सरागम् ।
नैसर्ग्गिकं स्वसुभगत्वमुदाहरन्ती
गौरीव दग्धमकरध्वजदेहमीशम् ॥ 89

यमेकमौकस् सकलावनि श्रिया-
मलंकृताङ्गभवयौवनश्रिया ।
प्रपद्य पद्मा पुरुषे पुरातने
निनिन्द नूनंस्वरतिं पुरातनीम् ॥ 90

विसर्ज्जिता येन रणेपु जीव-
ग्राहं गृहीता बहवोऽरिवीराः ।
बज्री बलिं विष्णुबलेन बद्धा
धुनापि नोन्भुञ्चति भीरुवत्तु ॥ 91

नयन्नयेनैव पराक्रमं यः
पराक्रमेण प्रतिहत्य हन्ता ।
द्विषां प्रतीद्यातजड़स्तु सिंहो
दन्तीन्द्र दन्तद्वयनिर्द्दितांसः ॥ 92

द्विषो द्रुता यस्य हतावशेषा
स्त्यक्तायुधा युध्यपि राजसिंहाः ।
विदुद्रुवुर्व्वन्य करीन्द्रभीताः
पुनर्व्वने बालभृगायमाणाः ॥ 93

तेजोग्निदाहात् किल यस्यकेयि-
ज्जले ममज्जुर्जलधेर्व्वि पक्षाः ।
के चित्वमुष्मादतिशीतलोऽयम्
इतीव तक्कदिविशन्दवग्निम् ॥ 94

शोकानलो नेत्रजलैरजस्र-
ज्जज्ज्ववाल यद्वैरिविलासिनीनाम् ।
वैधव्यसन्तापितमानसाना-
माविन्धनं वह्निभिवानु कुर्व्वन् ॥ 95

हसास् सितच्छत्ररुचो वनेभाः
पर्य्यन्तपाला धृतराजशब्दाः ।
सिंहाः पुरीं यद्वचनादरीणां
सराजलीलामिव रञ्जयन्ति ॥ 96

धामाग्निदग्धा निधनैकसिन्धौ
मग्नारिभूमिर्ब्बत संहृतेव ।
नोदेति यस्यापि महावराह-
दंष्ट्रोद्धताद्यापि पुनर्व्विकीर्ण्णा ॥ 97

दध्वान भेरीरव पूरिताशा
यस्योच्चकैर्य्या जयघोषनायै ।
तद्धान मुद्वीचिरिवानु कुर्व्वन्
दन्ध्वन्यते सिन्धुधवोऽधुनापि ॥ 98

यशोभिरुद्यद्भिरुदात्तगीतै-
स्तिरोहितं यस्य यशोऽन्यदीयम् ।
ब्रीड़ादिवाद्यापि समाहृतं सत्
क्वापि प्रयाति स्वरितोपगीतम् ॥ 99

कीर्त्या सपत्न्यामपि चापलं स्वन्

निक्षिप्य लक्ष्मीरपुरग्र्हाय ।
छ्रियेव यं प्राप्य पतिं गभीर-
ङ्गाम्भीर्य्यमबन्धेर्जननाज्जहार ॥ 100
लक्ष्मीञ्चलत्वात् सलिलन्द्रवत्वाद्
द्वेषन्द्विषद्भयी मरणं मनुष्यात् ।
उपायविद्वारयितुं प्रभुर्य्यो
नतु स्वकीर्त्तिन्दयितान्दि गन्तात् ॥ 101
वसुन्धरां सिन्धुचतुष्टयोद्यो-
निष्ठूयतरत्नोद्धर दुग्धधाराम् ।
यज्ञाय यश् श्रोत्रिय बालवत्सां
समां समीनामिव गामद्युश्रत् ॥ 102
श्रद्धाभक्त्योरद्यगिरिभिदोर्व्विष्णुपादाश्रययिण्यो-
रेकान्तिन्योर्व्विधिजलनिधिंभिन्नयोस् संप्रयान्त्योः ।
मध्ये गङ्गारवितनय योर्देवनद्योरिवास
श्लाघ्या यस्य प्रतिदिन विवृद्धाध्वरारम्भ शोभा ॥ 103
द्यूमो न मापयितुमग्नि मुपात्त हव्यं
यज्ञेषु यस्य नभसा हुतिगन्धिरुद्यन् ।
सान्द्रो जगाम ककुभां विवरेषु देवा-
नावाहयन्निव दिवं सह वेदमन्त्रैः ॥ 104
शचीकचे हारि न पारिजात-
पुष्पं मखे यस्य सदोत्सुकेन्द्रे ।
जाताञ्जितारेरमरैर्व्विमुक्तं
संयन्मरवे सर्व्वमिवापरिष्टात् ॥ 105
प्रदक्षिणावर्त्तशिखश् शिखाभि-
र्हुतो हुताशो विततं वितानम् ।
भ्रान्तेषु पथ्यत्स्व परिभ्रमस्य
यस्यानुभावान् न शशाक दग्धुम् ॥ 106
मीमांसको नाकितभूर्व्विभूत्या
साक्षात्कृते दिव्य सुखोपभोगे ।

योऽधीत्य यज्ञायुधिनाद्विजानां
सत्यापयां वेदगिरश्रकार ॥ 107
धामाब्धि हेमगिरि नागवरादि नून-
मम्भश्शिलेभ कलभ प्रमुखावशेषम् ।
इत्यास युक्त्यनुगता प्रतिगृह्यतां वाग्
रत्नाद्यसंख्यमिव यच्छति यत्रदिक्षु ॥ 108
येनार्थिनां पर्व्वविवर्द्धमाना
दानप्रवृत्तिः क्रमशः प्रयुक्ता ।
उच्चैः पदारोहण लम्पटानां
ख्राज सौपानपरंयरेव ॥ 109
शौर्य्यादयो यञ्जहतं श्रयन्तो
दुष्टान् प्रियानप्यवलोक्य सर्व्वे ।
शङ्केऽनुकर्त्तु गुणिनं गुणौधा
दुष्टं प्रियं रेजुरपास्य दर्प्पम् ॥ 110
अपूर्व्वमध्यैष्ट कुतोऽपि योगं
यो येन निर्द्दस्यु दधार राष्ट्रम् ।
डिम्बा ह्यभूवन्मद्युरवेटमाद्याः
प्रसह्यवेदादिहराः पुरापि ॥ 111
कान्तेर्गृणानां यशसां विवृद्धि-
धृतेर्द्धियां यस्य चवोर्य्यकीर्त्योः ।
प्राप्तपरां कोटिमपि प्रपेदे
पुनः पुनर्नूतनतामनन्ताम् ॥ 112
कचग्रहाल्लऽनमि वारिलक्ष्मी-
माल्यं यशो यो नु करे सुगन्धि ।
अवाकिरद्वासयितुं हतद्विड्-
वसाभिरुर्व्वीन्दिशि विस्रिताङ्गीम् ॥ 113
प्रासाद मध्यस्थित रत्नहेम-
हम्मर्येऽग्रयतेजः परिवारगेहे ।
धर्म्म्यारितापच्छिदि यस्य राष्ट्रे

प्रजा निविष्ठा मुमुदे दिवीव ॥ 114
व्याप्तस्य तेजोदहनस्य काम्या
कीर्त्तिर्व्विशुद्धा कथिता समीपे ।
फलानि दातुं सकलानि शक्ता
यं सामिधेनीव जिजार्थमाह ॥ 115
त्रातुन्त्रिलोकीं कलिकालकाल्यां
सन्दर्शयन्भृत्त मुवाह सर्व्वम् ।
वार्षध्वजन्ताण्डव पाटवं यो
निजं प्रयोगन्त्ववनेर कम्पम् ॥ 116
स्वस्मात् पदाद्विगलितास् सति पार्थिवत्वे
त्युच्चैः पदञ्चिरमवाप्तु निवोरुवाञ्छाः ।
यस्यारयश्चरणपङ्कजरेणवश्च
मूर्द्धोऽध्यशेरत मही भृदधी श्वराणाम् ॥ 117
गुणैकदेशैस् सदृशोऽपि कैश्चित्
सामीप्यमाने सति यस्य कश्चित् ।
सादृश्यभित्तत्क्षणमाम वैद्य-
श्चतुर्भुजस्येव चतुर्भुजोऽपि ॥ 118
पराङ्मुखी योषिदिवाचिरोढ़ा
सेना द्विषां साध्वसवत्यकारि ।
लक्ष्मीस्तु लग्नोरसि येन योद्धा
धृष्टा भुजिष्येव भृशं रसज्ञा ॥ 119
तिष्ठन्त्थने नांसि मनांसि साधो-
र्दुरात्मनामप्यति निष्ठुराणि ।
मलीमसानि प्रसभं प्रकृत्या
यो यांस्ययस्कान्त इवाचकर्ष ॥ 120
नौकावली यस्य रराजयाने
पूर्ण्णा पयोधौ सितसीतसार्था ।
गङ्गाम्बुवेगेन विसारितान्तम्
न्नीता समन्तादिव हंसमाला ॥ 121

जलधिललित वस्रान्तर्ज्जलोन्नुन्नरत्न-
प्रकर रचित चञ्चद्धीचिकाञ्चीकलापाम् ।
पृथुलगिरिनितम्बान्निर्म्मललच्छत्रवक्त्रां
स्त्रियमिव रमयां यः क्ष्माञ्चकारानुरक्ताम् ।। 122
भुवनत्रितयाकीर्ण्णा यस्य कीर्त्तिम.......स्तव ।
कृशोऽपि तपसा गङ्गां भगीरथ इवावहत् ।। 123
पूर्ण्णे वर्ण्णसमूहेन पदेयोऽयोजयत् क्रियाः ।
लोपागमविक्कारज्ञोऽप्यलोपागमविक्रियाः ।। 124
यस्य स्तम्भादिवद्गम्यः.....................।
अभावगम्मोऽत्यन्तासन्दीषस्तु शश शृङ्गवत् ।। 125
पुरुषग्रह्णं स्थाणैमिथ्याज्ञानं परेष्वापि ।
यस्मिन् परमगम्भीरं सम्यक् ज्ञानमजायत ।। 126
श्रीयशोजन्मभूमित्वन् नयन्नयपराक्रमौ ।
भूर्भुवस्स्वश् श्रिय मिवामृत तद्भाजियो.......।। 127
.................(ब)लवान् वीरो रूपबान्धीधनश्च यः ।
पञ्चानां पाण्डुसूनूनामेकादेश इवाभवत् ।। 128
साक्षात्कृते शिवे शान्तं कृतार्थ गोपरिग्रहे ।
यो दानवारिसंसक्तं करं मन इवाकरोत् ।। 129
पुनः पुनरिवारिप्सुरश्वमेध क्रतुक्रि(याम्) ।
.........ति योऽद्यापि दिक्ष्वहार्य्य यशोह(य)म् ।। 130
नित्या जनितभज्ञातन्द्रित् प्रारम्भं फलोन्मुखम् ।
कुन्त्येव कर्ण्णं सोदर्य्यो यस्यारम्भोऽर्जुनेऽवधीत् ।। 131
मनस्थे पश्यतां यस्मिन्सर्व्वकान्तातिशायिनि ।
मनीजत्वमनङ्गस्यनिवृत्त.................................।। 132
सहस्रवर्त्मनि गुणे गीते यस्य बृहद्गुणे ।
स्मृतिरुद्धेतरगुणश्रुतिस् साम्नीव शाम्यति ।। 133
यदीयं शरमृत्स्नाभिर्य्यशः कामेन कान्तिजम् ।
हृधं हृदि वरस्त्रीणां लग्नं लिखितमक्षरम् ।। 134
चतुर्द्दशप्रकाराभिर्य्यो विद्या(भिर्)...........।

धातेव मन्वस्थाभिर्ब्बभार भुवनस्थितम् ॥ 135
जभिषेकाम्भसा यस्य सिक्ता कतिपयापि भूः ।
सार्व्वभौमस्य सन्तापं सर्व्वभूमेरणहरत् ॥ 136
यस्य विन्यास एवासीद्रत्नसिंहासने पदोः ।
भूभृन्मूर्द्धसु भारस्तु यत्तेय..............॥ 137
धृतमेकसित्चछत्रं यस्य मूर्ध्विव्यराजत ।
मुखोपमार्थी वासन्नचरं पूर्ण्णेन्दुमण्डलम् ॥ 138
गौरीं हरशरीरार्द्धहरां वीक्ष्येर्ष्ययैव यम् ।
श्रीरालिलिङ्गे लग्नाङ्गी वादृशी स्यामिनीश्वरम् ॥ 139
प्रकृतिर्य्यस्य शुक्ल................रञ्जिता ।
तथाप्यतीव विदिता वर्ज्जिता वर्ण्णसंकरैः ॥ 140
पुरस्कृत्य कृती वह्नि वह्नितुल्य पुरोहितौ ।
सभां वेषी विवेशाग्निस्तृतीय इव यस्तयोः ॥ 141
योगोतो गुरुरेकोऽपि लघुदण्डोऽन्वशात् प्रजाम् ।
चण्डदण्डधरन्धर्म्मराजं प्रत्यदिशन्नि(व) ॥ 142
.........देकपद्धर्मः कलिना वकलः कृतः ।
अष्टादशपञ्जैत येनाष्टादशपादिव ॥ 143
निशायामपि युञ्चानो विधाय विधिमाह्निकम् ।
व्यवहारे निरास्थद्यो दोषामासमनागसः ॥ 144
यानायानीन्द्र चापापि सेन्द्रचापेप य(ं)शरत् ।
नम्रराजशिरोरक्तरत्नां शुमिरचोदयत् ॥ 145
दिग्जयायाभिजातो यो बलोद्धतेन धुक्षितम् ।
व्यक्तकेवलसत्वोऽपि रजसाजीजनत्तमः ॥ 146
संहारेऽनेन तप्तास्मीतीव रोषाद्वसुन्धरा ।
श्रीसर्ग्गाय रजीभूता याने यस्यार्क्कमावृणोत् ॥ 147
तेजस्वित्वे समाने पि धूमन्धूमध्वजाध्वजम् ।
जग्राहाजिजयैर्जुष्टन्तेजो जाज्वलितन्तु यः ॥ 148
विवृद्धा वाहिनी यस्य प्रावृषीव शरद्यपि ।
बभञ्ज विभ्रमेनैव भूभृतो मार्ग्गरोधिनः ॥ 149

विमिद्यशात्रवं व्यूहं योऽविशच्चक्ररक्षितम् ।
गरुत्मानिव माहेन्द्रञ्ज यामृतजिधृक्षया ॥ 150
क्षतनक्षत्रन्नक्षत्रनाथान् यस्तेजसा जयन् ।
रणरङ्गाम्बरारूढ़ो रेजे रविरिवोदितः ॥ 151
यो धुन्वन्नुद्धनिधनुर्धनुर्व्वेद इव स्वयम् ।
साक्षाद्भूतो धनुश्शिक्षा सौष्ठवं समदर्शयत् ॥ 152
धनुर्ज्योधातमङ्कारा भुक्ता येन शिलीमुखाः ।
वैरिवक्त्रारविन्देषु रक्तमध्व पिब नूणे ॥ 153
रक्ताक्तासिलता यस्य कृत्तैश् श्लिष्टा भुजैर्द्विषाम् ।
ज्वालेव सर्प्पसत्राग्नेः पतत्सर्प्पार्ब्बुदा बभौ ॥ 154
यस्यासिवपुसी दृष्ट्वान्तकालज्ञा इवात्मनः ।
व्यगाहन्तारयो गङ्गाकालिन्दी सङ्गमाशया ॥ 155
धनापकारिणो भूभृत्पक्षानुत्थानवेगिनः ।
योऽमांक्षीद्भुजब्रजेण जम्भारिरिव जृम्भितः ॥ 156
सकलन्यायकुशलोऽप्येकवीरो रणेरणे ।
सिंहावलोकितन्यायमन्यायमिव योजद्यौ ॥ 157
प्रेंरवत् खड्गेन येनानौ बेगोत्कृत्तमनेश्शिरः ।
स्वर्ग्गतं स्वान्तरात्मानं ऊद्धवोच्छल दिवान्वगात् ॥ 158
तेजस्विनोऽरेरस्तैर्य्यो रञ्जितोऽतीन भासुरः ।
स्वभावभासुरो मेरुरिव रत्नमरीचिभिः ॥ 159
जयश्रीरसिधारायां येनापि स्थापिता स्थिरम् ।
पुष्कलान् पुष्णती कामान् प्रजोदयमबर्द्धयत् ॥ 160
प्रत्यादिशन्तीवाकीर्त्तिमैन्द्रीमिन्द्रजिता क्लताम् ।
यस्य वैजयिकी कीर्त्तिर्व्याप्योर्व्वी व्यश्नुतेदिवम् ॥ 161
जघानारि कुम्भालीं भिन्नां श्रीकबरीभिव ।
योऽसिनीलोत्पलेनोद्यन्मुक्तान्तः कुसुमावलिम् ॥ 162
अनित्यं संस्कृतं सर्व्वमिति वादन्नुदन्निव ।
नित्यमात्मयशोऽधत्त यः पराक्रमसंस्कृतम् ॥ 163
पुंवत्प्रगल्भा कान्तापि यमनैषीद्रणक्रिया ।

लक्ष्मीमजमनन्योक्तां सुनन्देन्दुमनीमिव ॥ 164
धात्रा भुवन सन्तापविध्वंसक्षमलक्षणा ।
मुदाद्ययि ध्रुवं यत्र कामाकान्तिरनश्वरी ॥ 165
जिज्ञासुरिव यत्कीर्त्तेर्गतिमानञ्जगत् त्रये ।
प्रसारित करोऽद्यापि प्रयाति............... ॥ 166
स्रविवादात् कलाहानिरिन्दोरिति हरोन्वदात् ।
यत्नाद्विनीय वीतेर्ष्या यत्र भूभारतीश्रियः ॥ 167
खड्गखण्डित दन्तीन्द्रदन्तषण्डोज्ज्वलानलैः ।
यश्चक्रे दीपिकाकोटिभाजिरात्रौ जयश्रियः ॥ 168
वीतनिद्रं प्रजाबृद्धौ यस्य भ्रमति शासनम् ।
स्मरणादिव दैत्यारे..........विश्वसंहृतः ॥ 169
दीक्षितो रणयज्ञाय भित्त्वा योमित्रमण्डलम् ।
प्राप्तोऽप्यनामयपदं प्रियां भेजे जयश्रियम् ॥ 170
पद्मार्थी भीमसेनो यो भूमृदहनपारगः ।
दिग्राजराज्यमकरोद्ध्वस्त कान्तालक्राकुलम् ॥ 171
यस्याधुनापि न व्येति कीर्त्ति.............।
लग्नया मन्दरगिरौ पृक्तेवामृतविप्तुषा ॥ 172
येनोद्ग ता दिवि युधिच्छिन्नद्विव्मूर्धमौलयः ।
नत्ताभूषा इव यशोगादिदिव्याङ्गनागणे ॥ 173
यत्कीर्त्त्ये काण्र्णवप्रान्ततरण क्लान्तशक्तयः ।
हेमाद्रिमूर्द्धपुलिने विश्रान्ता विबुधा ध्रुवम् ॥ 174
...............नद्धपद्मर्द्धिद्विषद्ध्वान्त विमर्द्दिनी ।
महभृन्मूर्द्धिन यस्याज्ञा प्रभा भानोरिवाबभौ ॥ 175
श्रीसुस्थितोरः कुवलये श्रीधरेण छतोदधेः ।
श्रीप्रिये येन तु यश श्श्रीराजेर्द्दिङ्मुखाम्बुजे ॥ 176
दृशि पद्मद्युतिं पाणौ पृथिवीं वक्षसि श्रियम् ।
बिभ्राणौ योऽपि भू..........णितः परमेश्वरः ॥ 177
भूमिभृन्मथनं बिभ्रद्विलसद्रत्न भूषणम् ।
यस्य विष्णोरिव बभौ वक्षश् श्रीरतिमन्दिरम् ॥ 178

भास्वत्ततरो भूरि मण्डलालं कृतोन्नतिः ।
भूमृद्धर्त्ता महिम्ना यो मेरोर्नात्यचरत् स्थितिम् ॥ 179
दुर्योधनद्विषन् नीत्वा भङ्ग..............जसा ।
जयश्रियमशल्यां यो धर्म्मराजोऽन्वपालयत् ॥ 180
युद्धाब्धिमथनाल्लब्धं यशोरत्नञ्जगत्त्रये ।
अस्वार्थमेव येनापि श्रीधरेण व्यकीर्य्यत ॥ 181
यस्त्रिलोकी प्रियां प्रायश्चलच्चन्द्रार्क्कलोचनाम् ।
..........................णपाणमपाययत् ॥ 182
यत्पाद कल्पावृक्षोऽपि कामदो नादितश्रियम् ।
दृप्तारौ हि वदन्यत्वन् नतिस्साधयतीश्वरे ॥ 183
अहो स्वभावो दुस्त्याज्यो यद्वक्षःस्थावरीकृता ।
येनारि हृदयाह्लादहारिणीश्रीः क्षणंक्षणम् ॥ 184
पूर्णेन्दो राहुणा अस्तात्कामील्लीढान्नु वह्निना ।
कान्तिद्रुता मुखाम्भोजे यस्याङ्गे चामयेश्रिता ॥ 185
एतावता बुधैरुक्तो पदज्ञश् शाब्दिकोऽपियः ।
नास्तीति याचकगणं यन्नोवाचकदाचन ॥ 186
नेत्रेन्द्रियेण कामस्य दर्प्पञ्जेतारमेकदा ।
प्रत्यादिशन्निवेशं योऽजयत् सर्व्वेन्द्रियैस् सदा ॥ 187
शक्तिबुद्धिगतीनां योऽधरीचक्रे महोदयेः ।
धराम्भोनिधिमेरूणां क्षमागाम्भीर्य्यधीरताः ॥ 188
प्रधानगुणसंसिद्धैय न्यस्तं येन त्रयन्त्रिषु ।
अभियाने रजो धर्म्मे सत्वन्द्विडःहृदये नमः ॥ 189
विमत्सरो वनगतो यतितुल्योऽप्यरातिराट् ।
न कश्चिदगमन्मोक्षं यस्माद्भीतो भवादिव ॥ 190
वनं रिपुपुरीकुर्व्वन् वनीकुर्वनरिपोःपुरम् ।
यः पदार्थविपर्य्यासमितिशब्द इवाकरोत् ॥ 191
पूर्णेन्दुन्मुदितन्दृष्ट्वा यस्यास्यस्मरणाद् द्विषः ।
ज्योत्स्नाभिरद्रेस् सन्तप्राश् शीतलेपि शिलातले ॥ 192
कृतानुरागश् श्रीकण्ठे मण्डलाग्रधुरन्धरः ।

वृत्तोरुव्ययिस्थेयान् यस् स्वबाहुरिवाबभौ ॥ 193
दोषोद्धारङ्गुणोत्कर्ष वंशजानां शुभांगतिम् ।
यो धनुर्म्मण्डल इवाकार्षीत् प्रकृतिमण्डले ॥ 194
निहताराातिहरणं राजेन्दोरपि मण्डलम् ।
यस्य तछयितोन्मुक्त वाष्पाम्भोमिरलक्ष्यत ॥ 195
हतानां यद्यशश्शौर्य्यं गीतं स्वर्ग्गाङ्गनागणैः ।
हृद्यं हृन्माथिचारिणां मन्मथस्येव शासनम् ॥ 196
मिग्रहानुग्रहौ भास्वान् मार्ग्गावुत्तरदक्षिणौ ।
यः पर्य्यायेण संक्रान्तो मध्ये समरसस्तयोः ॥ 197
समाप्य रणयज्ञं यो वसुभिद्दिट् पुराद्धतः ।
आरेभे वैदिकं विद्वान् युधिष्ठिर इताध्वरम ॥ 198
प्रजर्द्धिरधिका यस्य सुरभीज्यामनुज्झतः ।
प्रजालोपो दिलीपस्य प्रागभूत्प्रोज्झतस्तु ताम् ॥ 199
यस्याध्वराग्नि संपर्क्कमिवापन्नस् समण्डलः ।
धूमैरदृष्टश्छन्नोऽक्कों हविर्भागजिधृक्षया ॥ 200
सर्व्वरत्नैः स्थिरा यस्य दानवृष्टिर्हिरण्मयी ।
क्षणिकाम्भोदमुक्ताभिर्वृष्णो वृष्टिस्तु वैद्युती ॥ 201
दानैकार्ण्णवमग्नापि दीप्ता यज्ञानलैरपि ।
रराजोध्यमध्यस्था यस्य स्थितिधरा धरा ॥ 202
समस्तं योऽकरोद्राष्ट्रमवाष्पन्नप्रभूभृताम् ।
स्वास्मिन् हरस्तु सहते श्वशुरे वाष्पवाहिनीम् ॥ 203
यो विक्रमन्नयायासशङ्का शार्ङ्गी नुनाशयम् ।
चक्राम कृत्स्नमेकेन विक्रमेण पुनर्जगत ॥ 204
तापनाह्लादनक्षत्र गुणार्क्केन्दुकरान्वितः ।
सन्ध्योदय इवोपास्यो मन्त्रिणां योऽनतिक्रमात् ॥ 205
अतस्मिंतदिति प्रायः प्रत्ययं हेयमेव यः ।
गुणेषु रत्नग्रहणाद महीद्व्यसनीकृतात् ॥ 206
मारीच इव रामस्य नामाद्येकाक्षरश्रवा ।
यस्यारिराजो वीरोऽपि जगामानन्यजांभियम् ॥ 207

नानाकारस्वदेहार्द्ध सन्ध्यनादरिणाविव ।
शार्ङ्गी श्वरौ तदद्धम्यिां यञ्चक्रतुरतादृशम् ।। 208
न केवलं पदविधौ यद्वाग्वर्ण्णविधावपि ।
व्याप्तता नोपमेयैव समर्थरिभाषया ।। 209
जगतां बर्द्धयन्बीजं क्षतात् त्राणं वितन्वता ।
नाङ्गकान्त्यैव जात्यापि येन कामो विनिर्ज्जितः ।। 210
सुदक्षिणान्दिलीपं यः प्रतिगृहनन्तमध्वरे ।
अजैषीत् क्षत्रधर्म्मेण तां पात्रेषु तुदत्तवान् ।। 211
रक्षितं येन सौजम्यमसाधारणभूषणम् ।
रत्नं कोस्तुभनामेव द्दधन्नारायणोरसा ।। 212
शप्ता दुष्टस्वरेणैत्य दधीचं स्वर्ग्गता पुनः ।
यन्तु सुस्वरदत्ताशीर्भारत्यद्यापि भूरता ।। 213
पराक्रमद्वन्द्वं यद्यशोऽपि नपुंसकम् ।
दिक्स्त्रीषु रक्तं परवल्लिङ्गत्वादिव विश्रुतम् ।। 214
सीतां लब्धुमशक्तोऽरिर्य्यस्य मन्दोदरीरतः ।
श्रीमदादित्यविद्वेषी रावणाभो निशाचरः ।
शून्यानात्मादिवादं यो युक्त्या परिहरन्निव ।
सर्व्वत्र व्यापिनीमात्मविभूतिं प्रत्यपादयत् ।। 216
य एकोऽसंख्यगुणवान् कुताक्किर्कजिगीषया ।
प्रादुरासीद् गुणगुणिव्यतिरेकं वदन्निव ।। 217
न केवलं गन्धवती क्रियते भूस् सुगन्धिभिः ।
यशोभिर्य्यस्य दिक्चक्र कीर्ण्णैर्द्योरप्यतद्गुणा ।। 218
प्राक् प्रयुज्योपसर्ग्ग यश् शास्त्रज्ञः परम् ।
धातोरिव रिपोरर्थ प्रतिपत्त्यै पदं व्यधात् ।। 219
यशञ्चन्द्रस्य जनको दशदिग्गर्भगामिनः ।
अनसूयानुयातो यो रराजात्रिरिवापरः ।। 220
पुराणार्थनुरक्तोऽपि वृद्धवाणीप्रियोऽपियः ।
नवार्थ एव केनापि काव्येऽराङ्क्षीन्मनोहरे ।। 221
निष्कलेऽपि शिवे नित्यसंसक्तस् सकलीकृते ।

सकलां य कलां प्राप चन्द्रार्द्धो नतु जाऽयतः ॥ 222
स्वीकुर्व्वन्त्युन्मतिं सर्व्वा वर्णिर्णता यस्य सद्‌गुणाः ।
तथा हि लज्जाव्याजेन मुखमप्यानतन्तदा ॥ 223
कौमारन्दधता यो नु कार्त्तिकेयेन केवलम् ।
जरसा वर्ज्जितं प्राप्यमप्राप्तं प्राप यौवनम् ॥ 224
अकार्य्यं पृष्ठतः कारमनुशिष्टा प्रजाखिला ।
येन प्रियहितं प्राज्यमन्योन्यस्य व्यतिव्यधात् ॥ 225
तिर्य्यक्कृत्य कृती कृत्यं कृत्सनं प्राक्कृतिभिः ।
शास्त्रोक्तं यः प्रकृतवान् नवीनमकृतं परैः ॥ 226
प्राप्य हीनानुबन्धं यद्‌गुणं कीर्त्तीन्द्वलंकृतम् ।
नष्टा हरजटाजूटकीर्त्तिर्गङ्गेव भूभुजाम् ॥ 227
यस्यापि नित्यवीप्सार्थ केवलन्न द्विरुच्यते ।
यशोऽनुरक्तैस्कविभिः कोटिकृत्वोऽप्यसंभ्रमैः ॥ 228
एतावतानुमेयो यो योद्धा शस्त्रविदां वरः ।
द्विषं साङ्गभिवानङ्गं यच्चि च्छेदासिधारया ॥ 229
जाताः प्रजापतेर्य्यस्माद् दक्षान् मेधादयो दश ।
दशाङ्गायैव धर्म्माय दयितास्तस्थिरे स्थिराः ॥ 230
कान्तिन्दृष्टां पुनर्दृष्ट्वा द्वौ पुरूरवसः पुरा ।
विबुधावूचतुः क्षीणामृद्धां यस्य तेऽखिलाः ॥ 231
यमस्य महिषाकर्षादिवाप्तुन्धर्म्मराजताम् ।
यस्योर्व्वी महिषी छद्या दक्षिणाशां सदान्वगात् ॥ 232
यस्य प्रशासतो राष्ट्रेऽप्यैकागारिक वर्ज्जिते ।
केनापि दृष्टया कान्त्या हृतं सीमन्तिनीमनः ॥ 233
बृद्धानुशासन सुधासिन्धौ भग्नोऽपि योऽनिशम् ।
बृद्धभूवराङ्ग श्रीलङ्खनञ्चरणं व्यधात् ॥ 234
रजस्तभोम्यान्निर्म्मुक्तो युक्तस् सर्व्वगुणैरपि ।
प्रकृतिर्योऽपि बुद्धयादेः परमः पुरुषोमतः ॥ 235
लक्षशो लक्षहोमाग्नौ हुतं यस्यापि होतृभिः ।
सर्व्वबीजमिवाम्बूप्तं महत् फलमजीजनत् ॥ 236

चोदितौ सूतमगधौ पुरा तुष्टुवतुः पृथुम् ।
स्तवीति स्वरसेनैव यन्तु सर्व्वमिदञ्जगत् ॥ 237
भूमृत्यनम्रे विध्वस्ते स्वभूभृत्त्वभयादिव ।
छिन्नपक्षापदेशेन नमन्ति गिरयो नु यम् ॥ 238
श्रीसोमेश्वरभट्टाद् यो मीमांसां श्रूतवान्द्विजात् ।
बुधान् व्याख्यातवेदार्थां बह्मण्यानध्यजीगमत् ॥ 239
राजपद्धतिरद्यापि यत्प्रणीता प्रकाशते ।
यया याता नृपतयो लोकद्वयहितैर्य्युताः ॥ 240
निष्कलङ्कतया नेव शशाङ्कं प्रजहास यः ।
अपक्षपातपूर्ण्णेन मण्डलेनाप्यहर्न्निशम् ॥ 241
राज्यन्नपुंसकावस्थामपि प्राप्तं प्रजार्द्धिकृत् ।
बभौ विजितवैरीन्द्रं यस्य जिष्णोरिवेहितम् ॥ 242
भ्रमिता मन्दरभ्रान्त्या लक्ष्मीरमृतमन्थने ।
अभ्रान्तं मेरुमिव यं सुवर्ण्णं प्राप्य सुस्थिता ॥ 243
ब्रह्माण्ड कोटरेऽप्यल्पे यशो येनोरु दर्शितम् ।
कृष्णेनेवास्यकुहरे त्रैलोक्यं सर्व्वशक्तिना ॥ 244
नीत्याशिषत् कम्बुपुरीं वागीशस्य पुरोधसः ।
गीर्व्वाणवारितारीन्द्रां यो बज्रीवामरावतीम् ॥ 245
शमितेऽप्यन्वशाहुर्ग्गं दुर्ग्गमं योऽरिमण्डले ।
मेरुं कुर्व्वन्त्यबध्या हि धाम वेद्योहरीश्वराः ॥ 246
प्रधानभूता भूतेषु गुणा यस्मिन्प्रशासति ।
गुणीभूतानि भूतानि व्यत्ययोऽपि महोदयः ॥ 247
श्रीकेसरं यशोगन्धं साम्राज्यसरसि स्फुटम् ।
यत्पाद जलजं रेजे दुष्टं राजन्यषट्पदैः ॥ 248
मृदूचकार यश् शस्त्रमसंख्यं संयति द्विषाम् ।
हरस्तु कुसुमास्रैक कुसुमास्त्रमृद्कृतः ॥ 249
यस्य दण्डयतो खण्डं दण्डयान् देदीप्यते यशः ।
अदण्डयादण्ड नाम्भोधेरिन्दु बिम्बमिवोदितम् ॥ 250
दत्तेभशतदानाम्बुमत्तेव विततेऽध्वरे ।

परिभ्रमति यत्कीर्त्ति रद्यापि भुवनत्रये ॥ 251
कमलोत्कापिदित्वैव कमलं कण्टकान्वितम् ।
यस्यागादूबाहुकमलं कमला हतकण्टकम् ॥ 252
ब्रह्मार्थितो विशुद्धो यश् शुद्ध एवशिवस्त्वसौ ।
शुद्धस्फटिकवर्ण्णोऽपि भूयोऽभून्नील लोहितः ॥ 253
यत्प्रतापानलोऽधाक्षीद्वाहिण्यन्तर्ग्गतानपि ।
वैरिणस् संमुखीनान् किं पुनः काष्ठान्तरद्रुतान ॥ 254
एक एवैकजलधौ प्रसुप्तः पुरुषोत्तमः ।
यत्कीर्त्येकार्ण्णवे स्तोत्र प्रबुद्धा बहवस्तुते ॥ 255
यस्य स्तवायापि कविप्रयत्नानन्तरीयकम् ।
चरितामृतसंपर्क्कात काव्यन्न व्येति वेदवत् ॥ 256
भीता भीषयमाने भूः किञ्चिदेवादिशत् पृथौ ।
दत्वान्येषु बहुक्षीरं यस्मिंस्त्वभयदेऽखिलम् ॥ 257
जहत्स्वार्थाभिमुख्येन परार्थप्रतिपादने ।
वृत्तिर्य्यस्य समासादिरिव सामर्थ्यमण्डिता ॥ 258
मोक्षप्राप्तिनिमित्तेन तत्त्वज्ञानेन भास्वता ।
समन्वितोऽपि यो नैव विमुक्तो हृदयान् नृणाम् ॥ 259
एकत्रैवात्मनो गात्रे व्यधाद् भूतिं रजोमयीम् ।
हरो यस्तु जगन्नाथस् सप्तस्वङ्गेषु सात्विकीम् ॥ 260
निष्कामोऽपि परस्वेषु यो वदन्योऽपि पाटवम् ।
दातुं नालं स्वमन्यस्मै जग्राहान्यस्य केवलम् ॥ 261
जयः परानयो वास्याद् इत्याशङ्कान्ययोद्धषु ।
यस्मिंस्तु जय एवासीदसन्दिग्धो रणेरणे ॥ 262
श्रीरहो निष्ठुरा युद्धे यत्कुचाभ्यामताडयत् ।
रुग्णनिध्नदरातीभदन्ताग्रं यदुरस् स्थलम् ॥ 263
नालौकः करकीर्ण्णासु पुष्पवृष्टिषु योजयी ।
विस्पर्द्धीवाकिरद् योद्धा कीर्त्तिमन्दारमञ्जरीः ॥ 264
भूषां बद्धनन्निवापूर्व्वा खण्डमूषे भवेऽधिकाम् ।
यश श्चन्द्रसहस्राणि योऽखण्डान्यदिशद्दिशि ॥ 265

यद्वपुस्सहकारस्य लग्ना कान्तिफले नृणाम् ।
दृग्भृङ्गी कीर्त्तिकुसुमाकृष्टा निर्गन्तुमक्षमा ॥ 266
आत्मानमीश्वरं वक्तुं यो वाञ्छन्निव कारणम् ।
प्रकृतावेनुदासीनः कर्त्तव्यमकरोत् कृती ॥ 267
देवान् यश् श्रीन्द्रवर्म्मश्रीयशोवर्म्मादिभिनृपैः ।
स्थपितान् कल्पिते स्थेयो यज्ञाङ्के तरतिष्ठिपत् ॥ 268
यशोधरतटाके श्रीयशोवर्म्मकृते कृती ।
अदृष्टमपि धर्म्मं यः प्रत्यक्षं समदर्शयत् ॥ 269
कम्बुविश्वम्भरायां यस्त्रिदशानां स्वयम्भुवाम् ।
स्थापितानाञ्च यज्वैको भूत्वा पूजामवर्द्धयत् ॥ 270
राजेन्दुना येन यथा यथा श्री-
भद्रेश्वरेऽदीयत मण्डलश्रीः ।
तथा तथावर्द्धत निष्कलङ्का
चन्द्रश्रियं छ्रेपयितुं मुदेव ॥ 271
चम्पाधिपं बाहुबलेन जित्वा-
ऽयच्छच्छ्रिदयं यो हरये तदीयाम् ।
स्वयम्भुवे रोद्यसि विष्णुपद्मा-
श्चम्पेश्वराराख्यामिव कर्त्तुमर्ध्याम् ॥ 272
सितानदीतीरकृतास्पदायै
द्वारत्रयं योऽदिशदेव नद्यै ।
यथाख्यमेषा त्रिपथेन गच्छ-
त्वितीव हैमं सह भूरिभोगैः ॥ 273
यशोधरायेन पुरीपरोक्षा
धर्म्मार्थैकामैरियमम्मपूरि ।
कृत्वा पुनर्भारत संहितैव
वेदैस्मिभिस् सत्यवती सुतेन ॥ 274
याञ्चा यशोवर्म्मनृपस्य योगा-
चारोक्तविज्ञप्तिरिवार्थ शून्या ।
धर्म्म्या स्वधर्म्मोद्धरणोद्धतेन

येनार्थवत्तां गमिता त्रयीव ॥ 275
मग्नान्यभूभृत्कुलमान शृङ्गे
प्युच्छ्रायभागत्त तटाकपद्मे ।
यन्मान विष्णुर्भुवनं विलङ्घय
पदं व्यधात्तूर्य्यपदावदातम् ॥ 276
स श्रीराजेन्द्रभद्रेश्वर इति विदितं लिङ्गमत्रेदमग्रयं
गौरीशौरीश्वराणाञ्चत सृमिरभिरामा मिरर्च्चाभिरामिः ।
कीर्त्तिं वक्तुं प्रसन्नं मुखमिव मुदितस्योर्ध्वमास्यैश्चतुर्भिश्
शम्भोर्भास्वद्भिरिद्धे शिखितनुवसुमिस् स्थापयामास शाके ॥ 277
तेनागिमाद्यैर्न्निहितो गुणैश् श्री-
राजेन्द्रवर्म्मेश्वर ईश्वरोऽयम् ।
अष्टाभिरिन्द्रादिभिरात्मभूत्यै
भूपालभावस् स्व इवाग्निदिक्स्थः ॥ 278
राजेन्द्र विश्वरूपेश्वरोऽपि विश्वाकृतिर्हरिर्हारी ।
त्रिभुवनकेवलकान्तिप्रकर इवाकारि तेनास्मिन् ॥ 279
श्रीहर्षदेवजननीजयदेव्यास् स्वर्ज्जयाय जनितश्रीः ।
जननीजघन्यजायास्तेनेह स्थापिता गिरिजा ॥ 280
राजेन्द्रवर्म्मदेवेश्वरभीश्वरोऽवनीशानाम् ।
श्रीहर्षवर्म्मनृपतेरनुजस्य स भूतये कृतवान् ॥ 281
सिद्धा दशाध्यात्मिकलिङ्गलक्ष्याश्
शार्ङ्ग्यादितार प्रतिमाभिरामाः ।
मूर्द्धेन्दुनिष्ठयूत सुधोरुधारा
इवाष्टमूर्त्तीरकृताष्टमूर्त्तेः ॥ 282
त्रैलोक्यलक्ष्मीरिवलोकपालै-
रष्टाभिरासादित राजभावैः ।
पुञ्जीकृतेषु क्षितिपेन तेन
देवेषु दत्ता विविधा विभूतिः ॥ 283
सुवर्ण्णभोजी मणिराशिसान्द्रस्
समुद्रवत् तत्परिकल्पितोऽस्मिन् ।

वेलविबृद्धोऽस्त्यनतीत्य देव
पूजाविधिस्तूर्य्यरवोर्म्मिनादः ॥ 284
इन्द्रेण तेनाधिकृतैः पयोदैः
पुंमिस स्वधर्मैकरसं प्रदेयम् ।
सषड्रसं पात्रवशात् समाप्य
दैवीं पयोदिव्यमिवान्नभिज्याम् ॥ 285
भविष्यतः कम्बुजभूभुजश् श्री-
राजेन्द्रवर्म्मा विदितो वदन्यः ।
स याचते याचत इत्युदारं
रक्षन्तु धर्म्म स्वामिमं भवन्तः ॥ 286
आत्मायमेको बहुधाविभिन्ने
कर्त्तोपभोक्ता चयतश् शरीरे ।
ततस् स्वधर्म्मग्रहणं बुधाना-
न्धर्म्मेषु सर्व्वेषु विबर्द्धतांवः ॥ 287
उपाधिभेदादपि कर्त्तृभेदो
यः कल्पितः कर्म्मकलानि भेत्तुम् ।
भाक्तस् सभेद्यः परमार्थबुद्धया
भासेव भानोरनयान्धकारः ॥ 288
लब्धा धारित्री तपसा भवद्भि-
रस्यां यदस्तीदमशेष मेतत् ।
संरक्षणीयं क्षणमप्युपेक्ष्यन्
न स्यान्निपीडेयत यदीह कैश्चित् ॥ 289
क्षतात् परित्राणविधानलिङ्गा
क्षत्रोक्तिरेषाब्जभुवो भुजाद्रवः ।
प्रसूतिभाजां भुजवीर्य्यभूरि-
भूषाभृतां भासयतात् स्वमर्थम् ॥ 290
निद्रायुजां राज्यसुखे श्रियापि
धर्म्मो विपद्येत यदा तदास्तात् ।
प्रबोधनं वस्तृदुपक्रियायै

नारायणस्येव वयः पयोधौ ॥ 291

यतो निमित्ताददितेस् सुतत्वं
स्रैणञ्च विष्णुर्भगवान् जोऽपि ।
शिवो जगामाम्बुजजन्मनश्च
तदस्तु धर्म्मस्थिति पालनं वः ॥ 292

यमाभ्युपेता नियमाभिरामा
रामेव सा सत्यवतः प्रियास्तु ।
दत्तान्धदृष्टिर्द्दधती धृतिर्व्वो-
यशश् शरीरे मम धर्म्मजीवम् ॥ 293

श्लादिदेवस्वभिदब्जिधृक्षु-
र्भूषायमानं विषमेव कस् स्यात् ।
श्रीकण्ठकण्ठस्थित कालकूट-
मिवेति बुद्धिर्व्विदुषान्दृढ़ावः ॥ 294

भूयास्त यूयञ्चिरमात्तराज्या
धर्म्मोत्सुका स्त्यागगुणैर्व्वरिष्ठाः ।
तेजोऽधिकाः कोशबलर्द्धिमन्तः
करन्धमाद्या इव पूर्व्वभूपाः ॥ 295

कुलीनमुल्का कुलजेव कन्या
भवद्विधं प्राप्य पतिम्बरैषा ।
शालीनतां मार्द्दवमानयन्ती
याञ्चा निजन्नो विवृणोति भावम् ॥ 296

स्वर्ग्गापवर्ग प्रशमैक वीथी
वाणी ममैषेश्वर स्मूर्द्धमाला ।
गम्भीरमानन्दयतान्मनो वो
मन्दाकिनीवाम्बुनिधिं प्रविष्टा ॥ 297

मरणमिदमिनानां याचनं युक्तमुक्तं
कृतिभिरमिमतार्थ प्राप्तये यत् प्रयुक्तम् ।
तदमृत मनुगम्यन्धर्म्मसंबर्द्धनार्थं
यदभिमतमतोऽहन् धर्म्मरागेण याचे ॥ 298

अर्थ–

पूर्व दिशा में ऋग्वेद की स्तुतियों के द्वारा अर्चियाँ फैलाते हुए अग्नि के रूप में, यजुर्वेद की स्तुतियों के द्वारा दक्षिण दिशा में प्रवाहमान वायु के रूप में, सामवेद की स्तुतियों के द्वारा पश्चिम दिशा में रश्मि समूहों के अधिष्ठान चन्द्रमा के रूप में तथा सभी रूपों में एक साथ उत्तर दिशा में प्रकाशित होनेवाले शिवजी को नमस्कार है ।। 1

जो अशरीरी और अद्वितीय होते हुए भी संसार के जन्म, पालन और विनाश की सारी शक्तियों के आधार रूप में, ओंकार से ब्रह्मा, विष्णु और महेश– इन तीन रूपों में बार-बार प्रकट होते हैं; जो योग और योगी– दोनों हैं; सब जिनके वशीभूत हैं तथा वेदान्त के जो एकमात्र प्रतिपाद्य हैं, उन वैभवशाली शिवजी को नमस्कार है ।। 2

जिन्होंने चन्द्रमा में अपनी सृजनशालिनी ब्राह्मी शक्ति सावित्री को, जगत्पालिनी शक्ति वैष्णवी को सूर्य में तथा विनाशकारिणी भूतशक्ति रौद्री को अग्नि में स्थापित कर रखा है, जो द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि– इन तीनों सृजित रूपों में सूक्ष्म शरीर से विद्यमान हैं तथा तत्त्वज्ञानियों में जो सर्वश्रेष्ठ हैं उन रजोगुण को धारण करनेवाले ब्रह्माजी को हमलोग नमस्कार करें ।। 3

सत्त्व, रज, तम– इन तीनों गुणों को अतिक्रमण कर नित्य पद में जो स्थित हैं, जो इन्हीं तीनों गुणों के द्वारा चार प्रकार से विविध रूपों में व्यक्त हुए हैं तथा जो निराकार होते हुए भी विश्वाकार हैं, उन विभु आदिपुरुष भगवान् वासुदेव को प्रणाम है ।। 4

देवकी के छः गर्भों का कारणभूत, गर्भ में माया विस्तार कर सप्तम गर्भ को बाहर निकाल देनेवाली, अष्टम गर्भ से परमात्मा के उत्पन्न होनेपर कंस वध के उद्घोष का रूप धारण कर मूर्त आकाशवाणी रूप में प्रकट होनेवाली, बुद्धिदात्री सहजा, आद्याशक्ति भगवती नारायणी को नमस्कार करें ।। 5

सागर सीमा तक शुभ्र यश राशि विस्तार से सुशोभित, राज्यलक्ष्मी से संयुक्त, अनिन्दितपुर में विकसित मातृवंश के साम्राज्य का आधिपत्य जिसे प्राप्त था, वह द्वादशादित्यों के प्रकाश को धारण करनेवाला सोमा कौण्डिन्यवंशी अजेय

राजा बालादित्य अत्यन्त सहज भाव से अनायास ही हाथ के कंगन के समान समस्त भूमि-मण्डल को धारण किया ।। 6

उसकी बहन की पुत्री सरस्वती को जिस विश्वरूप भट्ट ने वसिष्ठ की अरुन्धति के समान पत्नी रूप में पाया था ।। 7

उन दोनों की ब्राह्मण क्षत्रिय वर्णसंकर वंश-परम्परा में उत्पन्न द्विवेद भट्ट की पत्नी वेदवती नाम की थी ।। 8

उसकी नानी के भाई पुण्य गुणवान् शत्रुजित श्री नृपतीन्द्रवर्मन राजा का बेटा जयवर्मन था जिसने अपनी शक्ति से श्रीकृष्ण की तरह महेन्द्र पर्वत की चोटी पर नगरी बसाया था, उसकी माँ का मामा अतुल सौन्दर्यशाली, अद्वितीय राजा पुष्कराक्ष था ।। 9

जो पहले पुरि पुरि के नाम से जानी जाती थी, उसी स्वर्गद्वार नगरी में अपने कुल में श्रेष्ठ राजा श्री बालादित्य के द्वारा यह शिवलिंग स्थापित किया गया। वेद जिसकी दूसरी दृष्टि है, ऐसे उसी राजा के द्वारा (बालादित्य के द्वारा) सारे उपचारों से शिवजी की पूजा करके फैलते हुए यश के प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित करनेवाली स्वर्गीय प्रतिष्ठा प्राप्त की गयी ।। 10

पृथिवी के समान महिमामयी महेन्द्र देवी इन्हीं कुलीन राजाओं की महान् वंश-परम्परा में उसी तरह उत्पन्न हुई थी जैसे स्वर्ग से देवी गंगा पृथिवी पर अवतीर्ण हुई थीं ।। 11

सम्पूर्ण पृथिवी के अधिपति, वेदवती के पिता के राजकुल रूपी समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा के समान महनीय कीर्तिवाला श्री महेन्द्रवर्मन कुलीनों की सारी कलाओं को धारण करता था ।। 12

सूर्य जैसे पर्वतों के शिखरों पर पैर रखने का खेल खेलता है, उसी प्रकार राजाओं के मस्तकों पर पैर रखने का खेल खेलनेवाले उसी राजा महेन्द्रवर्मन के द्वारा, राज वनिताओं के मस्तकों से जिसके पैर की धूल पोंछ दी गयी है, ऐसे अपनी धर्मपत्नी से (में), राजनय का ज्ञाता राजेन्द्रवर्मन वैसे ही उत्पन्न हुआ जैसे सूर्य के द्वारा त्वष्टा की पुत्री से राजधर्म का ज्ञाता वैवस्वत मनु उत्पन्न हुआ था ।। 13

प्रारम्भ में वेदपाठी ब्राह्मण विश्वरूप से जो वंश उत्पन्न हुआ (स्थापित हुआ) तथा जिस वंश में उत्पन्न द्विवेद भट्ट ने अपनी पत्नी के साथ तीनों प्रकारों का तप किया था एवं उस सूर्यवंशियों के वंश में जिसमें अनेक राजा उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न हुआ यह श्री राजेन्द्रवर्मन वंश के मूल पुरुष सूर्य के समान ही हुआ ।। 14

विजयी होकर जिसने अपने जयतेज के प्रकर्ष से असंख्य तेजस्वी देवताओं को नीचा दिखाया, उसी ने सारी पृथिवी का साम्राज्य, सम्पत्ति और गुणों को सम्पादित कर सूर्य आदि असह्य तेजस्वियों का जो बहुत ऊँचे पर आश्रय लेते हैं, अपने को उनका भी आश्रय बनाया ।। 15

क्षत्रिय वंशरूपी क्षीरसागर से उत्पन्न लक्ष्मीरूपी माता के तथा लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु की तरह पिता के सूर्यवंश के सूर्य के समान वह सौन्दर्य से काम के समान ही नहीं अपितु उससे भी अधिक निर्दोष अंग सौन्दर्यवाला अनिरुद्ध प्रद्युम्न की तरह था तथा ईश्वरीय गुणों के कारण 'जर्मेश्वर' शब्द के अर्थ को पूर्णरूपेण धारण किया था ।। 16

संसार में सुन्दरता के लिए विख्यात् सृष्टि के सार रूप चन्द्रमा से अंग सौन्दर्य, प्रातःकालीन सूर्य से त्रिभुवनरूपी कमल के विकास के लिए प्रभुत्व शक्ति, अग्नि से दीप्ति तथा देवी पार्वती युक्त अपने महान् पिता शिव से जो जगत् के स्वामी हैं ईश्वरत्व को प्राप्त कर जैसे कुमार स्कन्द सभी तेज से युक्त हैं ऐसे सभी दिशाओं में प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार कुमार राजेन्द्रवर्मन भवपुर के विख्यात् सोमवंश के मूल पुरुष से शरीर सौन्दर्य, बालादित्य नामक अपने पूर्व पुरुष से त्रिभुवन कमल के विकास के लिए प्रभुत्व शक्ति, अग्नि से दीप्ति तथा पिता से महानता तथा भवपुर में स्थित देवी सहित शिवजी से ईश्वरत्व को पाकर सभी दिशाओं में यह प्रसिद्ध था कि वह सभी तेजों से युक्त है ।। 17

देवी दुर्गा के उद्घोष से शत्रु कंस के मनोरथ को विफल करनेवाले, अपने सुदक्ष विकास के लिए यशोदा की आकांक्षा करनेवाले, इन्द्र ने जिनका अभिषेक किया था, उस श्रीकृष्ण के बाल्यकाल के समान ही दुर्ग अर्थात् किलों के संयोग से शत्रुओं के मनोरथ को विफल करनेवाले, यशदायी विकास की आकांक्षा करनेवाला राजा श्री महेन्द्रवर्मन द्वारा अभिषिक्त श्री राजेन्द्रवर्मन का बाल्यकाल सुशोभित हुआ ।। 18

सर्वत्र सामान्य की इच्छा रखनेवाले ब्रह्मा जी उस श्रेष्ठ कर्म और सत्व गुण धारण करनेवाले राजेन्द्रवर्मन में विशेष की इच्छा करते हुए समवायवृत्ति से उसके शरीर को सभी उत्तम लक्षणों को धारण करा दिया था ।। 19

जैसे सूर्य अपने किरणों के विस्तार से अन्य सभी तेजस्वियों के तेज निष्प्रभ कर देता है, उसी प्रकार अपने शरीर सौन्दर्य रूप सूर्य के किरणों के विस्तार से संसार के अन्य सभी सौन्दर्यशालियों को निष्प्रभ कर देनेवाला कामदेव इसके सौन्दर्य सागर को अपार देखकर डूब जाने के भय से ही मानो मकर वाहन किया है ।। 20

अज्ञानान्धकार नाश करनेवाली विद्यारूपी पूर्ण चन्द्र को पाकर, विद्याओं के चारों ओर फैले प्रकाश में अतिशय पैठ के कारण, विद्यारूपी चन्द्रमण्डल से छलके हुए अमृत रस से भीगी अपनी रचनाओं के रस को सभी विद्वान् रसिकों को पिलाया ।। 21

जिसके अस्त्र-शिक्षण का फैलता हुआ यश लोगों के कान और मन को सुख पहुँचाया । कर्ण के अस्त्र ज्ञान के कारण अर्जुन की जो बहुत निन्दा हुई थी वह आज भी बाद में सुनी जाती है और इसकी अस्त्र-शिक्षा के कारण हुई अर्जुन की निन्दा पहले सुनी जाती है क्योंकि इसकी अस्त्र-शिक्षा कर्ण की अस्त्र-शिक्षा से श्रेष्ठतर है ।। 22

जिसकी तलवार के एक हल्के प्रहार से मोटा लोहे का डण्डा तीन टुकड़ा हो गया उसकी तलवार के बार-बार शत्रुओं के मांस से बने शरीर पर प्रहार के विषय में क्या कहा जाये ? ।। 23

जिसके मन्त्र की शक्ति से शत्रुओं का वज्रोपम आयुध नीलकमल के दल के समान कोमल और तीक्ष्णतारहित हो गये फिर उनके कोमल शरीर के विषय में क्या कहा जाये ? ।। 24

जो विद्वान् होते हुए भी धनुर्वेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ था, धनुष की डोरी के शब्द से दिशाओं का भर दिया था । उसके द्वारा धनुष के प्रयोग के समय उत्पन्न टंकार ने क्या नहीं किया ? ।। 25

बाल्यकाल में ही जिसने सभी कलाओं को निर्दोष रूप में पा लिया था

उसकी बराबरी पाने को उत्सुक चन्द्रमा बराबरी न पा सकने के कारण, आज भी कलाओं से पूर्ण होता है परन्तु तब तक वृद्ध भी हो चुका होता है, अतः पुनः बाल भाव को प्राप्त हो जाता है परन्तु आज तक अपने बाल्य भाव में सम्पूर्ण कलाओं को नहीं ही पा सका है ।। 26

सुकुमार बाल्यावस्था में ही जिसका राज्याभिषेक हुआ है तथा जो ताड़कासुर के समान तेजस्वी नाश करने की शक्ति रखता है वह सभी दिशाओं में कम्बुज सेना को उसी प्रकार ले गया जैसे देव सेना को कार्तिकेय ।। 27

मदमत्त बड़े-बड़े हाथियों से सजी जिसकी सेना की रणयात्रा से बड़े-बड़े राजा भी उसी प्रकार भयभीत हो उठते थे जैसे इन्द्र से बड़े-बड़े पर्वतराज भी डर जाते थे तथा जो ब्राह्मणों के अनुष्ठानों या ब्रह्मा के विधान से ही चारों ओर से सुरक्षित था उसने क्रोध से शत्रु नगरी को जलाकर भस्म कर दिया ।। 28

धनुष-बाण धारण कर शत्रु शरीर यष्टि को छिन्न-भिन्नकर तलवार धारण कर शत्रु सिरों को काटकर तथा गदा धारण कर शत्रु गजों के मस्तकों को पीसकर जिसने अस्त्रचालन का कठिन और अमानवीय प्रदर्शन किया ।। 29

जिस अद्वितीय वीर ने इन्द्र के द्वारा रक्षित पूर्व दिशा को जीतकर दक्षिण दिशा के लोगों को पराजित किया, साथ ही पश्चिम और उत्तर के लोगों को भी हराया, उसने केवल एक इन्द्र को ही राजसूय के लिए नहीं हराया ।। 30

आसमुद्रान्त सारी पृथिवी को जीतकर कम अवस्था के होते हुए भी युवक राजाओं को हराकर निश्चय ही जिस यशस्वी ने कम्बुजपुरी का संयोग जयलक्ष्मी से किया ।। 31

रणसागर से उत्पन्न विजयामृत से सिक्त जिसका यश कौस्तुभ मणि जो मूर्त रूप में विष्णु के हृदय को आनन्द देता था, एक साथ ही तीनों काम करता था– यश का प्रकाशन, त्रैलोक्याह्लादन और विष्णु को प्रसन्नता दान ।। 32

अपनी कलाओं से तीनों लोकों को आनन्दित करते हुए, क्रमशः बढ़ते हुए तथा बालपन को छोड़ते हुए जो साक्षात् चन्द्रमा ही हो रहा था, फिर भी बार-बार के कला क्षय को नहीं प्राप्त हुआ ।। 33

जिस प्राड्विवाक द्वारा, यहीं ठहरो, यह आज्ञा पायी हुई आदर

करनेवाली राजलक्ष्मी से मिलने की आकांक्षा से बचपन के चिह्नों को छोड़कर नवीन यौवन प्राप्त किया गया ।। 34

दूसरे राजाओं की शोभा से बहुत अधिक सुन्दरता जिसमें बचपन में ही देखी गयी थी, उसके युवावस्था में उसी सौन्दर्य को अतिशयित करने के लिए ब्रह्मा ने बहुत यत्न किया ।। 35

दिक्पालों के विजय के समय जिस जीत से धनी हुए को (विपुल विजयवाले को) जयलक्ष्मी द्वारा आलिंगन करते देख ईर्ष्यावश, गुरुजनों के वचनों से निश्चित की गयी तथा कुल परम्परा से प्राप्त (योग्य) कम्बुज राजलक्ष्मी ने आलिंगन किया ।। 36

जिसके गज सेनाभियान के होते ही राजा लोग जल्दी से दूसरे राज्यों में भाग गये अथवा युद्धभूमि जाने पर पकड़े गये, ऐसे छः शत्रु राजाओं द्वारा जैसे प्रसिद्ध काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य– छः शत्रुओं की इन मूर्तियों के द्वारा राज्य और लक्ष्मी को धारण कर मानो अतत्पुरुष समास द्वन्द्व का जिसने प्रयोग किया अथवा वे सभी छः उन राज्यलक्ष्मियों के पुरुष न थे– ऐसा प्रमाणित किया ।। 37

राज्याभिषेक विधियों के अंतर्गत जिसके शरीर पर अभिषिक्त तीर्थों का जल जितनी देर में सूखा उतनी ही देर में शत्रु नारियों के होठों में लगा रंग भी सूख गया (उड़ गया)।। 38

शिवजी के माथे का अलंकार बने नव चन्द्रबिम्ब को देखकर ही मानो ईर्ष्या से नव सूर्यबिम्ब जिसके मुकुट का मणि बनकर शिवजी के चूड़ामणि का सौन्दर्य पा लिया ।। 39

सारी पृथिवी के भार को धारण करनेवाले सर्पराज ने अपने सहस्रों फणों पर चमकनेवाले रत्नों को निकालकर जिसके स्वर्णाभूषणों में निश्चय ही भार कम होने की खुशी से ही गाँथ दिया है ।। 40

देखने की इच्छा से व्याकुल स्त्रियों के निमेष रूप राहु के द्वारा ग्रसित किये गये अंगकान्ति रूप चन्द्रमा को देखकर विष्णु के चक्र के क्रोध की तरह जिस लाल आँखोंवाले का रूप सौन्दर्य, देखने की इच्छा रखनेवालों ने देखा ।। 41

तीनों लोकों के कल्याण के लिए जिसके शासन में आरूढ़ होने पर कश्यप की पुत्री पृथिवी, जो अदिति को अतिशय प्रेमास्पद हुई थी तथा इस मन्वन्तर में इन्द्र जैसे रक्षक की थी, इन्द्रादि की सम्पत्ति में सम्मिलित न हुई ।। 42

जिस राजा को सिंहासन स्थित देखकर पुलकित पृथिवी अतिशय सौन्दर्य को धारणकर (सुसज्जित हो) जिसके साथ स्वयं ही सिंहासन पर आ बैठने पर ऐसा लगता था मानो राम से सौन्दर्यशालिनी सीता को राजा होते हुए भी इसने चुरा लिया है ।। 43

रत्नों से सुसज्जित जिसके विस्तृत सुवर्ण दण्ड को तथा संसार में एक ही था, ऐसे शुभ्र चाँदी के छत्र को लोगों ने सोने के मेरु पर्वत और उसके ऊपर आये सम्पूर्ण चन्द्रबिम्ब का सज्जनों की भक्तिरूपी जल में पड़ा प्रतिबिम्ब ही माना ।। 44

निर्विकार स्वभाववाली धरती में भी यह विकार देखा गया कि उस राजा के चरणों में झुके शत्रु राजाओं के मुकुटमणियों से पृथिवी सोने की बनी सी और रत्नों से भरी सी दिखलाई पड़ने लगी ।। 45

राजाओं के तेजोद्दीप्त मस्तकों पर जिसकी तेजोमयी, आनन्ददायिनी और ज्वलनशील (कठोर) आज्ञाएँ थीं, वह आग, सूर्य और चन्द्रमा के एकत्रित समूह के समान ही लोकों में सुना गया ।। 46

दूसरे राजाओं को जो राज्यसुख भोग विवेकहीन पागल बना देता था, वही उसे शान्त अर्थात् निर्कांक्ष कर देता था; क्योंकि वृष्टि का जल नदी में बाढ़ ला देता है, समुद्र में नहीं ।। 47

पृथिवी पहले राजन्वती कहलाती थी, परन्तु संस्कृत व्याकरण नियम के अनुसार पदों में निपात (नाश) पूर्व के वर्णों के होने के कारण राजन्वती से राजाओं का नाश कर तथा वृद्धि पीछे (पद के पीछे) होने के नियम के अनुसार अपने शासन के द्वारा धराधर शब्द को सिद्ध किया । अर्थात् राजाओं का नाश कर अपना शासन स्थापित कर धराधर पद में धारण करनेवाले अर्थात् अपने में वृद्धि की ।। 48

पृथिवी पर अपने कुल के सिलसिले से भी और भावी राजाओं से

प्रकाशित राजविद्या को पाकर जिसने विशेष प्रकाशित किया दोपहर को जैसे अन्धकार को सूर्य की किरण दूर कर देती है ।। 49

पहले एक ही कन्या (लक्ष्मी) से विवाह कर जो स्वर्ग में परमेश्वर हुए, परन्तु पृथिवीश्वर नहीं हुए, वही बाद में पृथिवी पर पृथिवीपति होकर अधिक लक्ष्मी से विवाह करने की इच्छा से सौ कन्याओं से विवाह कर स्वर्ग से पृथिवी अधिक है, यह सिद्ध किया ।। 50

राम को भ्रान्तिवश टूटा हुआ और कोमल धनुषवाला तथा राज्य से हटा गया समझकर शत्रुओं ने उनकी लक्ष्मी जानकी को चुरा ली थी परन्तु इस मज़बूत और बिना टूटे धनुषवाले और राज्य में दृढ़ स्थितिवाले की लक्ष्मी को न चुरा सके ।। 51

मानो सभी युवकों को नीचा दिखाने के लिए ही जिस युवक ने नवयौवन धारण करते हुए नवयुवतियों के मन में कामेच्छा देकर भी अपने मन को शान्ति दी ।। 52

जिसकी युवावस्था की बढ़ती हुई सुन्दरता समयरूपी चन्द्रमा के बढ़ने के साथ ऊँचे-ऊँचे उठते समुद्र की लहरों के समान जैसे-जैसे बढ़ती गयी, वैसे-वैसे गुणरत्नों का ढेर दिखता गया ।। 53

इन्द्र के वैभव से भी अधिक वैभव से घिरी, अनेक देवताओं से भरी हुई के समान, अनेक विद्वानों से भरी हुई स्वर्ग में सजनेवाली धर्मचर्चा की सभा सुधर्मा की तरह ही पृथिवी पर जिसकी भरी हुई राजसभा थी ।। 54

धर्म, अर्थ और काम का सार्थक संयोग कर एकनिष्ठ हो महान् फलवाले एक वर्ग की तरह एक किये हुए त्रिवर्ग का जिसने सेवन किया ।। 55

तीनों कालों की जानकारी रखनेवाले शिव विष्णु का जो साक्षात् नरेन्द्र रूप था, फिर भी रहस्य जानने में चतुर गुप्तचरों को अपनी आँख बनाकर सूर्य की तरह सभी दिशाओं में फैला रखा था ।। 56

इधर-उधर फैले तथा दूसरों से अधिकृत गुण भी जिस गुणरत्न समुद्र के पास गाम्भीर्य के कारण स्वयमेव चले आये, वैसे ही जैसे सभी जलचर प्राणी जल के एकमेव पात्र समुद्र के गाम्भीर्य के कारण उसके पास पहुँच जाते हैं ।। 57

जो वृद्ध वाक्य, उपमा, अनुमान, अर्थापति, उपलब्धि, प्राक् और प्रध्वंसाभाव– इन छः प्रमाणों से, कर्तव्य, सत्, असत् तथा अन्य सब जानने योग्य को जानकर ही कार्य करता था ।। 58

स्वच्छ जल की दीर्घिका के समान सभी दिशाओं में स्थित समुद्रवाली, दिक् कुञ्जरों से खेलनेवाली, विकसित कमल के समान नेत्रवाली, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली, दिशा रूप लक्ष्मी मानो साक्षात् शरद ऋतु का रूप धर जिसकी सेवा करते हैं । शरद के आने पर तालाबों का जल स्वच्छ हो जाता है, हाथियों का संचार बढ़ जाता है, कमल खिल उठते हैं तथा चन्द्रमा पूर्ण शोभाशाली हो जाता इन सभी लक्षणों से युक्त दिशाएँ जिसकी सेवा में लगी अर्थात् ऐसी सभी दिशाओं पर जिसका अधिकार हो गया ।। 59

धर्म के द्वारा देवताओं (अथवा विद्वानों) का मनोरथ सिद्ध करनेवाला, शत्रुओं का मनोरथ नष्ट करनेवाला, विद्याधन से धनी, उसका उद्योग, विजय से उसी प्रकार संयुक्त था जैसे गौरी से शंकर ।। 60

कमलों के विकास में जिसकी किरणें लगी रहती हैं, फिर भी वह सूर्य युक्तिपूर्वक रात्रि के अन्धकार को हटाकर संसार की समृद्धि के लिए घोड़े के रथ पर सवार हो उपासकों की मंत्रस्तुति करता है उसी प्रकार पद्मोदय में शक्ति को लगाये रखने पर भी युक्ति से अपराध के अवसरों को (दोषों को) दूर कर संसार की समृद्धि के लिए इन्द्रियरूपी अश्वों का नियमन कर मन्त्रियों से उत्तम मन्त्रणा को जो स्वीकार करता था ।। 61

समुद्र गम्भीर गतिवाले होते हैं, उनकी संख्या चार हैं जो दिशाओं में फैले होते हैं, पर्वतों को भी डुबानेवाले होते हैं, अपनी लहरों के फैलाव से कालिमा बढ़ानेवाले होते हैं, लक्ष्मी की जन्मभूमि हैं तथा पृथिवी को रत्नों से भरनेवाले होते हैं उसी तरह जो राजा चार की संख्यावाली चतुरंगिणी सेना सभी दिशाओं में फैली है, राजाओं को नाश करनेवाली, रणाभियान में धूल उड़ाकर अंधेरा फैला देनेवाली, जयलक्ष्मी को जन्म देनेवाली तथा रत्नों से राजकोष को भरनेवाली सेना से युक्त होकर समुद्र की समतुल्यता पाने का चतुर उपाय करने पर भी समतुल्यता न पा सका क्योंकि समुद्र जड़ जल का समूह है और यह चेतन है ।। 62

जिसके मेघ के समान गम्भीर वाणी से रणयात्रा का आदेश सुनकर चारों दिशाओं से सेना उसी प्रकार बढ़ चली जैसे तुरन्त हुई वर्षा के कारण नदियाँ उफनाकर बढ़ आती हैं ।। 63

कालक्रम से शरद ऋतु के बीत जाने पर दिशा मण्डली में अपने स्थान को पायी हुई हेमन्त लक्ष्मी जिस योग्य को निकट से अभिषेक करने के लिए अथर्ववेद में बतायी गयी सिद्धि की तरह ही हुई ।। 64

सोने के समान रंगवाले सुन्दर ध्वनिवाले पुरोहितों द्वारा दिये गये (छींटे गये) हवनीय द्रव्य को ग्रहण करनेवाले, गोल घूमते हुई लपटोंवाली अग्नि और सुन्दर रंगवाले, छत के आँगन में फैलाये गये अन्न को ग्रहण करनेवाले शिखा जिनको है, ऐसे मोर जिसके जयकार को उच्च शब्द से करते थे ।। 65

पहले क्षीणता को प्राप्त हुई पुनः अमृतधार से वृद्धि को प्राप्त हुई शोभा को धारण करनेवाला चन्द्रमा एक सूर्यबिम्ब के द्वारा ही वृद्धि को प्राप्त कर लेता है परन्तु यह चन्द्रमारूपी राजा सौ सूर्यबिम्ब की तरह सौ स्वर्णकलश से प्रति पुष्य नक्षत्र में अभिषिक्त हो ऐसी वृद्धि को पाया है कि जो क्षीणता और अभाग्य से रहित है, वास्तव में यह चन्द्रमा बड़ा भाग्यशाली है ।। 66

बिना आभूषणों के ही निःसर्गतः जो पहले से ही श्रेष्ठ सुन्दर था सभी आभूषणों को धारण कर और भी सुन्दर हुआ था– यह किसी को भी सौन्दर्य-प्रशस्ति को पोछने के लिए पर्याप्त था ।। 67

जिसके अंगकान्ति की सत्य उपमा होने के लिए आइने के तल में बैठा सूक्ष्म प्रतिबिम्ब बना काम का सौन्दर्य असमान सामर्थ्य के होने के कारण मिथ्योपमा हो गया, क्योंकि बिम्ब सत्य होता है और प्रतिबिम्ब मिथ्या एवं स्वसामर्थ्यहीन होता है ।। 68

सम्पूर्ण पृथिवी को लाँघ जाने में (जीतने में) जिसने त्रिविक्रम भगवान् विष्णु के समान विक्रम दिखाया, परन्तु पृथिवी पर बताये गये धर्माचाररूपी अर्गला का उल्लंघन नहीं किया ।। 69

इन्द्रियरूपी सात घोड़ों के रथ पर सवार उदयाद्रि के समान दयाद्रि से यात्रा आरम्भ करनेवाला जो नया सूर्य चमक रहा था, वह दिशाओं में फैले

अन्धकाररूप शत्रुओं के लिए भयकारक था ।। 70

रणयात्रा के प्रारम्भ में निष्पाप श्रेष्ठ ब्राह्मणमण्डली से स्पष्ट उच्चरित आशीर्वचनरूप किरणों से संयुक्त हुआ जों चन्द्रमा के समान सुशोभित हुआ ।। 71

शत्रु को जीतने की इच्छा से हाथी-घोड़ों से भरी सेना के पीछे चलते हुए जिसने भाग्य और शक्ति के एकत्रित योग का दृश्य उपस्थित किया था ।। 72

आक्रमण के क्रम में जो पृथु की लक्ष्मी के लिए ब्रह्मलोक को भी नष्ट कर दिये रहा उसे देखकर ही मानो जल्दी स्वर्ग की (विष्णुलोक) धन सम्पदा को लाने के लिए ही धरती पृथिवी सैनिकों के पैरों से मर्दित हो धूल का रूप ले उड़कर विष्णुपद अर्थात् आकाश में पहुँच गयी ।। 73

शत्रुसेना में समान व्यूहबद्धता होने पर भी जिसकी (उसकी) सेना ही शक्तिशाली दिख रही थी क्योंकि स्फटिक मणि, पद्मराग मणि के प्रतिबिम्ब से युक्त होने पर गाढ़े लाल रंग का दिखलाई तो पड़ता है परन्तु पद्मराग की कान्ति उसमें नहीं आ पाती है ।। 74

जिस पृथिवी जीतने की इच्छा रखनेवाले के धनुष से वर्षा की तरह छूटे बाण गम्भीर स्वर से गरजते हैं, उसके दूर की रत्न प्रभु पृथिवी भी निकट हो जाती (अर्थात शत्रुओं की भूमि भी अपनी हो जाती है) जैसे मेघ घिर जाने पर दूर की भूमि भी निकट दिखलाई पड़ने लगती है ।। 75

ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न, बाहुबल से अर्जित की गयी जिसे प्राप्त करने से शत्रुओं ने रोका है, क्षत्रियों से संबंधित पृथिवी को दूसरों के बाहुबल से युद्ध में अप्राप्य होने को देख जानकर जिसने दूसरे ही रास्ते से उसे अधिकृत किया ।। 76

युद्ध में मारे गये शत्रु रक्तरूप नव किसलय की उत्पत्ति से सुसज्जित रणभूमि में जिसकी शौर्यवृद्धि ने पूर्ण बसन्त सम्प्राप्ति के द्वारा काम की शक्ति वृद्धि करने की तरह अस्त्र शिक्षा (ज्ञान) की वृद्धि की ।। 77

सन्ध्या की पीली लाल आभा से रंगे पर्वतों के समान सिन्दूर से चित्रित शत्रुओं के हाथियों के मस्तकों से जिस तेजस्वी के हाथ की तलवार की मार से मोतीरूपी तारागणों की पंक्ति झड़ी थी या तलवार की मार ने मोतीरूपी तारागणों की पंक्तियाँ गिरायी थीं ।। 78

जिसने शत्रुओं को शीघ्र मार गिराने के लिए स्वर्गीय पेय के लाल रंग (रक्त) को तथा श्रेष्ठ बाणों के प्रवाह रूप मोतियों की लड़ियाँ फैलाया था, उससे रणभूमि प्राप्त हुई जयलक्ष्मी सुन्दर वस्त्र के समान सुशोभित हुई ।। 79

मारे गये अतिशय वीर शत्रुओं के शरीर यष्टियों को पिरोकर उछालती हुई दिशाएँ नाचती हुई जिसकी सेना, ताड़कासुर के शरीर को मारकर दिशाओं में नाचती हुई स्कन्द कार्तिकेय की सेना की तरह देवताओं के द्वारा क्रोध (द्वेष) से नहीं प्रेम से देखा गया ।। 80

सप्तद्वीपोंवाली सम्पूर्ण पृथिवी का एकमात्र दीपक (प्रकाशक) बनने की इच्छा वाले का उज्ज्वल धारवाले तलवार पर युद्ध में मारे गये शत्रुओं के रक्त से लालिमा विराज रही थी मानो प्रज्वलित कीर्ति से निकलती हुई लौ हो ।। 81

रण में गदा के प्रहार से पीस दिये गये शत्रुओं के श्रेष्ठ हाथियों के दाँतों के चूर्ण को रणभूमि में ही प्रेमासक्त हुई शत्रु लक्ष्मियों के केशों में केतकी पुष्प के पराग की तरह जिसने फैलाया था ।। 82

युद्ध में जो तेज अस्त्रों के प्रहार में तेज अस्त्रों के प्रहार से भीष्म को गिरा देनेवाले अर्जुन के समान, शत्रु प्रहार को रोकनेवाले योद्धाओं में सूर्यनन्दन कर्ण का प्रहार रोकनेवाले युधिष्ठिर के समान तथा शत्रु का अन्त कर देनेवालों में युद्ध के अन्त में गदा से चोट खाये दुर्योधन के जंघे पर प्रहार कर अन्त कर देनेवाले भीम की तरह था ।। 83

शत्रुओं द्वारा फेंके गये अस्त्रों के प्रति फेंके गये जिसके अस्त्र समूहों के बादल के कारण हवा रुक जाने से रणांगन की बढ़ी हुई गर्मी से तप्त हुआ जिसने अपने तेज चलते हुए तलवार रूप पंखे से गर्मी दूर की थी ।। 84

हाथ में तलवार धारण करनेवाले जिसने भागे हुए तथा हारे हुए शत्रुओं पर कृपा करके युद्ध छोड़कर गंगा में जा छिपे दुर्योधन पर कृपा न करनेवाले पाण्डवों को भी जीत लिया था ।। 85

गोकुल की रक्षा की इच्छा से अपनी भुजाओं से गोवर्धन को उखाड़कर स्थिर रूप से धारण करनेवाले कृष्ण की तरह ही संसार के कल्याण की इच्छा से जिसने अपनी भुजाओं से सारे राजाओं को उखाड़कर अनेक काल तक अपना दृढ़

शासन कायम रखा ।। 86

शत्रुओं की स्वर्गगत आत्माओं के स्वर्ग से लौटने की भविष्यम्भावी परिस्थिति के भय से जिस तेज तलवार से घात करनेवाले के हाथों से जगह-जगह काटे गये तथा निश्चल किये गये अपने ही शरीर को देखकर प्रेत होने की शंका की जबकि स्वर्गीय सुन्दरी अप्सराओं से घिरी हुई थीं ।। 87

आश्चर्य है कि युवा काल में ही इतना संयमित मन (हृदय) का है कि अपने हृदय को एक बार भी दूसरे की नारी के लिए नहीं दिया इस विपरीत भाव को देखकर शत्रु राजलक्ष्मियाँ रणभूमि में सीधे उसके हृदय में ही प्रविष्ट हो गयीं ।। 88

कामदेव को जला देनेवाले शिवजी के विशाल वक्षस्थल से आलिंगन कर जैसे पार्वती अपने सहज सौभाग्य को प्रकट कर रही थीं, उसी प्रकार जिस विजेता के विशाल वक्षस्थल से आलिंगन कर जयलक्ष्मी अपने सौभाग्य को उदाहृत करती हुई जिस तेज तलवार के धार वाले को भी प्रेमयुक्त बनाया (कोमल हृदय बनाया)।। 89

जिस नवयौवन से अलंकृत शरीरवाले तथा पृथिवी पर की सारी लक्ष्मियों के एकमात्र आश्रय रूप जिस नवयौवन से अलंकृत शरीरवाले को देखकर देवी लक्ष्मी पुरुष पुरातन विष्णु से अपने व्यर्थ पुराने प्रेम की निन्दा की ।। 90

रण में प्राणों की भीख माँगनेवाले अनेक शत्रु वीर पकड़कर छोड़ दिये गये जबकि विष्णु के बल से बाँधा गया बलि राजा को इन्द्र डरपोकों की तरह आज भी नहीं छोड़ता है ।। 91

गजेन्द्र के दोनों दाँतों से ज़ख्मी कन्धेवाले प्रतिघात करने में असमर्थ सिंह की तरह हुआ जो शत्रुओं की शक्ति को शक्ति से नहीं, युक्ति से नाश करनेवाला हुआ ।। 92

जिसके शत्रु राजाओं में सिंह के समान होते हुए भी युद्ध में अस्त्र फेंककर जंगली हाथी से डरे हुए सिंह के समान फिर वन में ही हिरणी के बच्चे की तरह तेजी से भाग निकले ।। 93

जिसके तेज रूप अग्नि की जलन से व्याकुल हो कुछ शत्रु तो समुद्र में डूब गये और कुछ यह सोचकर कि यह अपेक्षाकृत शीतल है, दावाग्नि में प्रवेश कर गये ।। 94

जिसके शत्रु नारियों की शोकरूप अग्नि आँखों से निरन्तर प्रवाहित आँसुओं से भीगे वैधव्य दु:ख से दुखी मन वालियों को गीली लकड़ी की तरह एक-एक बार जलाया ।। 95

हंस उजले छाते के समान शोभा पानेवाले वनैले हाथी, समुद्र तक पालनेवाले, 'राज' शब्द धारण करनेवाले (राजहंस) हंस से हंसराज हुए थे, जिसके वचन से सिंह तो शत्रुओं की पुरी को राजलीला सहित के समान मानो प्रसन्नता बिखरते हैं ।। 96

जिसके प्रताप के तेज से जलकर नष्ट होकर विनाश समुद्र में डूबी शत्रु धरती यद्यपि महावराह के दाँतों के द्वारा समुद्र से निकली हुई थी, परन्तु इसके द्वारा पुन: डुबाये जाने के बाद आज तक नहीं निकली ।। 97

नगाड़े की ध्वनि से भरी हुई दिशाओं में बड़े उच्च स्वर से की गयी जिसकी जयघोषणा की घोर ध्वनि लहरियों की नकल करने के लिए नदीपति सागर आज भी गरज रहा है ।। 98

जिसकी कीर्ति से समुज्वलित उदात्त गीतों के कारण अन्य सभी के यशों का प्रकाश दूर हो जाने पर लज्जा से सम्मिलित हो गाये जाने पर उपगीत ही होकर रह गये ।। 99

अपनी सौत कीर्ति में अपनी चंचलता को छोड़कर जिसको प्रतिरूप में पाकर दूसरे को प्राप्त करने की लज्जा से लक्ष्मी गम्भीर हो गयी थीं मानो जनन सम्बन्ध से समुद्र से गम्भीरता चुरा लायी थीं ।। 100

चंचलता से लक्ष्मी को, दया से आँसू को, शत्रुओं से भय (द्वेष) को तथा मनुष्यों से मरण को दूर करने का उपाय जानने में समर्थ वह राजा दिक्पत्नियों से अपनी कृति को छुड़ाने में समर्थ न था ।। 101

चारों समुद्ररूपी चारों स्तनों से रत्न दुग्ध की धारा प्रवाहित करनेवाली, प्रतिवर्ष प्रसव करनेवाली, वेदपाठी ब्राह्मण ही जिसके बछड़े हैं, ऐसी धरतीरूपी

गाय को जिसने यज्ञ के लिए दूहा ।। 102

श्रद्धाभक्तिरूपिणी, एकान्त भाव से भगवान् विष्णु के चरणों में आश्रय पानेवाली, ब्रह्मदेव के कमण्डल से आगे निकलकर बहती हुई गंगा और यमुना नाम पानेवाली देवनदियों की शोभा के समान प्रतिदिन बढ़ती हुई जिसके यज्ञारम्भ की शोभा थी ।। 103

जिसके यज्ञ में हुत पदार्थों का अनुमान करा देने के लिए अत्यन्त घना होकर धूम दिशारूपी द्वार से आह्वान के मन्त्रों के साथ स्वर्ग गया ।। 104

इन्द्राणी के जिन बालों में इन्द्र की सदा उत्कण्ठा बनी रहती थी उनमें लगा पारिजात पुष्प उतना सुन्दर नहीं हुआ जितना सुन्दर निरन्तर चलनेवाले जिसके यज्ञों में देवताओं द्वारा ऊपर से गिराये गये पारिजात पुष्प थे ।। 105

चारों ओर गोल घूमती हुई लपटोंवाला जिसमें हवन किया जा चुका है ऐसी अग्नि चारों ओर घूमते रहने पर जिस स्थिर की दिशाओं में घूमते हुए यश को नहीं जला सकी ।। 106

मीमांसकों द्वारा वर्णित यज्ञकृत्यों का सुफल स्वर्ग को जिसने अपने दिव्य सुख भोगों के द्वारा प्रत्यक्ष कर यज्ञ विद्या के ज्ञाता तथा वेदवाणी को सत्यापित किया था ।। 107

दिशाओं में विद्यमान नगर, समुद्र, सुमेरु पर्वत, नग वनादि निश्चय ही बेकार के पानी, पत्थर और हाथी के बच्चे के अवशेष हैं– यह सोचकर उसे स्वीकार किया जाये– इस वचन के साथ असंख्य रत्न दिशाओं में दान किया ।। 108

याचकों की बढ़ती हुई संख्या के साथ क्रमशः जिसने दान-प्रवाह को बढ़ाया था, वह मानो स्वर्ग जाने के इच्छुकों के लिए सीढ़ियों का सिलसिला हो गया ।। 109

शौर्यादि गुण समूह भी शायद गुणी का अनुकरण करने के लिए अच्छे-बुरे का विचार कर दुष्टों को छोड़ते हुए तथा अच्छों का आश्रय लेते हुए जिस घमण्ड छोड़े हुए को सुशोभित किया ।। 110

क्योंकि प्राचीन काल में भी मधुकैटभादि प्रबल भयकारक दुष्ट हुए थे अतः जिसने दुष्टरहित कर राष्ट्र का शासन करते हुए कभी नहीं पढ़ा गया योगशास्त्र का अध्ययन किया ।। 111

जिसकी सुन्दरता, गुणसमूह, यश, धैर्य, बुद्धि तथा शक्ति और कृति की विशिष्ट वृद्धि श्रेष्ठ स्तर की होती हुई भी पुनः-पुनः नवीनता और अनन्तता को प्राप्त हुई थी ।। 112

मारे गये शत्रुओं की चर्बियों से दिशाओं में विस्तृत हुए क्षेत्रवाली (अंगवाली) पृथिवी को ढक देने के लिए शत्रुलक्ष्मी के केशपाश में सजे माला के फूल की तरह जिसने अपने यशरूपी फूल को बिखेरा था ।। 113

राजमहल के मध्य में स्थित सुवर्ण रत्न से बने कक्षवाले पारिवारिक घर में स्थित जिस तेजस्वियों में अग्र के अधार्मिकों की पीड़ा से रहित हुए राज्य में निवास करती हुई प्रजा स्वर्ग में निवास करने की तरह ही आनन्दित थी ।। 114

व्याप्त तेजरूपी अग्नि के पास कही गयी जिसकी अभिलक्षित शुभ्र कीर्तिगाथा ऐसी लगती थी मानो सभी कामनाओं को देनेवाली सामधेनी मन्त्र अपना अभिप्राय कहता हो ।। 115

तीनों लोकों को बचाने (रक्षण) के लिए कलिकाल की संहारिणी वेला में लोककल्याण के लिए सब नृत्य दिखाते हुए सब का निर्वाह किया जिसने शिव के ताण्डव नृत्य में चतुरता का ज्ञाता था ।। 116

कलिकाल के कल्लभ से कलुषित त्रिलोकी की रक्षा के लिए शिवजी के ताण्डव नृत्य की दक्षता से युक्त अपने सम्पूर्ण नृत्याभिनय को प्रदर्शित करते हुए भी जिसने पृथिवी की स्थिरता को धारण किया ।। 117

उच्च पद पाने की उत्कट इच्छा रखनेवाले तथा चरणों की शरण से दूर हुए शत्रु राजागण पार्थित्व (रजत्व और राजत्व) इस समान धर्म के होते हुए भी जिसके शत्रु राजागण तो भय से पर्वतों के उच्च शिखरों पर जा बसे तथा चरणों की धूल बड़े-बड़े राजाओं के मस्तकों पर जा बसी ।। 118

लजीली नवेली की तरह शत्रु सेना तो मुँह घुमा ली परन्तु साध्वी से सौतिया ईर्ष्या रखनेवाली केलि रस को जानने वाली प्रौढ़ा दासी की तरह शत्रु

लक्ष्मी रण केलि के समय जिस योद्धा की छाती से आ लगी ।। 119

सज्जनों के पापरहित मन को तथा दुर्जनों के स्वभाव से अति कठोर मलिन मन रूप लोहे को जिसने चुम्बक की तरह आकर्षित किया ।। 120

जिसके युद्धप्रयाण के समय समुद्र में श्वेत पालों से निबद्ध नौका पंक्ति गंगा की लहरों पर फैले हंसों की पंक्ति के समान सुशोभित हुआ ।। 121

समुद्ररूपी सुन्दर साड़ी की लहररूपी आंचल के उठ जाने से प्रकट हुई रत्नराशि ही जिसकी चमकीली कमरधनी की लड़ियाँ हैं तथा विशाल पर्वत ही जिसके विपुल नितम्ब– ऐसी तापहरण मुखवाली पृथिवी को जिसने प्रेमपगी रमणोन्मुख नारी की तरह बनाया ।। 122

तीनों भुवनों में बिखरी जिसकी कीर्ति को.........स्तुति । दुर्बल रहने पर भी तप से गंगा को भगीरथ के समान मानो वहन किया, प्राप्त किया था ।। 123

सभी वर्णों के लोगों को विभिन्न पदों पर स्थापित कर उन्हें अनेक कार्यों से लगानेवाला, दण्ड और पुरस्कार के विकार को समझनेवाला जो स्वयं लाभ–हानि के विकार से उसी प्रकार मुक्त था जैसे विभिन्न वर्णसमूहों से बने पदों में क्रिया पद का योग करनेवाले तथा आगम, लोप और विकार के व्याकरण के नियम को जाननेवाले वैयाकरण स्वयं लोप और आगम के विकार से मुक्त रहते हैं ।। 124

जिस स्तम्भ आदि वालों के लिए.........गमन के योग्य अति अन्न थे । दोष तो थे ही नहीं । खरहे की सींग जैसे नहीं होती है वैसे ही दोष का अभाव था ।। 125

स्थाणु (ठूँठ वृक्ष) में पुरुष की भ्रान्ति जिसके भयाकुल शत्रुओं में होते हुए भी जिसमें स्थाणु (शिवजी) में पुरुष (ब्रह्म) का यथार्थ और समुचित ज्ञान था ।। 126

श्री यशोवर्मन की जन्मभूमि होना, इसी से नीति और पराक्रम– दोनों ले जाता हुआ भूलोक और भुवर्लोक और स्वर्लोकों की लक्ष्मी और शोभा के समान त्रिलोकी लक्ष्मी शोभा के समान धारण किया था । उसके भागी.............. ।। 127

............बलवान् वीर, रूपवान धी है जन जिसका वह धी धन बुद्धि है धन जिसका पण्डित जो था। पाँच पाण्डवों के बीच एक आदेशवाला रूप से मानो यह भी था ।। 128

इन्द्रिय-नियमन में साक्षात् शिवजी की तरह हुआ जिसने अपने हाथ को उसी प्रकार दान संकल्प के जल से सदा भिगोये रखा जैसे अपने पूर्ण काम और निष्काम हुए मन को राक्षस शत्रु भगवान् विष्णु में निरन्तर लगाये रखा था ।। 129

पुनः-पुनः अश्वमेध यज्ञ की क्रिया को मानो किया था। ....आज भी जो दिशाओं में न हरने योग्य यश-रूप अश्व है। अश्वमेध में अश्व छोड़ा जाता है। रोकने पर लड़का हराया जाता है। इनका अश्व मानो यश ही है ऐसा लगता है ।। 130

शत्रुओं के नित्य अज्ञानजनित फलोन्मुख प्रयत्नों को जिसने उसी प्रकार समाप्त किया जैसे कुन्ती के अज्ञानजनित प्रयत्न कर्ण को सहोदर अर्जुन ने समाप्त कर दिया था ।। 131

दर्शकों के मन में जिसके स्थित रहने पर स्त्रियों से अतिशय सुन्दरी कामदेव का मनोजत्व यह नाम निवृत्त........।। 132

शेष के द्वारा सहस्र मुखों से जिसके बड़े गुण समूह को गाये जाते समय स्मृति में रुके अतिरिक्त गुणों का श्रवण साम गान की तरह शान्ति प्रदान करता है ।। 133

यश की कामना से जिसकी बाणरूपी खड़िया ने वीर शत्रुओं (अथवा श्रेष्ठ नारियों) के हृदय पर सुन्दर कीर्ति गाथा के मनोरम अक्षरों को लिखा ।। 134

जो चौदह प्रकारों की विद्याओं से...........ब्रह्मा के समान मन्वस्थाओं से भुवन की स्थिति को धारण किया था ।। 135

जिस सार्वभौम सम्राट् के राज्याभिषेक के जल का अधिकांश भूमि में सूख जाने पर भी जो थोड़ा बचा था वही सम्पूर्ण पृथिवी के ताप (दुःख) को शान्त किया ।। 136

जिसके दो चरणों का रत्नसिंहासन पर रखना ही राजाओं के मस्तकों पर

भार तो जो............।। 137

चाँदी का (शुभ्र) स्थिर एक छत्र जिसके मस्तक पर विराजित था। उसके मुख की उपमा के योग्य पूर्ण चन्द्रमण्डल भी अस्थिर होने के कारण नहीं हो सका।। 138

शिवजी के आधे शरीर में गौरी पार्वती को समाविष्ट देखकर ईर्ष्यावश, 'मैं भी अति ईश्वरी हो जाऊँगी'– इस इच्छा से रमणीय अंगोंवाली लक्ष्मी जिसको आलिंगन कर ली थी।। 139

जिसकी प्रकृति उजली.........रंगी हुई तो भी अतिशय विदित वर्णसंकरों से वर्जित थी।। 140

अग्नि और अग्नितुल्य पुरोहित को आगे करके उनके पीछे तीसरे अग्नि की तरह जो पुण्यशील सभा में प्रवेश किया।। 141

जो सम्पूर्ण पृथिवी का एकमात्र स्वामी होते हुए भी हल्की दण्ड-व्यवस्था से प्रजा का सम्यक् शासन कर रहा था, वह मानो यातनापूर्ण दण्ड-व्यवस्था से शासन करनेवाले यम धर्मराज का उल्टा था।। 142

कलि के दोषों से एक चरणवाला धर्म कलि के द्वारा लंगड़ा किया गया (विकलांग किया गया)। राजा अट्ठारहों पदों का ज्ञाता है। उसके द्वारा एक पद बनाया गया। धर्म के अट्ठारह पदों के ज्ञाता जिस राजा द्वारा धर्म के अट्ठारह चरण कर दिये गये थे।। 143

दैनिक कर्तव्यों को पूरा करके रात्रि में भी प्रयत्नवान् अपने प्रयत्नों में निरालस्य वह रात्रि में भी रात्रि (या दोषों) से मुक्त था।। 144

रणाभियान के काल इन्द्रचाप से हीन शरद ऋतु को भी जिसने चरणों में झुके राजाओं के मुकुट में लगे लाल रंगों की चमक से इन्द्रचापयुक्त बना दिया।। 145

सभी दिशाओं को जीतने की यात्रा में जिसने अपनी सेना द्वारा उड़ायी गयी धूल से धुंधलका फैला दिया था, उसका यद्यपि केवल सत्त्व (बल से) प्रकट हो रहा था, फिर भी युद्ध में उसके द्वारा रज (धूल) के द्वारा तम (अन्धकार)

उत्पन्न कर दिया गया था ।। 146

प्रलय काल में इसने ही मुझे सताया (तपाया) है इसी क्रोध से मानो जिसके रणाभियान के समय मंगल कर सृष्टि के लिए (जयलक्ष्मी की प्राप्ति के लिए) धूल बनकर सूर्य को ढँक दिया था ।। 147

तेजस्विता में समान होने पर भी अग्नि ने युद्ध में प्रज्वलित अग्नि-रूप जिस राज के जयघोष से जूठे हुए अपने धूमरूपी ध्वज को धारण किया ।। 148

शरद ऋतु में भी वर्षा काल में आयी बाढ़ के समान उफनाती हुई जिसकी सेना बाढ़ के रास्ते को रोकनेवाले बड़े-बड़े पर्वतों के समान सेना के मार्ग को रोकनेवाले बड़े-बड़े राजाओं को भी खेल-खेल में ही तोड़ दी थी ।। 149

जैसे गरुड़ अमृत पाने के लिए विष्णु के चक्र से रक्षित महेन्द्र की नगरी अमरावती में प्रवेश कर गया था, उसी प्रकार जो विजयरूपी अमृत को पाने के लिए शत्रु के चक्रव्यूह को भेदकर अन्दर प्रवेश कर गया था ।। 150

युद्धरूपी क्षीरसागर के मन्थन से प्राप्त रत्नरूप यश को निःस्वार्थ भाव से तीनों लोकों में उस जयलक्ष्मी को धारण करनेवाले ने बिखेर दिया था ।। 151

नक्षत्रों (तारागणों) का विनाश कर तथा चन्द्रमा को अपने तेज से जीतकर आकाश में उदय होनेवाले सूर्य की तरह ही जो शत्रु सैनिकों का नाश कर सेना के स्वामी शत्रु राजाओं को अपने तेज से जीतकर रणभूमिरूपी आकाश में आरूढ़ हुआ सूर्योदय के समान सुशोभित हुआ ।। 152

भयंकर ध्वनि करता हुआ धनुषवाला जो स्वयं धनुर्वेद की तरह ही था तथा जिसने साक्षात् धनुर्वेद शिक्षा की तरह ही धनुष चालन का सौष्ठव प्रदर्शित किया था ।। 152

रणभूमि में धनुष के टंकार रूप गुंजार के साथ जिसके धनुष से उड़े बाणरूपी भ्रमर शत्रु मुखकमल के रक्त-रस का पान किया ।। 153

जिसकी रक्त से लथपथ हुई लाल तलवार रूपी लता काटे गये शत्रुओं की भुजाओं से उसी प्रकार गुँथी हुई थी जिस प्रकार नागयज्ञ की अग्निज्वाला करोड़ों गिरते हुए नागों से संयुक्त हुई थी ।। 154

जिसकी तलवार को शरीर पर गिरते देख जिसके शत्रु अन्त काल आया समझ तलवार और शरीर के संगम को गंगा-यमुना का संगम मान डूब जाते थे ।। 155

बहुत हानि पहुँचानेवाले, शत्रुरूपी पर्वतों के बढ़ते हुए तथा शक्तिशाली होते हुए पंखों को (अथवा समर्थकों को) जिसने अपनी वज्र भुजा से उसी प्रकार नष्ट कर दिया जैसे इन्द्र ने वज्र से पर्वतों के पंख काट डाले थे ।। 156

युद्ध करने में अद्वितीय वीर तथा सभी न्यायों में दक्ष होते हुए भी लड़ाई में सिंहावलोकन अर्थात् पीछे मुड़कर देखने का त्यागकर उसने अन्याय की तरह ही किया ।। 157

चमकते हुए तलवार से जिसके द्वारा रण में तेजी से काटे गये शत्रु सिर स्वर्ग जाती हुई अपनी आत्मा का पीछा करता हुआ ऊपर तक उछला था ।। 158

शत्रुओं के चमकते हुए अस्त्रों के घेरे की चमक से जो उसी प्रकार अधिक चमकीला हो रहा था जैसे स्वभाव से चमकीला सुमेरु पर्वत उसमें चारों ओर वर्तमान रत्नों की चमक से और भी चमकीला हो जाता है ।। 159

तलवार की धार में भी जिसके द्वारा स्थिर रूप में स्थापित की गयी जयलक्ष्मी अनेक कामनाओं की पूर्ति करती हुई प्रजा के सुखों की वृद्धि की थी ।। 160

जिसकी विजयकीर्ति मानो इन्द्रजित मेघनाथ द्वारा म्लान की गयी इन्द्र की कीर्ति को पुनः लौटाने के लिए पृथिवी को व्याप्त करती हुई स्वर्ग तक पहुँच गयी थी ।। 161

जिसके द्वारा मारे गये शत्रुओं के बड़े-बड़े मस्तकवाले हाथी इस प्रकार बिखरे पड़े थे मानो शत्रुओं की राजलक्ष्मियों की फूलमालाओं के बीच चमकीले मोती गुँथे केशपाश को उसने तलवाररूपी नीलकमल से बिखरा दिये हों ।। 162

संसार के सारे पदार्थों में अनित्यता का संस्कार है, इस रहस्य को जानते हुए ही उसने अपने पराक्रम के संसार से नित्य हुए यश को ही धारण किया ।। 163

पुरुष के समान ढीठ नारी रणक्रिया (युद्ध) एकमात्र इससे ही लक्ष्मी का संयोग उसी प्रकार करा दी थी ठीक जैसे सुनन्दा ने अज के साथ इन्दुमति का संयोग करा दिया था ।। 164

निश्चय ही ब्रह्मा जी ने उसे तीनों लोकों के दुखों को दूर करने में समर्थ पाकर ही काम के अविनश्वर देह-सौन्दर्य को प्रसन्नतापूर्वक उसी के पास पहुँचा दिया था ।। 165

ज्ञान की इच्छावाली के समान जिसकी कीर्ति की गति तीनों लोकों में आदर को आज भी हाथ पसारकर यात्रा करती है............।। 166

अपनी चन्द्रमा की कला की हानि को कला के पतन की तरह जानकर शिवजी ने कलाओं को ले जाकर वहीं पहुँचा दिया था जहाँ पृथिवी सरस्वती और लक्ष्मी थी– अर्थात् उसी राजा के पास पहुँचा दिया जिसके पास सम्पूर्ण पृथिवी सरस्वती सी बुद्धि और लक्ष्मी थी ।। 167

शत्रुओं के बड़े-बड़े हाथियों के दाँतों के उजले प्रकाश से प्रकाशित करोड़ों दीपकों से सजे रणरूपी रात्रि में उसने जयलक्ष्मी को भोगा ।। 168

नींद त्यागकर प्रजा की वृद्धि में जिसका शासन घूमता है, मानो विष्णु के स्मरण से......विश्व के संहार करनेवाले के...........।। 169

रणयज्ञ के लिए दीक्षा पाये उसने सूर्यमण्डल को भेद अविनाशी मुक्ति पद को पाकर भी जयलक्ष्मी रूप प्रिया को पाया (जयलक्ष्मी रूप प्रिया से अनुरक्त हुआ)।। 170

पाण्डव भीम ने पद्मफूल की इच्छा से घने वनों और पर्वतों को लाँघकर कुबेर के राज्य को और उसकी राजधानी अलकापुरी को ध्वस्त कर दिया था उसी प्रकार इस भीम अर्थात् शत्रुओं को भयकारक ने जयलक्ष्मी की इच्छा से शत्रु समूह के घेरे को लाँघकर दिशाओं में फैले उनके राज्य तथा उनकी राजधानियों को ध्वस्त कर दिया ।। 171

जिसकी कीर्ति आज भी नहीं नष्ट होती । मानो मन्दराचल में सही अमृत की बूँद से मिली-जुली हो ऐसा लगता है ।। 172

जिसने आमने-सामने के युद्ध में श्रेष्ठ शत्रुओं का भी सिर काट दिया था उसके यश कके गीत स्वर्ग के अलंकार रूप अप्सराएँ गाएँ ।। 173

कहते हैं हिमालय देवताओं का निवास स्थल है । परन्तु बात ऐसी नहीं है । सत्य यह है कि जिसके यशसागर को तैरकर पार जाते हुए थके देवगण उस राकार्णव के तट रूप हिमालय के शिखर पर देवगण थकावट दूर करते हैं निवास नहीं ।। 174

..........बँधे कमलरूप धन शत्रुरूप अन्धकार को दूर करनेवाली जिसकी आज्ञा राजाओं के सिर पर मानो सूर्य की किरण के समान सोहती थी ।। 175

श्रीधर भगवान् विष्णु ने क्षीरसागर के हृदयकमल में स्थित लक्ष्मी का हरण कर लिया, किन्तु जिसके द्वारा रण में दिशाओं के मुखकमल में यशलक्ष्मी स्थापित की गयी ।। 176

आँख के कमल की छवि, हाथ में पृथिवी, हृदय पर लक्ष्मी को धारण करनेवाले जो भी भू.......परम ईश्वर था ।। 177

शत्रु राजाओं के मथन (विनाश) के द्वारा प्राप्त रत्नाभूषणों से जिसका वक्षस्थल उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार भगवान् विष्णु का वक्षस्थल समुद्रमंथन से प्राप्त लक्ष्मी का विहार स्थल बना- सुशोभित था ।। 178

तेजस्वियों श्रेष्ठ सूर्य के समान अनेक प्रकार के मण्डलों से युक्त तथा उन्नति को प्राप्त (ऊँचाई को प्राप्त) होते हुए भी जिसने पर्वतराज सुमेरु की महिमा अनुल्लंघ्यत्व मात्र का ही उल्लंघन नहीं किया ।। 179

दुर्योधन के शत्रु को ले जाकर भंग.........शत्रुरूप कंटक से रहित होकर जिस धर्मराज युधिष्ठिर ने जयलक्ष्मी का अनुपालन किया था ।। 180

युद्धरूपी क्षीरसागर के मथन से प्राप्त रत्नरूप यश को निःस्वार्थ भाव से तीनों लोकों में उस जयलक्ष्मी धारण करनेवाले ने बिखेर दिया था ।। 181

जो त्रिभुवन को प्रिय लगनेवाली प्रायः चलते हुए चन्द्र और सूर्य के समान नेत्रोंवाली.........पिलाया था ।। 182

क्रूर शत्रु भी जब शरण में आ जाते हैं, तब उन पर जिसकी कृपा प्रसिद्ध है उसके चरणरूप कल्पवृक्ष लक्ष्मी की भी कामनाओं की पूर्ति करती है ।। 183

वास्तव में स्वभाव बड़ी कठिनाई से छूटता है । जिन शत्रु राजाओं ने उसे अपने हृदय में स्थिर कर रखा था, उनके सुख के साथ रहने की आदत हो गयी थी । अत: उनकी पराजय के बाद जब इस जेता के सीने से आ लगी थी, तब भी स्वभाववश शत्रु राजाओं के सीने से सुख का निरन्तर हरण करती रहती थी ।। 184

सौन्दर्य ने देखा कि चन्द्रमा के साथ रहने पर राहु ग्रस लेता है तथा कामदेव के साथ रहने पर शिवजी के तीसरे नयन की आग की लपटें चाट जाती हैं इस भय से सुन्दरता शीघ्रता से जिसके मुखकमल में तथा अंगों में आश्रय ले लिया था ।। 185

जो विद्वान् पदज्ञ और शब्दज्ञ भी था, उसके द्वारा माँगनेवालों को नहीं नहीं कहा गया (अर्थात् न नहीं कहा गया) ।। 186

केवल एक ही इन्द्रिय आँख से केवल एक बार कामदेव के घमण्ड को जीतनेवाले शिवजी को दूर हटाता हुआ जो सभी इन्द्रियाँ सदा ही कामदेव जीत रहा था ।। 187

जिसने अपने महा पुण्यफल के रूप में शक्ति, बुद्धि और गतिशीलता को धारण किया था, उसी ने धरती का गुण क्षमा, समुद्र की गम्भीरता और सुमेरु पर्वत का गुण दृढ़ता को भी धारण किये हुए था ।। 188

प्रधान पुरुष के गुणों की सिद्धि के लिए जिसने उसके तीन गुणों को तीन स्थान पर साधा था अर्थात् युद्ध में रज (धूल) को, धर्म में सत्त्व (सत्त्वगुण) को और शत्रु के हृदय में तम (अन्धकार, निराशा) को ।। 189

ईर्ष्या-द्वेष से रहित हुए मुनिगण (संन्यासीगण) संसार के भय से जैसे वन चले जाते हैं, वैसे ही जिसके भय से बड़े-बड़े शत्रु द्वेष छोड़ वन में चले गये थे परन्तु संन्यासियों की तरह मोक्ष लाभ नहीं कर सके ।। 190

वन को ही शत्रु की नगरी बनाकर तथा शत्रुनगरी को वन बनाकर जिसने विपरीत अर्थ को ही पदार्थ बना दिया था ।। 191

पूर्ण चन्द्रमण्डल का उदय देखकर जिसके मुखमण्डल की याद पड़ जाने के कारण जिसके शत्रु चन्द्रकिरणों से शीतल पर्वत के शिला तल पर भी गर्मी से जल रहे थे ।। 192

शिवजी में भक्ति करनेवाले साधकों में श्रेष्ठ जिसका हृदयमण्डल शिवजी के ठहरने का प्रशस्त स्थान था, उसी प्रकार लक्ष्मी के कण्ठ से प्रेम करनेवाले, उसके गले में गोल घेरा बनाकर पड़े रहनेवाले, (अथवा तलवारधारियों में श्रेष्ठ) तथा जिसके गोल और विस्तृत घेरे में लक्ष्मी का विस्तृत निवास स्थल था, वैसी भुजाएँ उसके हृदय के समान हुआ ।। 193

दोषों को दूरकर रस्सी को खींचकर बाँस के बने धनुष को इच्छित गति देनेवाले उसने दोषों को दूर कर, गुणों की वृद्धि कर, अपने वंश में ही उत्पन्न प्रकृतिमण्डल (राज्य के सप्तांगमण्डल) को कल्याणकारी गति देकर उन्हें भी धनुषमण्डल की तरह बनाया था ।। 194

जिस राजाओं में चन्द्रमा के शत्रुविनाशक मण्डल को मारे गये शत्रुओं की पत्नियाँ अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखा था अथवा आँसुओं के वाष्प से नहीं देखे ।। 195

मन को मथ देनेवाले कामदेव के शौर्य के समान शत्रुओं के हृदय को मथ देनेवाले जिस राजा के शौर्य और यश के गीत मनोहारी रूप में स्वर्ग की अप्सराओं द्वारा गाये गये ।। 196

जैसे सूर्य उत्तर मार्ग से तपाता हुआ, दक्षिण मार्ग से शीतल करता हुआ तथा विषुव संक्रान्ति पर समरस होकर चलता है, उसी प्रकार जिस प्रतापी राजा ने उत्तरमार्गियों अर्थात् प्रतिकूल चलनेवालों का निग्रह करता हुआ दक्षिण अर्थात् अनुकूल चलनेवालों पर अनुग्रह करता हुआ तथा मध्यस्थों पर समरस होता हुआ जो सूर्य के समान ही हो रहा था ।। 197

लड़ाई रूपी यज्ञ को समाप्त कर शत्रु नगरों से लूटे गये धन से जिस विद्वान् ने वैदिक यज्ञ आरम्भ किया, वह राजसूय करनेवाले युधिष्ठिर के समान ही हो रहा था ।। 198

उस गोसेवा रूप यज्ञ को न छोड़नेवाले को प्रजारूपी धन पर्याप्त था

क्योंकि प्राचीन काल में गोसेवा यज्ञ को छोड़ने के कारण ही दिलीप का प्रजालोप हो गया था ।। 199

जिसके यज्ञ धूम से ढँका अदृश्य हुआ सूर्य यज्ञभाग पाने की इच्छा से सम्पूर्ण मण्डल के साथ अग्नि सम्बन्ध से ही उपस्थित हुआ था ।। 200

जिसकी दान रूप सुवर्णमयी वृष्टि सभी रत्नों से भरी और स्थिर थी जबकि थोड़ी देर तक ही स्थिर रहनेवाली मेघों द्वारा बरसायी गयी इन्द्र की वृष्टि चपला थी अस्थिर थी ।। 201

जिसके दान संकल्प के जल के समुद्र में डूबी होने पर भी यज्ञाग्नि से चमक रही लोगों को पालन करनेवाली जिसकी पृथिवी विकास के शिखर पर सुशोभित हो रही थी ।। 202

शरण में आये राजाओं के सारे राष्ट्रों को उसने अश्रुरहित अर्थात् दुःखहीन कर दिया जबकि शिवजी अपने श्वसुर हिमवान को भी वाष्प (अश्रु) से मुक्ति नहीं दिला सके और आज भी गंगा के रूप में उसे धारण किये हुए हैं ।। 203

क्या जगत् को नापने के प्रयास में विष्णु ने तीन बार विक्रम का प्रदर्शन किया था ? इस शंका का नाश करते हुए जिसने एक ही विजय प्रयास में सारे जगत् को फिर से अधिकृत किया अथवा सारे जगत् को नापने के कठिन कर्म को एक ही विक्रम के प्रदर्शन से पूरा किया ।। 204

सूर्य का गुण तापन (दण्ड) और चन्द्रमा का गुण आह्लादन (पुरस्कार) को जो हाथों में ही धारण किये हुए था वह मन्त्रियों द्वारा अनुपेक्ष्य (अतिक्रमण योग्य नहीं) होते हुए सायं-प्रातः उसी प्रकार उपास्य था, जैसे मन्त्र जपनेवाले सायं-प्रातः अनुपेक्ष्य रूप से सूर्य-चन्द्र की उपासना करते हैं ।। 205

किसी को किसी चीज का व्यसनी बताना उसे नीचा दिखाना या निन्दा करना है, परन्तु जिसने गुणों में (से श्रेष्ठ को) व्यसनी होकर ग्रहण किया ।। 206

जैसे मारीच के द्वारा पुकारे गये राम के नाम का प्रथमाक्षर सुनकर ही सीता को भय हो गया था उसी प्रकार जिसके वीर शत्रु राजाओं को उसके नाम के आद्यक्षर को ही सुनने से भय होता था ।। 207

अनेक रूप धारण करनेवाले शिवजी और विष्णु भगवान् अपने देहार्ध सन्धि को (हरिहर रूप को) अच्छा न समझकर जिसके शरीरार्धों के द्वारा अपने देहार्ध सन्धि रूप से भिन्न रूप बनाया ।। 208

व्याकरण के नियम के अनुसार पद की विधियाँ समर्थाश्रिता होती हैं । इस नियम के अनुसार इसके पद ही केवल सम्यक् अर्थ के आश्रित नहीं थे अपितु वर्ण और उच्चारण में में भी समर्थ की व्याप्ति अनुपमेय थी । अर्थात् न केवल उसके प्रशासनिक पदों की व्यवस्था ही उसके सामर्थ्य को अभिव्यक्त करते थे अपितु उसके आदेश भी अनुपम सामर्थ्य से व्याप्त थे ।। 209

संसार में प्रजा को बढ़ाता हुआ तथा आघात से रक्षा करता हुआ जो न केवल अंगकान्ति से अपितु जाति से भी अर्थात् क्षत्रिय होने से (क्षत या आघात से रक्षा करनेवाला क्षत्रिय) अथवा सामान्य धर्म से भी कामदेव को जीत लिया था । (काम सन्तति वृद्धि का तथा ताप-निवारण का कारण है) ।। 210

यज्ञ में दानरूप में रानी सुदक्षिणा को पानेवाले दिलीप को भी जिसने जीत लिया क्योंकि क्षत्रिय-धर्म के अनुसार यज्ञ में इसने अनेक पात्रों में उसी सुदक्षिणा (विपुल दक्षिणा) का दान किया ।। 211

उसने (जिसने) असाधारण भूषण सौजन्य की रक्षा की थी जबकि भगवान् विष्णु नाम के कौस्तुभ मणि को हृदय पर धारण करते हैं ।। 212

दधीचि के कुल में उत्पन्न हुए को दुष्ट उच्चारण के कारण शाप देकर जो सरस्वती स्वर्ग चली गयी थी, वह जिसे आशीर्वादों के द्वारा सुस्वर प्रदान करती हुई आज भी धरती पर घूम रही है ।। 213

पहले पराक्रम, बाद में यश– इस तरह का द्वन्द्व संयोग जिसके यश का है, उसका यश दिश रूपी सुन्दरी के प्रति अनुरक्त होते हुए भी नपुंसक है; क्योंकि पराक्रम यश इस द्वन्द्व संयोग में पूर्वपद पराक्रम नपुंसक है और द्वन्द्व समास के नियम के अनुसार समस्त पद का लिंग पूर्व पद के अनुसार होता है (**'परवल्लिंगं द्वन्द्व तत्पुरुषयोः'**– यह पाणिनि का प्रसिद्ध नियम है ।) ।। 214

भूमि (राज्य) लक्ष्मी को प्राप्त करने में असमर्थ अंधेरी गुफाओं में जा बसे, श्रीमान् आदित्यवर्मन से द्वेष करनेवाले उसके शत्रु सीता को प्राप्त करने में

असमर्थ मन्दोदरी से प्रेम करनेवाले देवद्रोही रावण की तरह राक्षस हो रहे थे ।। 215

शून्यवादी और अनीश्वरवादियों के सिद्धान्त का सर्वत्र व्याप्त विभु ईश्वर के विभूति अवतार के रूप में अपने को प्रकट कर इसी युक्ति (तर्क) से जिसने खण्डन किया ।। 216

जो एक होते हुए भी असंख्य गुणवान् प्रकट वह मानो कुतर्क करनेवालों को गुण गुणी को व्यतिरेक व्याप्ति बता रहा था । अर्थात् उसके अभाव में गुणों का अभाव था । उसकी स्थिति में ही गुणों की स्थिति थी । अर्थात् सारे गुण एकमात्र उसी में थे ।। 217

उसके यश की सुगन्धियों से न केवल पृथिवी गन्धवती हो रही थी अपितु दिशाओं द्वारा बिखेरे गये उसके यशकुसुम से स्वर्ग भी सुगन्धित हो रहा था ।। 218

जैसे वैयाकरण धातु के अर्थ को पाने के लिए आगे उपसर्ग तथा पीछे प्रत्यय लगाकर पद बनाते हैं, उसी प्रकार यह शास्त्रज्ञ शत्रु के अर्थ को अर्थात् धनलक्ष्मी को पाने के लिए पहले उपसर्ग अर्थात् उपद्रव या आक्रमण का तथा बाद में प्रत्यय अर्थात् अधीनस्थ करने का प्रयोग कर राज्य पद प्राप्त किया ।। 219

दसों दिशाओं के अन्दर घूमनेवाले यशरूपी चन्द्रमा के जनक तथा अनुसूया अर्थात् निन्दाहीनता की स्थिति जिसका अनुगमन करती है वह राजा चन्द्रमा के जनक तथा देवी अनुसूया जिसका अनुगमन करती है, वैसे महर्षि अत्रि के समान दूसरा अत्रि हो रहा था ।। 220

पुराणों के अर्थ में तथा वृद्धों के वचन में प्रेम रखते हुए भी जो मनोहर काव्यों में नवीन अर्थाधायक अभूतपूर्व वर्णन विषय के रूप में वर्णित हुआ ।। 221

सभी कलाओं की प्राप्ति के लिए निष्कल अर्थात् निर्गुण शिवजी की नित्य रूप से भक्ति करके जिसने सभी कलाओं को प्राप्त किया लेकिन एक अर्द्धकला चन्द्रमा के जड़ होने के कारण उसे छोड़ दिया ।। 222

जिसकी सभी उन्नति को स्वीकार करते हुए लोग मुख नीचे की ओर

हिलाते थे, वे वास्तव में उसके गुणों के वर्णन से अपने को हीन समझ ही लज्जा से मुख नीचे किये हुए थे ।। 223

केवल कार्तिकेय जिस कौमार्य धारण किये थे, उसे धारण करते हुए जिसने वृद्धावस्था से रहित यौवन को पाकर अभी तक जो नहीं पाया गया था, उसे भी पा लिया ।। 224

जिसके द्वारा अनुशासित सभी प्रजा नहीं करने योग्य कर्मों से दूर रहकर परस्पर प्रचुर प्रिय और हित कार्य कर रहे थे ।। 225

कठिन धर्माचरणों को करनेवाला तथा पूर्वकाल के पुण्य करनेवालों के द्वारा किये गये समस्त शास्त्रोक्त कर्मों को करनेवाला जिसने दूसरों से नया नहीं किया अर्थात् शास्त्र और परम्परा का उल्लंघन नहीं किया ।। 226

शिवजी के बिखरे जटापाश को पाकर जिसकी गुणकीर्ति चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रही थी जबकि शत्रु राजाओं की कीर्ति गंगा की तरह भ्रष्ट होकर नीचे गिर पड़ी थी ।। 227

जिसके यश से प्रेम रखनेवाले कवियों के द्वारा जिसके यश का वर्णन बार-बार किया गया, वह पुनरुक्ति नहीं थी अपितु उसके यश को नित्य बताने की इच्छा से ही करोड़ों बार वर्णन किया गया ।। 228

इतने से ही उसके वीर होने तथा शस्त्रज्ञानियों में श्रेष्ठ होने का अनुमान हो जाता है कि उसने जिस प्रकार अपने सशरीरी शत्रुओं को तलवार की धार से काट दिया था, उसी प्रकार अपनी तेज से अशरीरी शत्रु कामदेव को भी परास्त कर दिया था ।। 229

जिस प्रकार दक्ष प्रजापति की पुत्रियों में से मेधा आदि दस दशांग धर्म से विवाहित उसमें स्थिर हो गयी थी, उसी प्रकार जिसकी विवाहिता रानियाँ धर्म में स्थित हो रही थीं ।। 230

प्राचीन काल में पुरुरवा के क्षीण हुए कान्ति को देखे दोनों देवों मित्रावरुण (मित्र और वरुण) ने जिसकी समृद्ध कान्ति को देखकर पुरुरवा की सम्पूर्ण अंगकान्ति ही मानी ।। 231

जिसकी पृथिवीरूपी सुन्दरी महिषी (पटरानी) यमराज के महिष (भैंसा) से प्रतिस्पर्धा के कारण ही धर्मराज से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ही मानो निरन्तर यम की दिशा (दक्षिण दिशा) का पीछा कर रही थी। अर्थात् उसका साम्राज्य निरन्तर दक्षिण की ओर बढ़ रहा था ।। 232

जिसके शासनकाल में राष्ट्र के चोररहित हो जाने पर किसी ने आँखों से या अपने सौन्दर्य से सुन्दरी के मन को चुराया या हरण किया ।। 233

वृद्धों के उपदेशरूप अमृतसागर में सदा डूबे रहने पर भी जिसने वृद्ध (बड़े) राजाओं के मस्तक की शोभा को रण में लाँघ गया- उल्लंघन किया ।। 234

रज और तमोगुण से रहित होने पर भी जो सभी गुणों से युक्त था मानो वह प्रकृति और बुद्धि से परे परमपुरुष परमात्मा ही हो रहा था ।। 235

जिसके होताओं द्वारा लक्षहोम की अग्नि में डाली गयी लाखों आहुतियों ने उसी प्रकार महाफल दिये, जिस प्रकार जल से सिक्त भूमि में बोये गये सभी बीज प्रचुर पैदावार देते हैं ।। 236

प्राचीन काल में प्रेरित किये जाने पर सूतों और मागधों ने पृथु की स्तुति की थी परन्तु जिसकी स्तुति सम्पूर्ण संसार ने बिना किसी प्रेरणा के ही कारण किया ।। 237

उद्दण्ड भूभृत(राजे) उसके द्वारा नष्ट कर दिये गये यह देखकर अपने भूभृतत्व के कारण पर्वत सब भी मानो अपने पक्षहीन होने को (दलहीन होने को या इन्द्र द्वारा पंख कटे होने को) बताकर जिसको नमस्कार करते हैं। (अथवा- उद्दण्ड राजे उसके द्वारा नष्ट कर दिये गये यह देखकर शेष राजागण इस भय से कि राजा मात्र होने के कारण हम भी नष्ट न कर दिये जायें अपनी पक्षहीनता अर्थात् उद्दण्ड राजाओं के दल का न होने को बताकर जिसे प्रणाम करते थे) ।। 238

जिसने वेद के अच्छे व्याख्याताओं को ब्रह्मविद्या पढ़ायी थी, उस श्री सोमेश्वर भट्ट से जिसने मीमांसा पढ़ी थी ।। 239

जिसके द्वारा रचा गया 'राजपद्धति' नामक ग्रन्थ आज भी प्रकाश (ज्ञान) देता है जिससे आगे बढ़ते हुए राजागण आज भी दोनों लोकों (पृथिवी एवं

स्वर्ग) में अपने हित साधन में अचूक बने हुए हैं ।। 240

वह निष्कलंक था अतएव कलंकयुक्त चन्द्रमा का उपहास किया ऐसी बात नहीं थी अपितु पक्षपातहीन मण्डल (विविध अधिकारी प्रमुख वर्ग) से घिरे हुए होने के कारण पक्षानुरूप मण्डल धारण करनेवाले (पक्षपातयुक्त मण्डल धारण करनेवाले) चन्द्रमा की निन्दा की ।। 241

राज्यरूपी नपुंसकावस्था ('राज्य' शब्द नपुंसक लिंगी है) को प्राप्त करने पर भी जिसने प्रजा की समृद्धि ही की, उस शत्रुश्रेष्ठ को जीतनेवाले को नपुंसकतावस्था को प्राप्त वृत्रजयी लोककल्याणकारी इन्द्र ही समझें ।। 242

समुद्र-मंथन के समय तेज घूमते हुए मन्दराचल को देख चकरायी हुई लक्ष्मी सुमेरु पर्वत का आश्रय लेने के उद्देश्य से सुमेरु के समान इस सुवर्ण वर्णवाले को पाकर सुस्थिर हो गयी थी ।। 243

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रूप कोटर (वृक्ष का खोखला) जिसके यश के लिए अत्यन्त छोटा था फिर भी उसमें अपने विराट् यश का प्रदर्शन जिसने उसी प्रकार किया जिस प्रकार सर्वशक्तिमान भगवान् कृष्ण ने अपने मुख के छोटे से छिद्र में तीनों लोकों का प्रदर्शन किया था ।। 244

शब्द के समान बाणों से दूर कर दिये गये हैं जहाँ से शत्रुश्रेष्ठ वैसे कम्बुपुरी का पुरोहित वागीश की नीति के अनुसार शासन करते हुए जो देवताओं द्वारा जहाँ से इन्द्र के शत्रु को भगा दिया गया है वैसे अमरावती का गुरु बृहस्पति की नीति के अनुसार निरन्तर शासन करते हुए इन्द्र के समान ही था ।। 245

शत्रु समूह के समाप्त हो जाने पर भी जो ठीक उसी प्रकार अपने दुर्गम दुर्ग में रहता था जैसे त्रिदेव– ब्रह्मा, विष्णु और महेश अवध्य होते हुए भी दुर्गम सुमेरु पर्वत पर रहते हैं ।। 246

जिसके शासनकाल में प्राणियों में गुण प्रधान हो गये थे तथा भूत (पञ्चभूत) गौण हो गये थे अर्थात् भौतिकता गौण हो गयी थी । इस उल्टी स्थिति से भी प्राणियों को महाफल (मुक्ति) की प्राप्ति हुई थी ।। 247

लक्ष्मी जिसका पराग थी तथा यश ही जिसका सुगन्ध था, ऐसे साम्राज्य सरोवर में विकसित जिसका चरणकमल दुष्ट शत्रु राजागण रूप भौंरों से सुशोभित

था (अर्थात् शत्रु जिसके चरणों में थे) ।। 248

जिसने युद्ध में शत्रुओं के असंख्य अस्त्रों को बेकार कर दिया था जबकि महादेव जी केवल एक ही अस्त्र को बेकार किये थे जो कि फूलों का बना हुआ था ।। 249

दुष्ट माण्डलिक राजाओं को दमन करते हुए जिसका यश उसी प्रकार प्रकाशित हो रहा था जिस प्रकार देवताओं द्वारा समुद्रमंथन से चन्द्रमा प्रकाशित हुआ था ।। 250

दीर्घकालीन यज्ञ में दान किये गये सैकड़ों मदचारी से भीगे मदोन्मत्त हाथियों के समान ही उस दीर्घकालीन यज्ञ में किये गये सैकड़ों उत्तम दान के संकल्प की जलधारा से भीगी मत्त हुई जिसकी कीर्ति दिशाओं में घूम रही थी ।। 251

कमल को कण्टकयुक्त (कमल नाल के काँटे) पाकर कमल से अनमनस्क हुई लक्ष्मी जिसके कण्टकहीन अर्थात् शत्रुहीन बाहुकमल को प्राप्त हो गयी थी ।। 252

ब्रह्मा के द्वारा जो विशेष रक्षक के रूप में बनाया गया था वह अत्यन्त पवित्र तथा स्फटिक के समान गौर वर्ण का होता हुआ भी बार-बार नील लोहित अर्थात् यम के समान कठोर होकर स्फटिकवर्णी नीलकण्ठ तथा लोहित केश शिवजी के समान ही हुआ ।। 253

सेना के व्यूह के बीच स्थित शत्रु को भी जिसकी प्रतापाग्नि ने जला दिया था उसके सम्मुख आये तथा विपरीत दिशा में भागते हुए शत्रु की बात ही क्या ! ।। 254

प्रलय काल में सब कुछ समाप्त कर विशाल जलराशि से एकीकृत हुए चारों समुद्रों के बीच प्रशान्त सोनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम जिनकी कीर्ति स्तोत्रों से जगकर एक होते हुए अनेक रूपों में प्रकट होता है ।। 255

कवि प्रयत्न क्षयशील होता है परन्तु जिसके गुणगान के लिए होनेवाले कवि प्रयत्न (काव्य रचना) जिसके चरित्ररूपी अमृत के संयोग से (सम्पर्क) अविनाशी वेद की तरह अक्षय हो गया ।। 256

डरी हुई पृथिवीरूपी गाय, डरानेवाले पृथु राजा को अल्प ही दूध (अन्न) देकर, दूसरों को बहुत दूध देकर भी जिस अभय देनेवाले को सब कुछ दे दिया ।। 257

समास की एक अपनी वृत्ति होती है जहत् स्वार्था अर्थात् कोई तीसरे अर्थ के साधन के लिए दोनों पद अपना मुख्यार्थ छोड़ देते हैं जैसे बहुब्रीहि समास में नील और अम्बर– दोनों ही पद अपना मुख्यार्थ छोड़कर समन्वित रूप से संकर्षण बलदेव का बोधक बन जाते हैं, ठीक उसी प्रकार दूसरों के विकास (उन्नति) के लिए स्वार्थ का त्याग करने की समास की शक्ति की तरह के सामर्थ्य से जो युक्त था ।। 258

मोक्षप्राप्ति के लिए भास्वर तत्त्वज्ञान से युक्त होते हुए भी जो लोगों के हृदय से मुक्त न हो सका था अर्थात् हृदय के बन्धन में बँधा ही रहा ।। 259

जो एकसाथ ही अपने शरीर में तीनों गुणाभिमानी देवों को एकसाथ धारण करता था अर्थात् ऐश्वर्य के रूप में रजोगुणाभिमानी ब्रह्मा जी को, पापों का विनाशकर्ता होकर विनाशकारी तमोगुणाभिमानी शिवजी को तथा राज्य के सातों अंगों में सात्त्विकी वृत्ति से रहता हुआ जगत् का पालनकर्ता होकर सत्त्वगुणाभिमानी जगन्नाथ भगवान् विष्णु को ।। 260

दूसरों के धन की इच्छा न रखनेवाला, दूसरों को दान में दक्ष तथा अपना धन दूसरों को देने में बस नहीं करनेवाला होने पर भी जिसने दूसरों से शुद्ध ज्ञान लिया ।। 261

अन्य योद्धाओं के विषय में शंका होती थी कि जय होगा या पराजय परन्तु जिसके विषय में यह असंदिग्ध था कि युद्ध में लड़ने पर विजय ही होगा ।। 262

युद्ध में जयलक्ष्मी भी कितनी निष्ठुरा हो गयी थी कि जिसकी छाती पर शत्रु सैन्य के हाथियों ने दाँतों के आगे के नुकीले भाग से ज़ख्म कर दिये थे उसी ज़ख्मी छाती पर अपने स्तनों से प्रहार करती थी । अर्थात् युद्ध में शत्रु सैन्य के हाथियों के दाँतों के प्रहार से जिसके ज़ख्मी हुई छाती से लक्ष्मी आ लगी थी ।। 263

जिस जेता योद्धा के विजय पर पुष्पवृष्टि के समय देवता द्वारा हाथों से गिराये गये कमलपुष्पों की प्रतिस्पर्धा में ही मानो उसने कीर्तिरूपी मन्दार पुष्पों की मंजरियाँ बिखेरी थी ।। 264

संसार का आभूषण चन्द्रमा है जो अखण्ड नहीं रहता और न सभी दिशाओं में ही रहता है इस प्रकार संसार के खण्ड भूषणत्व को देखकर ही मानो उसने (जिसने) संसार को अपूर्व और विपुल आभूषण धारण कराने के उद्देश्य से अपने अखण्ड यशचन्द्र से दसों दिशाओं को सजाया था ।। 265

जिसके शरीररूपी अति सौरभशाली आम्रवृक्ष सौन्दर्य फल पर लगी लोगों की नेत्ररूपी भौंरी उसके कीर्तिरूपी फूल से आकृष्ट होकर न हट सकी थी ।। 266

अपने को ईश्वर कहने की इच्छा से (कहे जाने की इच्छा से) अपेक्षित कारणों की तरह माया के अज्ञान से मुक्त होकर (मायाजन्य दोषों के कारण विरक्त होकर) जिस विद्वान् ने करने योग्य कर्मों को किया ।। 267

जिस विधियों को जाननेवाले ने श्री इन्द्रवर्मन तथा श्री यशोवर्मन आदि राजाओं द्वारा स्थापित देवताओं को संकल्पित यज्ञ में (कृत यज्ञ) सुप्रतिष्ठित किया ।। 268

श्री यशोवर्मन द्वारा बनवाये गये यशोधर तालाब के किनारे अदृष्ट धर्म को भी जिस पुण्यवान् (विद्वान्) ने प्रत्यक्ष कर दिखाया, अथवा आज तक नहीं देखा गया ऐसे यज्ञ को जिस पुण्यवान् ने कर दिखाया ।। 269

कम्बुज की धरती पर जो अद्वितीय यज्ञकर्ता होकर कम्बुज धरती पर स्वयं व्यक्त तथा स्थापित सभी देवताओं की पूजा में वृद्धि की थी ।। 270

राजाओं में जो चन्द्रमा के समान था, उसके द्वारा जैसे-जैसे भगवान् भद्रेश्वर के अलंकारों में वृद्धि की गयी, वैसे-वैसे मानो चन्द्रमण्डल की शोभा को लजाने के लिए जिसकी मण्डल लक्ष्मी (राज्यमण्डल की सम्पत्ति) बढ़ी थी ।। 271

चम्पानरेश को अपने बाहुबल से जीतकर जिसने उनकी लक्ष्मी (सम्पदा) को गंगा के तट पर स्वयं व्यक्त चम्पेश्वर नाम के शिवजी के लिए

मानो उनके चम्पेश्वर नाम को सार्थक करने के लिए समर्पित कर दिया ।। 272

सीता नदी (गंगा नदी) के तीर पर उस पुण्यास्पद देव नदी गंगा के लिए जैसा कि उसका नाम है त्रिपथगा– तीन पथों से बहने के लिए तीन स्वर्णद्वारों का निर्माण जिसने बहुत अर्चना के साथ किया ।। 273

सत्यवती पुत्र वेदव्यास ने जैसे महाभारत की रचना करके पुनः वेदों का सम्पादन कर संहिताओं को पूरा किया, उसी प्रकार जिसने यशोधर नगरी को बनाकर पुनः उसे धर्म, अर्थ और काम– तीनों पुरुषार्थों से पूरा किया ।। 274

यशोवर्मन राजा की याचना योगाचारोक्त सिद्धान्त की तरह अर्थहीन हो गयी थी, उसे जिस धर्मकर्ता ने अपने उद्धृत धर्माचरण के द्वारा वेद की तरह अर्थवान् (सार्थक) बनाया ।। 275

यहाँ बड़े-बड़े (ऊँचे उठे हुए) अथवा प्रतापी राजाओं के कुल मान और मस्तक डूब चुके हैं, उस पद्मसरोवर के तट पर बैकुण्ठ पार किये हुए जिसका नाप है उसके अन्तिम (चौथे) शुभ्र चरण को जिसने यहाँ स्थापित किया ।। 276

उसी श्री राजेन्द्रवर्मन ने भद्रेश्वर– इस नाम से विख्यात शिवलिंग को पहले तथा पुनः पार्वती, शिव तथा श्रीकृष्ण– इन चारों की सुन्दर मूर्तियों को तथा मानो चारों दिशाओं में उसकी सुन्दर कीर्ति को कहने के लिए चार मुखों के समान चार मुख से युक्त शिवजी की सुन्दर पूजा तथा विपुल सम्पदा के साथ शक संवत् 813 में स्थापना की ।। 277

उसी राजेन्द्रवर्मन के द्वारा अणिमादि अष्टसिद्धि गुणों से युक्त राजेन्द्रवर्मेश्वर नाम से शिवजी इन्द्रादि आठों दिक्पालों की शक्तियों को धारण किये हुए जैसे राजा आठों दिक्पालों की शक्ति से सम्पन्न होता है– वैसे ही राजा रूप में (राजा भाव से) स्वर्गतुल्य दक्षिण-पूर्व देश में स्थापित हैं ।। 278

उसी के द्वारा त्रिभुवन जिसकी इच्छाओं का विस्तार मात्र है, वैसे भगवान् विष्णु की मनोहारी तथा राजाओं के भी राजा भगवान् विश्वरूप शिवजी की विराट् मूर्ति इसी समय में स्थापित की ।। 279

श्री हर्षदेव की माता जयदेवी की माँ गंगा की स्वर्ग प्राप्ति के लिए उसी के द्वारा सुन्दरी गिरिजा देवी स्थापित की गयी ।। 280

राजाओं के भी स्वामी उस राजेन्द्रवर्मन ने श्री हर्षवर्मन राजा के भाई के पुण्य के लिए देवेश्वर की स्थापना की (देवेश्वर=देवताओं द्वारा पूजित शिवजी) ।। 281

दसों आध्यात्मिक नियमों में सिद्ध ने आद्य प्रणव रूप विष्णु की तथा शिवजी के मस्तक स्थित चन्द्रमा से प्रवाहित सुधा धारा के समान शिवजी की आठों मूर्तियों की स्थापना की ।। 282

जिस आठों दिक्पालों के राजा रूप मूर्ति में तीनों लोकों की लक्ष्मियाँ दिक्पालों की तरह एकत्रित हो गयी थीं, उसी राजा ने विविध सम्पदा देवताओं की सेवा में दी ।। 283

सिंघा और डंके की आवाज़ से भरे पूजा महोत्सव को समाप्त कर उसने देवताओं की सेवा में सोने के रत्नजड़ित आभूषणों के दान का समुद्र की तरह ढेर लगा दिया था जिसकी लहरें बढ़ती ही जा रही थीं ।। 284

उसी इन्द्र के समान राजा के द्वारा नियुक्त मेघ के समान जनकल्याणकारी अधिकारियों द्वारा योग्य पुरुष से सभी छः प्रकार के मद-मोहादि विष समाप्त कर दिव्य दैवी जल के समान स्वधर्म तथा अन्नरूप में यज्ञान्न ही देय हुआ ।। 285

"भविष्य में होनेवाले कम्बुज राजागण ! विश्रुतदानी श्री राजेन्द्रवर्मन आपसे याचना करता है" और पुनः याचना करता है कि आप अपने इस उदार धर्म की रक्षा करें और उदारों से यही याचना करें ।। 286

परमात्मा एक है तथा विभिन्न शरीरों में बहुत प्रकार से स्थित हुआ वही कर्ता और भोक्ता है, अतः आपलोगों का स्वधर्म ग्रहण और विद्वानों के सभी धर्मों में वृद्धि हो ।। 287

उपाधिभेद के कारण कर्तृत्व-भेद तथा डरने के लिए कर्मफलों की रचना जिसने की है, वह छिपा हुआ है उसे परमार्थ बुद्धि से उसी प्रकार प्रकाशित करें (अथवा परमार्थ बुद्धि से उसके आच्छादन को उसी प्रकार दूर करें) जैसे सूर्य का प्रकाश गहन अन्धकार को दूर करता है ।। 288

आपके द्वारा तपस्या से प्राप्त इस धरती तथा उस पर के ये अशेष प्राणी

आपसे रक्षणीय हैं यदि कोई किसी को सता रहा हो तो आपसे एक क्षण की भी उपेक्षा न हो ।। 289

क्षत्रिय कहे जानेवालों की पहचान ही यही है कि सताये जानेवालों की रक्षा करें । ब्रह्माजी की भुजा से जन्म पाये तथा भुजबलरूपी सुन्दर आभूषण धारण करनेवाले आप लोगों को अपने धर्म को प्रकाशित करना चाहिए ।। 290

यदि धर्म पर आपत्ति आ जाये तो राज्य सुख में, धन-सम्पदा में या नींद में डूबे हुए होने पर भी आपका सचेष्ट होना वैसे ही होना चाहिए जैसे धर्म की ग्लानि होने पर क्षीर समुद्र में सोये भगवान् विष्णु नींद छोड़ सचेष्ट हो जाते हैं ।। 291

जिस कारण से देवत्व स्नैपात्व को प्राप्त हो जाये तथा अजन्मा भगवान् विष्णु, ब्रह्माजी तथा शिवजी स्त्री प्रेमी हो जायें उस कारण के रहते हुए भी आप लोगों का धर्म पालन-पोषण चलता रहे ।। 292

जैसे यमदेव के पास पहुँची पातिव्रत्य नियम को धारण करनेवाली सुन्दरी सत्यवान की प्रिया सावित्री अन्धे सास-श्वसुर को दृष्टि देनेवाली तथा सत्यवान की प्राणरक्षिका हुई थी उसी प्रकार यम और नियम से युक्त सुन्दरी की तरह आपकी धृति (धैर्य) आपके अज्ञानाच्छन्न दृष्टि को ज्ञान दे तथा मेरे यश शरीर स्थित धर्मरूपी प्राण (जीव) की रक्षा करे ।। 293

देवताओं के लिए दान की गयी इस रत्न आदि देव-सम्पदा को, विष से लिपटे हुए के समान को कौन लेने की इच्छावाला हो सकता है ! श्री शिवजी के कण्ठ-स्थित कालकूट विष के समान ही है– यह आप विद्वानों का विचार दृढ़ रहे ।। 294

आपलोग चिरकाल तक राजारूढ़ रहकर धर्मकार्य में तत्पर, त्याग गुणों से विशिष्ट, अति तेजस्वी, कोष और सैन्य से समृद्ध, पुण्यकर्मा, प्राचीन राजाओं के समान होवें ।। 295

पति को वरण करनेवाली स्वकुलोत्पन्न कन्या के समान मेरी यह धरती आप जैसे उच्च कुलोत्पन्नों को पाकर शालीनता और मृदुता को प्राप्त करे– यह मेरी याचना मेरे भावों को प्रकट करती है अथवा मेरे अभिप्रायों को स्पष्ट करती

है ।। 296

श्री शिवजी के माथे पर की माला के समान तथा स्वर्ग और मोक्ष की शान्ति का एकमात्र मार्ग गंगा की जलराशि में डूबी हुई सी मेरी यह वाणी आपलोगों के मन को गम्भीर आनन्द से आनन्दित करे । (अथवा- स्वर्ग और मोक्ष की शान्ति का एकमात्र मार्ग तथा राजाओं के द्वारा शिरोधार्य मेरी यह वाणी आपलोगों के गम्भीर मन को उसी प्रकार आनन्दित करे जैसे समुद्र में प्रविष्ट हुई गंगा प्रशान्ति और आनन्द प्रदान करती है) ।। 297

चन्द्रवंशियों के द्वारा स्वप्रयत्नों से अभीष्ट सिद्धि के लिए भरण की याचना भी युक्तिसंगत कही गयी है । मेरी यह उक्ति अमृततुल्य, पालनीय और धर्मवृद्धि के लिए समर्थित है– अतएव मैं धर्मप्रेम के कारण याचना करता हूँ ।। 298

६९

बसक खड़े पत्थर अभिलेख

Basak Stele Inscription

बटम बंग प्रान्त में दोनत्री में एक खड़े पत्थर पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है । यह अभिलेख भगवान् शिव महेश्वर, रुद्र तथा त्रिविक्रम की एक स्तुति से प्रारम्भ होता है । इसमें राजा राजेन्द्रवर्मन की एक स्तुति का अनुकरण हम पाते हैं । राजा ने यशोधरपुर की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित कर यशोधर तटाक के पास पाँच देव-मन्दिरों का निर्माण करवाया । इस अभिलेख के अधिकांश पद इस प्रकार से नष्ट हो चुके हैं कि उनका कुछ भी तात्पर्य नहीं निकलता है । पर नृपेन्द्रायुध नामक एक सुपरिचित अधिकारी का वर्णन है जिसने वककाकेश्वर नामक एक देवता के लिए कई प्रकार के दान किये थे जिनमें ग्राम, सुवर्ण, चाँदी एवं दास भी थे ।

इस अभिलेख में कुल 12 पद्य हैं ।

जॉर्ज सेदेस ने इस अभिलेख का सम्पादन किया है।[1]

1. *IC*, Vol. II, p.58

वन्दे महे श्वरं यस्य भाति पदनखप्रभा ।
नम्रेन्द्रमौलिहेमाद्रिबालारुणविभा निभा ॥ 1
नमोऽस्तु तस्मै रुद्राय यदर्द्धाङ्ग हरिर्द्दधौ ।
कालकूटविषोद्दामदाहसंहरणादिव ॥ 2
त्रिविक्रमाङ्घ्रिजं पातु.......पातनम् ।
क्रान्तत्रिलोकीलक्ष्यानु........केशरम् ॥ 3
विधिप्रतिष्ठाकृत्भूर्मो भू ....विभवोऽभवत् ।
यः श्रीराजेन्द्रवर्म्मेन्द्रो इन्द्रदैत्येन्द्रमर्द्दनः ॥ 4
यस्यासंख्यमखाम्भोधिजन्तु कीर्त्तीन्दुमण्डलम् ।
शतक्रतु यतस्तारापाण्डुन् दिवमदीपयत् ॥ 5
यद्कान्तवपुपं वोक्ष्य कामकान्ता पुरा यदि ।
नूनमीश्वरनेत्राग्निदग्धन्नैच्छन् मनोभवम् ॥ 6
सव्यापसव्यविकृष्टशरो यो जगतो युधि ।
तेनाप्येकोऽजयन्नित्यमकृष्टसुहृदुन्नतिः ॥ 7
यः श्रीयशोधरपुरन्नवं कृत्वा यशोधरे ।
तटाकेऽतिष्ठिपत् पञ्चदेवान् सौधालयस्थितान् ॥ 8
तस्य पार्श्वधरो भक्तः श्रीनृपेन्द्रायुधाभिधः ।
वककाकेश्वरस्य.............................॥ 9
तेन सर्व्वाणि वित्तानि....................।
किङ्करग्रामकादीनि......................॥ 10
रूप्यस्वर्णविभूति........................।
....॥ 11
वककाकेशपुरुषप्रधानास्तेभ्य एव मे ।
इदं पुण्यम्परिन्दामि स्वपुण्यं पुण्यभागिनः ॥ 12

अर्थ–

भगवान् महेश्वर की वन्दना करता हूँ जिनकी पदनख प्रभा प्रातःकालीन सूर्य की किरणों से अरुणिम हुए हिमालय की प्रभा के समान शोभित है तथा जिन पर इन्द्र प्रमुख देवगण मस्तक झुकाते हैं ॥ 1

उन भगवान् रुद्रदेव को नमस्कार है जिनके आधे शरीर में भगवान् विष्णु सुशोभित हैं। उज्ज्वल वर्ण शिवजी के शरीर में नील वर्ण भगवान् विष्णु के सुशोभित होने से ऐसा प्रतीत होता है मानो शिवजी का अर्द्धांग कालकूट के उद्दाम विष के संहरण से नील वर्ण का हो गया है ।। 2

भगवान् त्रिविक्रम के चरणों से उत्पन्न की रक्षा करें .... गिराने को । तीनों लोकों के स्वामी के लक्ष्य को जिसने आक्रान्त किये हैं ....सिंह के गर्दन के बाल को ।। 3

विविध प्रकार से प्रतिष्ठा की गयी इस भूमि पर जो अति वैभवशाली हुआ वह राजा श्री राजेन्द्रवर्मन देवराज इन्द्र तथा दैत्यराज का भी मर्दन करनेवाला हुआ ।। 4

जिसके असंख्य यज्ञ-समुद्र से उत्पन्न कीर्ति चन्द्र की प्रभा, शतक्रतु इन्द्र की प्रभा को तारागणों की प्रभा के समान फीका बनाते हुए स्वर्ग को प्रकाशित किया ।। 5

जिसके सुन्दर शरीर को देखकर कामदेव की पत्नी रति, प्राचीन काल में भगवान् शिव के नेत्र से उत्पन्न अग्नि से दग्ध शरीरवाले काम की यदि इच्छा न करे तो कोई विशेष नहीं ।। 6

विश्वयुद्ध में दायें-बायें दोनों हाथों से जिन्होंने बाण छोड़े थे उनसे भी उनके मित्र नित्य उनकी जय करते थे ।। 7

जिसने यशोधरपुर को नवीन बनाकर यशोधरपुर में तालाब के तट पर स्वर्गस्थ पाँच देवों को स्थापित किया ।। 8

उसका पार्श्वधर भक्त श्री नृपायुध नामवाले ने वक काकेश्वर का...।। 9

उसके द्वारा सब धन......सेवक तथा ग्रामादि...........।। 10

सोना चाँदी आदि धन..........।

....।। 11

वक काकेश पुरुषों में प्रधान हैं मैं अपना यह पुण्य दान देता हूँ ।। 12

लेखक परिचय

डॉ॰ महेश कुमार शरण
(जीवन–वृत्त एवं उपलब्धियाँ)

जन्मतिथि : दिनांक 26 जून 1944

जन्मस्थान : ग्रा॰ शिवनगर, पो॰ भण्डारी, जिला : सीतामढ़ी, बिहार

माता : स्व॰ दुर्गा देवी जी

पिता : स्व॰ सियावर शरण जी

शिक्षा : कैलासपति हाईस्कूल, अथरी से माध्यमिक परीक्षा (1959)

रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी से 'प्राक् कला' (1960)

ग्रामीण प्रतिष्ठान बिरौली से 'डिप्लोमा इन रूरल सर्विसेज' (1963)

मगध विश्वविद्यालय, बोधगया से एम॰ए॰द्वय– प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन (1965) एवं इतिहास (1969)

मगध विश्वविद्यालय, बोधगया से 'पीएच॰ डी॰' (1969)

मगध विश्वविद्यालय, बोधगया से 'डी॰ लिट्॰' (1973)

अध्यापन-कार्य : मगध विश्वविद्यालय, बोधगया के स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग में 07.01.1966 से 13.12.1973 तक प्राध्यापक;

गया कॉलेज के इसी विभाग में 14.12.1973 से 13.11.1980 तक प्राध्यापक एवं अध्यक्ष;

गया कॉलेज में ही इसी विभाग में 14.11.1980 से 31.01.1985 तक उपाचार्य एवं अध्यक्ष;
गया कॉलेज में ही इसी विभाग में 01.02.1985 से 30.06.2004 तक आचार्य एवं अध्यक्ष।

शोध-निर्देशन : 5 शोधकर्ताओं को 'डी० लिट्०' तथा 60 शोधकर्ताओं को 'पीएच० डी०' के लिए शोध-निर्देशन

सेवानिवृत्ति : 30.06.2004

प्रकाशित ग्रन्थ :

1. ***Tribal Coins : A Study*** (Abhinav Publications, E-37 Hauz Khas, New Delhi- 110016), ISBN : 978-0712801324, 1972,
2. ***Studies in Sanskrit Inscriptions of Ancient Cambodia*** (Abhinav Publications, E-37 Hauz Khas, New Delhi-110 016), ISBN8170170060, 9788170170068, 1974,
3. ***The Bhagavadgītā and Hindu Sociology*** (Bharat Bharati Bhandar, Varanasi), 1977,
4. ***Court Procedure in Ancient India*** (Abhinav Publications, E-37 Hauz Khas, New Delhi-110 016), ISBN : 8170170761, 9788170170761, 1978,
5. ***प्राचीन भारत*** (2 खण्ड) (चौखम्भा ओरियंटैलिया, वाराणसी), 1979 एवं 1981ए
6. ***Select Cambodia Inscriptions*** (Kamala Nagar, Delhi- 110 007), 1981
7. ***Political History of Ancient Cambodia*** (Vishwa Vidya Publishers, Ramesh Nagar, New Delhi-110 015), 1985,
8. ***कम्बुज देश का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास*** (विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी), 1995,

9. *श्री कायस्थ कुलदर्पण* (गया), 2004,
10. *थाईलैण्ड की सांस्कृतिक परम्पराएँ* (विशाल पब्लिकेशन, दरियापुर, पटना, 2004,
11. ***Dhammapada*** (Abhinav Publications, E-37 Hauz Khas, New Delhi-110 016), ISBN : 978817017475 2, 81701747592006, 2006,
12. *एक संघर्षरत विश्वविद्यालय शिक्षक की आत्मकथा* (बिहार के महामहिम राज्यपाल द्वारा विमोचित) (विशाल पब्लिकेशन, दरियापुर, पटना), 2011,
13. *भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास : प्राक् ऐतिहासिक काल से प्राक् गुप्त काल तक* (प्रत्यूष पब्लिकेशन, पावी सादकपुर, गाज़ियाबाद-201 103, उ०प्र०), 2014,
14. *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास : गुप्त काल से पूर्व-मध्य काल तक* (प्रत्यूष पब्लिकेशन, पावी सादकपुर, गाज़ियाबाद-201 103, उ०प्र०), 2014,
15. *प्राचीन भारतीय मुद्राएँ* (प्रत्यूष पब्लिकेशन, पावी सादकपुर, गाज़ियाबाद-201 103, उ०प्र०), 2014,
16. *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख* (प्रत्यूष पब्लिकेशन, पावी सादकपुर, गाज़ियाबाद-201 103, उ०प्र०), 2014,
17. *प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास* (प्रत्यूष पब्लिकेशन, पावी सादकपुर, गाज़ियाबाद-201 103, उ०प्र०), 2014,
18. *थाईलैण्ड : पर्यटकों का देश* (प्रत्यूष पब्लिकेशन, पावी सादकपुर, गाज़ियाबाद-201 103, उ०प्र०), 2014,

19. ***कम्बोडिया के संस्कृत अभिलेख*** (2 भाग), (अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, आपटे भवन, केशव कुञ्ज, झण्डेवाला, नयी दिल्ली-110 055), 2015

आगामी प्रकाशन : 1. ***The Glory of Thailand***,
2. ***भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया : एक अध्ययन***,
3. ***India and South-East Asia : A Study***,
4. ***The Cambodia : they saw***,
5. ***युगयुगीन गया***

सम्पादन : 1. ***मगध : जैन-संस्कृति का मूल क्षेत्र*** (1986 में जैन समाज गया से प्रकाशित स्मारिका),
2. ***बुद्ध-वन्दना*** (बोधगया से 1999 से 2006 तक आयोजित बुद्ध-महोत्सव की स्मारिका)
3. ***उद्भव*** (2015 से गोरखपुर से प्रकाशित वार्षिक शोध-पत्रिका)

शोध-पत्र : शताधिक शोध-पत्र राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं प्रकाशित

शैक्षणिक विदेश यात्राएँ : शोध-प्रबन्ध के सिलसिले में दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों की यात्रा (1976),
महाचुलालौंगकौर्न बौद्ध विश्वविद्यालय (बैंकॉक, थाईलैण्ड) में तीन माह तक अतिथि अध्यापक (1979),
थाईलैण्ड के विभिन्न स्थानों में शोध-प्रबन्ध सामग्रियों के संग्रह हेतु सात सप्ताह के लिए भ्रमण (1986),
नेपाल की दो बार शोध-सामग्री हेतु यात्रा (1995)

सम्पर्क : 'अपराजिता', 26-आर, बैंक कॉलोनी, पादरी बाज़ार, गोरखपुर-237 014 (उ०प्र०);

सचलभाष : 09452778554

ई-मेल : maheshksharan@gmail.co